THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186202

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—556—13-7-71—4,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H398·9 S13R Accession No. H2267

Author सहल, कन्हैयालाल

Title वेणरथानी कहावतें : एक अध्ययन

This book should be returned on or before the date last marked below.

राजस्थानी कहावतें—एक अध्ययन

राजस्थानी कहावतें—एक अध्ययन

(राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध)

लेखक

कन्हैयालाल सहल, एम० ए०, पी-एच० डी०

अध्यक्ष

हिन्दी तथा संस्कृत-विभाग,

बिड़ला आर्ट्स कालेज, पिलानी

१९५८

भारती साहित्य मन्दिर

फव्वारा—दिल्ली

एस० चन्द एण्ड कम्पनी

आसलअली रोड	नई दिल्ली
फव्वारा	दिल्ली
माईहीरा गेट	जालन्धर
लाल बाग	लखनऊ

मूल्य ८·५०

गौरीशकर शर्मा, भारती साहित्य मन्दिर, फव्वारा, दिल्ली द्वारा प्रकाशित एवं
सत्यपाल धवन, दि सैन्ट्रल इलैक्ट्रिक प्रेस, कमला नगर, दिल्ली, द्वारा मुद्रित

उपक्रम

प्रस्तुत अध्ययन एक नूतन और मौलिक प्रयास है। इससे पूर्व राजस्थानी भाषा के विभिन्न क्षेत्रों के कुछ संग्रह प्रकाशित हो चुके थे और उनकी भूमिकाओं में इस विषय पर विचार भी व्यक्त किए गये थे तथापि ऐसा कोई ग्रन्थ उपलब्ध नही था जिसमें राजस्थानी भाषा की कहावतों को लेकर उनका सर्वांगीण अध्ययन उपस्थित किया गया हो। और राजस्थानी भाषा में ही क्यों, जहाँ तक मुझे ज्ञात है, किसी भाषा-विशेष की कहावतों का इस प्रकार का अध्ययन अन्य किसी भारतीय भाषा के साहित्य में भी नही मिलता। सबसे प्रथम विषय की नवीनता ने ही मुझे इस ओर आकृष्ट किया था।

जहाँ तक प्रबन्ध की मौलिकता का प्रश्न है, निम्नलिखित तथ्यो की ओर इंगित कर देना अनुपयुक्त न होगा—

(१) ऐसी कहावतें ग्रन्थ के भीतर स्थान-स्थान पर उद्धृत की गई है जिनका मूल आधार रामायण, महाभारत, जातक तथा कथासरित्सागर आदि ग्रन्थों में मिल जाता है। इस प्रकार की कहावते जहाँ एक ओर नेत्रोन्मीलन का काम करती हैं, वहाँ दूसरी ओर उनके द्वारा राजस्थान में कहावती साहित्य की परम्परा पर भी पर्याप्त प्रकाश पडता है।

(२) बंगाली, मराठी, गुजराती और तमिल जैसी कतिपय भाषाओं को छोड़ कर भारतीय भाषाओ मे कहावत-सम्बन्धी सैद्धान्तिक विवेचन से सम्बन्ध रखने वाले ग्रन्थ अत्यन्त विरल हैं। प्रस्तुत प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय द्वारा इस अभाव को दूर करने का यथाशक्ति प्रयत्न किया गया है। इसी प्रसंग मे कहावत, मुहावरा, प्रज्ञा-सूत्र, व्यवहार-सूत्र, मर्मोक्ति आदि शब्दों का तारतम्य भी बड़ी स्पष्टता के साथ प्रतिपादित हुआ है।

(३) राजस्थानी कहावतो का रूपात्मक अध्ययन इस ग्रन्थ का अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण अंश है। इस प्रकार के अध्ययन के लिए मुझे राजस्थानी भाषा की सहस्रों लोकोक्तियों के रूपों का सूक्ष्म पर्यवेक्षण करना पडा है। ऐसा करते हुए ही इस तथ्य की प्रतीति मुझे हुई कि राजस्थानी भाषा मे अनेक तथाकथित कहावतें ऐसी हैं जो आकार-प्रकार की दृष्टि से कहावतों में परिगणित न की जाकर "लौकिक न्यायो" के अंतर्गत रखी जानी चाहिएँ। इस प्रकार के दृष्टान्तों की सहायता से मैंने राजस्थानी भाषा में "लौकिक न्यायों" की उद्भावना की है जिनमें से कुछ परिशिष्ट में भी संकलित कर दिये गये हैं। कहावत और "लौकिक न्याय" के साम्य और वैषम्य का सैद्धांतिक विवेचन भी इसी ग्रन्थ में प्रथम बार हुआ है।

रूपात्मक अध्ययन के सिलसिले में ही राजस्थानी भाषा में प्रचलित "अधूरे-

पूरो" ने मेरा ध्यान आकृष्ट किया। संग्रह करते-करते सैंकड़ों अधूरे-पूरे संग्रहीत हो गए जिनमें से चुने हुए १७४ पद्य परिशिष्ट में दे दिये गये हैं। "अधूरे-पूरों" का कोई स्वतन्त्र संग्रह इससे पहले मुद्रित नहीं हुआ था। अधिकांश 'अधूरे-पूरे' मुझे श्री अगरचन्द जी नाहटा के सौजन्य से प्राप्त हुए।

विषयानुसार वर्गीकरण को भी यथाशक्ति वैज्ञानिक और मौलिक रूप देने का प्रयत्न किया गया है।

राजस्थानी कहावतों के इस अध्ययन को पूरा करने में मुझे करीब ११ वर्ष लग गये। सन् १९४३ में मैंने सर्वप्रथम इस काम में हाथ डाला था। सन् १८५३ में लक्ष्मण आर्य द्वारा प्रकाशित "मारवाड़ रा ओखाणा" तथा उसी वर्ष डायमण्ड बुक-डिपो, जोधपुर, के लिए तैयार की हुई "मारवाड़ी कहावत" जैसी इनी-गिनी पुस्तिकाओं को छोड़कर उस समय राजस्थानी कहावतों का कोई भी महत्त्वपूर्ण संग्रह नही निकला था। "मारवाड़ रा ओखाणा" में १३१३ ओखाणों का संग्रह हुआ है जिसमें कहावतों के साथ-साथ यत्र-तत्र मुहावरे भी आ गये हैं। इसमें कही कोई अर्थ अथवा टिप्पणी नहीं है। "मारवाड़ी कहावत" के प्रथम संस्करण में २०० कहावतों और मुहावरों का समानान्तर अंग्रेज़ी रूपों के साथ संग्रह हुआ था। इसका द्वितीय संस्करण सन् १९१० में निकला जिसमें कहावतों और मुहावरों की संख्या बढ़ाकर ४०८ करदी गई। इससे पहले सन् १८९२ के रायल एशियाटिक सोसायटी के जर्नल में श्री लालचन्द्र विद्याभास्कर "Marwari Weather Proverbs" प्रकाशित करवा चुके थे। इसी प्रकार Adama Archibald ने "The Western Rajputana States" में कुछ मारवाड़ी कहावतों को अंग्रेज़ी अनुवाद सहित पाठको के समक्ष रखा था।

किन्तु इस प्रकार की अल्प सामग्री के आधार पर कोई अध्ययन प्रस्तुत नहीं किया जा सकता था। इसलिए दत्तचित्त होकर मैंने राजस्थानी कहावतों के संग्रह का कार्य आरम्भ किया। सर्वप्रथम अपनी स्मरण-शक्ति के बल पर मैंने कुछ कहावतें लिख डालीं और उन्हें लेकर मैं गाँव-गाँव घूमता रहा और लोगों को सुना-सुनाकर कहावतें इकट्ठी करता रहा। किसी से कहावते लिखवाने के लिए कहा जावे तो वह यों ही तुरत-फुरत कहावतें नहीं लिखा पाता, कहावतें तो प्रसंग उपस्थित होने पर ही याद आया करती हैं किन्तु जब मैं अपनी संगृहीत कहावतें सुनाता तो श्रोताओं को भी भाव-साहचर्य के कारण तत्सदृश दूसरी कहावतों का स्मरण हो आता और इस प्रकार मेरे संग्रह में वृद्धि होती रहती। राजस्थान के विभिन्न गाँवों में फैले हुए अपने अनेक छात्रों और मित्रों द्वारा भी मैंने कहावतें इकट्ठी करवाईं। जिन दिनों मैं इस प्रकार कहावतें इकट्ठी कर रहा था, उन्हीं दिनों प्रसिद्ध साहित्य-सेवी श्रद्धेय पंडित झाबरमल्ल जी शर्मा ने राजस्थानी कहावतों का अपना संग्रह मेरे उपयोग के लिए सुलभ कर दिया। पंडित जी का वरद हस्त सदा ही मुझ पर रहा है। उनके स्नेह और आशीर्वाद का संबल पाकर ही मैं इस प्रयास में सफल हो सका हूँ। फिर श्री लक्ष्मीनिवास जी बिड़ला की प्रेरणा से मैंने करीब तीन हज़ार कहावतें अर्थ और टिप्पणी सहित सम्पादित कर

बंगाल-हिन्दी-मण्डल, कलकत्ता, के समक्ष प्रस्तुत की। इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति पर सन् १९४५ में मण्डल ने मुझे पुरस्कृत भी किया।

सन् १९४५ के बाद मेरा ध्यान राजस्थानी कहावतों पर प्रबन्ध लिखने की ओर गया। तब से श्री अगरचन्द जी नाहटा का सतत परामर्श और प्रोत्साहन मुझे मिलता रहा। इतना ही नहीं, उन्होंने मेरे अध्ययन के लिए, राजस्थान रिसर्च सोसाइटी तथा अन्य व्यक्तियों द्वारा किये हुए सब संग्रहों को भी, जो उनके पास उपलब्ध थे, सुलभ कर दिया। अनूप संस्कृत लाइब्रेरी में उनकी कृपा से "ओखाणा री वात" देखने को मिली। पर उस प्रति की जीर्ण-शीर्ण हालत के कारण उससे विशेष लाभ नहीं उठाया जा सका। हाँ, उससे इतना अवश्य ज्ञात हुआ कि इन बातों में से प्रत्येक का शीर्षक एक कहावत है जिसकी कथा राजस्थानी गद्य में दी हुई है। इसके अलावा भी श्री नाहटा जी ने, जो स्वयं सब प्रकार की सामग्री के भण्डार हैं, अपनी अमूल्य हस्तलिखित प्रतियों तथा अपने पुस्तकालय की पुस्तकों का बिना किसी रोक-टोक के मुझे उपयोग करने दिया। उनकी उदारता और सहृदयता के लिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ।

बिडला सैन्ट्रल लाइब्रेरी, पिलानी; नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता; अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर; तथा बनारस की नागरी प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय से मुझे इस कार्य मे अत्यन्त सहायता मिली है।

मैंने अपने इस अध्ययन में मेवाड़, जोधपुर, बीकानेर, शेखावाटी, आबू, सिरोही आदि सभी स्थानो की कहावतों का प्रयोग किया है। अपने द्वारा एकत्रित तथा अन्य साधनों से उपलब्ध इस विशाल राज्य की प्रतिनिधि कहावतों के आधार पर मैंने अपना यह अध्ययन प्रस्तुत किया है। मुद्रित ग्रन्थ, हस्तलिखित प्रतियाँ, लोक-साहित्य और शिष्ट साहित्य सभी की छानबीन मैने की है और अध्ययन को यथाशक्ति पूर्ण बनाने का प्रयत्न किया है।

जो राजस्थानी कहावतों के संग्रह-ग्रन्थ प्रकाशित हुए है, उनका स्थान-स्थान पर इस प्रबन्ध के भीतर उल्लेख हुआ है किन्तु ऐसी भी बहुत सी कहावतें इस ग्रन्थ में उद्धृत की गई है जहाँ किसी संकलन-ग्रन्थ का नाम नही दिया गया है। इस प्रकार की कहावतें या तो मेरे निजी संग्रह की कहावते हैं अथवा मेरे स्मृति-कोष की संचित निधि है।

मेवाडी, जोधपुरी, बीकानेरी जो कहावत जिस रूप में मुझे मिली, उसी रूप में मैंने उसे रख दिया है।

इस अध्ययन मे मुझे जिन ग्रन्थों से सहायता मिली है, उनका प्रबन्ध में यथास्थान उल्लेख हुआ है। उपयोगी पुस्तकों की एक सूची भी प्रबन्ध के अन्त में दे दी गई है।

विषय से प्रत्यक्ष सम्बन्ध न रहने के कारण कहावतों के ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक अध्ययन का ग्रन्थ में समावेश नही किया गया है। यह अध्ययन अलग पुस्तकाकार प्रकाशित किया जा रहा है प्रबन्ध के परिशिष्ट में कुछ तुलनात्मक कहावतें भी दे दी गई हैं।

अन्त में राजस्थान विश्वविद्यालय के अधिकारियों के प्रति जिन्होंने इस शोध-प्रबन्ध के प्रकाशनार्थ पन्द्रह सौ रुपयों की सहायता प्रदान की है, आभार प्रदर्शित करना मैं अपना परम आवश्यक कर्त्तव्य समझता हूँ; इसी प्रकार विश्वविद्यालय अनुदान-आयोग (University Grants Commission) का भी मैं हृदय से अनुगृहीत और कृतज्ञ हूँ जिसने इस ग्रन्थ के प्रकाशन के लिए पन्द्रह सौ रुपयों का अनुदान स्वीकृत किया है।

पिलानी
३० जनवरी, १९५८

कन्हैयालाल सहल

विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ

प्रथम अध्याय : कहावत का पर्यालोचन (१-३७)

१. कहावतों का महत्त्व	१	मुहावरे का लक्षण	२२
२. कहावत की व्युत्पत्ति	४	मुहावरे के पर्याय	२२
३. कहावत के पर्याय-शब्द	६	कहावत और मुहावरे का अन्तर	२३
विदेशी भाषाओं में प्रयुक्त	६	६. कहावत और लौकिक न्याय	२८
भारत की भाषाओं में प्रयुक्त	१०	लौकिक न्याय और अंग्रेजी पर्याय	२८
४. कहावत की परिभाषा	१२	लौकिक न्याय के लक्षण	२८
तटस्थ लक्षण	१२	लौकिक न्याय और कहावत का तारतम्य	२९
स्वरूप लक्षण	१४	७. प्राज्ञोक्ति और लोकोक्ति	३२
लोकोक्तियों का सत्य और विरोधाभास	१६	प्रज्ञा-सूत्र और कहावत	३२
कुछ प्रसिद्ध परिभाषाएँ	१८	प्रज्ञा-सूत्र और व्यवहार-सूत्र	३३
निष्कर्ष	२०	मर्मोक्ति और प्रज्ञा-सूत्र	३३
५. कहावत और मुहावरा	२०	लोकोक्ति और प्राज्ञोक्ति मे भेद	३५
रोजमर्रा और मुहावरा	२०		

द्वितीय अध्याय : कहावत का उद्भव और विकास (३८-५६)

१. कहावत का उद्भव	३८	प्राज्ञ-वचन	४४
(क) कहावती शिशु का उद्भव	३८	(घ) उद्भव की प्राचीनता	४५
(ख) उद्भव की प्रक्रिया	३८	२. कहावत का विकास	४८
(ग) उद्भव के प्रमुख आधार	३९	(क) मूल भाषा की कहावतें और उनके रूपान्तर	४९
लोक-कथाएँ	३९	(ख) कहावतों में अर्थ और नाममत परिवर्तन	५३
चरम वाक्य	४०	(ग) कहावतों में पाठान्तर	५४
कथा से शिक्षा	४१	(घ) कहावतों के रूपों में परिष्कार	५४
असम्भव अभिप्राय	४२	(ङ) कहावतों का लोप और निर्माण	५५
कहावतों से कथाओं की उद्भावना	४३		
ऐतिहासिक घटनाएँ	४४		

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
तृतीय अध्याय : राजस्थानी कहावतों का वर्गीकरण (५७-२६१)			
वर्गीकरण के सिद्धान्त	५७	छेकानुप्रास	६९
(क) रूपात्मक वर्गीकरण	५९	अन्य अनुप्रास	७०
१. राजस्थानी कहावतों में तुक के		बैण सगाई	७०
विविध रूप	५९	यमक	७२
तुक का महत्त्व	५९	सम्मोच्चार-विनोद और श्लेष	७३
द्विधा विभक्त	५९	(आ) अर्थालंकार	७५
त्रिधा विभक्त	६०	लोकोक्ति और अलंकार	७५
चतुर्धा विभक्त	६०	अलंकारों का वर्गीकरण	७५
सुकों की झड़ी	६०	(क) विरोधमूलक	७५
खण्ड-हीन	६१	अधिक	७५
आन्तरिक	६१	विषम	७६
तुक और संख्या	६२	विरोधाभास	७६
तुक और व्यक्ति	६२	आक्षेप	७६
तुक और तथ्य	६२	(ख) साम्यमूलक	७७
२. राजस्थानी कहावतों में छन्द		उपमा	७७
के विविध रूप	६३	रूपक	७७
लय का महत्त्व	६३	सम	७७
तुक और लय	६३	अर्थान्तरन्यास	७८
कहावतें और आंशिक		(ग) साहचर्यमूलक	७८
छन्द-रचना	६४	अप्रस्तुतप्रशंसा	७८
एक चरण वाली कहावतें	६४	मिथ्याध्यवसिति	७९
दो चरणों वाली कहावतें	६४	(घ) बौद्धिक शृङ्खलामूलक	७९
चारों चरण वाली कहावतें	६५	यथासंख्य	७९
अधूरा पूरा	६६	देहली दीपक	७९
सम मात्रिक	६६	उत्तर	७९
असम मात्रिक	६६	(ङ) यूरोपीय अलंकार	८०
क्षति-पूर्ति	६७	४. राजस्थानी कहावतों	
लय-विहीन कहावतें	६७	अध्याहार	८१
उपसंहार	६७	(१) अध्याहार के विविध रूप	८१
३. राजस्थानी कहावतें और		(क) उद्देश्य का अध्याहार	८१
अलंकार	६७	(ख) विधेय का अध्याहार	८१
(अ) शब्दालंकार	६८	(२) अध्याहार का कारण	८२
वृत्यनुप्रास	६८	(३) न्यूनपदत्व और अध्याहार	८२

विषय	पृष्ठ
५. राजस्थानी भाषा की कथात्मक कहावतों के विविध रूप	८२
समस्त घटनात्मक	८२
प्रमुख घटनात्मक	८३
शीर्षकात्मक	८३
शिक्षात्मक	८४
चरम वाक्यात्मक	८४
६. राजस्थानी कहावतों के संवाद	८५
मानवी सृष्टि और कथोपकथन के प्रकार	८५
प्रश्नोत्तर के रूप में संवाद	८५
परस्पर प्रश्नोत्तर	८५
स्वतः प्रश्न और स्वतः उत्तर	८७
मानवेतर सृष्टि और संवाद	८७
७. राजस्थानी कहावतों में 'लौकिक न्याय' का रूप	८८
८. राजस्थानी कहावतों में व्यक्ति	८९
नाम और गुण का वैषम्य	८९
नाम और गुण का सामंजस्य	९०
तुक, अनुप्रास तथा नाम	९१
नाम और समोच्चार-विनोद	९१
जड़ पदार्थों आदि का मानवीकरण	९१
नामों का संक्षेपीकरण	९१
हिन्दू व मुस्लिम नाम	९२
९. राजस्थानी कहावतों में संख्या	९३
समुच्चयात्मक	९३
तीन संख्या	९३
चार संख्या	९३
पाँच संख्या	९४
छः संख्या	९४
सात संख्या	९४
असमुच्चयात्मक	९४
अनुप्रास और तुक	९४
संख्या और वैषम्य आदि	९५
१०. राजस्थानी कहावतों के रूप पर संस्कृत का प्रभाव	९५
अनुवाद	९५
वेश-परिवर्तन	९६
संस्कृतीकरण	९६
सादृश्य	९७
११. राजस्थानी कहावतों का एक विशिष्ट रूप	९७
(ख) विषयानुसार वर्गीकरण	९९
१. राजस्थान की ऐतिहासिक कहावतें	९९
ऐतिहासिक कहावतों की भारतीय परम्परा	९९
इतिहास और अनुश्रुतियाँ	१००
ऐतिहासिक कहावतों का वर्गीकरण	१०४
घटनाओं से सम्बद्ध	१०४
व्यक्ति-प्रधान	१०७
वार्तालाप-सम्बन्धी	११४
स्थानीय कहावतें	११८
राजवंशों से सम्बद्ध	१२०
२. राजस्थान की स्थान-सम्बन्धी कहावतें	१२४
(क) शहरों-सम्बन्धी	१२४
ऋतुओं को लक्ष्य में रखकर	१२४
स्त्री-पुरुषों को लक्ष्य में रखकर	१२४
देशगत विशेषताओं को लक्ष्य में रखकर	१२५
(ख) नदी-नालों-सम्बन्धी	१३०
(ग) क़िलों-सम्बन्धी	१३०
३. राजस्थानी कहावतों में समाज का चित्र	१३३

विषय	पृष्ठ
(क) राजस्थान की जाति-सम्बन्धी कहावते	१३४
कहावतों के दो वर्ग	१३४
विशेष और सामान्य	१३४
जाति-सम्बन्धी-कहावतें	१३५
प्रमुख जातियाँ	१३५
पेशेवर जातियाँ	१४५
तुलनात्मक कहावतें	१५६
(ख) राजस्थानी कहावतों में नारी	१५८
कन्या-जन्म	१५८
पराधीनता	१६०
फूहड़ स्त्री	१६३
विधवा	१६३
लाडी	१६४
बड़ी बहू	१६५
सास-बहू	१६५
नारी-सम्बन्धी धारणाएँ	१६६
आदर्श नारी	१६७
(ग) अन्य सामाजिक कहावतें	१६९
त्यौहार	१६९
विवाह	१७०
संयुक्त कुटुम्ब	१७१
शूरवीरता	१७१
प्रतिज्ञा-पालन	१७२
अतिथि-सत्कार	१७३
सम्बन्ध	१७३
भोज्य और पेय पदार्थ	१७५
स्वास्थ्य	१७८
व्यवसाय	१८१
आभूषण-प्रेम	१८२
राजनैतिक चेतना	१८३
४. शिक्षा-ज्ञान और साहित्य	१८३
(क) शिक्षा-सम्बन्धी कहावतें	१८३
(ख) मनोवैज्ञानिक कहावतें	१८५
(ग) राजस्थानी साहित्य में कहावतें	१८९
शिष्ट साहित्य	१८९
प्राचीन राजस्थानी	१८९
भरत बाहुबलि रास आदि की कहावते	१९०
माध्यमिक राजस्थानी	१९२
समय सुन्दर और राजस्थानी कहावते	१९२
माल कवि कृत पुरंदर चउपई और कहावतें	१९५
राजिया के सोरठे और कहावतें	१९७
ज्ञानसार, बाकीदास, सूरजमल्ल	२००
आधुनिक राजस्थानी	२०१
मूंघा मोती	२०१
मरु-भारती की कहावते	२०२
लोक-साहित्य	२०३
पवाड़े और कहावते	२०३
लोक-गीत और कहावते	२०४
लोक-कथाएँ और कहावते	२०६
राजस्थान के लोक काव्य और कहावत	२०७
राजस्थान के ख्याल और कहावतें	२०८
५. धर्म और जीवन-दर्शन	२१२
(क) ईश्वर-सम्बन्धी कहावते	२१२
(ख) नैतिकता और धर्म-सम्बन्धी कहावतें	२१३
(ग) लोक-विश्वास-सम्बन्धी कहावतें	२१४
(घ) शकुन सम्बन्धी कहावतें	२१९
शकुन और जातीय चेतना	२१९
शकुन का महत्त्व	२२०
शकुन के विविध रूप	२२०
शरीर के अंगों द्वारा शकुन-निर्धारण	२२०

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
जाति-विशेष द्वारा शकुन-निर्धारण	२२१	पशुओं की चेष्टाएँ	२४०
पशु-पक्षियों द्वारा शकुन-निर्धारण	२२२	पक्षियों की चेष्टाएँ	२४०
शकुनों का मनोविज्ञान	२२३	कीट-पतंगो की चेष्टाएँ	२४०
निष्कर्ष	२२४	आन्तरिक्ष निमित्त	२४१
(ङ) जीवन-दर्शन-सम्बन्धी कहावतें	२२५	हवा	२४१
भाग्यवाद और कर्म-सिद्धान्त	२२५	बादल	२४१
जन्मान्तरवाद	२२७	आकाश	२४१
साहसिकता और कष्टसहिष्णुता	२२७	बिजली	२४२
दार्शनिक उक्तियों का अभाव	२२८	इन्द्रधनुष	२४२
६. कृषि-सम्बन्धी कहावतें	२२८	आँधी	२४२
वायु	२२९	दिव्य निमित्त	२४२
नक्षत्र	२३०	चन्द्र और सूर्य	२४२
खेती के उपकरण	२३१	नक्षत्र और तारे	२४३
जोताई और बोआई	२३३	मिश्र निमित्त	२४४
फसल	२३४	कहावतों के निर्माता और उनके अनुभव	२४७
दुर्भिक्ष	२३५	ठेठ राजस्थानी कहावतें	२५०
फुटकर कहावते	२३६	८. अन्य ऋतुओं-सम्बन्धी कहावतें	२५१
तुलनात्मक कहावतें	२३७	९. प्रकीर्ण कहावतें	२५२
७. राजस्थान की वर्षा-सम्बन्धी कहावतें	२३८	पशु-पक्षी-सम्बन्धी	२५२
वर्षा-विज्ञान की प्राचीनता	२३८	क्षुद्र-जन्तु-सम्बन्धी	२५६
वर्षा के निमित्त और उनके प्रकार	२३८	पेड़-पौधो-सम्बन्धी	२५८
भौम निमित्त	२३९	आशीर्वादात्मक	२५९
मनुष्यों की चेष्टाएँ	२३९	खेल-सम्बन्धी	२५८
		वार्ता-सम्बन्धी	२५९
		हास्य और व्यग्य-सम्बन्धी	२६०

चतुर्थ अध्याय : उपसंहार (२६२—२६५)

कहावतों का भविष्य २६२
नई कहावतें क्यों नहीं बनतीं? २६२
हमारा कर्तव्य २६५

परिशिष्ट १ (२६६—२७६)

'अधूरा पूरा' और कहावती पद्य २६६

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
परिशिष्ट २ (२७७-२८५)			
प्रदेशों की तुलनात्मक कहावतें	२७७	(ङ) राजस्थानी और पंजाबी कहावतें	२८०
(क) राजस्थानी और काश्मीरी कहावते	२७७	(च) राजस्थानी और भोजपुरी कहावतें	२८२
(ख) राजस्थानी और गुजराती कहावते	२७८	(छ) राजस्थानी और तेलुगु कहावतें	२८२
(ग) राजस्थानी और बगला कहावतें	२७९	(ज) राजस्थानी और तमिल कहावतें	२८५
(घ) राजस्थानी और मराठी कहावतें	२८०		
परिशिष्ट ३ (२८६—२८७)			
राजस्थानी भाषा के कुछ "लौकिक न्याय"	२८६	(ग) बारहठ घोड़ी-न्याय	२८६
(क) जीभ-रस न्याय	२८६	(घ) भडार-कुत्ता न्याय	२८७
(ख) पाली पंचायती न्याय	२८६	(ङ) मूँछ-चावल न्याय	२८७
सहायक पुस्तकों को सूची (२८८-२९०)			

प्रथम अध्याय

कहावत का पर्यालोचन

१. कहावतों का महत्त्व

संसार के सभी देशों और जातियों में कहावतो का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। दुनिया की शायद ही कोई भाषा ऐसी हो जिसमें कहावतों का प्रयोग न हुआ हो। सांसारिक व्यवहार-पटुता और सामान्य-बुद्धि का जैसा निदर्शन कहावतो मे मिलता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। कहावते मानव-स्वभाव और व्यवहार-कौशल के सिक्के के रूप मे प्रचलित होती हैं और वर्तमान पीढी को पूर्वजो से उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त होती है। पथ-प्रदर्शन की दृष्टि से भी उनकी उपादेयता सहज ही समझ में आ सकती है। क्या घर और क्या बाहर, प्रायः जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे उद्‌बोधन और चेतावनी के रूप में चिरकाल से कहावतें उपयोगी सिद्ध होती रही है। समाज में मनुष्य किस तरह व्यवहार करे जिससे लोक-जीवन के साथ-साथ उसका व्यक्तिगत जीवन भी सुखमय हो सके, इसका निर्देश प्रचलित कहावतो मे साधारणतः मिल जाता है। सामान्यत. मनुष्य कुछ खोकर सीखता है किन्तु वही शिक्षा उसे अगर कहावतो के रूप में सुलभ हो जाय तो वह बहुत से कंटकाकीर्ण पथों से अपनी रक्षा कर सकता है। यदि प्रत्येक अनुभव के लिए मनुष्य को मूल्य चुकाना पड़े तो उसके लिए जीवन बड़ा दूभर हो जाय। एक व्यक्ति के मुख से निकली हुई कहावत का तथ्य जब हमारे दैनिक जीवन मे प्रत्यक्ष होने लगता है तो कहावत की प्रामाणिकता पर मानो एक छाप-सी लग जाती है।

बहुधा ऐसा भी देखने में आया है कि अनेक प्रकार की युक्तियो से, अनेक प्रकार के तर्क-वितर्कों से जिस सन्देह का समाधान नही होने पाता, वह सन्देह बात की बात मे एक समयोचित लोकोक्ति द्वारा दूर हो जाता है, हमारी समस्त शकाओं का समाधान हो जाता है, कहावत की स्वीकृति मे हम अपना सिर हिलाने लगते हैं, सब वाद-विवाद समाप्त हो जाता है और तुरन्त ही उस सारगर्भित उक्ति के तथ्य पर हम पूर्ण रूप से विश्वास करने लगते है। जीवन में अनेक ऐसे अवसर आये है जब कहावतों की इस आश्चर्यजनक शक्ति को देखकर मै मन ही मन ताकता रह गया हूँ! बहुत वर्ष हुए, डा० फैलन ने एक ऐसे व्यक्ति का दृष्टान्त दिया था जो किसी काम के करने की बडी डीग हाँक रहा था, यद्यपि वह काम उसके बूते से बाहर था। उसको बढ-चढ कर बाते बनाते हुए देख, श्रोतागणो मे से एक ने कहा "हाथी घोडा मर गये, गधा पूछे कितना पानी ?" इस कहावत के सुनते ही वह व्यक्ति खिसियाकर पीछे हट गया, उसकी बोलती ही बन्द हो गई।[1] लगता है, जैसे कहावत स्वतः एक बड़ी भारी दलील हो, ऐसी दलील जिसके सामने सबको हार माननी पड़ती है। न्याय मे आप्त वाक्य को प्रमाण माना गया है किन्तु कहावत का महत्त्व किसी भी आप्त वाक्य

1. Vide Pioneer, Dec. 9th, 1884.

२. 'कहावत' की व्युत्पत्ति

'कहावत' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में अभी ऐकमत्य नही है। इस शब्द की कुछ सम्भाव्य अथवा अनुमानित व्युत्पत्तियाँ यहाँ प्रस्तुत की जा रही है :—

(१) पंडित रामदहिन मिश्र के विचार से 'कहावत' का मूल रूप 'कथावत्' है। कथाओ की तरह कहावते भी लोक में प्रसिद्ध है। इनका आधार भी कथाओं का ही कुछ खडित-मडित रूप है, इसी से कहावत को लोकोक्ति भी कहते है। प्राकृत व्याकरण के नियमानुसार 'थ्' का 'ह्' हो जाता है। प्लाट ने भी 'कहावत' शब्द की व्युत्पत्ति 'कथावत्' से मानी है अर्थात् कहावत उसे कहते है जिसके मूल में कोई कथा हो।[१]

(२) प्राकृत 'कहाप्' धातु से भाववाचक सज्ञा बनाने के लिए 'त्त' प्रत्यय जोड़कर 'कहापत्त-कहावत' बन सकता है।[२]

(३) मूल धातु 'कथ्' है, इसमे तो सन्देह नही। उससे उत्पन्न, 'कथोद्घात', 'कथावृत्त' या 'कथावस्तु' से इस शब्द की उत्पत्ति होना सम्भव है।

(४) अपभ्रंश में 'आभाणक, अहान' आदि का प्रयोग मिलता है किन्तु कहावत के किसी पूर्व रूप का नही। हो सकता है, यह शब्द संस्कृत के किसी मूल रूप से व्युत्पन्न न हो, इसमें उर्दू-फारसी शब्द-रचना का कुछ हाथ हो। स्वर्गीय आचार्य केशवप्रसाद जी मिश्र का मत था कि 'कह' धातु के आगे अरबी 'आवत' प्रत्यय लग कर 'कहावत' शब्द बना है।

(५) 'बनना' से 'आव' प्रत्यय जोड़ने पर जैसे 'बनाव' बनता है, उसी प्रकार कहना (कह्) से 'आव' प्रत्यय जोडने पर 'कहाव' बन सकता है। अरबी मे जिस प्रकार 'त' प्रत्यय जोड़ने पर 'मुसाफिरत' और 'मुसाहबत' शब्द बनते हैं, उसी प्रकार 'कहाव' के आगे 'त' प्रत्यय लगने से 'कहावत' बन सकता है जिसका अर्थ है कहने की दशा, कही हुई स्थिति अर्थात् उक्ति। यद्यपि 'कह' अरबी धातु नही है और उसके पीछे अरबी प्रत्यय सामान्यतः नही लगना चाहिए किन्तु सादृश्य के बल पर, सम्भव है, अरबी प्रत्यय लगकर 'कहावत' शब्द बन गया हो।

(६) सुप्रसिद्ध भाषाविद् डॉक्टर सिद्धेश्वर वर्मा के मतानुसार हिन्दी शब्द 'कहावत' का अभिधेयार्थ है उक्ति। इसकी व्युत्पत्ति हिन्दी 'कहना' से हुई है जिसके आगे दो प्रत्यय जुड़े है—(१) 'आव' जैसा कि सुझाव में देखा जाता है और (२) 'अत' प्रत्यय कहावत की संक्षिप्तता और सारगर्भितता का सूचक है।[३]

(७) किसी विद्वान् ने 'कहावत' शब्द की व्युत्पत्ति 'कथापत्य' अथवा 'कथापुत्र' से मानी है। 'कथापत्य' शब्द का अर्थ है कथा का अपत्य अथवा

---

१. किशोर; नवम्बर १९५१; पृष्ठ २९७।

२. डा० वासुदेवशरण अग्रवाल

3. "The Hindi word (*Kahāvat*) Literally means a "saying". It is derived from Hindi (*Kahnā*) to say, by the addition of two suffixes. (1) (*āv*),as in (*Suhāv*), which is a purely nominal suffix and (2) (at), being a dimumitive suffix which suggests the shortness and pithiness of a proverb." —Dr. Siddheshwar Varma

ात्मज। कथापत्य से कहावत शब्द का बन सकना सम्भव है अथवा कथापुत्र से हावत की निरुक्ति की जा सकती है। राजस्थान में दुर्गादास अथवा उनके वशजों ह लिए दुर्गावत शब्द का प्रयोग होता है। इसी प्रकार शक्तावत, नाथावत आदि के म्बन्ध मे भी समझना चाहिए। दुर्गावत का 'वत' संस्कृत के पुत्र शब्द से निकला ुआ माना जाता है जिसका प्राकृत में 'उत्त' बन जाता है। जिस प्रकार दुर्गापुत्र ो दुर्गा उत्त— दुर्गाउत बन जाता है, उसी प्रकार, सम्भव है, कथा-पुत्र से कहा उत्त-कहा उत—कहावत बन गया हो।[1]

किन्तु इस प्रकार की व्युत्पत्ति को केवल अटकलबाजी समझना चाहिए। थम तो अपत्य और पुत्र शब्द सामान्यतः चेतन वस्तुओ[2] के ही आगे जोडे जाते हैं, फेर दूसरी बात यह है कि कहावत शब्द मूलतः राजस्थानी भाषा का नही है, इसलिए ाजस्थान की सास्कृतिक परम्परा के अनुसार इस शब्द की व्युत्पत्ति का अन्वेषण उचित नही जान पडता।

(८) 'कहावत' का सीधा अर्थ किया जाय तो उसके दो टुकड़े होते है 'कह+ ावत' यानी जिसे लोग परम्परा से कहते सुनते चले आते हों। आज कोई चाहे कि ैं अच्छे से अच्छा टुकड़ा कह दूँ और वह कहावत के दायरे मे दाखिल हो जाय तो ह नामुमकिन है। टुकडा चाहे जितना सक्षिप्त हो, चाहे जितना बडा कहने वाला हो ौर चाहे जितनी सुन्दरता से टुकडा कहा गया हो, वह कहावत नही बन सकता, जैसे ेक ही दिन मे पत्थर शिव नही बन सकता। उसे नदी में बहुत रगड खानी होगी, ूर-दूर बहना होगा या संगतराश की छीनी की चोट खानी होगी; तब कही जाकर ह कहावत के मन्दिर में प्रवेश पायेगा।[3]

यह व्युत्पत्ति विद्वानो द्वारा चाहे मान्य हो या न हो किन्तु इसमें सन्देह नही कि स प्रकार की निरुक्ति स्वतः कहावत का एक सुन्दर लक्षण भी है क्योंकि कहावत वही ह जिसे परम्परा से लोग कहते-सुनते चले आते हैं।

'कहावत' शब्द के उक्त निर्वचन को पढकर हमारा ध्यान एक दूसरे शब्द कहनावत' की ओर जाता है जो 'कहावत' के अर्थ मे प्रयुक्त होता है। उदाहरणार्थ—

सांची भई कहनावति वा कवि ठाकुर कान सुनी हती जोऊ।
माया मिली नहिं राम मिले दुविधा में गये सजनी सुनु दोऊ॥ —ठाकुर

---

१. कहा (प्राकृत) = कथा। कथा+अपत्य=कथापत्य। कथापत्य—कथापत्—कथावत कथावत—कहावत। अथवा कहा+उत=कहाउत। 'कहाउत' से कहावत, जैसे दुर्गा उत से दुर्गावत, शकता उत से शकतावत आदि।
देखिये 'लोकवाणी' दीपावलि विशेषांक में प्रकाशित 'सिरोही की कहावतें' —संकलनकर्त्ता श्री गो०

२. कहावत के पर्याय के रूप में "कहनूत" शब्द का प्रयोग कभी-कभी हिन्दी में देखा जाता है जिसकी व्युत्पत्ति कहना+ऊत प्रत्यय से मानी गई है, यद्यपि इस ऊत प्रत्यय के सम्बन्ध में यह नही कहा जा सकता कि यह अप्रत्यवाचक है।
—हिन्दी शब्दसागर (पहला भाग); पृष्ठ ५१५

३. श्री महावीरप्रसादजी पोद्दार के एक कहावत-विषयक निबन्ध से उदधृत।

'कहनावत' शब्द भी कहना+आवत से व्युत्पन्न माना जाता है जिसका अर्थ है, वह उक्ति जो कहने मे आती है।[1]

'कहनावत' के स्थान में कभी-कभी 'कहनावतिया' शब्द का प्रयोग भी देखा जाता है। जैसे—

साँची भई कहनावतिया अरी ऊँची दुकान की फीकी मिठाई।[2]

(६) 'कहावत' शब्द का एक अर्थ हो सकता है 'कही हुई बात'। उस हालत में 'कहावत' का 'वत' (बात-वार्त्ता) का रूपान्तर माना जायगा। 'काल गया पर कहावत रह गई' तथा 'जुग जासी परण बात न जाय' दो समानार्थक लोकोक्तियाँ हैं। पहली लोकोक्ति मे तो 'कहावत' शब्द का प्रयोग हुआ है, दूसरी लोकोक्ति का बात भी 'कहावत' का ही द्योतक अथवा उसका लघु रूप जान पडता है।

गोस्वामी तुलसीदास ने भी बातचीत अथवा वार्तालाप के अर्थ मे 'बतकही' शब्द का प्रयोग किया है—

(क) **करत बतकही अनुज सन, मन सिय रूप लुभान।**
मुख सरोज मकरन्द छबि करत मधुप इव पान॥

(ख) **मनहु हर उर जुगल मारध्वज के मकर लागि खवनन्हि करत मेरु की बतकही।**

ऐसा लगता है मानो 'कही बत' (कही हुई बात) को उलट कर रख देने से 'बतकही' बन गया हो। नही कहा जा सकता कि 'कहावत' और 'बतकही' को उलट कर रखे हुए 'कहीबत' मे परस्पर सम्बन्ध स्थापित करना कहाँ तक युक्ति-संगत है किन्तु राजस्थान मे कहावत के अर्थ में प्रचलित 'कहबत' शब्द इस प्रसग में हमारा ध्यान आकृष्ट किये बिना नही रहता।

(१०) भारत के वर्तमान शिक्षा-मत्री मौलाना अबुल कलाम आजाद 'कहावत' शब्द के इस प्रकार द्विधा-विभाजन के पक्ष मे नही है। उनकी मान्यता है कि 'कहावत' शब्द 'कहना' से निकला है, लेकिन यह नही कहा जा सकता कि कहावत कह+बात, इन दो पदो में विभक्त है। कहावत के 'वत' या 'बत' का अर्थ 'बात' नहीं है। बात के अर्थ मे 'वत' की कल्पना निरी कष्ट-कल्पना होगी। साहित्य के इतिहास में व्याकरण बाद में आता है, इसलिए बाद मे बने हुए नियमों के आधार पर हम प्रत्येक शब्द का निर्णय नही कर सकते। हम केवल यह कह सकते हैं कि जिस प्रकार 'कहानी' शब्द सर्वसाधारण द्वारा प्रयुक्त होने पर 'कथा' के अर्थ मे रूढ़ हो गया है, उसी प्रकार 'कहावत' शब्द भी 'उक्ति या प्रवाद' के अर्थ में प्रचलित हो गया है। इस शब्द का विकास अवश्य 'कहना' से हुआ है किन्तु वर्तमान समय में यह शब्द जिस अर्थ मे प्रयुक्त होता है, वह अर्थ इस शब्द को प्रयोग या रूढि के कारण प्राप्त हुआ है; ऐसा नही हुआ है कि किसी ने जान-बूझकर इसे व्याकरण के किसी निर्दिष्ट

---

१. हिन्दी शब्द-सागर (पहला भाग), पृष्ठ ५१५।
२. बोलचाल (श्री अयोध्यासिह उपाध्याय) भूमिका; पृष्ठ ११८।

नियम से संबद्ध करने का प्रयास किया हो और तब यह कोई विशिष्ट अर्थ देने लगा हो।[1]

शब्दों के निर्माण का इतिहास बडा मनोरंजक होता है। योरोपीय भाषा के विश्लेषणात्मक रूप धारण करने से पहले उसमें पूर्णतः बने-बनाये शब्द ही थे। ये शब्द अलग-अलग अशो के सम्मिलित रूप हैं, इस धारणा की कोई गंध भी न थी। बोलने वाले भी बने-बनाये शब्दो के आधार पर ही बोलते थे, उनके पास प्रकृति और प्रत्ययों का कोई अलग-अलग जत्था नही था कि प्रकृति और प्रत्यय को मिला कर गढ-गढ़ कर वे शब्दों का प्रयोग करते। किन्तु इसका आशय यह भी नही है कि बोलने वाले जिन-जिन शब्दो का प्रयोग करते थे, वे सब के सब या तो उनके सुने हुए होते थे अथवा ऐसे शब्द होते थे जिन्होने उनकी स्मृति मे चिरस्थायित्व प्राप्त कर लिया था। शब्दों के गढने की शक्ति भी उनमे थी किन्तु जो शब्द गढ़े जाते थे, वे पहले के सीखे हुए बने-बनाये शब्दों के सादृश्य पर ही गढे जाते थे।[2]

सम्भव है, जैसा मौलाना आज़ाद कहते हैं, कहावत भी एक ऐसा शब्द हो जिसे व्याकरण के निश्चित नियमानुसार प्रकृति-प्रत्ययो द्वारा सिद्ध करने की आवश्यकता न हो किन्तु इतना तो वे भी स्वीकार करते हैं कि यह शब्द 'कहना' से ही निकला है और प्रयोग के कारण लोकोक्ति के अर्थ में रूढ हो गया है। प्रश्न यह है कि यदि यह एकात्मक शब्द है तो उस शब्द का पता लगना चाहिए जिसके सादृश्य पर यह गढा गया है।

(११) कहावत शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में भाषा-शास्त्र के सुप्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या का मत है—

"The origin of the word Kahāwat would appear to be old Indo Aryan Kathay √ Kathā + Early M.I.A. causative or denominative affix (Śatr)—ant *Kathāpayanta ⁄ *Kadhāvayanta ⁄ *Kahāvaanta Kahāvanta ⁄ Kahāwat."

डा० चाटुर्ज्या का मत पाडित्यपूर्ण तो अवश्य है तथापि निश्चयात्मकता का स्वर इसमें भी नही है।

(१२) टर्नर के नेपाली शब्दकोश में 'कहावत' शब्द का अनुमानित मूलरूप

---

1. Kahawat originally comes from kahna but it cannot be said that it is equal to Kah+Bat. 'Wat', or 'Bat' as meaning a thing seems to be too far-fetched. Grammar comes later in the history of literature, and therefore we cannot judge every word according to rules of later origin. We may simply say that Kahawat has come to mean 'a saying or proverb,' just as kahani has, by common usage, come to mean a story. It is, of course, a word which has grown from 'kahna' without any conscious attmept to co-ordinate it with any fixed rule of Grammar and has, by long usage, come to mean as it does at present. (Maulana Azad in a letter addressed to the writer)

२. सादृश्य नु स्वरूप (डा० हरिवल्लभ भायाणी); भारतीय विद्या; वर्ष ३; अंक १।

'कथावार्त्ता' बतलाया गया है।[1] सुप्रसिद्ध विद्वान् मुनि जिनविजयजी तथा महापंडित राहुल सांकृत्यायन भी 'कथा-वार्ता' को ही कहावत का मूल रूप मानने के पक्ष में हैं। डा० बाबूराम सक्सेना के मत से भी 'कहावत' का सम्बन्ध स० कथावार्त्ता से है मगर हिन्दी शब्द का अर्थ कथावार्त्ता के अर्थ से बिलकुल भिन्न है और यहाँ अर्थादेश स्पष्ट है।[2]

ऊपर की पंक्तियों में कहावत शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक मतमतान्तर उपस्थित किये गये हैं तथापि यह नही कहा जा सकता कि इस शब्द की सभी संभावनाओं पर विचार कर लिया गया है। बहुत से ऐसे शब्द होते है जिनकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में 'इदमित्थं' नही कहा जा सकता। कहावत भी एक ऐसा ही शब्द है। कुछ विद्वान् ऐसे हैं जो इस शब्द के निर्वचन मे अरबी-फारसी प्रत्ययो का आश्रय लेते है जब कि दूसरे विद्वान् इसे हिन्दी-संस्कृत के प्रत्ययों से व्युत्पन्न मानते हैं। व्युत्पत्ति-शास्त्री अथवा वैयाकरण किसी शब्द के मूल रूप का अन्वेषण करते है और फिर उसे व्याकरण के सूत्रो द्वारा सिद्ध कर देते है। किन्तु वे इस बात पर ध्यान नही देते कि जिस मूल रूप से वे किसी तद्भव शब्द को उद्भूत मानते हैं, वह मूल रूप कभी उस भाषा-विशेष मे प्रचलित रहा भी था या नही। कथावत्, कथावस्तु, कथापत्य, कथावृत्त आदि से यद्यपि 'कहावत' शब्द व्याकरण द्वारा सिद्ध किया जा सकता है तथापि सस्कृत-साहित्य में लोकोक्ति के अर्थ में इन शब्दों का प्रयोग नही देखा जाता। इसलिए जब तक संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि मे लोकोक्ति के अर्थ मे प्रयुक्त 'कहावत' शब्द के मूल रूप का पता नही चलता, तब तक इस प्रकार की व्युत्पत्तियों द्वारा हमारा समाधान नही हो सकता। प्रयोग के आधार पर नियमों का निर्धारण होना चाहिए, न कि नियमो के आधार पर प्रयोग का निर्धारण।

जैसा ऊपर कहा गया है, 'कहावत' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे निश्चित रूप से कुछ कह सकना संभव नही है, तथापि निष्कर्ष के रूप मे यहाँ दो विकल्प रखे जा सकते है।

(१) यदि 'कहावत' शब्द संस्कृत के किसी शब्द से हिन्दी में आया है तो 'कथावार्त्ता' एक ऐसा शब्द है जिससे उसका घनिष्ठ सम्बन्ध जान पडता है। 'कथावार्त्ता' का प्राकृत रूप 'कहावत्ता' तो ध्वनि और अर्थ दोनो की दृष्टि से 'कहावत' शब्द से अत्यधिक मिल जाता है।

ऊपर जिस अर्थादेश की चर्चा डा० सक्सेना ने की है, उसकी संभावना यहाँ हो सकती है क्योंकि एक भाषा जब दूसरी भाषा से शब्द ग्रहण करती है तो अनेक बार अर्थादेश हो जाया करता है। दूसरी बात यह है कि 'कथावार्त्ता' शब्द 'कथावत्' आदि की तरह कोई कल्पित शब्द नही है; यह प्रयोग में भी आता है।

(२) यदि 'कहावत' शब्द सादृश्य के आधार पर प्रचलित हुआ है तो

---

१. कहाउत कहावत् (Nepali) पजाबी कहौन, सिन्धी 'कहात' ← *कथावार्त्ता ? कथा (V. S. V. Kahanu) वार्ता (V.S.V. teat.)।

२. अर्थ-विज्ञान (डाक्टर बाबूराम सक्सेना); पृष्ठ १२५।

'लिखावट', 'सजावट' आदि के सादृश्य पर कहावट (कहावत) शब्द का बन सकना असंभव नही है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि राजस्थानी भाषा में कथन के अर्थ में 'कुहावट', 'कुवावट' आदि शब्द बोलचाल में अब भी प्रयुक्त होते हैं।

३. कहावत के पर्याय-शब्द

(१) **विदेशी भाषाओं में प्रयुक्त**—विश्व की विभिन्न भाषाओं मे 'कहावत' के पर्याय-रूप में प्रयुक्त शब्द यहाँ दिये जा रहे है ताकि इस शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थ के सम्बन्ध में विशेष प्रकाश पड सके। ग्रीक भाषा में कहावत के लिए शब्द है 'Paroemia' जिसका सम्बन्ध उस सर्वसामान्य उक्ति से है जो बहुत समय से लोगो की ज़बान पर रही है और जिसे गली-कूचे के सभी व्यक्ति जानते है। इटली की भाषा और लेटिन का 'Proverbio' शब्द कहावत के अर्थ मे प्रयुक्त होता है। टस्कन भाषा का शब्द है 'Dettato' जिसका आशय उस उक्ति से है जिसकी बार-बार आवृत्ति होती रहती है क्योकि लोकोक्ति को पीढी दर पीढी लोग सुनते रहते है जिससे वह स्मृति में चिरस्थायित्व प्राप्त कर लेती है। स्पेन की भाषा मे कहावत का पर्याय-शब्द है 'Refran' जिसका अर्थ है वह कथन जो बार-बार दोहराया जाता है। इस भाषा में 'Proverbio' सूक्ति के अर्थ मे व्यवहृत होता है, कहावत के अर्थ में नही। तुर्की भाषा में लोकोक्ति के लिए 'Atalar Sozu' का प्रयोग होता है जिसका व्युत्पत्ति-लभ्य अर्थ है पूर्वजो, बाप-दादो अथवा बडो की उक्तियाँ। चीन की साहित्यिक भाषा में कहावत के अर्थ मे 'Yen' या 'Yen Yu' प्रचलित है जिसका अर्थ है 'सुसस्कृत अथवा सिद्ध शब्द'; बोलचाल की भाषा मे Su-hua अथवा 'Su-Yu' का प्रयोग होता है जिसका अर्थ है सर्वसामान्य वार्त्ता अथवा सर्वसामान्य उक्ति। अरबी भाषा मे 'Mathal' या 'Tamthal' कहावत अथवा उपमा के अर्थ मे व्यवहृत शब्द है जो व्युत्पत्ति की दृष्टि से सादृश्य अथवा समता का वाचक है। वस्तुतः शब्द-चित्रो की सहायता से यह लोक-व्यवहार का कथात्मक निदर्शन है। रूस और बलगेरिया की भाषा में 'Poslovitsa' लोकोक्ति के अर्थ में प्रयुक्त शब्द है। जैकोस्लोवाकिया की भाषा में इसी अर्थ का द्योतक 'Prislovi' शब्द है। इस्टोनिया का 'Vanasona' पुराने शब्द के अर्थ में व्यवहृत है। फिनलैंड की भाषा में कहावत का पर्याय शब्द है "Sanalasku" जिसका व्युत्पत्ति-लभ्य अर्थ है किसी शब्द का गिर जाना। जार्जिया में लोकोक्ति के लिए प्रयुक्त शब्द है 'अदाज' जिसने वर्तमान साहित्य में अपनी जड जमा ली है। यह फारसी शब्द उदाहरण या आकार के अर्थ मे व्यवहृत है। प्राचीन जमाने में जार्जियन शब्द 'Igavi' कहावत और नीति-कथा दोनो के अर्थ मे प्रयुक्त होता था।

हेब्रू का 'Mashal' शब्द कहावत, उपमा अथवा सादृश्य के अर्थ में व्यवहृत होता है। जापानी के 'Kota-waza' का व्युत्पत्ति-लभ्य अर्थ है वे शब्द जो सक्रिय हैं। फारसी भाषा में कहावतों के लिए 'Amsal' शब्द का प्रयोग होता है जो अरबी शब्द 'Masal' का बहुवचन रूप है। धात्वर्थ की दृष्टि से 'Masal' वह उक्ति है जो किसी तत्सम अन्य वस्तु को स्मृति-पथ में ले आती है। पोलैंड की भाषा का 'Przyslowie' शब्द ठीक ग्रीक भाषा के 'Paroemia' के अर्थ का द्योतक है। श्याम में कहावत

के लिए 'Sup'hasit' का प्रयोग होता है। यह शब्द पालि 'सुभासितो' से निकला है जिसका अर्थ होता है श्रेष्ठ उक्ति। जर्मन भाषा में लोकोक्ति के अर्थ में 'Sprich-Worter' का व्यवहार होता है। इस पद के 'Sprach' का अर्थ है वाणी और "wort" का अर्थ है शब्द। कहावत के लिए जैसा शब्द है 'Da' le' kpa'; नीति-कथा के अर्थ में भी यही शब्द प्रयुक्त होता है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से इस शब्द का अर्थ होता है 'पुरानी बातो को लेना और उन्हे वर्तमान स्थिति पर घटित करना"। 'Proverbo' शब्द तो निरी शुष्क वार्ता के अर्थ मे व्यवहृत होता है किन्तु कहावत के अर्थ में प्रयुक्त लेटिन का 'Proverbium' शब्द आलंकारिक उक्ति का अर्थ देता है। लेटिन भाषा में लोकोक्ति का पर्याय शब्द 'Sakamvards' है जिसका अर्थ है कथनीय अथवा आवृत्ति-योग्य शब्द। मलय भाषा मे कहावत के लिए 'Umpama-an' या 'Per-umpama-an' शब्द प्रचलित है। यह शब्द 'Umpama' से निकला है जिसका अर्थ है "सादृश्य, समानता, सारूप्य, तत्सदृश दृष्टान्त अथवा उदाहरण।" इसलिए 'Umpama-an' का अर्थ हुआ कहावत, नीति-कथा, रूपक-प्रयोग अथवा किसी को सिद्ध करने के लिए निदर्शन। लिखने में कहावतों की अवतारणा करते समय इस भाषा में 'Saperti Kata arif' अर्थात् 'विज्ञजन ऐसा कहते है' का प्रयोग किया जाता है।[1]

विस्तार-भय से विदेशी भाषाओं से अधिक उदाहरण नही दिये जा रहे हैं।

(२) **भारत की भाषाओं में प्रयुक्त**—सस्कृत मे कहावत के लिए आभाणक, प्रवाद, लोकोक्ति, लोकप्रवाद, लौकिकी गाथा, प्रायोवाद आदि शब्दो का प्रयोग होता है। श्री क्षितीशचन्द्र चट्टोपाध्याय के संपादकत्व में प्रकाशित होने वाले 'मञ्जूषा' नामक संस्कृत पत्र में आभाणकादि के अन्तर्गत ही कहावतो का संग्रह किया गया है। वेदान्तग्रन्थो के भाष्यो में भी अनेक स्थानो पर 'आभाणक' शब्द प्रयुक्त हुआ है।

वाल्मीकि रामायण में कहावत के अर्थ मे प्रवाद, लोकप्रवाद तथा लौकिकी गाथा का प्रयोग हुआ है। क्रमशः उदाहरण लीजिये—

प्रवादः सत्य एवायं त्वां प्रति प्रायशो नृप
पतिव्रतानां नाकस्मात्पतन्त्यश्रूणि भूतले।　६।११४।६७.
लोकप्रवादः सत्योऽयं पंडितैः समुदाहृतः
अकाले दुर्लभो मृत्युः स्त्रिया वा पुरुषस्य वा॥　५।२५।१२.
कल्याणी बत गाथेयं लौकिकी प्रतिभाति मे॥
एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि॥　६।१२९।२.

अर्थात् रावण-वध के अनन्तर मन्दोदरी रावण को लक्ष्य में रख कर कह रही है—'हे राजन्! इस भूतल पर पतिव्रताओ के आँसू अकस्मात् ही नही गिरते, यह प्रवाद आपके पक्ष में चरितार्थ हो गया।' (६।११४।६७)

अशोक वाटिका में दुखिया सीता की उक्ति है—'पंडितों द्वारा समुदाहृत यह लोक-प्रवाद सत्य ही है कि चाहे स्त्री हो, चाहे पुरुष, किसी की भी अकाल-मृत्यु दुर्लभ होती है।' (५।२५।१२)

1. Racial Proverbs (Selwoyn Gurney Champion) pp. 15-16-17.

भरत हनुमान् से कहते हैं—यह लौकिकी गाथा मुझे कल्याण-प्रद जान पड़ती है कि यदि मनुष्य जीवित रहा तो चाहे सौ वर्ष बीत जायँ, उसे कभी-न-कभी आनन्द प्राप्त होता ही है। (६।१२९।२)

कादम्बरी में बाण भट्ट ने भी कहावत के पर्याय के रूप में 'लोकप्रवाद' पद का ही प्रयोग किया है।

'सत्योऽयं लोकप्रवादो यत्विपद्विपद सपत्संपदमनुबध्नाति।[1]

अर्थात् यह लोक-प्रवाद सत्य है कि विपत्ति, विपत्ति के पीछे और सम्पत्ति, सम्पत्ति के पीछे बँधी चलती है।

टीकाकार ने 'लोकप्रवाद' की व्याख्या करते हुए इसे 'लोगो का चिरन्तन वचन व्यापार' कहा है।[2]

इसी प्रकार कथासरित्सागर में 'प्रवाद' का प्रयोग देखिये—

"सत्यः प्रवादो यच्छिद्रेष्वनर्था यान्ति भूरिताम्।"

अर्थात् यह प्रवाद सत्य है कि विपत्ति पर विपत्तियाँ आया करती है।

पालि में कहावत के लिये 'भासितो' शब्द का व्यवहार होता है।

'पाइअसद्दमहण्णवो' मे लोकोक्ति के पर्याय के रूप मे 'आहाण' और 'आहाणय' शब्दो का प्रयोग हुआ है। श्रीमद्धनेश्वरमुनीश्वर विरचित 'सुर सुन्दरी चरिअ' में 'आहाण' और 'किवदन्ती' पाठान्तर के साथ-साथ कहावत के लिए 'आहीण'[3] शब्द भी व्यवहृत हुआ है।

यथा,

अह भणइ पुहइ-नाहो ईसिं हसेऊण, देवि ! तं सच्चं।
आहीण संजाय जं सम्मइ एत्थ लोगम्मि॥ ९६॥ (बीओ परिच्छेओ)

अर्थात् पृथ्वीनाथ कुछ हँस कर कहते है कि इस लोक मे प्रचलित यह आख्यान सत्य है।

रत्नशेखर सूरि (स० १४१६ वि०) की 'सिरवाल कहा' में कहावत के लिए 'अक्खाणय' शब्द प्रयक्त हुआ है—

अहवा नरवर तुमए एय अक्खाणयं कय सच्चम्।
पाऊण पाणियं फिर पच्छा पुच्छिज्जए गेह॥ ७।२६॥

अथवा हे नरवर ! यह कहावत तुमने सच्ची कर दिखाई; पानी पीकर फिर पीछे घर को पूछता है।

अपभ्रंश में 'अहाणउ' (आभाणक) शब्द कहावत के अर्थ मे व्यवहृत होता

---

१. कादम्बरी (बाण भट्ट और भूषण भट्ट) काशीनाथ पांडुरग द्वारा सपादित, सस्करण सातवां; पृ० १४६।

२. लोकप्रवादो जनानां चिरंतनो वचनव्यापारः (वही, पृष्ठ १४६)।

३ कविवर समयसुन्दर कृत 'सीताराम चौपाई में' भी कहावत के लिए एक स्थान पर 'आहीण' शब्द का प्रयोग हुआ है।

उंघतणइ विछाणउ लाधउ, आहीणइ दूकांणउ वे।
मुंगनइ चाउल मोहि धी घणउ प्रीसाणऊबे॥

[ऊँघते को बिछौना मिल गया, मूँगों में, चावलों में घी खूब परोसा गया।
मिलाइये—'घी ढुल्यो तो मूँगा मोंही।']

है किन्तु इस भाषा में भी ऐसा कोई शब्द नही मिलता जिसे 'कहावत'-शब्द का पूर्व-रूप कहा जा सके।

कुछ आधुनिक भारतीय भाषाओं से 'कहावत' शब्द के पर्यायो का आकलन यहाँ किया जा रहा है :—

भाषा	पर्याय.
तमिल	Pazamoli. (Old saying.)
तेलुगु	Sameta. (Proverb)
मलयालम.	Pazam chol.
मराठी.	म्हण, म्हणणी, आणा, आहणा, न्याय, लोकोक्ति।
बगला	प्रवाद, वचन, प्रवचन, लोकोक्ति, प्रचलित वाक्य।
गुजराती	कहेवत, कहेणी, कहेती, कथन, उखाणु।
हिन्दी	कहावत, कहनावत, कहाउत, कहनूत, उपखान, पखाना, लोकोक्ति।
उर्दू	जर्बुल मिस्ल।
लहदी	अखाण।
गढवाली	पखाणा।
मिकिर भाषा. आसामी.	लंबीर, लबरिम।
राजस्थानी	ओखाणो, कहबत, कैवत, कुवावत, कुवावट।
मालवी	केवात।

४. कहावत की परिभाषा

(१) **तटस्थ लक्षण**— कहावत की असंख्य परिभाषाएँ उपलब्ध है। एक विचारक ने सक्षिप्तता, सारगर्भितता और सप्राणता (चटपटापन) को कहावत के तीन अनिवार्य तत्त्वों के रूप में ग्रहण किया है।[1] किन्तु कहावत के सम्बन्ध में तीन 'सकारों' का यह सिद्धान्त सर्वांश में उचित नहीं जान पड़ता। पहले तत्त्व को लेकर ही विचार कीजिये। बहुत सी कहावतें संक्षिप्त होती हैं, उनमे 'गागर में सागर' भरा होता है। शेक्सपियर ने सक्षिप्तता को वाग्वैदग्ध्य का प्राण माना है[2] और सच कहा जाय तो कवि का यह सिद्धान्त कहावतों के सम्बन्ध में तो सर्वाधिक चरितार्थ होता है। उदाहरण के लिए कुछ राजस्थानी कहावतें लीजिये :

(१) पंच परमेसर अर्थात् पच परमेश्वर होते हैं।

---

1. Lessons in Proverbs. (R. C. Trench.) p. 7.
2. Brevity is the soul of wit. (Hamlet).

(२) काती सब साथी अर्थात् फसलें चाहे जब बोई गई हों, कार्तिक में सब साथ ही पकती हैं।

(३) भतीजो तीजो अर्थात् भतीजा सम्बन्ध में तीसरा होता है, उससे विशेष आशा नहीं की जा सकती।

(४) नौकरी ना करी अर्थात् नौकरी तो न करना ही अच्छा।

(५) खेती धणियाँ सेती अर्थात् खेती मालिक की निगरानी से ही फलदायिनी होती है।

इस प्रकार की और भी बहुत सी कहावतें सहज ही उद्धृत की जा सकती हैं जिससे लोकोक्ति की सक्षिप्तता पर प्रकाश पडता है किन्तु संक्षिप्तता तो एक सापेक्ष शब्द है। किसे सक्षिप्त कहा जाय और किसे असक्षिप्त? एक अरबी कहावत का उदाहरण लीजिये :

"शुतुरमुर्ग से किसी ने कहा—ले चल। उसने उत्तर दिया—मैं पक्षी हूँ, भार-वहन नहीं कर सकता।" तब किसी ने कहा—उड़ चल। तुरन्त ही शुतुरमुर्ग कह उठा—मैं उड नहीं सकता क्योकि मैं ऊँट हूँ।[1]

यह कहावत ऐसी है जिसे और संक्षिप्त नहीं किया जा सकता किन्तु है यह लोकोक्ति ही, चाहे कितनी ही लम्बी क्यो न हो। एक राजस्थानी कहावत लीजिये—

"ठाकरॉ, घोडी ठेका तीन देसी। ठाकर यार तो पहले ही ठेकै नीचै आसी, दोय तो एकली देसी।" अर्थात् किसी ने कहा—ठाकुर साहब, जिस घोड़ी पर आप सवार हो रहे है, वह तीन बार उछाल मारेगी। उत्तर मिला कि ठाकुर तो पहली उछाल में ही जमीन पर गिर पड़ेगा, दो उछाल तो घोड़ी अकेली देगी।

सामान्यतः कहावते लम्बी नहीं होती किन्तु कभी-कभी प्रश्नोत्तर के रूप में कुछ उक्तियाँ इस प्रकार प्रचलित हो जाती है कि हम उन्हे कहावतों के अतिरिक्त दूसरा नाम दे ही नहीं सकते। राजस्थानी भाषा में प्रश्नोत्तर के रूप में प्रचलित अनेक कहावते उपलब्ध है।

लोकोक्ति सक्षिप्त हो, इसका अर्थ यह नहीं है कि जो उक्ति अपेक्षाकृत लम्बी हो, उसको लोकोक्ति का नाम दिया ही न जाय, क्योकि विश्व के लोकोक्ति-साहित्य में लम्बी कहावतो का भी अभाव नहीं है। लोकोक्ति की सक्षिप्तता से यही अर्थ लिया जाना चाहिए कि उसमें न्यूनतम शब्दों का प्रयोग हो, अनावश्यक एक भी शब्द उसमें न आने पाये। इस प्रकार स्पष्ट है कि सक्षिप्तता लोकोक्ति की अनिवार्य विशेषता नहीं है।

सारगर्भितता कहावत का दूसरा अनिवार्य गुण बतलाया गया है। कहावतें सामान्यतः सारगर्भित होती है और यही कारण है कि वे इतने समय तक प्रचलित रहती हैं। "पेली लिखने पछे दे, भूल पड्याँ कागज सूँ ले"[2] एक राजस्थानी कहावत

---

1. They said to the camel-bird (*i.e.* the ostrich), "Carry". It answered, "I cannot, for I am a bird." They said, "Fly". It answered, "I cannot, for I am a camel."

(*Quoted by R. C. Trench in 'Lessons in Proverbs'.*)

२. मेवाड़ की कहावतें; भाग १ (प० लक्ष्मीलाल जोशी); पृष्ठ ६१।

है जिसका तात्पर्य यह है कि लेन-देन करते समय लिख लेना चाहिए, फिर यदि कोई भूल पड जाती है तो बहीखाते की जाँच से निकल जाती है। हम प्राय: देखते है कि जो अपनी स्मरण-शक्ति पर भरोसा कर लेन-देन करते है, उन्हें हमेशा पश्चात्ताप करना पड़ता है। इसी प्रकार एक दूसरी कहावत में कहा गया है, "मूँघो रोवे एक बार, सूँघो रोवे बार-बार"[1] अर्थात् मँहगी चीज लेने से एक बार तो दाम ज्यादा लगते है पर चीज अच्छी मिल जाती है। सस्ती लेने से पहले तो दाम कम लगते हैं किन्तु वह सदा कष्ट देने वाली होती है। इस कहावत मे जो तथ्य प्रकट हुआ है, वह प्रतिदिन के अनुभव से स्वयंसिद्ध है। जो लोग दूसरों को रुपया उधार देते है, वे अपने लिए आफत मोल ले लेते हैं। उधार लेने वाला बराबर चुका नही सकता, अतः उससे लडाई हो ही जाती है। 'उधार दीजै दुसमण कीजै' तथा 'उधार देवणो लड़ाई मोल लेवणो है' जैसी कहावतो मे यही बात कही गई है।

किन्तु सभी कहावते एक समान सारगर्भित होती हैं, ऐसा नही कहा जा सकता। "कपडा फाट गरीबी आई। जूती टूटी चाल गमाई" अर्थात् कपडे फट गये और गरीबी आ गई। ज्यो ही जूते टूटे, चाल का मजा जाता रहा। कहने का तात्पर्य यह है कि फटे वस्त्र और टूटे जूते गरीबी के द्योतक होते हैं। सारगर्भितता की दृष्टि से इस कहावत का कोई विशेष महत्त्व नही जान पडता किन्तु यह अवश्य स्वीकार करना होगा कि अधिकाश कहावते सारगर्भित होती हैं।

सप्राणता अथवा चटपटापन भी, जो कहावत का तीसरा गुण बतलाया गया है, प्रत्येक कहावत के सम्बन्ध में लागू नही होता। चटपटी होने से उक्ति का महत्त्व बढ़ जाता है जैसा कि नीचे के उदाहरणों से स्पष्ट है :

१. 'दादो घी खायो, म्हारी हथेली सूँघल्यो' अर्थात् दादा ने घी खाया, हमारी हथेली सूँघलो। बात-बात में पूर्वजो की शेखी बघारने वाले पर व्यंग्योक्ति के रूप मे इस कहावत का प्रयोग किया जाता है।

२ 'लुगाई कै पेट मे टाबर खटा ज्याय, बात कोनी खटावै' अर्थात् स्त्री के पेट मे बच्चा समाया रहता है, बात नही समाती।

किन्तु ऐसी भी अनेक कहावते है जिनमें अभिव्यक्ति का कोई वैचित्र्य नही मिलता। 'धन खेती, धिक चाकरी', 'बडां की बड़ी ई बात', 'बाँट कर खाणा अर सुरग में जाणा' जैसी कहावतों मे कोई चटपटापन नही है।

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि सक्षिप्तता, सारगर्भितता और सप्राणता किसी उत्कृष्ट कहावत के तो अपरिहार्य गुण अवश्य है, किन्तु कहावत-मात्र के अनिवार्य गुण ये नही हैं।

(२) **स्वरूप लक्षण**—ब्रह्म का विवेचन करते हुए वेदान्त-ग्रन्थो में तटस्थ लक्षण और स्वरूप लक्षण की चर्चा की गई है। किसी वस्तु का स्वरूप लक्षण पदार्थ के सत्य तात्त्विक रूप का परिचय कराता है। परन्तु तटस्थ लक्षण किंचित्कालावस्थायी

---

१. राजस्थानी कहावतां, भाग दूसरो, सम्पादक स्वामी नरोत्तम दास और श्री मुरलीधर व्यास; पृष्ठ ८७।

आगन्तुक गुणों का ही निर्देश कराता है। कहावत का स्वरूप लक्षण क्या है? उसका सत्य तात्त्विक रूप क्या है? उसकी आत्मा क्या है? कहावत अथवा लोकोक्ति के सम्बन्ध में संक्षिप्तता, सारगर्भितता तथा सप्राणता का जो उल्लेख किया गया है, वहाँ यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि ये तीनो गुण हर एक लोकोक्ति मे अनिवार्यतः नही पाये जाते। इससे स्पष्ट है कि इन तीनो के आधार पर लोकोक्ति के स्वरूप का निर्धारण नही हो सकता, इन तीनों का समावेश लोकोक्ति के तटस्थ लक्षण मे अवश्य किया जा सकता है। लोकोक्ति, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, जब तक लोक की उक्ति न हो, ऐसी उक्ति न हो जिसको लोक स्वीकार करले, तब तक उसे लोकोक्ति के नाम से अभिहित नही किया जा सकता, उसे और कोई नाम भले ही दिया जाए।[1] गेटे की एक उक्ति लीजिये :

"किसी भवन में रहने के लिए भवन-शिल्पी होना आवश्यक नही।" इसमें लोकोक्ति के अन्य सब गुण हैं किन्तु लोगो की जबान पर न आ सकने के कारण इसे लोकोक्ति का गौरव प्राप्त न हो सका। शिलर की उक्ति है 'Heaven and earth fight in vain against a dunce' यह भी लोकोक्ति न बन सकी क्योकि उसी की उक्ति रही। राजस्थानी में 'मूरख नै टक्कौ दे देणो पण अक्कल न देणी' ने लोकोक्ति का रूप धारण कर लिया। 'मूरख हृदय न चेत जो गुरु मिलहिं विरंचि सम' तुलसीदास की यह सूक्ति भी लोकोक्ति की तरह ही उद्धृत की जाती है, अथवा परस्पर वार्तालाप मे प्रयुक्त होती है। इस आशय की कहावत ससार की अनेक भाषाओ मे मिलती है। चीन की निम्नलिखित कहावत भी इस सम्बन्ध मे उल्लेखनीय है :

"One has never so much need of his wit as when he has to deal with a fool"

१७वी शती के पूर्वार्द्ध में जेम्स हॉवल नाम का एक अंग्रेज-लेखक हो चुका है जिसने अनेक ग्रन्थों की रचना की है। कहावतो पर उसने बहुत-कुछ काम किया था। उसने केवल दूसरों की कहावते ही इकट्ठी नही की, अपितु उसने पाँच सौ कहावतें इस उद्देश्य से स्वय भी बना डाली कि वे आगामी पीढ़ियो के काम आएँ, और इन पाँच सौ कहावतो को भी उसने अपने सग्रह मे सम्मिलित कर लिया। उसके द्वारा निर्मित कुछ कहावतो के उदाहरण लीजिए :

(१) गर्व एक ऐसा पुष्प है जो दानव के बगीचे में उगता है।

(२) श्रद्धा एक कुलीन स्त्री है और अच्छे कार्य उसके अनुचर है।

उक्त दोनो उक्तियो में कहावत के अन्य गुण तो मिलते है किन्तु लोकप्रियता का गुण, जो कहावत का प्राण है, इनमें नही है। इसलिए हॉवल द्वारा गढ़ी हुई उक्तियों ने सग्रह की ही शोभा बढ़ायी, लोकोक्ति के पद पर वे आसीन न हो सकी। हॉवल द्वारा निर्मित उक्तियाँ प्राज्ञोक्तियाँ हैं, लोकोक्तियाँ नही। कहावत वस्तुतः लोक

---

1. To attain the rank of a proverb, a saying must either spring from the masses or be accepted by the people as true. In a profound sense it must be vox populi.

(*Encyclopaedia of Religion and Ethics—Hastings vol. x, p. 412*)

की उक्ति है। इस बात को स्वयं हॉवल ने भी स्वीकार किया है।[1]

उक्त ऊहापोह के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते है कि संक्षिप्तता, सारगर्भितता और चटपटापन सामान्यतः किसी भी कहावत के, किन्तु विशेषतः किसी उत्कृष्ट कहावत के, अपरिहार्य गुण है पर लोकप्रियता कहावत-मात्र का अनिवार्य लक्षण है।[2]

(३) **लोकोक्तियों का सत्य और विरोधाभास**—ऊपर जो लोकोक्ति की सत्यता के सम्बन्ध में हॉवल का उद्धरण दिया गया है उससे यह न समझा जाय कि लोकोक्ति का सत्य सार्वजनीन व सार्वदेशिक होता है। कुछ कहावतें ऐसी भी मिल जाती है जिसमें आपाततः विरोध दिखाई पडता है। भाई बरोबर वैरी नही, और भाई बरोबर प्यारो नही," इस लोकोक्ति मे एक ही साँस मे दो विरोधी बाते कह दी गई हैं। जहाँ एक कहावत में कहा गया है 'कपूत आयो भलो न जायो', वही एक दूसरी कहावत मे कहा गया है 'खोटो पीसो, खोटो बेटो, ओडीवर को माल' अर्थात् खोटा पैसा और कुपुत्र कभी न कभी विपत्ति-काल मे काम दे ही देते हैं। कहावतो मे इस प्रकार के विरोधाभास को देखकर चौकने की आवश्यकता नही क्योकि हमारा जीवन ही अनेक प्रकार के विरोधाभासो से परिपूर्ण है। कहावत वस्तुतः सम्पूर्ण सत्य नही है; वे सत्य के लिए संकेतमात्र उपस्थित करती हैं। जिस प्रकार दर्पण-विशेष की भिन्नता के कारण प्रतिबिम्बों मे भी भिन्नता आ जाती है, उसी प्रकार देश, काल और परिस्थितियो की भिन्नता के कारण जीवन-दर्पण में हमें भिन्न-भिन्न रग दिखाई पडते हैं। सत्य वास्तव में एक बहुमुखी देव है जिसके मुखो की इयत्ता का अनुमान तक नही किया जा सकता। चरम सत्य क्या है? इस प्रश्न का उत्तर देते-देते तो बड़े-बड़े दार्शनिको की बुद्धि भी हैरान हो गई है। स्टीवेन्सन ने तो यहाँ तक कह दिया था कि निरपेक्ष सत्य-जैसी कोई वस्तु नही, हमारे सब सत्य अर्द्ध-सत्य मात्र है।[3] इसलिए कहावतो का सत्य यदि सार्वदेशिक और सार्वकालिक न हो तो इसमे आश्चर्य की कोई बात नही। मार्ग-दर्शन के लिए कहावतें श्रेष्ठ साधन का काम देती है, किन्तु कोई उन्हे चरम सत्य का पर्याय समझने की भूल न करे। शास्त्रीय शब्दावलि का प्रयोग करे तो हम कह सकते हैं कि वे निरपवाद और निरपेक्ष सत्य नही, वे सत्य के लिए एक दृष्टिकोण मात्र है।[4]

भिन्न स्थान से लिए हुए चित्र में जैसे भिन्नता आ जाती है, वैसे ही इस ससार

---

1. "The people's voice, the voice of God we call,
And what are proverbs but the people's voice
Coined first and current made by common choice?
Then sure they must have weight and truth withal."

2. Four qualities are necessary to constitute a proverb, brevity (or, as some prefer to put it, conciseness) sense, piquancy or salt (Trench) and popularity.

(*Encyclopaedia of Religion and Ethics Hastings, vol. x, p. 412*)

3. There is nothing like absolute truth, all our truths are half-truths.

4. Proverbs are moral universals, not logical universals; they admit exceptions.

को देखने में भी दृष्टिकोण की भिन्नता सर्वत्र मिलेगी और यह एक दृष्टि से वांछनीय भी है। जीवन का यथार्थ मूल्यांकन गणित के नियमो की तरह नही किया जा सकता। परिस्थितियों आदि की भिन्नता से हमारे जीवन के अनुभवों के मूल्य भी बदलते रहते है।

कहावतों में विरोधाभास का मुख्य कारण यह है कि उनके निष्कर्ष में वैज्ञानिक निष्कर्ष का-सा सत्य नही रहता। कुछ उदाहरण सामने आये और उनके आधार पर एक लोकोक्ति चल निकली। बहुत से कुपुत्रो को जब देखा गया कि वे किसी काम के नही तो एक कहावत बन गई 'कपूत आयो भलो न जायो'। पर जब एक बार ऐसा भी देखा गया कि किसी कुपुत्र द्वारा भी कोई भलाई का काम सम्पन्न हो गया तो इस प्रकार की कहावत बन गई होगी 'खोटो पीसो, खोटो बेटो, ओडीवर को माल' अर्थात् खोटा पैसा और कुपुत्र कभी विपत्ति-काल में काम दे ही देते है। पहली कहावत क्योकि प्रचलित हो गई, वह भी बनी रही और दूसरी भी सत्य का आश्रय पाकर प्रचलित हो गई। तर्कशास्त्र के शब्दो में यदि हम कहें तो कह सकते है कि कहावतों का सत्य "अवैज्ञानिक होता है, सीमित घटनाओ को लक्ष्य मे रखकर वह प्रवृत्त होता है।"[1]

विश्व की बहुत सी भाषाओ में कहावतो के सम्बन्ध में कुछ कहावतें प्रचलित है जिनमे कहा गया है कि कहावतें झूठ नही बोलती।[2] और इसका प्रमुख कारण यह है कि वे दैनिक अनुभव की दुहिताएँ है[3] वे अनुभव की सन्तान है।[4] इटली की एक कहावत मे कहा गया है कि कहावतों को कहावतें कहते ही इसलिए है कि वे सिद्ध हो चुकी हैं। डिजरेली[5] के शब्दो में "शताब्दियाँ बीत जाने पर भी लोकोक्तियो रूपी मानसिक फर्नीचर के दीमक नही लग पाई है; इतना ठोस है यह फर्नीचर।"[6]

जो कुछ लोग कहते है, वह सत्य हो सकता है, असत्य भी हो सकता है लेकिन

---

1. A proverb is not scientific induction. It is unscientific induction based on limited uncontradicted experience. Proverbs are based on induction per simple innumeration.

2. A Proverb does not tell a lie. (Estonian)
   A Proverb never lies. (German)
   Proverbs do not lie. (Russian)
   There are no proverbial sayings which are not true. (Don Quixote)
   If there is falsity in a proverb, then milk can be sour. (Malayalam).
   Old sayings contain no lies. (Basque)

3. Proverbs are the daughters of daily experience. (Dutch)

4. Proverbs are the children of experience. (English)

5. Proverbs are so called because they are proved. (Italian)

6. Centuries have not worm-eaten the solidity of this ancient furniture of mind

जिसे सभी लोग कहते हैं, वह असत्य कैसे हो सकता है ?[1] कहावतें अपने सत्य के कारण ही चिरकाल तक जीती हैं, और सत्य ही एक ऐसी वस्तु है जो पुरानी नहीं पड़ती। इसीलिए कहा गया है कि 'काल गया पर कहावत रह गई'।

इमर्सन ने कहावतो के बारे में जो कहा है "Proverbs are the literature of reason, or the statement of absolute truth, without qualification. like the sacred books of each nation, they are the sanctuary of its institutions" उसका अर्थ केवल यही समझा जाना चाहिए कि जो जाति जिन कहावतो का प्रयोग करती है, उस जाति के लोग अपनी कहावतो को निरपेक्ष सत्य के रूप मे ग्रहण करते हैं; नही तो, जैसा ऊपर दिखाया जा चुका है, सभी कहावतों का सत्य निरपेक्ष तथा निरपवाद नही होता। टी. टी. मुंगर के शब्दों में 'लोकोक्तियाँ अर्द्ध सत्य मात्र होती हैं।'[2]

(४) **कुछ प्रसिद्ध परिभाषाएँ**—एक प्राचीन वैयाकरण ने कहावत की यह परिभाषा दी थी 'A proverbs is a saying without an author' अर्थात् कहावत वह उक्ति है जिसका कोई निर्माता न हो। यह हो सकता है कि कहावत के रचयिता का हमें ज्ञान न हो किन्तु यह निश्चित है कि कहावतें अपने आप उत्पन्न नही हो गयी; सब से पहले किसी न किसी के मुख से तो कहावत निकली ही होगी। लोक-मानस जिस बात को मानता है, सोचता है अथवा ग्रहण करता है, उसी को एक चतुर व्यक्ति ने एक मनोरम उक्ति के रूप में जड दिया होगा, और क्योकि उस उक्ति में लोक-मानस का विश्वास सन्निहित था, वह उक्ति केवल एक व्यक्ति की उक्ति नही रह गयी, उस उक्ति ने लोकोक्ति का रूप धारण कर लिया। लार्ड रसल ने इसी अर्थ मे लोकोक्ति को एक व्यक्ति की विदग्धता और अनेक का ज्ञान कहा होगा।[3] किन्तु यहाँ पर भी ध्यान देने की बात यह है कि एक की उक्ति होने से ही कोई उक्ति लोकोक्ति का रूप धारण नही कर लेती; लोकोक्ति होने के लिए यह अनिवार्यतः आवश्यक है कि जन-मानस की छाप उस पर अङ्कित हो; लोक-हृदय उस उक्ति के साथ अपना तादात्म्य स्थापत करे। कोई उक्ति एक मुख से निकली, वह सब की ज़बान पर आ गई और सब की हो गई। किसी लोकोक्ति के प्रचलन मे अधिकाश लोक-समुदाय साधनभूत होता है, इसलिए यह भी कहा जा सकता है कि लोकोक्ति के लोकोक्ति बनने मे एक ही व्यक्ति का हाथ नही रहता, समस्त लोक-समुदाय उसे लोकोक्ति का रूप देने में योग देता है। इस अर्थ मे वह किसी व्यक्ति-विशेष की रचना नही कही जा सकती; क्योंकि, जब से उसका प्रचलन हुआ, तभी से उस उक्ति को लोगो ने अपनी करके माना। कौन जानता है लोको-

---

1. It may be true what some men say, it must be true what all men say. (English)

2. Proverbs are usually but half-truths and seldom contain the principle of the action they teach. (T. T. Munger)

3. A Proverb is the wit of one and the wisdom of many. (Lord Russel)

क्तियों के उन निर्माताओं को जिनकी उक्तियाँ हज़ारों वर्ष बीत जाने पर आज भी लोगों की जबान पर है ?

लोक-मानस मे लोकोक्ति के निर्माता का मानस विनिमज्जित हो गया; उसका नाम भुला दिया गया और लोकोक्ति जनता-जनार्दन की उक्ति बन गई। लोकोक्ति के निर्माता को अवश्य इस बात से मूक संतोष होता रहा होगा कि उसकी उक्ति लोक की उक्ति बन रही है, और फिर दूसरी बात यह भी है कि लोकोक्ति की उद्भावना में निर्माता के नाम का डिंडिम-घोष करके जब एक व्यक्ति को महत्त्व दिया जाने लगता है, तब जन-मानस इस भावना के प्रति विद्रोह कर उठता है, किन्तु जब जनता इस बात को स्वीकार कर लेती है कि उक्ति व्यक्ति-विशेष की नही, समस्त लोक-समुदाय की है, तब वह उक्ति जोरो से चल पड़ती है, उसके व्यापक प्रवाह को कोई रोक नही सकता।

कहावत की वैज्ञानिक परिभाषा देना बडा कठिन कार्य है। अरस्तू[1] के शब्दों में 'संक्षिप्त और प्रयोग के लिए उपयुक्त होने के कारण विध्वस और विनाश में से बचे हुए अवशेष को कहावत की सज्ञा दी गई है।" टेनीसन[2] के शब्दों मे "कहावतें वे रत्न है जो पाँच शब्द लम्बे होते है और जो अनत काल की अँगुली पर सदा जगमगाते रहते है।" जूबर्ट[3] ने कहावतों को "ज्ञान के सक्षेपीकरण" के नाम से अभिहित किया है। सर्वेंटीस[4] के मत से "कहावते वे छोटे-छोटे वाक्य है जो जीवन के दीर्घकालीन अनुभवो को अन्तर्हित किए हुए हैं।" ऐग्रीकोला[5] की दृष्टि मे 'कहावते वे संक्षिप्त वाक्य हैं जिनमें सूत्रो की तरह आदिम पुरुषो ने अपनी अनुभूतियो को भर दिया है।" इरेस्मस[6] का मत है कि कहावतें वे प्रसिद्ध और सुप्रयुक्त उक्तियाँ है जिनकी एक विलक्षण ढंग से रचना हुई हो।" बाइबिल[7] मे कहा गया है कि "कहावत ज्ञानी जनो की उक्तियों का निरूपण है।" डिज़रेली[8] के मतानुसार "कहावतें

---

1. A proverb is the remnant of the ancient philosophy preserved amidst very many destructions on account of its brevity and fitness for use. (Aristotle)

2. Jewels five words long that on the stretched forefinger of all time sparkle for ever. (Tennyson)

3. Proverbs may be said to be the abridgments of wisdom. (Joubert)

4. Short sentences drawn from long experience. (Cervantes)

5. Short sentences into which, as in rules, the ancientas have compressed life. (John Agricola)

6. Well-known and well-used dicta framed in a sort of out-of the way form and fashion. (Erasmus)

7. A proverb is the interpretation of the words of the wise. (Bible)

8. These fragments of wisdom, the proverbs in the earliest ages serve as the unwritten laws of morality. (Disraeli)

पांडित्य के अंश हैं जो मानव-सृष्टि के आदिम-काल में अलिखित नैतिक कानून का काम देती थी।"

एक आधुनिक लेखक[1] ने कहावतों को "भौतिकवाद की बीजगणित" का नाम दिया है। डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दो में "लोकोक्तियाँ मानवीय ज्ञान के चोखे और चुभते हुए सूत्र है। वे मानवी ज्ञान के घनीभूत रत्न है, जिन्हें बुद्धि और अनुभव की किरणो से सदा फूटने वाली ज्योति प्राप्त होती रहती है।"

उक्त सभी परिभाषाओं मे कहावत के मूल तत्त्व लोकप्रियता की उपेक्षा की गई है। किसी उक्ति में कितने ही गुण चाहे क्यों न हो, जब तक वह लोक की उक्ति नही होगी, लोकोक्ति या कहावत नही कहला सकेगी। ऊपर दी हुई कई परिभाषाएँ लोकोक्तियों की परिभाषाएं न होकर प्राज्ञोक्तियो की परिभाषाएँ हो गई हैं। जिसने कहावतों को 'जन-समूह के ज्ञान और चातुर्य के नवनीत' की संज्ञा दी थी, उसने लोकोक्ति के सम्बन्ध में अधिक सूझ-बूझ का परिचय दिया था।

(५) **निष्कर्ष**—इस प्रकार कहावत की असंख्य परिभाषाएँ दी जा सकती हैं किन्तु किसी निर्दोष परिभाषा की ओर इगित कर देना सरल काम नही है। हाँ, परिभाषाओं में त्रुटियाँ निकालना अवश्य सरल कार्य है। कहावत के स्वरूप को लक्ष्य में रखते हुए हम कह सकते है कि अपने कथन की पुष्टि में, किसी को शिक्षा या चेतावनी देने के उद्देश्य से, किसी बात को किसी की आड़ में कहने के अभिप्राय से अथवा किसी को उपालम्भ देने व किसी पर व्यंग्य कसने आदि के लिए अपने में स्वतन्त्र अर्थ रखने वाली जिस लोक-प्रचलित तथा सामान्यतः सारगर्भित, संक्षिप्त एवं चटपटी उक्ति का लोग प्रयोग करते है, उसे लोकोक्ति अथवा कहावत का नाम दिया जा सकता है।

कहावत का यह लक्षण बहुत व्यापक होते हुए भी सर्वथा निर्दोष होने का दावा नही करता।

५. कहावत और मुहावरा

कहावतों के ऐसे बहुत से संग्रह निकले हैं जहाँ कहावतो के साथ-साथ अनेक मुहावरों का भी समावेश कर लिया गया है। कुछ संग्रहकर्त्ता तो जान-बूझकर कहावतों के साथ मुहावरो को भी अपने संग्रहों में स्थान देते है किन्तु ऐसे संग्रहो का भी अभाव नही है जहाँ कहावत और मुहावरे की विभाजन-रेखा स्पष्ट न होने के कारण कहावतों और मुहावरों का एकत्र सम्मेलन हो जाता है जो अवाछनीय है। ऐसी स्थिति में कहावत और मुहावरे के तारतम्य पर विचार कर लेना आवश्यक है।

१. **रोजमर्रा और मुहावरा**—'मुहावरा' अरबी शब्द है जो 'हौर' शब्द से बना है। इसका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ परस्पर बातचीत और एक दूसरे के साथ सवाल-जवाब करना है। हिन्दी शब्दसागर के विद्वान् सम्पादकों के मतानुसार 'मुहावरा' लक्षणा या व्यजना द्वारा सिद्ध वाक्य या वह प्रयोग है जो किसी एक ही बोली या लिखी जाने वाली भाषा में प्रचलित हो और जिसका अर्थ प्रत्यक्ष अभिधेय अर्थ से

---

1. Algebra of materialism. (*People of India by Risley, p. 125*)

विलक्षण हो। किसी एक भाषा में दिखाई पड़ने वाली असाधारण शब्द-योजना अथवा प्रयोग मुहावरे के नाम से अभिहित की जा सकती है। जैसे 'लाठी खाना' मुहावरा है क्योकि इसमे 'खाना' शब्द अपने साधारण अर्थ में नहीं आया, लाक्षणिक अर्थ मे आया है। लाठी खाने की चीज नही है, पर बोलचाल में 'लाठी खाना' का अर्थ 'लाठी का प्रहार सहना' लिया जाता है। इसी प्रकार 'गुल खिलना', 'घर करना', 'चमडा खीचना', 'चिकनी-चुपडी बाते' आदि मुहावरे के अन्तर्गत हैं। कुछ लोग इसे रोज़मर्रा या बोलचाल भी कहते है।[1]

किन्तु कुछ विद्वान् 'रोज़मर्रा' और 'मुहावरे' को एक नही मानते। हिन्दी के प्रसिद्ध वैयाकरण और लेखक पं० केशवराम भट्ट 'रोज़मर्रा' और 'मुहावरे' के अन्तर को स्पष्ट करते हुए लिखते है—

"हिन्दी जिनकी मातृभाषा है, वह अपनी नित्य की बोलचाल में वाक्य-रचना जिस रीति से करते है, उसे रोज़मर्रा कहते है। जैसे 'कलकत्ते से पेशावर तक सात-आठ कोस पर एक पक्की सराय और एक कोस पर चबूतरा बना हुआ था।' यह वाक्य रोजमर्रा के अनुसार नही है। इसकी जगह यो होना चाहिए—'कलकत्ते से पेशावर तक सात-सात आठ-आठ कोस पर एक पक्की सराय और कोस-कोस भर पर एक चबूतरा बना हुआ था।'

बोलने और लिखने मे यथासम्भव रोजमर्रे का विचार रखना बहुत ही आवश्यक है। बिना इसके लिखना या बोलना कौडी काम का नही।

बोलचाल या रोजमर्रा नया गढा नही जा सकता। जैसे पाँच-सात या सात-आठ वा आठ-सात पर अनुमान करके छः-आठ या आठ-छः या सात-नौ बोला जाय तो उसे रोजमर्रा नही कहेगे क्योकि भाषा मे कभी ऐसा नही बोलते। इसी तरह 'हर रोज' की जगह 'हर दिन' 'रोज़-रोज' की जगह 'दिन-दिन' या 'आये दिन' की जगह 'आये रोज' बोलना रोजमर्रा नही कहा जायगा।

कोई वाक्य या वाक्यांश अपना सामान्य अर्थ न जताकर कुछ और ही विलक्षण अर्थ जताये तो उसे मुहावरा (वाग्धारा) कहते हैं। जैसे 'रणजीतसिंह ने पठानो के दाँत खट्टे कर दिये', 'इतना कहते ही वह पानी-पानी हो गया' आदि।"

मौलवी अल्ताफ हुसैन हाली के मतानुसार "मुहावरे के दो रूप हैं—एक वह जिसको हम रोज़मर्रा या बोलचाल कह सकते है और दूसरा वह जो किसी वाक्य के साकेतिक अथवा लाक्षणिक अर्थ द्वारा विदित होता है।"[2] 'पाँच-सात' यह रोज़मर्रे का उदाहरण है क्योकि अहले-ज़बान उसको उसी तरह इस्तेमाल करते है जबकि गम खाना, कसम खाना, धोखा खाना, पछाड़े खाना, 'ठोकर खाना' ये मुहावरे के दूसरे रूप के उदाहरण है। इसमें 'खाना' वास्तविक अर्थों (हकीकी) मानों मे प्रयुक्त न होकर सांकेतिक अर्थों (मजाजी मानो) मे प्रयुक्त हुआ है।

'रोज़मर्रे की पाबन्दी जहाँ तक सम्भव हो, लिखने और बोलने में ज़रूरी समझी

---

१. हिन्दी शब्दसागर, तीसरा भाग, पृष्ठ २७९३।

२. बोलचाल : श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय; भूमिका, पृष्ठ १२४।

गई है, यहाँ तक कि वाक्य मे जितनी ही रोजमर्रे की पाबन्दी कम होगी, उतना ही उसमे लालित्य कम होगा। परन्तु मुहावरे के लिए यह बात नही है। मुहावरा जो उत्कृष्ट रीति से बाँधा जाय तो निःसन्देह निकृष्ट आशय को उत्कृष्ट और उत्कृष्ट को उत्कृष्टतर कर देता है। पर हर जगह मुहावरे को बाँधना ऐसा कुछ आवश्यक नहीं। बिना मुहावरे के भी वाक्य ओजस्वी हो सकता है। मुहावरा मानों मनुष्य के शरीर में कोई सुन्दर अग है और रोजमर्रे को ऐसा जानना चाहिए जैसे अंगों का तारतम्य मनुष्य के शरीर मे। लोग साधारणतः उसी लेख को बहुत पसन्द करते हैं जो रोजमर्रे पर ध्यान देकर लिखा गया हो, और जो रोजमर्रे के साथ मुहावरे की चाशनी भी हो तो वह उनको और भी अधिक स्वाद देता है।'

कभी-कभी एक ही उदाहरण मे मौलाना हाली द्वारा निर्दिष्ट मुहावरे के दोनों स्वरूप मिल जाते हैं। जैसे 'तीन-पाँच करना' (झगड़ा टटा-करना) उसको दोनों के मानों के लिहाज से मुहावरा कह सकते हैं क्योकि यह तरकीब (व्यापार) अहले-ज़बान की बोल-चाल के भी मुवाफिक है, और उसमे तीन-पाँच का लफ्ज अपने हकीक़ी मानो (वास्तविक अर्थों) मे नही, बल्कि मजाजी मानो (साकेतिक अर्थों) में बोला गया है।[1]

२. **मुहावरे का लक्षण**—प० गयाप्रसाद शुक्ल मुहावरे को वाक्य नहीं मानते। उनकी दृष्टि मे "मुहावरा वास्तव मे लक्षणा या व्यजना द्वारा सिद्ध वह वाक्याश है, जो किसी एक ही बोली अथवा लिखी जाने वाली भाषा में प्रचलित हो और जिसका अर्थ प्रत्यक्ष (अभिधेय) अर्थ से विलक्षण हो।"[2] शुक्ल जी द्वारा दी हुई उक्त परिभाषा मूलतः हिन्दी शब्द-सागर की परिभाषा से मिलती-जुलती है।

श्री ब्रह्मस्वरूप दिनकर के मतानुसार "सब मुहावरे वाक्याश होते हैं, परन्तु सब वाक्याश मुहावरे नही होते।" 'नदी-तट पर' वाक्याश है, पर मुहावरा नही। 'टेढ़ी खीर' मुहावरेदार वाक्याश है, पर मुहावरा नही। मुहावरे के अन्त मे क्रिया का सज्ञार्थक रूप रहता है। मुहावरे का शब्दार्थ नही लिया जाता किन्तु उसमे तथा लाक्षणिक अर्थ मे कोई-न-कोई सम्बन्ध अवश्य रहता है। मुहावरों के शब्द नपे-तुले होते है, उनमें हेर-फेर संभव नही। 'पानी पानी होना' मुहावरा है, 'जल जल होना' नही।[3]

३. मुहावरे के पर्याय—गुजराती भाषा मे मुहावरे के लिए 'रूढ़ि-प्रयोग' शब्द का प्रयोग होता है। रूढि-प्रयोग व्याकरण और शब्द-कोश से अलग वस्तु है। भाषा का ज्ञान व्याकरण और शब्द-कोश से हो सकता है लेकिन जो ज्ञान इन दोनों से नही हो सकता, वह रूढ़ि-प्रयोग द्वारा सम्भव है। रूढि-प्रयोग भाषा का ऐसा गुप्त भंडार है कि इसे जो खोलने का प्रयत्न करता है, वही इसे खोल सकता है। मात्र अभ्यास द्वारा ही यह प्राप्त किया जा सकता है। देश के रीति-रिवाजों और लोक की व्यावहारिक पद्धति पर लिखे हुए अनेक ग्रन्थों की अपेक्षा रूढि-प्रयोगो द्वारा ही लोगों के

---

१. बोलचाल : श्री अयोध्यासिह उपाध्याय; भूमिका, पृष्ठ १२५।
२. हिन्दी मुहावरे—ब्रह्मस्वरूप; 'दो शब्द' में से।
३. हिन्दी मुहावरे—ब्रह्मस्वरूप दिनकर शर्मा; 'विषय परिचय' से उद्धृत।

रहन-सहन और रीति-नीति का भली भाँति दर्शन कराया जा सकता है। वास्तव में भाषा का रहस्य इन्ही के द्वारा उद्घाटित किया जा सकता है।[1]

पण्डित रामदहिन मिश्र के शब्दों में "संस्कृत तथा हिन्दी में मुहावरा शब्द के यथार्थ अर्थ का बोधक कोई शब्द नही है। प्रयुक्तता, वाग्रीति, वाग्धारा और भाषा-सम्प्रदाय आदि शब्दों को इसके स्थान पर रख सकते हैं। हिन्दी मे मुहावरे के बदले मे विशेषत: 'वाग्धारा' शब्द का व्यवहार देखा जाता है किन्तु मुहावरा शब्द के बदले 'भाषा सम्प्रदाय' शब्द का लिखना कही अच्छा है, क्योंकि वाग्रीति, वाग्धारा और प्रयुक्तता, इन तीनों शब्दों का अर्थ इससे ठीक-ठीक झलक जाता है, और भाषागत अन्यान्य विषयों का आभास भी मिल जाता है।[2]

यद्यपि विद्वानों ने मुहावरे के पर्यायवाची शब्द ढूँढ़ने का प्रयत्न किया है किन्तु हिन्दी में अभी तक कोई भी शब्द मुहावरे जितना प्रचलित नही हो पाया है। किसी विद्वान् ने मुहावरे के ध्वनि-साम्य पर 'मुख-व्यवहार' शब्द का मुहावरे के अर्थ में प्रयोग किया था किन्तु यह शब्द भी उस विद्वान् तक ही सीमित रहा।

सस्कृत में मुहावरे के लिए कोई उपयुक्त पर्याय शब्द चाहे न मिलता हो किन्तु मुहावरो का इस भाषा में कभी अभाव नही रहा। 'अंगुलिदाने भुजं गिलसि' (आर्या सप्तशती) तथा 'ईदृशं राजकुलं दूरे वन्दयताम्' (कर्पूरमंजरी) जैसे प्रयोग संस्कृत-ग्रन्थो में उपलब्ध होते है। इतना सब कुछ होते हुए भी संस्कृत भाषा में मुहावरों का जो सैद्धान्तिक विश्लेषण नही मिलता, इसका संभवत: कारण यह है कि संस्कृत के आचार्य मुहावरों को लक्षणा के अन्तर्गत मानकर चले हैं।

४. **कहावत और मुहावरे का अन्तर**—कहावत और मुहावरे के स्वरूप-निर्धारण के बाद दोनों के पारस्परिक अन्तर को निम्नलिखित ढंग से समझाया जा सकता है—

(१) कहावत का वाक्य प्राय: सर्वत्र ज्यों का त्यो रहता है, क्या हुआ, यदि कभी कोई शब्द पहले-पीछे रख दिया गया।[3] किन्तु मुहावरे के वाक्यगत विविध प्रयोग हो सकते है। उदाहरणार्थ 'नामी चोर मार्‌यो जाय, नामी साहूकार कमा खाय' राजस्थानी की एक प्रसिद्ध कहावत है।[4] इसका प्रयोग बँधा-बँधाया है। सभी इस कहावत की इसी रूप में आवृत्ति करते हुए देखे जाते है। परन्तु मुहावरे के सम्बन्ध में यह बात नही कही जा सकती। मुहावरे का वाक्य काल, पुरुष, वचन और व्याकरण के अन्य अपेक्षित नियमो के अनुसार यथासम्भव बदलता रहता है। एक हिन्दी मुहावरा है 'मुँह बनाना'। धातु के समान व्याकरण के नियमानुसार इसके अनेक रूप बन सकते है यथा, 'मुँह बनाया, मुँह बनाते हैं, मुँह बनायेगे, मैं मुँह बनाऊँगा, उन्होंने मुँह बनाना छोड़ दिया, उसका मुँह बनता ही रहा' आदि। इसी प्रकार 'आकाश-पाताल

---

१. रूढ़ि प्रयोग कोश—मोगीलाल भीखाभाई गांधी; सन् १८९८; प्रस्तावना, पृष्ठ ३।

२. मुहावरे—पंडित रामदहिन मिश्र; पृष्ठ ७।

३. पद्यों में छन्द के अनुरोध से कहावतों में भी यत्किंचित् परिवर्तन हो जाया करता है। जैसे—हाथ के कंगन को कहा आरसी ? (हाथ कगन को आरसी क्या ?)
ऊँची दुकान की फीकी पिठाई। (ऊँची दुकान, फीका पकवान)।

४. मेवाड़ की कहावतें भाग १—पं० लक्ष्मीलाल जोशी, पृष्ठ ५४।

एक करना' एक मुहावरा है। इसके वाक्यगत दो प्रयोग लीजिए—

(क) डिप्टीगिरी के लिए वह आकाश-पाताल एक कर देगा।

(ख) बंग-भंग होने पर बंगालियो ने अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आकाश-पाताल एक कर दिया था।

उक्त दोनो उदाहरणों मे कर्त्ता और काल के अनुसार मुहावरे सम्बन्धी वाक्यों में आवश्यक परिवर्तन हो गया है किन्तु कहावत में यह बात नही पाई जाती। एक कहावत है, 'अधी पीसे, कुत्ते खायँ'। जब रहेगा तब इसका यही रूप रहेगा, अन्तर होने पर अर्थ-बोध मे भी व्याघात होने लगेगा। 'अधी पीसती है, कुत्ते खाते है अथवा अंधी पीसेगी, कुत्ते खायेगे' इस प्रकार के प्रयोगो द्वारा उक्त कहावत उतनी बोधगम्य नहीं रह जायगी। इससे स्पष्ट है कि कहावत का रूप निश्चित होता है, और उसके शब्द भी प्रायः निश्चित रूप में ही बोले जाते है।[1]

(२) अर्थ की दृष्टि से लोकोक्ति स्वतः सम्पूर्ण होती है किन्तु मुहावरा नही। कहने का तात्पर्य यह है कि लोकोक्ति का रूप एक वाक्य का रूप होता है, जब कि मुहावरे का वाक्यगत प्रयोग किया जाता है। 'घणा पूताँ कुल हाँण'[2] राजस्थानी की एक कहावत है जिसका अर्थ यह है कि अधिक पुत्रों से कुल की हानि होती है। उक्त कहावत एक पूरे वाक्य का रूप प्रस्तुत करती है।

इसके विपरीत 'जले पर नमक छिडकना' एक मुहावरा है जो एक क्रिया मात्र है। जब तक इस क्रिया का किसी कर्त्ता से सम्बन्ध स्थापित नही किया जायगा, तब तक उक्त मुहावरा कोई सम्बद्ध अर्थ नही देगा। मुहावरे का वाक्यगत प्रयोग ही उसे सम्बद्धता प्रदान करता है।

(३) जैसा ऊपर कहा गया है, मुहावरा वस्तुत एक कार्य-व्यापार है, जब कि लोकोक्ति एक प्रकार का नैतिक अथवा व्यावहारिक कथन है। उदाहरण के लिए स्पेन तथा जर्मनी की दो कहावते लीजिये—

Spanish. 'Give me where I may sit down, I will make where I may lie down.'

German. 'Who lets one sit on his shoulders, shall have him presently sit on his head.'

इन दोनो कहावतो के साथ-साथ राजस्थानी भाषा के इस वाक्य को लीजिए—

'आँगली पकडतै-पकडतै पूँच्यो पकड लियो' अर्थात् अँगुलि पकडते-पकडते पहुँचा पकड लिया। प्रश्न यह है कि राजस्थानी भाषा के इस वाक्य को कहावत कहा जाय या मुहावरा? यद्यपि स्पेन और जर्मनी की दोनो लोकोक्तियो मे जो बात कही गई है, करीब-करीब वही बात राजस्थानी के इस वाक्य मे भी है किन्तु यह वाक्य जिस रूप मे रखा गया है, वह लोकोक्ति का रूप नही है, यह एक मुहावरे का ही वाक्यगत प्रयोग है। हिन्दी शब्द-सागर के सम्पादको ने भी 'उँगली पकड़ते पहुँचा

१. बोलचाल—श्री अयोध्यासिह उपाध्याय; पृष्ठ १६७-१६८।
२. मारवाड़ रा ओखाणां; पृष्ठ २५।

पकड़ना' को मुहावरे के अन्तर्गत ही रखा है।[1]

राजस्थानी के उक्त वाक्य को यदि एक सामान्य कथन के रूप में इस प्रकार रख दिया जाय तो सम्भवतः यह कहावत का-सा रूप धारण करले।

"अँगुलि पकडते-पकड़ते पहुँचा पकड लिया जाता है।"

किन्तु वस्तुस्थिति यह है कि 'अँगुलि पकड़ते पहुँचा पकड़ना' इसके वाक्यगत अनेक प्रयोग हो सकते है, कहावत की-सी अपरिवर्तनशीलता इसमें नही। इस मुहावरे का एक वाक्यगत प्रयोग लीजिये—

"मैने तुम्हें बरामदे मे जगह दी, अब तुम कोठरी में भी असबाब फैला रहे हो। भाई, उँगली पकडते पहुँचा पकड़ना ठीक नही।"

सस्कृत का 'अँगलिदाने भुज गिलसि'[2] भी आकार-प्रकार की दृष्टि से मुहावरे का ही रूप प्रस्तुत करता है किन्तु इसी आशय को व्यक्त करने वाली निम्नलिखित दो उक्तियाँ निश्चित रूप से लोकोक्तियो के ही अन्तर्गत आयेगी।

"Give a clown your finger and he will take your hand."[3]

"Give him an inch and he will take an ell."[4]

इससे जान पड़ता है कि लोकोक्ति मुहावरे की भाँति निरा कार्य-व्यापार नहीं है, उसका रूप कुछ ऐसा होना चाहिए जो नीतिपरक हो अथवा लोक-व्यवहार की कुछ मर्यादा बाँधता हो। लोकोक्ति साहित्य, यदि एक दृष्टि से देखा जाय तो, नीति-साहित्य ही है। मुहावरो में नीतिपरकता का प्रश्न उपस्थित नहीं होता, वहाँ प्रयोग की लाक्षणिकता अथवा ध्वन्यात्मकता अनिवार्यत. रहनी चाहिए।

इस दृष्टि से विचार किया जाय तो कहावतो का डील-डौल, रग-ढग और उनका उद्देश्य मुहावरो से भिन्न होता है।

(४) लोकोक्ति एक अप्रस्तुत प्रयोग है जब कि मुहावरा मुख्यतः लाक्षणिकता लिये रहता है यद्यपि यह सत्य है कि अनेक बार मुहावरा भी व्यजना द्वारा सिद्ध होता है। 'वाङ्ला प्रवाद' के लेखक ने लोकोक्ति अथवा प्रवाद के सम्बन्ध मे यथार्थ ही लिखा है—

"सस्कृत के कोष-काव्य मे जिसे अन्यापदेश (एक वस्तु के उपलक्ष मे दूसरी वस्तु की वर्णना) कहा गया है अथवा सस्कृत आलकारिको ने जिसे उपमा-ध्वनि, अप्रस्तुत प्रशसा अथवा व्याज-स्तुति के नाम से अभिहित किया है, प्रवाद या लोकोक्ति मे भी उसी प्रकार का संकेत सन्निहित रहता है।"[5]

अधिकाश कहावतों में दूसरे पर ढालकर कोई बात कही जाती है, इसलिए अप्रस्तुत कथन के रूप में ही कहावतो का प्रचलन हो पाता है। 'गरीब का कोई साथी नही, सभी समर्थ का साथ देते है' इस प्रस्तुत अर्थ को प्रकट करने के लिए 'उलल्ते

---

१. हिन्दी शब्द सागर, पहला भाग; पृष्ठ २९९।
२. आर्या सप्तशती।
3. Oxford Dictionary of Proverbs, p. 116.
४. वही; पृष्ठ ११७.
५. 'वाङ्ला प्रवाद'—श्री सुशीलकुमार दे; भूमिका, पृष्ठ ५।

पालड़ै को कोई भी सीरी कोनी, झुकतै पालड़ै का सै सीरी' जैसी अप्रस्तुत उक्तियों का प्रयोग कहावतों के रूप मे किया जाता है।

किन्तु स्वास्थ्य, वर्षा आदि से सम्बन्ध रखने वाली कुछ लोकोक्तियाँ ऐसी है जिन्हे हम अप्रस्तुत के रूप मे ग्रहण कही कर सकते। यथा,

(क) 'ठंडो न्हावै, ऊनो खावै, जिण घर वैद कदे नहिं जावै' अर्थात् जो शीतल जल से स्नान करता है और ताजा भोजन करता है, उसके घर पर वैद्य कभी नही जाता।

(ख) 'अम्बर राच्यो, मे माच्यो' अर्थात् लाल आसमान वर्षा का सूचक होता है। किन्तु ऊपर के विवेचन का यह अर्थ न समझा जाय कि कहावती वाक्य के अन्तर्गत लाक्षणिक पदो का प्रयोग नहीं होता। सम्पूर्ण कहावत अप्रस्तुत-कथन के रूप में प्रयुक्त होती है किन्तु लाक्षणिक पद-गर्भित लोकोक्ति अभिव्यक्ति के वैचित्र्य के कारण विच्छित्ति-विधायक होती है। उदाहरणार्थ 'नये नवाब, आसमान पर दिमाग' एक कहावत है। 'आसमान पर दिमाग' एक लाक्षणिक पद-विन्यास है जो उक्त कहावत के उत्तरार्द्ध में रखा गया है किन्तु समूची कहावत को लेकर यदि निर्णय करना हो तो हम इसे अप्रस्तुत-कथन ही कहेगे। इसका अर्थ यह भी नही है कि प्रत्येक कहावत मे लाक्षणिक पदो का समावेश अनिवार्यतः होना चाहिए। ऐसी भी अनेक कहावते है जिनमे कही कोई लाक्षणिक पद नही है, वे केवल अन्योपदेश के रूप मे ही प्रयुक्त हुई हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित कहावते लीजिये—

(क) 'तावलो सो बावलो' अर्थात् जो प्रत्येक काम मे उतावली करता है, वह पागल है।

(ख) 'आज ही मोडियो मूँड मुँडायो, आज ही ओला पड्या' अर्थात् बाबा जी ने आज ही मूँड मुँडाया, आज ही ओले पड़े।

(५) अधिकांश मुहावरे नान्त रूप वाले होते है जैसे 'आग से खेलना, मिट्टी खराब करना, सबक पढाना, सबको एक लाठी हाँकना' आदि। इस कारण व्याकरण के नियमानुसार उनके नाना रूप होते रहते हैं। किन्तु कुछ कहावतें भी ऐसी हैं जो नान्त रूप वाली है। उदाहरणार्थ—

'कम खा लेणा, पण कम कायदे नही रहणा' अर्थात् कम खा लेना अच्छा है किन्तु आत्मसम्मान गँवाकर रहना अच्छा नही।

किन्तु नान्त रूप के कारण ही किसी लोकोक्ति को मुहावरे की संज्ञा नही दी जा सकती। मुहावरे और लोकोक्ति में वस्तुतः मौलिक अन्तर है।

(६) लोकोक्ति में कम से कम दो शब्दों का होना आवश्यक है जब कि मुहावरे में कभी-कभी एक ही क्रिया से काम चल जाता है। वह उस पर 'मरता है', इस वाक्य मे 'मरना' एक मुहावरा है जो आसक्त होने के अर्थ में प्रयुक्त है।

(७) सम्पूर्ण कहावतों का अन्तर्भाव लोकोक्ति-अलंकार में हो जाता है। कहावतों का प्रयोग मिलते ही, कोई पद्य लोकोक्ति-अलकार का उदाहरण मान लिया जाता है। किन्तु मुहावरों के पक्ष में यह नियम लागू नही होता। मुहावरे लक्षणा और

व्यंजना पर आश्रित हैं, अतएव लगभग कुल अलंकार मुहावरो मे आ जाते है। शब्दालंकार भी मुहावरों में मिलते है किन्तु कहावतों में उनका आधिक्य पाया जाता है। स्वभावोक्ति, ललित तथा गूढोक्ति अलकारो के अतिरिक्त मुहावरो में उपमा, उत्प्रेक्षा, आक्षेप, अतिशयोक्ति आदि अलकारों का प्राचुर्य देखने को मिलता है।[1]

(८) कहावत और मुहावरे में एक अन्य प्रमुख अन्तर है। कहावतों को 'अनुभव की दुहिता' कहा गया है, और अनुभव की समानता दुनिया के प्रत्येक देश में देखने को मिलती है। यही कारण है कि एक देश की अनेक कहावते दूसरे देश की कहावतों से बहुत-कुछ मिल जाती हैं। कभी-कभी तो बहुत सी कहावते परस्पर अनूदित-सी जान पडती हैं किन्तु मुहावरो के सम्बन्ध में यह नही कहा जा सकता। इस सम्बन्ध में कुछ उदाहरण लीजिए—

पीछु ग्रेटलुं सोनुं नही (गुजराती)
All is not gold that glitters. (English.)
रूप की रोवै, करम की खाय (राजस्थानी)
Beauty weeps while fortune enjoys. (English.)
रीतो घड़ो, छलकै घणो (राजस्थानी)
Empty vessel makes much noise. (English.)

अनुभव की समानता के कारण एक भाषा की कहावतों का दूसरी भाषा में अपेक्षया सरलता से अनुवाद हो सकता है किन्तु एक भाषा के मुहावरो का दूसरी भाषा में अनुवाद करना टेढ़ी खीर है।

फ्रेंच भाषा का एक मुहावरा है "A bon chat, bon rat" इसका अग्रेजी अनुवाद "for good cat, good rat" अग्रेजी भाषा मे प्रयुक्त नही होता। अग्रेजी भाषा में इसी आशय का द्योतक 'Tit for tat' एक दूसरा मुहावरा है। 'It rained cats and dogs' का अक्षरश: हिन्दी मे अनुवाद करना हास्यास्पद होगा। हिन्दी का अपना ही मुहावरा प्रचलित है 'मूसलाधार वर्षा हुई'।

सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि "कहावत तो मानव-जाति के सामान्य अनुभवो का अक्षरदेह है जबकि मुहावरा भिन्न-भिन्न देश, जाति अथवा समाज के भिन्न-भिन्न वर्गों की सूचक संज्ञा है।"[2] एक अन्य विद्वान् ने मुहावरो और कहावतों के अन्तर को निम्नलिखित शब्दों मे प्रकट किया है—

"मुहावरे किसी वाक्य के वे सूक्ष्म-शरीर हैं, स्थूल-शरीर के बिना जिनकी अभिव्यक्ति नही हो सकती, लोकोक्ति-वाक्य भाषा रूपी समाज के वे प्रामाणिक व्यक्ति हैं जिनका व्यक्तित्व ही उनकी प्रामाणिकता का प्रमाण हो जाता है, जहाँ कही और जिस किसी के पास वे जा बैठें, उनकी तूती बोलने लगे।[3]

मुहावरे वस्तुत: किसी भाषा की वैयक्तिक चाल-ढाल है। जैसे मनुष्यों की

---

१. बोलचाल—श्री अयोध्यासिह उपाध्याय; भूमिका, पृष्ठ १७४।
२. चबराकियांनुं तत्वदर्शन—फिरोजशाह रुस्तमजी मेहता; पृष्ठ १३५-१३६।
३. हिन्दी मुहावरे—डा० ओमप्रकाश।

आकृतियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं वैसे ही भाषा-विशेष के मुहावरे भी भिन्न-भिन्न होते हैं, उनके अपने-अपने चित्र-विचित्र प्रयोग होते है। किन्तु देश-विदेश की लोकोक्तियों में मुहावरो की-सी भिन्नता नही मिलती। एक ही माता-पिता की जैसे अनेक पुत्रियाँ होती है, प्रायः वैसे ही अनुभव रूपी माता-पिता की दुहिताएँ हैं ये लोकोक्तियाँ, और इसीलिए विभिन्न देशो की लोकोक्तियो मे मानव-जाति की सामान्य सम्पत्ति बनने की क्षमता पाई जाती है।

६. कहावत और लौकिक न्याय

१. **'लौकिक न्याय' और अंग्रेजी पर्याय**—सन् १८७७ की डा० Bühler की काश्मीर-रिपोर्ट में न्याय शब्द का प्रयोग 'परिचित उदाहरणों से निकाले हुए अनुमान' के अर्थ मे किया गया था। कर्नल जैकब ने लौकिक न्याय के पर्याय रूप मे Maxim शब्द को ग्रहण किया था, किन्तु इस पर्याय से वे स्वयं सन्तुष्ट नही थे। उन्होने तो केवल बडे-बडे विद्वानो द्वारा न्याय के अर्थ मे गृहीत Maxim शब्द को देखकर ही इसे अपनाया था, अन्यथा उनकी मान्यता थी कि अंग्रेजी भाषा में न्याय के अर्थ को पूर्णत. व्यक्त करने वाला कोई उपयुक्त शब्द है ही नही। उन्होने न्याय के अन्तर्गत दृष्टान्त, नियम और अधिकरण तीनो का सन्निवेश किया था। अंग्रेजी का Maxim शब्द इतना व्यापक नही कि वह उक्त तीनो प्रकार के अर्थों का वाचक बन सके। इसलिए जैकब के मतानुसार तो न्याय शब्द का अंग्रेजी अनुवाद न करके अंग्रेजी भाषा में भी इसे ज्यो-का-त्यो ग्रहण कर लेना चाहिए।[1]

२. **लौकिक न्याय का लक्षण**—हिन्दी शब्दसागर के सम्पादको की दृष्टि में 'न्याय वह दृष्टान्त-वाक्य है जिसका व्यवहार लोक मे कोई प्रसग आ पडने पर होता है। यह कोई विलक्षण घटना सूचित करने वाली उक्ति है जो उपस्थित बात पर घटती हो। न्याय के पर्याय-रूप मे सम्पादको ने कहावत शब्द का भी प्रयोग किया है। ऐसे न्याय या दृष्टान्त-वाक्य बहुत से प्रचलित चले आते हैं और उनका व्यवहार प्रायः होता है।'

'संस्कृत में लौकिक न्याय के अन्तर्गत बहुसख्यक सूत्र उस समय की या उससे पहले की लोक-विश्रुत कहावते ही है। उसमे जो युक्ति-मूलक दृष्टान्त है, वे किसी एक समय के नही, भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में पडकर बुद्धिमानो को जो सच्चे अनुभव हुए, उन्ही को उन्होने सूत्रबद्ध करके जनता को सौप दिया। जनता ने उनको उपयोगी समझकर अपना लिया। इस प्रकार भुक्तभोगियों के कितने ही सच्चे हृदयोद्गार लोकोक्तियो के रूप मे प्रचलित हो गये।[2]

'सस्कृत साहित्य में सहस्रो स्थलो पर न्याय का प्रयोग हुआ है। इसका व्यवहार

---

१. लौकिक न्यायाञ्जलिः तृतीयो भागः, पृष्ठ २ (Preface)।

२. मालवी कहावतें, भाग १ का प्राक्कथन (प० रामनरेश त्रिपाठी) पृष्ठ २।
मिलाइये : जिम श्वान अजाएयो धाइने रोटी ले गयो।
वली काकताली नो न्याय उखाणो तिम थयो।
—स्व० मोहनलाल दलीचन्द देसाई द्वारा संगृहीत एक पांडुलिपि से

अधिकतर टीका-टिप्पणी, समालोचना, व्याख्या, शंका-समाधान आदि में देखा जाता है। ध्यानपूर्वक मनन करने से यह सर्वथा स्पष्ट हो जायगा कि न्याय मे किसी घटना, किसी कहानी अथवा किसी विशेष अर्थ के बृहत् भाव सूत्र रूप में गुम्फित रहते हैं। 'देखन में छोटे लगैं, घाव करैं गम्भीर' वाली उक्ति यहाँ अक्षरशः चरितार्थ होती है। न्याय आकार-प्रकार में तो बहुत छोटा होता है पर भाव इसका बहुत गम्भीर रहता है। पूर्व समय मे मुद्रण-यन्त्र के अभाव के कारण सूत्र-पद्धति प्रचलित थी और इसी से लोकोक्तियाँ भी न्याय शब्द के नाम पर सूत्र रूप मे ग्रथित कर दी गयी थी। प्रयोग मे न्याय शब्द भी जुटा रहता है। यथा, घुणाक्षरन्याय., काकतालीयन्यायः, पंकप्रक्षालनन्याय., स्थालीपुलाकन्याय.। न्याय शब्द का व्यवहार कभी उपमा, कभी नियम, कभी सिद्धान्त, कभी उक्ति, कभी कहानी तथा कभी विशेष कार्य के अर्थ में होते पाया गया है। प्रसगानुसार अर्थव्यजना होती है। प्रत्येक न्याय में विशेष भाव की व्यजना रहती है और ध्वन्यात्मक रूप से इसका प्रयोग होता है।[1]

सस्कृत के बहुत से निबन्धो मे लोक-प्रसिद्ध युक्ति को न्याय की संज्ञा दी गई है।[2]

लोकोक्ति और न्याय दोनो एक ही हैं अथवा इन दोनों में अन्तर है, इस पर विचार करना आवश्यक है। न्याय के स्वरूप का विवेचन करने से निम्नलिखित तथ्यों पर प्रकाश पडता है—

३. **लौकिक न्याय और कहावत का तारतम्य**—(१) अनेक न्याय ऐसे है जो केवल एक पदात्मक है। मात्स्य न्याय, टिट्टिभ न्याय आदि उदाहरणस्वरूप रखे जा सकते है। विश्व में शायद ही कोई ऐसी लोकोक्ति हो जो केवल एक पद मे समाप्त हो जाती है। छोटी-से-छोटी लोकोक्ति के लिए भी कम-से-कम दो पद आवश्यक है। ट्रेंच के मतानुसार Voll, toll जर्मन-लोकोक्ति दुनिया की सबसे छोटी कहावत है।[3]

(२) बहुत से न्याय अथवा अधिकाश न्याय ऐसे हैं जो द्विशब्दात्मक है और जिनका सम्पूर्ण-वाक्य की भाँति प्रयोग नही होना। उदाहरणार्थ कुछ न्याय लीजिये—अजाकृपाणी न्याय, अन्धगज न्याय, काकतालीय न्याय, कूपमण्डूक न्याय, जामातृशुद्धि न्याय आदि। उक्त सभी न्यायो के मूल में कोई-न-कोई कथा मिलती है, जिसको जाने बिना इन न्यायो का स्पष्टीकरण नही हो सकता। बहुत सी कहावते भी ऐसी होती है जिनके पीछे कोई-न-कोई कथा पायी जाती है, किन्तु कहावत सामान्यतः सम्पूर्ण वाक्य की भाँति प्रयुक्त होती है, दो-दो शब्दो मे पदाश की तरह नही। कहावती रूप में क्रिया का कभी-कभी अभाव होने पर भी क्रिया सदा गम्य रहती है।

(३) कुछ न्याय ऐसे है जिन्हे लोक-प्रसिद्ध उपमाओ का नाम दिया जा सकता है। ऊषरवृष्टिन्याय, करस्थामलकन्याय, चक्रभ्रमणन्याय, अरण्यरोदन न्याय, अजागल-स्तन न्याय आदि उदाहरणस्वरूप रखे जा सकते है। कहावती उपमाओं के भी उदा-

---

१. संस्कृत लोकोक्ति सुधा—श्री जगदम्बाशरण पुस्तक; परिचय ख और ग पृष्ठ।

२. लोकप्रसिद्धयुक्तिर्न्यायः भूमिका भुवनेश लौकिक न्याय लाइब्रेरी।

3. Lessons in Proverbs by R. C. Trench; p. 8.

हरण मिलते हैं किन्तु लौकिक न्यायों में इस प्रकार की उपमाओं का प्राचुर्य दृष्टिगत होता है।

(४) अनेक न्याय ऐसे भी उपलब्ध हैं जिन्हे यदि लोकोक्ति अथवा कहावत का नाम दिया जाय तो किसी प्रकार का अनौचित्य नही दिखलाई पडता। नीचे जो उदाहरण दिये जा रहे है, उनमें लोकोक्ति के सभी लक्षण मिलते हैं।

(क) अर्के चेन्मधु विन्देत किमर्थं पर्वतं व्रजेत्। —यदि समीप ही मधु मिलता हो तो पर्वत पर जाने से क्या प्रयोजन ?

(ख) भक्षितेऽपि लशुने न शान्तो व्याधिः।—लहसन खाने पर भी रोग शान्त न हुआ। जैकब ने इस न्याय के लिए Maxim शब्द का प्रयोग न कर proverb शब्द का प्रयोग किया है।

(ग) वर सांशयिकान्निष्कादसाशयिकः कार्षापणः।—अनिश्चित निष्क की अपेक्षा निश्चित कार्षापण श्रेष्ठ है।

(घ) वरमद्य कपोत. श्वो मयूरात्।—कल के मयूर से आज का कपोत अच्छा। वात्स्यायन कामसूत्र के द्वितीय अध्याय में ग और घ सम्बन्धी उक्तियो का प्रयोग हुआ है जिन्हे जैकब भी proverbs कहना ही उपयुक्त समझते है।[1]

(ङ) अन्धस्येवान्धलग्नस्य विनिपातः पदे पदे। —जो अन्धे के सहारे लगा है, उसे पद-पद पर गिरना पड़ता है। इस न्याय का प्रयोग भामती मे हुआ है जहाँ इसका आभाणक शब्द द्वारा उल्लेख किया गया है।[2]

(च) सर्वं पदं हस्तिपदे निमग्नम्।—हाथी के पैर मे सब पैर समा जाते हैं।[3]

(छ) शीर्षे सर्पो देशान्तरे वैद्यः। सर्प सिर पर और वैद्य देशान्तर मे।[4]

(ज) विक्रीते करिणि किमकुशे विवाद.। हाथी बिक जाने पर अकुश पर विवाद कैसा ?

(झ) पुत्रलिप्सया देव भजन्त्या भर्ताऽपि नष्टः।—पुत्र-प्राप्ति की इच्छा से देवता की उपासना करती हुई का पति भी नष्ट हो गया।

(ञ) वराटकान्वेषणे प्रवृत्तश्चिन्तामणिं लब्धवान्।—कौड़ी को तलाश करते हुए चिंतामणि हाथ लग गई। कबीर की साखियों में इसका निम्नलिखित रूप उपलब्ध होता है :

चौहटे चिन्तामणि चढ़ी, हाडी मारत हाथि।

(५) कुछ न्याय ऐसे भी हैं जिनके कहावती रूप आज भी उपलब्ध होते है। उदाहरणार्थ :

(क) गोमहिषीन्यायः।

एक राजस्थानी लोकोक्ति में कहा गया है कि 'गाय की भैंस के लागै और भैंस की गाय के लागै ?' अर्थात् गाय का भैंस से क्या सम्बन्ध और भैंस का गाय से

---

१. लौकिकन्यायांजलिः प्रथमो भागः ; पृ० ३६।
२. तथा चाभाणकः अन्धस्येवान्धलग्नस्य विनिपातः पदे पदे (भामती)।
३. भुवनेश लौकिकन्यायसाहस्री; पृष्ठ १८५।
४. वही; पृष्ठ २३५।

क्या सम्बन्ध ?

(ख) तरक्षडाकिनीन्यायः । इसी न्याय का प्रतिरूप 'डाकण और जरख चढी' राजस्थानी भाषा में उपलब्ध है।

(६) जैकब द्वारा संगृहीत और सम्पादित लौकिक न्यायाजलि में कही-कहीं न्याय के स्थान में निदर्शन और नियम शब्द का प्रयोग हुआ है। यथा,

(क) तमः प्रकाशनिदर्शनम्। अर्थात् अधकार और प्रकाश की युगपत् स्थिति का दृष्टान्त ।

(ख) तैलकलुषितशालिबीजादंकुरानुदयनियमः। अर्थात् तैल से कलुषित शालि बीज के अंकुरित न होने का नियम ।

(७) कही-कही प्रश्नोत्तर के रूप मे भी न्यायों के उदाहरण मिलते है। जैसे,

प्रश्न

जागर्ति लोको ज्वलति प्रदीपः सखीजनः पश्यति कौतुक मे।
क्षणैकमात्र कुरु कान्त धैर्यं बुभुक्षितः किं द्विकरेण भुंक्ते ॥

उत्तर

जागर्तु लोको ज्वलतु प्रदीपः, सखीजन पश्यतु कौतुकन्ते।
क्षणैकमात्रं न करोमि धैर्यं बुभुक्षितं न प्रतिभाति किंचित् ॥

भुवनेश लौकिकन्यायसाहस्री के सम्पादक ने "बुभुक्षितः किं द्विकरेण भुंक्ते" और "बुभुक्षितं न प्रतिभाति किंचित्" की न्यायो मे गणना की है।

(८) न्यायों में एक आभाणक न्याय की भी गणना की गई है। 'वराटकान्वेषणे प्रवृत्तश्चिंतामणिं लब्धवान्' इसे आभाणक न्याय के अन्तर्गत रखा गया है। आनन्दघनकृत कुंथुनाथ स्तवन भी इस सम्बन्ध में द्रष्टव्य है जहाँ कहा गया है :

रजनी वासर बसती ऊजड़, गयण पयालो जाय।
सांप खाय नें मुखड़ूं थोथो, ए ऊखाणो न्याय ॥

साँप दूसरे को काटता है किन्तु इससे साँप का पेट नही भरता। इसे 'ऊखाणो-न्याय या आभाणक-न्याय' कहा गया है।

(९) कुछ कवियों की उक्तियाँ भी ऐसी है जिन्हें न्याय के अन्तर्गत कर लिया गया है। उदाहरणार्थ :

(क) छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति (विष्णु शर्मा) अर्थात् विघ्न पर विघ्न आया करते हैं।

(ख) सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृता (श्री मद्भगवद्गीता) अर्थात् जैसे अग्नि धुएँ से आवृत्त रहती है, उसी प्रकार सब समारम्भ दोष से युक्त रहते है।

न्याय के उक्त स्वरूपों को देखने से स्पष्ट है कि संस्कृत-साहित्य मे न्याय शब्द अत्यन्त व्यापक है। इसके अन्तर्गत लोक-प्रचलित पदांशो, प्रसिद्ध उपमाओं, विश्रुत दृष्टान्तों, सूक्तियों तथा आभाणको अथवा लोकोक्तियो, सभी को स्थान मिल गया है। बहुत से न्याय ऐसे है जिन्हें कहावत की संज्ञा दी जा सकती है, अनेक न्याय ऐसे हैं जिन्हें पारिभाषिक दृष्टि से लोकोक्ति तो नही कहा जा सकता किन्तु जो सूत्र-शैली में ग्रथित ऐसे पद-समुच्चय हैं जो अपने में गम्भीर अर्थ छिपाये हुए हैं। दार्शनिक ग्रन्थो

के भाष्यों में इस प्रकार के न्यायों का प्रचुर प्रयोग हुआ है। 'योगाद्रूढिर्बलीयसी' जैसे अनेक शास्त्रीय न्याय भी है जो कहावतो की अपेक्षा सिद्धान्त, नियम आदि के अधिक सन्निकट हैं।

यही कारण है कि कहावत और लौकिक न्याय के आपेक्षिक विवेचन में शास्त्रीय न्यायों को जान-बूझकर छोड दिया गया है।

प्राज्ञोक्ति और लोकोक्ति—प्रज्ञा सूत्र (Aphorism), व्यवहार-सूत्र (Maxim), मर्मोक्ति (Epigram) आदि प्राज्ञोक्ति के अन्तर्गत है। प्राज्ञोक्ति तथा लोकोक्ति के स्वरूप-निर्धारण में अनेक बार कठिनाइयों का सामना करना पडता है क्योंकि सक्षिप्तता और सारगर्भितता आदि की दृष्टि से प्राज्ञोक्ति और लोकोक्ति में भी परस्पर समानता देखी जाती है किन्तु फिर भी प्राज्ञोक्ति और लोकोक्ति मूलतः एक दूसरे से भिन्न है जैसा कि नीचे के विवेचन से स्पष्ट होगा।

(१) प्रज्ञासूत्र और कहावत—अग्रेजी का Aphorism शब्द ग्रीक Aphorismos से निकला है जिसका अर्थ है 'परिभाषा देना'। Apo का अर्थ है 'से' और Horos का अर्थ है 'सीमा'। इस प्रकार 'Aphorism' का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ हुआ 'किसी विचार-बिन्दु को सीमाबद्ध करके उसका लक्षण निर्धारित करना अर्थात् उसे निश्चयात्मक रूप देना।' प्रज्ञासूत्र एक प्रकार की ऐसी सक्षिप्त और सारगर्भित उक्ति है जिसमे किसी सामान्य सत्य की अभिव्यक्ति हुई हो।[1] कहावत और प्रज्ञा-सूत्र में मुख्य अन्तर यह है कि कहावत का सम्बन्ध सामान्य जनता से है, वह लोक की उक्ति अर्थात् लोकोक्ति है जब कि प्रज्ञासूत्र का सम्बन्ध विद्वानो अथवा प्राज्ञों से है, वह प्राज्ञो की उक्ति अथवा प्राज्ञोक्ति है।

पाश्चात्य देशों में प्रज्ञासूत्रों का जन्मदाता विश्वविख्यात ग्रीक वैद्य हीपोक्रैटस था जो ईसा से ४६० वर्ष पहले हुआ था किन्तु भारतवर्ष में सूत्रों की परम्परा बहुत प्राचीन है। हीपोक्रैटस से भी हजारों वर्ष पहले इस देश मे सूत्रो की रचना होती आई है। ब्रह्मज्ञान तथा उस समय की अन्यान्य विद्याओं की रचना सूत्रो के रूप मे हुई थी। अपने यहाँ 'सूत्र' शब्द की व्याख्या निम्नलिखित रूप में की गई है :

'अल्पाक्षरमसंदिग्धं सारवत् विश्वतोमुखम्।
अस्तोभं अनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः॥

अर्थात् सूत्र उसे कहते है जिसमें थोडे अक्षर हों, अस्पष्टता न हो, अर्थ-गौरव से युक्त हो, विश्वतोमुखी हो, जिसमें पुनरावर्तन न हो और जो निर्दोष हो।

भारतीय ग्रन्थो को देखते हुए सूत्रो के दो वर्ग निर्धारित किये जा सकते है—(१) प्रज्ञा-सूत्र और (२) विद्या-सूत्र।

प्रज्ञा-सूत्रों का सम्बन्ध है आध्यात्मिक ज्ञान, धार्मिक तथा नैतिक उपदेश आदि से, जबकि विद्या-सूत्रो का सम्बन्ध ज्योतिष, व्याकरण, छन्द, नाट्य आदि विद्याओं से है। यहाँ प्रज्ञा-सूत्र तथा विद्या-सूत्रों के कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं।

---

1. Aphorism is a short pithy statement containing truth of general import.
—*A Treasury of English Aphorisms by Logan Pearsall Smith. p. 44.*

प्रज्ञा-सूत्र

(१) एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति । (२) विद्ययाऽमृतमश्नुते । (३) अध्यात्मविद्या विद्यानाम् । (४) आचारः प्रथमो धर्मः । (५) यो वै भूमा तत्सुखं, नाल्पे सुखमस्ति ।

विद्या-सूत्र

नाट्य-शास्त्रकार भरत मुनि का प्रसिद्ध रस सूत्र "विभावानुभावव्यभिचारि-संयोगात् रसनिष्पत्तिः" विद्या-सूत्र के उदाहरणस्वरूप रखा जा सकता है । इसी प्रकार 'योगाद्वूढिर्बलीयसी' जैसे शास्त्रीय न्याय भी, जिनका व्याकरण से सम्बन्ध है, विद्या सूत्र के अन्तर्गत हैं ।

२. **प्रज्ञा-सूत्र और व्यवहार-सूत्र**—बहुत से लोग ऐसे है जो प्रज्ञा-सूत्रों और व्यवहार-सूत्रो को एक ही समझते है किन्तु वास्तव में इन दोनो शब्दों में बडा अन्तर है । Maxim (व्यवहार-सूत्र) लेटिन शब्द Maxima से निकला है जिसका अर्थ है सबसे बडा । अंग्रेजी शब्द-कोष में 'सर्वाधिक गुरुतापूर्ण उक्ति को'[1] Maxim की संज्ञा दी गई है । प्रज्ञा-सूत्र और व्यवहार-सूत्र दोनों ही जीवन की किसी सचाई को प्रकट करते हैं किन्तु दोनो की पद्धति भिन्न-भिन्न है । प्रज्ञा-सूत्र विचार को लेकर प्रवृत्त होता है तथा व्यवहार-सूत्र का सम्बन्ध आचार-व्यवहार से है ।[2] प्रज्ञा-सूत्र तथा व्यवहार-सूत्र दोनो का एक-एक उदाहरण लीजिये—

"Eminent posts make great men greater and little men less" एक प्रज्ञा-सूत्र है, जबकि "When in doubt, keep silent." यह व्यावहारिक दृष्टि से शिक्षाप्रद होने के कारण एक व्यवहार-सूत्र है। किन्तु मॉर्ले ने प्रज्ञा-सूत्र और व्यवहार-सूत्र के अन्तर को कोई विशेष महत्त्व नही दिया है ।

३. **मर्मोक्ति और प्रज्ञा-सूत्र**—पाश्चात्य देशो मे प्रथम श्रेणी के मर्मोक्तिकार के रूप मे ला रॉशफोको (La Rochefoucauld) का नाम अत्यन्त विख्यात है । अपनी मर्मोक्तियों द्वारा इन्होने फ्रासीसी साहित्य को बहुत समृद्ध बनाया है । मर्मोक्तियो के अतिरिक्त इन्होने करीब सात सौ व्यवहार-सूत्रो की भी सृष्टि की है जिनका विश्व की अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है । ये मर्मोक्तियाँ तथा व्यवहार-सूत्र जितने संक्षिप्त हैं, उतनी ही विशुद्ध और ललित है उनकी अभिव्यक्ति । मानव-स्वभाव की गूढ़ता को प्रदर्शित करने में ये बेजोड़ सिद्ध हुए हैं ।[3]

किसी ऐसी निशानदार उक्ति को जो अपने पीछे एक प्रकार की चटक छोड जाय, 'मर्मोक्ति' कहते हैं ।[4] निशान (Point) और चटक (Sting) मर्मोक्ति के ये दो प्राण-बिन्दु हैं । संक्षिप्तता और ललित भाषा यदि मर्मोक्ति का शरीर है तो निशान

---

1. Maxim is a statement of the greatest weight.

2. "Aphorism only states some broad truth of general bearing, a maxim besides stating the truth, enjoins a rule of conduct as its consequence."

—*Studies in Literature by J. V. Morley; p. 62.*

३. चबराकियानुं तत्त्वदर्शन फिरोजशाह रुस्तमजी मेहता; पृष्ठ ८३ ।

4. Any saying of a pointed character and a sting in its tail is an epigram.

और चटक, इसका अर्थचातुर्य रूप आत्मा है। किसी ने कहा है कि मधुमक्खी में जो गुण होते हैं, वे ही गुण मर्मोक्ति के लिए अनिवार्य हैं। छोटी-सी मधुर देह और पूँछ मे डंक, ये ही मधुमक्खी की विशेषताएँ हैं जो मर्मोक्ति मे भी मिलती हैं।[1] मर्मोक्ति में डक से तात्पर्य उसकी चटक से है।

अंग्रेजी मे जिसे Epigram (मर्मोक्ति) कहते है, उसका सम्बन्ध विद्या सूत्रो से न होकर प्रज्ञा-सूत्रों से है किन्तु प्रज्ञा-सूत्र और मर्मोक्ति मे भी अन्तर है। प्रज्ञा-सूत्र के लिए यह आवश्यक नही कि वह निशानदार अथवा धारदार हो किन्तु मर्मोक्ति के लिए ऐसा होना अनिवार्य है।

विषय के स्पष्टीकरण के हेतु कुछ मर्मोक्तियो के उदाहरण यहाँ दिये जा रहे है।

(क) कविता जिसके वश में है, वह कवि नही है, जो कविता के वश में है, वही कवि है। (कवि नर्मद)

(ख) जहाँ आशा निराशा बन जाती है, वहाँ निराशा ही आशा का रूप धारण कर लेती है। (श्री गोवर्धनराम त्रिपाठी)

(ग) सयम बिना तलवार राक्षस को और तलवार बिना संयम साधु को शोभा देता है। (धूमकेतु)

(घ) यह स्पष्ट है कि कोई उपन्यास इतना बुरा नही हो सकता कि वह प्रकाशित करने योग्य न हो। हाँ, यह अवश्य सम्भव है कि कोई उपन्यास इतना अच्छा हो कि वह प्रकाशित करने योग्य न हो। (जार्ज बर्नर्ड शॉ)

(ङ) जो मनुष्य कहता है कि उसने जीवन को समाप्त कर दिया है, उसका तात्पर्य सामान्यतः यह होता है कि जीवन ने ही उसे समाप्त कर दिया है।

(आस्कर वाइल्ड)

संस्कृत-साहित्य मे सूत्र, सूक्ति, व्याजोक्ति, वक्रोक्ति, नर्मोक्ति, मर्मोक्ति, छेकोक्ति, मुक्तक तथा सुभाषित आदि अनेक शब्दों का प्रयोग हुआ है। किन्तु सुभाषित एक अत्यन्त व्यापक शब्द है जिसमे प्रज्ञा-सूत्र, व्यवहार-सूत्र तथा मर्मोक्ति आदि सभी का समावेश किया जा सकता है। सस्कृत के सुभाषितो मे से इन तीनो का एक-एक उदाहरण यहाँ दिया जा रहा है।

प्रज्ञा-सूत्र

धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम् अर्थात् धर्म का तत्त्व गुफा में छिपा हुआ है।

व्यवहार-सूत्र

"सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्" (भारवि) अर्थात् सहसा

---

1. The qualities rare in a bee that we meet
In an epigram never should fail;
The body should always be little and sweet,
And sting should be left in its tail.
What is an epigram ? A dwarfish whole,
Its body brevity, and wit its soul.

—*quoted in Stevenson's Book of Proverbs, Maxims and Familiar; Phrases p. 704.*

कोई काम नही करना चाहिए क्योकि अविवेक आपत्तियों का परम पद है।

मर्मोक्ति

'भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता।
स्तपो न तप्त वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेय याता.।
तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा।'[1]

अर्थात् हमने भोग नही भोगे, हम ही भोग लिये गये, हमने तप नही तपे, हम ही तप्त हो गये, काल नही व्यतीत हुआ, हम ही व्यतीत हो गये, तृष्णा जीर्ण नही हुई, हम ही जीर्ण हो गये। उक्त श्लोक की प्रत्येक पक्ति एक-एक मर्मोक्ति है।

(४) **लोकोक्ति और प्राज्ञोक्ति में भेद**—ऊपर की पंक्तियों में प्रज्ञा-सूत्र व्यवहार-सूत्र और मर्मोक्ति, इन तीनो के पारस्परिक अन्तर को सोदाहरण दिखाने का प्रयास किया गया है किन्तु 'वाङ्ला प्रवाद' के विद्वान् सम्पादक श्री सुशीलकुमार दे ने सभी प्रकार की उक्तियों को लोकोक्ति और प्राज्ञोक्ति, इन दो वर्गों मे विभक्त कर दोनो के सम्बन्ध मे जो अपने विचार प्रकट किये है, वे अत्यन्त मननीय है। उन्ही के शब्दो मे 'प्राज्ञोक्ति' जिसे लेटिन में (Sententia) कहते हैं, हमेशा लोकोक्ति का रूप धारण नही कर लेती। प्राज्ञोक्ति में ज्ञानी के ज्ञान का जो निष्कर्ष हमे मिलता है, वह सुचिंतित होता है और प्रायः उपदेशमूलक नीति-वाक्य के रूप मे देखा जाता है किन्तु प्रवाद या लोकोक्ति पाण्डित्य, चिन्तन तथा उपदेशात्मकता को लेकर अग्रसर नही होती। लोकोक्ति तो स्वतः प्रसूत होती है और सरस तथा सक्षिप्त रूप में अभिव्यक्त होती है किन्तु प्राज्ञोक्ति ज्ञान और चिन्तन के परिपक्व फल के रूप मे देखी जाती है। नीति-शिक्षा, तत्त्व ज्ञान और उच्च आदर्श लोकोक्तियो के प्रेरक हेतु नही है।[2]

लोकोक्ति और नीति-वाक्य (प्राज्ञोक्ति) मे अनेक बार एक बडा अन्तर यह देखा जाता है कि प्राज्ञोक्ति 'नैतिक जगत् का सत्य होते हुए भी व्यावहारिक जगत् का तथ्य नही होती[3] और लोकोक्ति 'व्यावहारिक जगत् का तथ्य होते हुए भी नैतिक जगत् का सत्य नही होती।'[4] विषय के स्पष्टीकरण के लिए निम्नलिखित साखी पर विचार कीजिये—

जो तोको काँटा बुवै, ताहि बोहि तू फूल।
तोको फूल के फूल है, बाको हैं तिरशूल ॥'

यह कबीर की एक सूक्ति है जो नैतिक जगत् का सत्य होते हुए भी व्यावहारिक जगत् का तथ्य नही है अर्थात् यथार्थ जगत् में इस सूक्ति के अनुसार आचरण बहुत कम देखने में आता है। इसी प्रकार कुछ राजस्थानी कहावते लीजिये—

---

१. वैराग्यशतक भर्तृहरि।
२. 'वाङ्ला प्रवाद'—(श्री सुशीलकुमार दे) द्वितीय संस्करण; पृष्ठ ४.
३. 'नैतिक जगतेर सत्य हइले ओ व्यावहारिक जगतेर तथ्य नय'—वही; पृष्ठ ४।
४. वही; पृष्ठ ४।

(१) 'पराई पीर परदेस बराबर' अर्थात् परदेश के आदमी की यदि कोई चिन्ता करे तो पराये दुःख की करे, दूसरे के कष्टों की सभी उपेक्षा करते हैं।

(२) 'दूसरै की थाली मे घी घणो दीखै' अर्थात् दूसरे की थाली में घी अधिक दिखाई पड़ता है।

(३) 'सै आप-आप की रोटियाँ कै नीचै आँच लगावै' अर्थात् सब अपनी-अपनी रोटियो के नीचे आँच लगाते है।[1]

उक्त लोकोक्तियो मे व्यावहारिक जगत् का तथ्य होते हुए भी नैतिक जगत् का सत्य नही मिलता।

ऊपर के तुलनात्मक उदाहरणों से स्पष्ट है कि लोकोक्ति नैतिक ज्ञान नही है, वह है सांसारिक ज्ञान, लोकोक्ति परोक्ष-चिन्तन नही है, वह है प्रत्यक्ष अनुभूति। लोकोक्ति न तो काव्य है, न तत्त्व-चिन्तन है, न नीति-प्रचार है, यह तो सासारिक ज्ञान की प्रत्यक्ष अनुभूति की अभिव्यक्ति है।

लोकोक्तियाँ ग्राम्य होती है, यह कहना भी ठीक नही। शहरों की अपेक्षा ग्रामों में ही लोकोक्तियों का विशेष निर्माण तथा प्रचार देखा जाता है किन्तु इसी कारण लोकोक्तियों को ग्राम्य करार देना उचित नही। अवश्य ही लोकोक्तियों की भाषा जोरदार होती है क्योकि जीवन की घनिष्ठता से उनका सम्बन्ध रहता है, अनेक कहावतो में सत्य को खुल्लमखुल्ला प्रकट कर दिया जाता है। यहाँ इस बात को ध्यान मे रखना चाहिए कि लोकोक्तियो की सफलता उनके वर्ण्य-विषय पर उतनी निर्भर नहीं करती, उनकी सफलता निर्भर करती है उनकी अभिव्यक्ति की भगिमा पर, सहज-बुद्धि के चमत्कार पर तथा सक्षिप्त एव साभिप्राय प्रयोगों की सार्थकता पर।

किन्तु कभी-कभी प्राज्ञोक्ति और लोकोक्ति मे अन्तर मालूम करना बड़ा मुश्किल हो जाता है। सस्कृत महाकाव्यो मे अर्थान्तरन्यास के रूप में प्रयुक्त अनेक प्राज्ञोक्तियाँ उपलब्ध हैं। हो सकता है कि उनमे से कुछ उक्तियाँ प्रचलित जनश्रुतियो के संस्कृत रूपान्तर हों और शेष कवियो द्वारा स्वयं निर्मित हो। जो उक्तियाँ कवियो द्वारा निर्मित हैं, वे लोक की उक्तियाँ नही है। इसलिए हम उनको लोकोक्तियाँ नही कह सकते, उन्हें प्राज्ञोक्तियो के नाम से अभिहित करना ही समीचीन होगा। डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दो में 'वस्तुतः कहावत (प्रावर्ब) केवल लोकोक्ति नही है, वह कई बार प्राज्ञोक्ति भी है। तुलसीदासजी की अनेक पक्तियाँ कहावत बन गई हैं। उन्हे लोकोक्तियाँ नही कहा जा सकता, वे प्राज्ञोक्तियाँ है जो लोक में साहित्य के माध्यम से प्रचलित हुई है।' डाक्टर द्विवेदी ने 'कहावत' शब्द में लोकोक्ति और प्राज्ञोक्ति दोनों का अन्तर्भाव कर इस शब्द को और भी व्यापकता प्रदान करदी है।

स्टीवेन्सन ने लोकोक्ति और व्यवहार-सूत्र के अन्तर को स्पष्ट करते हुए बत-

---

1. मिलाइये—Russian. "The burden is light on the shoulders of another."

French. "One has always enough strength to bear the misfortune of one's friends."

Latin. "Men cut thongs from other men's leather."

Italian. "Every one draws the water to his own mill."

लाया है कि व्यवहार-सूत्र किसी सामान्य सत्य अथवा आचार-व्यवहार की अभिव्यक्ति है या मार्विन के शब्दों में यह कहावत तो है किन्तु है झिनगे की अवस्था में। पर उगने पर ही झिनगा उड़ सकता है, इसी प्रकार व्यवहार-सूत्र लोकोक्ति का रूप तभी धारण करता है जब इसको लोक-हृदय ने स्वीकार कर लिया हो और यह सर्वसाधारण में प्रचलित हो गया हो।[1]

व्यवहार सूत्र इकट्ठे किए हुए सिक्के हैं जब कि लोकोक्तियों को प्रचलित सिक्कों के नाम से अभिहित किया जाता है। व्यवहार-सूत्र यदि प्रचलित न हों तो केवल पुस्तको की शोभा बढ़ाते हैं जब कि लोकोक्तियाँ जनता की जिह्वा पर नृत्य करती रहती हैं।

'कच्छी कहेवतो' के संग्राहक श्री दुलेराय एल० काराणी ने यथार्थ ही कहा है कि 'सुभाषित जहाँ एक दूकान पर चलने वाली हुंडी है, वहाँ कहावत एक ऐसा राजमान्य लोक-सिक्का है जो रास्ते चलते बाजार मे बेधड़क चाहे जहाँ चलाया जा सकता है।[2]

ऊपर जो बात व्यवहार-सूत्र और लोकोक्ति के अन्तर के सम्बन्ध में कही गई है, वही लोकोक्ति तथा प्रज्ञा-सूत्र अथवा मर्मोक्ति के अन्तर के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। किसी भी उक्ति को, चाहे वह प्राज्ञोक्ति हो, आचारोक्ति हो अथवा मर्मोक्ति हो, लोकोक्ति की सज्ञा तभी मिल सकेगी जब लोक-मानस उसे स्वीकार करले, अन्यथा नही।

---

1. "Maxim is the sententious expression of some general truth or rule of conduct, that it is a proverb in the caterpillar stage, as Marvin puts it and that it becomes a proverb when it gets its wings by winning popular acceptance, and flutters out into the highways and by-ways of the world."

—*Introductory Note to Stevenson's Book of Proverb, Maxims and familiar phrases.*

२. "सुभाषित ए क अमुक दुकान पर थीज बटावी शकाय एवी हुंडी के चेक छे ज्यारे कहेवत रस्ते चालतां बजार मां बेधड़क बटावी शकाय एवुं राज-मान्य चलणी नाणुं छे, लोक-सिक्को छे।"

—'कच्छी कहेवतो'; पृष्ठ ५.

द्वितीय अध्याय

कहावत का उद्भव और विकास

१. कहावत का उद्भव

(क) कहावती शिशु का उद्भव

लोकोक्तियाँ जन-समुद्र के बिखरे हुए रत्न हैं। किसने ये रत्न बिखेरे, इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता, किन्तु बहुत सम्भव है कि कहावतो का प्रथम उत्स मनुष्य के मन मे तभी उत्सारित हुआ होगा, जब उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति अपने सरस वेग के साथ सहज भाषा मे निःसृत हुई होगी। एकान्त में बैठकर कहावतों का निर्माण नही किया गया किन्तु जीवन की प्रत्यक्ष वास्तविकताओं ने कहावतों को जन्म दिया है। किताबो की आँखो से देखने वाले निरे बुद्धि-विलासी व्यक्ति कहावतो के निर्माता नही थे, कहावतो के रचयिता जीवन के द्रष्टा थे। क्या हुआ, यदि किसी कहावत के निर्माता ने कोई पुस्तक नही पढी, जीवन की पुस्तक से उसने जो पाठ पढा था, सूक्ष्म निरीक्षण, सामान्य बुद्धि और प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर ज्ञान का जो साक्षात्कार उसने किया था, वही एक मनोरम लोकोक्ति के रूप में प्रकट हो गया। श्री सुशीलकुमार दे के शब्दो में "प्रयत्नपूर्वक कहावतो का प्रचार भी नहीं किया गया, कहावतें अपने आप प्रचलित हो गईं। प्रतिदिन के प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर किसी के मुख से जो क्षिप्र सरस वाक्य निकल पडा, उसी ने क्रमशः अभ्यस्त वाक्य के रूप मे परिणत होकर कहावत का रूप धारण कर लिया। जो पिता की रचना थी, वही काल-क्रम से पुत्र की सम्पत्ति बन गई।"[1] कहावत का जन्मदाता तो विस्मृति के गर्भ मे विलीन हो गया किन्तु उससे उद्भूत वह अमर वाक्य काल-समुद्र की लहरियो पर अमिट होकर तैरता रहा। किन्तु कोई कहावत कब जन्मी और किसने उसको जन्म दिया, इसका कुछ पता नही चल सकता क्योकि कहावत रूपी शिशु का जब जन्म होता है तो किसी को पास नही बैठने दिया जाता।"[2]

(ख) उद्भव की प्रक्रिया

कोई कहावत किस प्रकार जन्म लेती होगी, इसके सम्बन्ध मे हम कुछ कल्पना अवश्य कर सकते है। विषय के स्पष्टीकरण के लिए कुछ उदाहरण लीजिये :

'जो घडा पूरा भरा नही होता, वह कुछ छलकता है और छलकने से आवाज होती है। इसके विरुद्ध जो घडा पूरा भरा होता है, वह न छलकता है और न उसमें से कोई आवाज ही होती है। पानी का घडा लेकर आती हुई स्त्रियों के सम्बन्ध में यह हमारा प्रतिदिन का अनुभव है। किन्तु यह तो मात्र नेत्रानुभव है। न जाने

---

१. वाङ्मय प्रवाह : श्री सुशीलकुमार दे; पृष्ठ १।

2. 'Rarely indeed is one permitted to sit in at the birth of a proverb or to name its author.'

—*Introductory Note to Stevenson's Book of proverbs, Maxims and familiar phrases.*

कितने लोग इस दृश्य को देखते हैं किन्तु किसी प्रकार की मानसिक प्रतिक्रिया उनमें नही होती। किन्तु किसी दिन एक विचारशील व्यक्ति के मन में यह दृश्य उस व्यक्ति का चित्र सामने खडा कर देता है जो बोलता बहुत है किन्तु जिसका ज्ञान अधकचरा है, जिसकी विद्या अधूरी है। ऐसी स्थिति में नेत्रानुभव मन के अनुभव के रूप में परिणत हो जाता है और उसके मुख से सहसा निकल पडता है 'अधजल गगरी छलकत जाय'। यद्यपि यह वाक्य प्रसंग-विशेष पर एक व्यक्ति के मुख से निकला था तथापि समान प्रसंग आने पर अन्य लोग भी इस वाक्य की आवृत्ति करने लगते है। इस प्रकार एक व्यक्ति की उक्ति लोक की उक्ति बन जाती है, कहावत का रूप धारण कर लेती है।

इसी प्रकार एक दूसरा उदाहरण लीजिये। कल्पना करिये कि किसी शिकारी ने बन्दूक के निशाने से एक पक्षी को मार डाला और उसे हस्तगत कर लिया। यह हस्तगत पक्षी हवा में उडते हुए अथवा झाडियों में छिपे हुए अनेक पक्षियों की अपेक्षा श्रेष्ठ है किन्तु कभी-कभी शिकारी दूसरे अनेक पक्षियो के लोभ में इस हस्तगत लाभ को छोड देते हैं। यह प्रायः सभी शिकारियों का नेत्रानुभव है किन्तु किसी शिकारी के मुख से कभी पहले-पहल जब यह वाक्य निकल पडा होगा 'हस्तगत एक पक्षी झाडी में छिपे दो पक्षियो के बराबर है'[1] तब यह समझना चाहिए कि उसके नेत्रानुभव ने मानसिक अनुभव का रूप धारण कर लिया था। नेत्रानुभव और मानसिक अनुभव की इस एकाकारिता में ही कहावत का प्रादुर्भाव होता है। यद्यपि इस कहावत की उद्भावना का श्रेय शिकारी जगत् को दिया जा सकता है किन्तु इसका प्रयोग शिकारियों तक ही सीमित नही है। कहावत की एक प्रमुख विशेषता यह है कि यह अभिधेयार्थ को लेकर प्रवृत नही होती, उसका प्रयोग अन्योक्ति अथवा अन्यापदेश के रूप में होता है। हम भी अपने जीवन में अनेक बार जब प्रस्तुत अथवा प्रकृत लाभ को छोड़कर अनिश्चित अप्रस्तुत लाभ की ओर उन्मुख होते है तो चेतावनी के रूप में उक्त कहावत का प्रयोग किया जा सकता है।[2]

(ग) उद्भव के प्रमुख आधार

कहावतो की उत्पत्ति के तीन प्रमुख आधार हैं—(क) लोक-कथाएँ, (ख) ऐतिहासिक घटनाएँ और (ग) प्राज्ञ-वचन।

(क) लोक-कथाएँ—लोकानुभव प्राय. घटनामूलक होता है। कोई घटना घटित होती है और हमारे जीवन-सम्बन्धी अनुभव में वृद्धि कर जाती है। हम देख पाये चाहे न देख पायें, मानव-जाति के प्रत्येक अनुभव के पीछे एक छोटी-मोटी कहानी छिपी रहती है जिसका वह संकेत देती है। यही कारण है कि कहावत को गढवाली भाषा में 'अखाणो' या 'पखाणो' कहते है। 'अखाणो' आख्यान से बना है और 'पखाणो' उपाख्यान से। राजस्थानी भाषा मे भी कहावतो के लिए 'ओखाणा' शब्द प्रचलित है।

परन्तु घटनामूलक होने पर भी कहावत 'कहावत' है। हर घडी की बातचीत

---

1. A bird in hand is worth two in the bush.

२. चवराकियानुं तत्त्वदर्शन : जमशेदजी मेहता; पृष्ठ १८६-८७-८८।

में अथवा साहित्यिक रचनाओं में पद-पद पर सारी कहानी बार-बार नहीं दुहराई जा सकती। हाँ, कहावत के द्वारा उसका संकेत दे दिया जा सकता है। इसी से गढ़वाली भाषा में 'कहावत' को 'आणो' तथा संस्कृत मे आभाणक कहते हैं। 'आणो' और 'आभाणक' एक ही है। 'आभाणक' ही 'आणो' हो गया है आभाणक आहाणअ आआणअ आणा+ओ, आणो। इसमें मूल धातु 'भण' है जिसका अर्थ है कहना।'[१] ऊपर की पंक्तियो में डाक्टर बडथ्वाल ने यथार्थ ही कहा है कि कहावत के द्वारा कहानी का सकेत दे दिया जाता है। जहाँ तक मैं समझता हूँ, इस प्रकार का संकेत अनेक बार कहानी के चरम वाक्य द्वारा दिया जाता है। उदाहरण के लिए कुछ ऐसी कहावतें लीजिये जिनका अवसान चरम वाक्य में होता है।

(अ) चरम वाक्य—(१) 'तन्नै कैंगो सो मन्नै भी कैंगो' अर्थात् जो तुम्हें कह गया, वह मुझे भी कह गया। यह राजस्थानी भाषा की एक प्रसिद्ध कहावत है जिसके पीछे निम्नलिखित कथा कही जाती है :

"एक बुढिया ने किसी घुड़सवार से अपनी पोटली ले चलने के लिए कहा। घुड़सवार ने यह कहकर इनकार कर दिया कि घोडे के सवार और बुढिया माई का क्या साथ ? सवार ने कुछ आगे चलकर सोचा कि अच्छा होता, यदि बुढ़िया की पोटली मैं ले लेता, उसमे जो कुछ है उसे तो स्वायत्त कर लेता। वह लौट पडा और बुढ़िया के पास पहुँचकर कहने लगा—'ला पोटली, तुझे कष्ट होगा, मैं घोड़े की पीठ पर लेता चलूँगा।' बुढ़िया के दिल में भी यह सद्बुद्धि जागृत हो गई थी कि चलो, अच्छा हुआ जो मैंने अपनी पोटली घुडसवार को न दी, कही वह लेकर चम्पत हो जाता तो फिर क्या था ! किसी अनजान का विश्वास ही क्या ? बुढिया ने उत्तर दिया 'जो तुम्हें कह गया, वह मुझे भी कह गया'।"

राजस्थान में यह कहावत 'घोड़ै कै सवार को अर बूडली माई को साथ' इस रूप में भी प्रसिद्ध है।

(२) 'बा चिड़कली और देख जो भरड़ दे उड ज्याय' अर्थात् वह चिडिया और देखो जो भरड शब्द करती हुई उड़ जायगी। इस राजस्थानी कहावत के सम्बन्ध में निम्नलिखित लोक-कथा प्रसिद्ध है :

"कहा जाता है कि साँपों को नष्ट करने के लिए एक बार राजा जनमेजय ने यज्ञ किया। वासुकि सर्प अपनी रक्षा के लिए किसी शहर में चला गया और ब्राह्मण का रूप धारण करके रहने लगा। एक ब्राह्मणी से उसने विवाह भी कर लिया। ब्राह्मणी एक दिन पानी भर कर ला रही थी। जब वह अपने घर में प्रविष्ट हुई तो गरुड एक चिडिया का रूप धारण करके उसके घड़े पर जा बैठा। घड़े पर बोझ पड़ने से ब्राह्मणी ने अपने पति को पुकारा और बोली—एक चिडिया घड़े पर बैठी है जिसके भार से मैं दबी जा रही हूँ। इसको किसी तरह उड़ाइये न। इस पर गरुड ने उत्तर दिया—वह चिडिया और देखो जो इस प्रकार 'भरड़' शब्द करती हुई

---

१. गढ़वाली भाषा के पखाणा (कहावतें) : प्रस्तावना—डाक्टर पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल। नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १८, अंक १, पृष्ठ १०३-१०४।

उड़ जायगी।"

(३) एक अंग्रेजी कहावत है 'प्लाउडन साहब कहते हैं, तब तो मामला ही बदल गया।'[1] इस कहावत के पीछे निम्नलिखित लघु-कथा प्रसिद्ध है :

"प्लाउडन नामक एक न्यायाधीश थे जिनको खबर मिली कि उनके किसी आसामी के पशु ने प्लाउडन साहब के पशु को चोट पहुँचाई है। न्यायाधीश ने निर्णय दिया कि आसामी को हर्जाना देना होगा किन्तु थोडी देर बाद पता चला कि न्यायाधीश के पशु ने ही आसामी के पशु को चोट पहुँचाई थी। प्लाउडन साहब को जब सच्ची बात का पता चला तो लगे कहने 'तब तो मामला ही बदल गया'।"

ऊपर तीन कहावती-कथाओ के उदाहरण दिये गये हैं। प्रत्येक कथा के अन्त में जो वाक्य है, वह चरम वाक्य है। आधुनिक आख्यायिकाओं मे जो स्थान चरम सीमा का है, वही इन कहावती कथाओ मे चरम वाक्य का है। जहाँ चरम वाक्य का प्रयोग होता है, वहाँ कहानी अपनी तीव्रतम स्थिति को पहुँच जाती है। उसके ठीक बाद कथा समाप्त हो जाती है। इसका मुख्य कारण यह है कि चरम सीमा पर पहुँचकर भी यदि कहानी चलती रहे तो उसमे नीरसता आ जाती है।

कथाओ का यह चरम वाक्य बडा जोरदार होता है। इसके कारण कहानी का आकर्षण सौ गुना बढ़ जाता है। इसमें मर्म को स्पर्श करने की बडी शक्ति पाई जाती है। कुछ वाक्यों मे ऐसा तीखा व्यग्य मिलता है जो देखते ही बनता है। ऐसे वाक्य लोगो मे कहावतों की भाँति प्रचलित हो जाते हैं। इस प्रकार की कहावतें प्रायः विश्व की सभी भाषाओं में पाई जाती है।

(आ) कथा से शिक्षा—प्रचलित लोक-कथाओ से जो शिक्षा मिलती है, उसे भी बहुत से लोगों ने सूक्ति अथवा लोकोक्ति के रूप मे रखने का प्रयत्न किया है[2] या द्विवेद ने, इसी प्रकार का प्रयत्न किया था। वैदिक कथाओ से जो शिक्षा मिलती है उसे ही लेखक ने 'नीतिमंजरी' मे सूक्तियो अथवा लोकोक्तियो के रूप में जड़ दिया था। होमर की अनेक कथात्मक कविताओ के सम्बन्ध में भी यही किया गया था।[3] इस प्रकार की शिक्षा के लिए हमेशा नई सूक्ति अथवा कहावत बनाने की आवश्यकता नही जान पड़ती। अनेक बार लेखक प्रचलित सूक्ति अथवा लोकोक्ति का प्रयोग करता है तो अनेक बार वह कोई नई सूक्ति गढ़ लेता है जो लोकोक्ति बन भी जाय और न भी बने। पंचतन्त्र, हितोपदेश तथा जैन धर्म एवं बौद्ध धर्म-सम्बन्धी गाथाओं से इस तरह के उदाहरण आसानी से संकलित किये जा सकते हैं। पंचतन्त्र तथा जातकों से

---

1. The case is altered, quoth Plowden.

2. A proverb may be the condensation of a fable or parable into a single phrase. A popular maxim even in modern times 'Every cock on his own dunglill' can be traced back to Seneca who thus summed up one of Aesop's fables.

—*Article on 'proverb' in Encyclopaedia of Religion and Ethices edited by James Hastings.*

3. The moral of many of the stories of the Homeric poems was summed up in a single line which gained currency as a proverb.

कतिपय उदाहरण लीजिये—

"**बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम् ।**
पश्य सिंहो मदोन्मत्तः शशकेन निपातितः ॥" पंचतन्त्र ।

सिंह और शशक की कहानी अत्यन्त लोक-प्रचलित है । शशक ने अपने बुद्धि-बल से सिंह को कुएँ मे गिरा दिया । इससे प्रतीत होता है 'बुद्धि ही बल है' । यहाँ 'बुद्धि ही बल है' यह सूक्ति इस कहानी मे मिलने वाली शिक्षा के रूप में प्रयुक्त है ।

इसी प्रकार 'बक-जातक' की निम्नलिखित गाथा को लीजिये—

"**नाच्चन्त निकतिप्पञ्ञो निकत्या सुखमेधति ।**
आराधे निकतिप्पञ्ञो बको कक्कटकामिवा ति ॥"

अर्थात् अपने से अधिक धोखेबाज के साथ जो धोखेबाजी करता है, वह दुःख उठाता है । यह एक सूक्ति है जो इस गाथा के पूर्वार्द्ध मे प्रयुक्त हुई है, उत्तरार्द्ध में बक और कर्कटक की कहानी की ओर सकेत है ।

'मिलहि न जगत सहोदर भ्राता' रामचरितमानस की एक सूक्ति है जो लोकोक्ति की भाँति व्यवहृत होती है । इसी से मिलती-जुलती उक्ति 'उच्छग जातक' की निम्नलिखित गाथा मे मिलती है ।

"**उच्छंगे देव मे पुत्तो, पथे धावन्तिया पति ।**
तञ्ञु देस न पस्सामि यतो सोदरियमानये ॥"

अर्थात् हे देव ! पुत्र तो मेरी गोद मे है, रास्ते चलती को पति भी मिल सकता है किन्तु वह देश मुझे दिखाई नही पडता जहाँ से सहोदर भाई मिल सके ।

(६) असम्भव अभिप्राय (Motif)—राजस्थानी लोकोक्तियो मे कुछ ऐसे कहावती वाक्य भी है जो असम्भव अर्थ को प्रकट करते है । एक ऐसा ही कहावती वाक्य लीजिये—

'आगाई गिया जाणे ऊँट का माथा सूं सींगडा गिया' अर्थात् इस प्रकार चले गये जैसे ऊँट के माथे से सींग चले गये ।

इस प्रकार के कहावती वाक्यो का आखिर अभिप्राय क्या है ? लोक-कथाओं के आधारभूत अभिप्रायो का वैज्ञानिक अध्ययन करने वाले विद्वानो ने अन्य अभिप्रायों के साथ-साथ एक असम्भव अभिप्राय को भी स्वीकार किया है जिसके स्पष्टीकरण के लिए बिहार प्रदेश की एक निम्नलिखित लोक-कथा का उल्लेख करना यहाँ असगत न होगा—

"एक बार एक घोडे के सम्बन्ध मे झगडा उठ खडा हुआ जो प्रचलित जनश्रुति के अनुसार घोणी से पैदा हुआ था । एक शृगाल न्याय करने के लिए चुना गया । शृगाल का निर्णय सुनने के लिए बहुत से लोग एक निश्चित स्थान पर एकत्र हो गये किन्तु गीदड जरा देर से पहुँचा और कहने लगा—रास्ते में मैंने एक बडा तालाब देखा जिसमे बहुत सी मछलियाँ थी । मैंने इस उद्देश्य से तालाब मे आग लगादी कि मछलियाँ भून ली जायँ । फिर जब मछलियाँ तैयार हो गई तो मैं उन्हें खाने के लिये ठहर गया और इस प्रकार यहाँ पहुँचने मे मुझे विलम्ब हो गया । लोगो ने कहा कि पानी में आग का लगना और इस प्रकार मछलियो का भूना जाना कैसे सम्भव हो सकता है ?

शृगाल ने उत्तर दिया कि यह उसी तरह सम्भव है जिस प्रकार धागी से घोड़े की उत्पत्ति सम्भव है।"

इसी प्रकार ऊँट के माथे पर जब सीग होते ही नही, तब सीगों का चला जाना कैसे सम्भव है ? मैं समझता हूँ कि असम्भव अभिप्राय को द्योतित करने वाले इस प्रकार के कहावती वाक्यो के पीछे भी ऊपर उद्धृत बिहारी लोक-कथा की भाँति ही कहानियाँ प्रचलित रही होगी।

इससे जान पड़ता है कि कथाओ ने कहावतो के उद्भव मे महत्त्वपूर्ण योग दिया है।

(ई) कहावतों से कथाओं की उद्भावना—ऊपर जो उदाहरण दिये गये हैं वे ऐसी कहावतो के है जिनका प्रादुर्भाव लोककथाओ से हुआ है किन्तु कुछ कहावतें ऐसी भी होती हैं जिनसे लोक-कथाओ का प्रादुर्भाव हो जाया करता है। विषय के स्पष्टीकरण के लिए दो दृष्टान्त लीजिये—

'जहाँ ९९, वहाँ पूरे सौ' यह एक लोक-कथा है और कहावत भी है। ऐसा जान पडता है कि शुरू-शुरू मे तो यह कहावत लोगो के सामान्य अनुभव मे से ही उद्भूत हुई होगी। लेन-देन मे हम कहा करते है 'मुझे तो पूरे सौ चाहिएँ, ९९ नही।' किन्तु आगे चलकर इसी कहावत के आधार पर किसी लोक-कथाकार ने निम्नलिखित कथा गढ़ ली होगी—

'एक डाकू था जो झाडी में छिपकर लूट-मार किया करता था। एक-एक करके उसने ९९ व्यक्तियो को अपनी तलवार के द्वारा मौत के घाट उतार दिया था किन्तु जब वह १००वी बार हत्या करने लगा तो एक ब्राह्मण ने समझा-बुझाकर उसे सन्मार्ग पर लगा दिया। तब से वह एक नदी के किनारे भगवद्भक्ति मे अपना समय व्यतीत करने लग गया। नदी की ओर जाने वाले मार्ग पर जकात लेने की सरकारी चौकी थी। वहाँ एक दिन एक बनजारा साँयकाल के समय अपने बैलों को पानी पिलाने के लिए आया। चार दिन तक रास्ते चलते बैलो को पानी की एक भी बूँद पीने को न मिली थी, इसलिए बनजारे के बहुत से बैल मर गये थे। बाकी बचे बैलों को बनजारा जितनी जल्दी हो सके, नदी तक पहुँचा देना चाहता था। जकात के अफसर ने बिना जकात का हिसाब साफ किये बैलो को आगे बढ़ा ले जाने की इजाजत नही दी और परिणामस्वरूप बचे हुए बैल भी एक एक करके मरने लगे। उस भक्त से जो पहले डाकू था, यह दृश्य न देखा गया। उसने अफसर को बहुतेरा समझाया किन्तु वह टस से मस न हुआ। इस क्रूर दृश्य को देखकर भक्त ने सोचा कि अब तक मैंने ९९ निर्दोष व्यक्तियो की हत्या की है, अब इस अफसर का खून कर दूँ तो सैकड़ों प्राणियो की रक्षा हो जायगी। यह सोचकर उसने अपनी तलवार हाथ में ली और 'जहाँ ९९, वहाँ पूरे सौ' यह कहते हुए चौकीदार का सिर धड़ से अलग कर दिया। बैलो ने नदी-किनारे जाकर अपनी प्यास बुझाई।"

इसी प्रकार एक कहावत है 'रुपये के पास रुपया आता है'। यह भी एक सामान्य दैनिक अनुभव की बात है, सभी जानते हैं कि थोड़ी पूँजी हो तो व्यापार फलता-फूलता नही, रुपया खूब हो तो व्यापार में सफलता मिलती है। स्पष्ट है कि

नीचे की लोक-कथा उक्त कहावत के आधार पर कल्पित कर ली गई है—

"किसी मूर्ख ने उक्त कहावत सुनी और एक खजाने की खिड़की पर जाकर खड़ा हो गया। वह अपनी जेब से रुपया निकालकर उछाल-उछाल कर बजाने लगा और मन में सोचने लगा कि खजाने में से दूसरा रुपया उडकर अभी मेरे पास आता है। संयोगवश वह रुपया उसके हाथ में से गिरकर खिडकी के रास्ते खजाने के रुपयों में जा मिला। अब वह चिल्ला-चिल्ला कर कहने लगा कि लोग झूठ ही कहते हैं कि रुपये के पास रुपया आता है। खजाने के सिपाही ने कहा 'मेरी समझ में तो बात बिल्कुल ठीक है, तुम्हारा रुपया रुपयों के पास चलकर आ गया न। तुम्हारा सिर्फ एक रुपया था, वह बहुत रुपयों में आ मिला। बहुतों ने एक को खींच लिया।"

(ख) ऐतिहासिक घटनाएँ

ऐतिहासिक घटनाएँ किस प्रकार कहावतो को जन्म देती हैं, इसका विवेचन राजस्थान की ऐतिहासिक कहावतो के प्रकरण में विस्तार के साथ किया गया है। यहाँ केवल इतना कहना पर्याप्त होगा कि कभी-कभी किसी ऐतिहासिक व्यक्ति के मुख से जब कोई महत्त्वपूर्ण वाक्य निकल जाता है तो वह भी कहावती ख्याति प्राप्त कर लेता है। मारवाड विजय पर शेरशाह ने कहा था, 'एक मुट्ठी भर बाजरे के लिए मैंने दिल्ली का राज्य खो दिया होता।'[1] तानाजी की मृत्यु पर शिवाजी के मुख से सिंहगढ-सम्बन्धी उद्‌गार निकल पडा था, 'गढ आला पण सिंह गेला' अर्थात् गढ़ तो आ गया किन्तु सिंह चला गया! सीजर की प्रसिद्ध उक्ति 'The die is cast.' की तरह शिवाजी का यह वाक्य भी कहावत की तरह ही महाराष्ट्र में प्रचलित हो गया। लोकमान्य तिलक ने कहा था, 'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं उसे लेकर रहूँगा।' इसी प्रकार सन् १९४२ की भारतीय क्रान्ति के अवसर पर 'करो या मरो' ने कहावती लोकप्रियता प्राप्त करली थी।

(ग) प्राज्ञ-वचन

विद्वानों ने कहावतों के दो भेद किये हैं—(१) साहित्यिक कहावत (Gnome) और (२) लौकिक कहावत अथवा लोकोक्ति। साहित्यिक कहावत का रूप जितना परिष्कृत होता है, उतना लौकिक कहावत का नहीं। दूसरी बात यह है कि साहित्यिक कहावत के निर्माता का हमें पता रहता है, लौकिक कहावत का निर्माता अज्ञात रहता है।

साहित्यिक कहावते कवियो की उक्तियाँ हुआ करती हैं। जहाँ अनेक कवियों की रचनाओ मे लोक-प्रचलित उक्तियो का प्रयोग देखने में आता है, वहाँ बहुत से कवियों की पंक्तियाँ भी कहावतो का रूप धारण कर लेती हैं। कालिदास, तुलसी-

---

१. जोधपुर के राजा मालदेव का इतना प्रताप बढा कि वे पश्चिम के बादशाह कहलाने लगे। अस्सी हजार सवार उनकी सेना में थे। दिल्ली के बादशाह हुमायूँ को भी एक बार उन्होंने शरण दी थी। जब शेरशाह सूर ने इन पर चढाई की तो राव मालदेव के राठोडी योद्धाओं ने तलवार से तलवार बजा दी और वे इतनी वीरता से लडे कि शेरशाह के छक्के छूट गये। इस युद्ध में यद्यपि विजय तो शेरशाह की ही हुई तथापि वह हारते-हारते बचा। इसीलिए युद्ध के अन्त में उसके मुख से उक्त वाक्य निकल पड़ा था। मारवाड की पैदा ही क्या है? मुट्ठी भर बाजरा। उसके लिए जान को जोखिम में डालना कौनसी बुद्धिमानी का काम था? स्वल्प-से लाभ के लिए अत्यधिक हानि की ओर उन्मुख होने वाले शेरशाह ने अपनी विचार-मूढता को स्वयं स्वीकार किया था।

दास, शेक्सपियर तथा पोप आदि कवियों की अनेक पंक्तियाँ कहावतों के उदाहरण-स्वरूप रखी जा सकती हैं। अनेक बार इस तथ्य का पता लगाना मुश्किल हो जाता है कि कवि द्वारा प्रयुक्त होने पर किसी कहावत ने काव्यात्मक रूप धारण कर लिया है अथवा कोई काव्यमयी उक्ति ही कहावत बन गई है।[1] लोकोक्ति और प्राज्ञोक्ति के सम्बन्ध में पहले जरा विस्तार से विचार किया जा चुका है। इसलिए यहाँ पिष्ट-पेषण के भय से मैं केवल इस बात पर बल देना चाहूँगा कि अन्य आधारों के साथ-साथ प्राज्ञोक्तियां भी कहावतो के उद्‌भव का एक महत्त्वपूर्ण आधार उपस्थित करती हैं।

(घ) उद्‌भव की प्राचीनता

कहावतो का उदभव कैसे हुआ, इसके साथ-साथ इस प्रश्न पर भी विचार करना आवश्यक है कि कहावतो का उद्‌भव कौनसे युग मे हुआ ? कोई समय ऐसा था जब सभ्यता और संस्कृति की दृष्टि से आदिम मानव बहुत ही नीचे स्तर पर रहा होगा। उस समय न पुस्तकें थी, न प्रेस थे, न कोई लिपि ही थी, न कोई साक्षर व्यक्ति ही था। उस प्राचीन काल मे जीवन के उपयोगी सकेतो के लिए कहावतों पर ही लोग आश्रित रहे होंगे, क्योकि ज्ञान-विज्ञान पुस्तकों में कही संचित न था। जब किसी व्यक्ति के मुख से कोई कहावत निकलती तो तत्कालीन जन-समुदाय उस कहावत के प्रति सशयालु नही था, बड़ी श्रद्धा और विश्वास के साथ वह उसे स्वीकार करने के लिए तैयार हो जाता था। और सच तो यह है कि सशयालुता की अवस्था भी तब उत्पन्न होती है, जब ज्ञान का कुछ विकसित रूप दिखाई पडने लगता है।

उस प्राचीन काल में ज्ञान-विज्ञान की पुस्तके न थी, किन्तु कहावतो में स्वास्थ्य-विज्ञान के निर्देश मिल जाते थे। उस समय अर्थशास्त्र के सिद्धान्तो की कोई शास्त्रीय व्याख्या उपलब्ध न थी, किन्तु आर्थिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाले व्यावहारिक सकेत कहावतों के रूप में अवश्य सुलभ थे। दर्शनशास्त्र और धर्म-ग्रन्थ उस समय न थे, किन्तु कहावतो के रूप में जो लोक-विश्वास प्रचलित हुए होगे, वे ही उनके लिए दर्शनशास्त्र और धर्म-ग्रन्थों का काम देते होगे। धर्मशास्त्र और दर्शन-ग्रन्थो के प्रति जिस प्रकार आदर-भावना देखी जाती है, उसी प्रकार कहावतो के प्रति भी सामान्य जनता में बडा आदर पाया जाता है। वैसे तो सभी देशो की सामान्य जनता कहावतो के प्रति श्रद्धालु देखी जाती है, किन्तु पौरस्त्य देशों की जनता में यह श्रद्धालुता विशेष रूप से देखने को मिलती है।

भाषा की उत्पत्ति की भाँति ही कहावत की उत्पत्ति भी अत्यन्त प्राचीन है।

---

1. Proverbs and other common sayings are often caught up by the composer of a poem and woven into his verses while on the other hand, a well-turned poetical expression sometimes gives it a permanent Currency, as is the case with so many of the lines of Pope. Whether the proverb has been made poetical by its setting, or the poetical expression has become proverbial by constant quotation, it may be sometimes difficult to determine.

—*Proverbs and Common Sayings from the Chinese by Arthur H. Smith shanghai, 1902.*

किसी भी भूभाग में जब कोई जन-समूह कुछ दिन के लिए स्थायी रूप से निवास करने लगता है तो उस भूभाग के उपयुक्त व्यवहारोपयोगी भाषा में थोडी-बहुत स्थिरता आती है और उस भाषा में साहित्य की सृष्टि होने लगती है। प्राथमिक अवस्था मे तो यह साहित्य श्रुति-परम्परा द्वारा प्रचलित होता है क्योंकि सभ्यता के विकास में लेखन-कला बाद में आती है, पहले नही। यही कारण है कि प्राथमिक वाङ्मय अलिखित रूप मे मौखिक परम्परा द्वारा समाज के एक दल से दूसरे दल में अथवा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के लोगो में प्रसार ग्रहण करता है। इस प्राथमिक अवस्था में ही इस प्रकार के वाङ्मय के दो विभाग हो जाते है। एक भाग है गद्य वाङ्मय जिसका प्रारम्भिक रूप बडा अस्थिर होता है जिससे उसकी शब्द-योजना तथा उसका क्रम स्मृति मे स्थायित्व नही प्राप्त कर पाता। आज भाषा के रूप में इतनी स्थिरता आ जाने तथा उसके व्याकरण के नियमो द्वारा बद्ध होने पर भी गद्य के अनेक वाक्यों का ज्यों का त्यो याद रखना बडा कठिन व्यापार है किन्तु पद्य के सम्बन्ध मे यह नहीं कहा जा सकता। इस सम्बन्ध में सम्भवत: दो मत न होगे कि गद्य की अपेक्षा पद्य ही अपेक्षाकृत सुविधा से स्मृति मे चिरस्थायित्व प्राप्त कर लेता है। यही कारण है कि किसी भी समाज में गद्य-साहित्य की अपेक्षा पद्य-साहित्य पहले तैयार होता है। ऋग्वेद के रूप में सबसे प्राचीन जो लिखित साहित्य आज उपलब्ध है, वह पद्य-साहित्य ही है।

इस प्रकार के प्राथमिक वाङ्मय मे कही तो ईश्वरीय शक्ति के उत्कर्ष का चित्रण होता है, कही प्रकृति के चमत्कारों का वर्णन होता है अथवा कही सामान्य व्यवहारोपयोगी नीतिपरक तथ्यो का उल्लेख होता है। प्रारम्भ में यह स्फुट पद्यों के रूप में होता है और किसी विशेष प्रसग का वर्णन इसमें होने पर यह आख्यान का रूप धारण कर लेता है।

इस प्रकार के पद्यो में कुछ पद्य ऐसे होते हैं जो विशेष मर्मस्पर्शी होते है, श्रोताओ पर जो अपनी विशेष छाप छोड जाते हैं। यह स्वाभाविक है कि सामाजिक गोष्ठियो मे प्रसग आने पर इस प्रकार के पद्यो का विशेष प्रयोग हो जिसके परिणाम-स्वरूप कोई पद्य अथवा कोई पद्य-खड रूढ हो जाय, सारा समाज उसको अपनाले और वह लोकोक्ति के महत्त्वपूर्ण पद पर आसीन हो जाय।

इस प्रकार जो लोकोक्तियाँ प्रचलित होती हैं, उनमे बहुत सी तो ऐसी होती है जो हमें मौखिक परम्परा द्वारा प्राप्त होती है, बहुत सी ऐसी हैं जो प्रसिद्ध लेखकों की कृतियो मे से हमे मिल जाती हैं। भारतवर्ष मे इस बीसवी शताब्दी में भी आज ऐसी लोकोक्तियाँ मिल जाती हैं जो वैदिक काल से लेकर अब तक हमारे इस देश में प्रचलित रही है। इसी प्रकार पाश्चात्य राष्ट्रो की भाषाओं मे भी वर्तमान काल मे प्रचलित अनेक कहावते ऐसी है जो युग-युगान्तर से चली आ रही है। जो कहावत हमे आधुनिक-सी मालूम पडती हैं, उसी के मूल रूप की यदि शोध की जाय तो कोई आश्चर्य नही, वह सैकडों वर्ष पुरानी निकल आये। हर एक कहावत अपनी कथा कहती है किन्तु उसकी कथा को सुनने-समझने वाले लोग कम ही होते है। किसी कहावत के मूल का पता लगाना वस्तुत: एक बहुत ही दु:साध्य कार्य है।

✓ राजस्थानी भाषा की एक कहावत है 'गोदी का नै गेर कर पेट का की आस

करें' अर्थात् गोद के बच्चे को गिराकर गर्भस्थ शिशु की आशा करती है। इस कहावत में ध्रुव को छोड़कर अध्रुव की ओर दौडने वाले व्यक्ति पर व्यंग्य है। बहुत सम्भव यह है कि इस कहावत का मूल कथासरित्सागर की निम्नलिखित कथा है—

"इयं चाकर्ण्य मन्दा स्त्री पुत्रान्तरकांक्षिणी
एकपुत्रां स्त्रियं कांचिदन्यपुत्राभिकांक्षया
पृच्छन्तीमब्रवीत्काचित्पाखण्डा क्षुद्रतापसी
योऽयं पुत्रो स्ति ते बालस्तं हत्वा देवताबलिः
क्रियते चेत्ततो न्यस्ते निश्चितं जायते सुतः
एवं तयोक्ता यावत्सा तत्तथा कर्तुमिच्छति
तावद् बुद्ध्वा हितान्या स्त्री वृद्धा तामवदद्वह :
हंसि पापे सुत जातमजात प्राप्तुमिच्छसि
यदि सोऽपि न जातस्ते ततस्त्वं किं करिष्यसि
इत्यवार्यत सा पापादार्यया वृद्धया तया ॥"[1]

एक दिन एक स्त्री जिसके एक ही पुत्र था दूसरे पुत्र की इच्छा से किसी पाखण्डा क्षुद्र तापसी के पास गई। तापसी ने कहा—यह जो तुम्हारा पुत्र है, उसे तू यदि देवता की बलि चढ़ा दे तो निश्चय ही दूसरा पुत्र उत्पन्न होगा। जब वह ऐसा करने को उद्यत हुई तो एक भली वृद्धा स्त्री ने उसे एकान्त मे ले जाकर कहा—अरी पापिनी, उत्पन्न हुए पुत्र को तू मार रही है, जो उत्पन्न नही हुआ, उसकी इच्छा कर रही है। मान लो, यदि दूसरा पुत्र उत्पन्न न हुआ तो तू क्या करेगी ? इस प्रकार वृद्धा ने उसे उस पाप-कर्म के करने से रोक दिया।

यही कथा ४९वाँ अवदान भी है।

इसी प्रकार एक दूसरी कहावत है 'तिरिया चरित न जाने कोय, खसम मार के सत्ती होय।'

इस कहावत का मूल भी कथासरित्सागर की निम्नलिखित कहानी में मिल जाता है।

"बलवर्मन नामक एक व्यापारी था जिसकी स्त्री का नाम था चन्द्रश्री। चन्द्रश्री ने अपनी खिड़की से शीलहर नामक एक व्यापारी के सुन्दर युवक को देखा। दूती भेजकर उसने युवक को बुलाया। वह प्रतिदिन युवक से एकान्त में मिलने लगी। पति के अतिरिक्त उसके सभी मित्रों और सम्बन्धियो को पता चल गया कि चन्द्रश्री पर-पुरुष मे आसक्त है। प्रेमान्ध होने पर बहुत से मनुष्यो को अपनी स्त्रियो के असतीत्व का पता नही चल पाता।

"एक दिन बलवर्मन को बडे जोर का बुखार आया और उसकी हालत बड़ी खराब हो गई। पति की इस हालत मे भी पत्नी प्रतिदिन अपने प्रेमी से मिलने जाया करती थी। एक दिन जब वह अपने प्रेमी के यहाँ थी, पति की मृत्यु हो गई। पति की मृत्यु की खबर सुन वह दौड़ी-दौड़ी अपने घर आई और पति की चिता के साथ

---

१. कथासरित्सागर तरंग ६१; पृष्ठ ३२३; निर्णय सागर प्रेस संस्करण।

ही जल कर सती हो गई।"[1]

राजस्थान की प्रचलित लोक-कथा में स्त्री ने अपने हाथों पति को मार डाला तथा फिर वह उसके साथ सती हो गई।

इसी प्रकार न जाने कितनी कहावतो के मूल हमे अपने प्राचीन साहित्य में मिल जाते हैं।

बहुत से मनुष्य अपने दैनिक वार्तालाप मे कहावतों का प्रयोग करते हैं किन्तु उन्हें इस बात का पता नही रहता कि जिस लोकोक्ति का प्रयोग वे कर रहे हैं, वह कितनी पुरानी है और न कभी उनका इस ओर ध्यान ही जाता है। अनेक बार तो संस्कृत के पण्डित भी इस प्रकार के प्राचीन कहावती पद्यों का प्रयोग करते देखे गये हैं जिनके निर्माताओ के नाम का उन्हे पता नही, और ऐसा होना स्वाभाविक है क्योंकि प्राज्ञोक्तियाँ भी जब लोकोक्तियाँ बनने लगती हैं तब व्यक्तिगत निर्माताओं का नाम भुला दिया जाता है, व्यक्ति की उक्ति होते हुए भी जो लोक की उक्ति बन जाती है, उसमें व्यक्ति का नाम प्रायः विगलित हो जाता है।

लोकोक्ति, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, पहले बोलचाल की भाषा में बनती है, रूढ होती है, फिर वही अनेक बार अपनी लोकप्रियता के कारण साहित्य की भाषा में भी अपना आसन जमा लेती है। किन्तु साहित्य में आते-आते लोकोक्ति को बहुत-सा समय लग जाता है। इसलिए किसी साहित्यिक कृति में लोकोक्ति के प्रयोग को देखकर यह नही समझ लेना चाहिए कि जितना प्राचीन वह साहित्य है, उतनी ही प्राचीन वह लोकोक्ति भी है क्योकि कौन जाने, उस साहित्यिक कृति में प्रवेश पाते-पाते उस लोकोक्ति ने कितने वर्ष लिये होगे।

कहावत का उद्भव कैसे और कब हुआ, इसका अनुमान ही लगाना पड़ता है, निश्चित रूप से इस सम्बन्ध में कुछ कह सकना कठिन है। लोक-प्रचलित कहावतों के निर्माता कौन थे, इसका पता लगाना एक असम्भव व्यापार है। हाँ, घाघ और भड्डरी जैसे उन कहावतों के कुछ निर्माताओ की बात अलग है जिन्होने कहावतों के साथ-साथ अपना नाम भी जोड दिया है। इसी प्रकार साहित्य में प्रयुक्त उन सूक्तियों के निर्माताओ का भी हमे ज्ञान है जिनकी सूक्तियो ने कालान्तर मे लोकोक्तियो का रूप धारण कर लिया।

कहावत के निर्माता का चाहे हम पता न लगा सके और चाहे अनेक कहावतों के पीछे जो कथाएँ हैं, उनकी भी जानकारी हमें न हो सके किन्तु यह निश्चित है कि लोकोक्ति में घटना की प्रधानता रहती है, यह घटना ही कहावत को जन्म देती है। कहावती जगत् यथार्थ का लोक है, आदर्श का नन्दन-कानन नही। जैसा पहले कहा जा चुका है, आँखो से जो देखा, उसी को एक विदग्ध जन ने मन की तूलिका से अकित कर दिया; लोक के मानसपट पर एक ऐसी रेखा खीच दी जिसे काल का अदम्य प्रवाह भी धो नही पाता।

२. कहावत का विकास

मौखिक आदान-प्रदान और श्रुति-परम्परा से कहावतो का सम्बन्ध होने के कारण

---

1. The amazing sati. —*The Ocean of Story Vol. V. No. 79, P. 19.*

उनमें विकास का होना स्वाभाविक है। भाषा के विकास की भाँति कहावतें भी विकसित होती रहती हैं। उनका विकास सामान्यतः निम्नलिखित रूपों में दिखलाई पडता है।

(क) मूल भाषा की कहावतें और उनके रूपान्तर।
(ख) कहावतो में अर्थ और नामगत परिवर्तन।
(ग) कहावतों में पाठान्तर।
(घ) कहावतों के रूपों में परिष्कार।
(ङ) कहावतो का लोप और निर्माण।

(क) मूल भाषा की कहावतें और उनके रूपान्तर

मूल भाषा की कहावत के विभिन्न भाषाओं मे उसके रूपान्तर किस प्रकार प्रचलित हो जाते है, इसे स्पष्ट करने के लिए हम सबसे पहले नामसिद्ध जातक की निम्नलिखित गाथा यहाँ उद्धृत कर रहे हैं—

"जीवकं च मत दिस्वा, धनपालिं च दुग्गतं।
पन्थकं च वने मूल्हं, पापको पुनरागतो।"

अर्थात् जीवक को मरा देख, धनपाली को दरिद्र देख, पंथक को जंगल में भटकता देख, 'पापक' फिर लौट आया।

कहा जाता है कि एक तरुण का नाम ही था पापक। उसने आचार्य के पास जाकर कहा, आचार्य! मेरा नाम अमागलिक है, मुझे दूसरा नाम दे। आचार्य ने कहा—तात! जा, देश में घूमकर जो तुझे अच्छा लगे, ऐसा एक मांगलिक नाम ढूँढ़ कर ला। आने पर तेरा नाम बदल दूँगा। वह चलते-चलते एक नगर में पहुँचा जहाँ जीवक नाम का एक आदमी मर गया था। आगे चलने पर उसने देखा कि एक दासी को उसके मालिक काम करके मजदूरी न ला देने के कारण दरवाजे पर बिठाकर रस्सी से पीट रहे थे। उस दासी का नाम था 'धनपाली'। और आगे बढने पर उसने देखा कि एक आदमी रास्ता भटक गया है। पूछने पर पता चला कि उसका नाम है 'पन्थक'। अब उसे समझ आई कि जब जीवक भी मरते हैं, धनपाली भी दरिद्र होती है और पन्थक भी रास्ता भूलते हैं, तब फिर नाम में क्या रखा है? नाम बुलाने भर को होता है। नाम से नही, कर्म से ही सिद्धि होती है। मुझे दूसरे नाम की जरूरत नही है। मेरा जो नाम है, वही रहे।[1]

राजस्थानी भाषा में उक्त गाथा के निम्नलिखित रूप सुनाई पड़ते हैं—

अमरो तो मैं मरतो देख्यो, भाजत देख्यो सूरो।
चोदर तो मैं खुसती देखी, लाछ बुहारं कूड़ो।
आगै हूँ पाछो भलो, नाम भलो लंटूरो॥[2]

---

१. जातक (प्रथम खंड)—भदन्त आनन्द कौसल्यायन; पृष्ठ ५२६–२८।
२. मिलाइये:

अमरा तो म्हे मरता देख्या, भाजत देख्या सूरा।
गौरां तो गोबर चुगै, खसम भला लहटूरा॥
अमर नाम तो मरता देख्या, भाजत देख्या सूरा।

एक जाट की स्त्री थी जिसके पति का लघुताव्यंजक नाम था लैटूरा। वह भोला-भाला और गरीब था। फटे वस्त्र पहने रहता था। जाटनी को उसकी सहेलियाँ कहा करती—दुनिया में आकर तुमने क्या सुख देखा ? इस संसार में अमरा (अमरसिंह), सूरा (शूरसिंह) तथा चौधरी और बहुत से लक्ष्मीधारी है, उनकी स्त्री बनती तो कितना सुख पाती ? एक दिन जाट की स्त्री अपना घर छोडकर निकल गई। एक गाँव में किसी शव को देखने पर उसे मालूम हुआ कि 'अमरा' मर गया। आगे चली तो एक आदमी दौड़ता हुआ दिखाई पड़ा। उसके पीछे दो लाठीधारी युवक लगे थे। मालूम हुआ कि दौड़ने वाले का नाम 'सूरो' (शूरवीर) है। और आगे चलने पर एक दुखी मनुष्य दिखलाई पड़ा। पता चला कि उसके भाइयों ने उससे 'चौधर' (चौधरी का अधिकार) छीन लिया है। कुछ दूर और आगे बढ़ी तो देखा कि एक षोडशवर्षीया युवती कूड़ा बुहार रही थी जिसका नाम था लाछा (लक्ष्मी)। वह उसी समय घर लौट चली। सहेलियो द्वारा कारण पूछने पर उसने ऊपर के पद्य कहे थे जिनका भावार्थ यह है कि अमरा (अमरसिंह) को तो मैंने मरते देखा, सूरा (शूरसिंह) को भगते देखा, चौधरी के अधिकार को छिनते हुए देखा और लाछां (लक्ष्मी) को कूड़ा बुहारते हुए देखा। नाम मे क्या रखा है ? 'लैटूरा' नाम ही सबसे अच्छा है।

आर. ए. मैनवारिंग (R. A. Manwaring) ने Marathi Proverbs मे इसी प्रसंग का निम्नलिखित रूप उद्धृत किया है—

अमरसिंग तो मर गये, भीक माँगें धनपाल।
लक्ष्मी तो गोंबर्‌या बेंधी, भले विचारे ठणठणपाल॥

कहा जाता है कि किसी मनुष्य ने अपने पुत्र का नाम रखा ठणठणपाल। जब पुत्र बड़ा हुआ तो उसे यह नाम बहुत अखरने लगा। एक दिन जब वह घूमने के लिए बाहर निकला तो पूछने पर उसे ज्ञात हुआ कि अमरसिंह नाम के किसी पुरुष की मृत्यु हो गई है। इसके कुछ समय बाद ही उसके दरवाजे पर एक भिखारी आया। दूसरो के नाम जानने की उसके मन में बडी उत्सुकता रहा करती थी। इसलिए उसने भिखारी से उसका नाम पूछा। भिखारी ने अपना नाम बतलाया धनपाल। दूसरे दिन भ्रमणार्थ निकलने पर उसे पता चला कि लक्ष्मी नामक कोई महिला कण्डे एकत्रित कर रही है। उसको अब विश्वास हो गया कि केवल बड़े-बड़े नाम रखने से ही किसी की स्थिति में परिवर्तन नही हो सकता। ठणठणपाल नाम ही क्या बुरा है ?

उक्त कथा का निम्नलिखित बुंदेलखण्डी रूप भी उपलब्ध है—

'एक जना लकरियन को बोज लए जा रओ तो। वा कौ नाम हतौ लाखन। दूसरउ चारौ खोद रओ तो। वा कौ नाम हतौ धनधन रा। एक जनो मर गओ तो और वाकी अरथी जाय रहती। वाकौ नाम हतौ अमर। लुगाई नें सब देख सुन कें मन में सोची कें नाम से कुछ आउत जात नइयां, और जा कई :

कान्ह गुवाल्यो टाट चरावै, लिछमी भारैं कूड़ा।
आगै सैं पाछा भला, नाम भला लैंटूरा॥

हिन्दी-रूप

चिर अमर हैं मर गये, धनपति मांगे भीख।
दयासिन्धु पशु-वध करें, तुम दुर्मति ही ठीक॥

लकरी बेंचत लाखन देखे, घास खोदत धनधन रा।
अमर हते ते मरतन देखे, तुमइं भले मेरे ठनठन रा॥[1]

अन्य प्रदेशो में भी उक्त पालि-गाथा के विभिन्न रूप मिलते हैं। जहाँ भोजपुरी लोक-कथा के नायक का नाम ठट्टपाल है, वहाँ छत्तीसगढी लोक-कथा के नायक का नाम ठुनठुनिया है। गाथाएँ इस प्रकार हैं—

विनिया करत तब मिनिया देख ली, हर जोतत धनपाल।
खटिया बढ़ल हम अम्मर देख ली, सबसे निमन ठट्टपाल॥ (भोजपुरी)

अम्मर ल मयँ मरत देखे व लछमन जतिल काँवर बोहत देखेव त ठुनठुनिया उतरगे पार॥ (छत्तीसगढ़ी)

अर्थात् अमरनाथ को मैने मरते देखा। धनपति को मैने अनाज से पयाल उड़ाते देखा और लक्ष्मण यति को मैने वहंगी ढोते देखा। तब ठुनठुनिया को नाम का रहस्य ज्ञात हो गया।[2]

ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट है कि लगभग २५०० वर्षों से उक्त गाथा हमारे देश मे प्रचलित रही है। यद्यपि 'धनपाली' को छोड़कर अन्य सभी नाम भुला दिये गये और भिन्न-भिन्न प्रदेशों में अलग-अलग नामो की कल्पना कर ली गई तथापि गाथा की मूल भावना आज भी सुरक्षित है।

इसी प्रकार एक दूसरा उदाहरण लीजिये। 'वाणियै वाली माखी' राजस्थानी भाषा का एक कहावती पदांश है जिसे सस्कृत मे प्रचलित लौकिक न्यायो के अनुकरण पर 'वणिक्—मक्षिका' न्याय के नाम से अभिहित किया जा सकता है। राजस्थान मे प्रचलित निम्नलिखित कथा द्वारा इसका स्पष्टीकरण हो सकेगा—

बीकानेर मे श्री लक्ष्मीनाथ जी के मन्दिर के पास भाण्डासर का जैन-मन्दिर है। मन्दिर बनते समय कारीगरो ने सेठ से कहा कि इसकी नीव मे यदि पर्याप्त घी डाला जाय तभी मन्दिर मजबूत बन सकेगा। सेठ ने कहा—जितना घी चाहिए, मँगवालो। सेठ के देखते-देखते घी के कुप्पे आने लगे। कुप्पों मे से कुछ को खोलकर सेठ ने घी की परीक्षा करनी चाही। संयोग से घी में एक मक्खी गिर पडी जो घी मे लिपटकर तुरन्त मर गई। सेठ ने चटपट मक्खी को घी से बाहर निकाला और उससे अपने जूतों को चुपड़ लिया। कारीगरों ने सोचा कि जब सेठ मक्खी के लगा हुआ घी ही नहीं छोड़ता, तब वह नीव मे इतना घी क्योकर डालने लगा? सेठ मजदूरों का भाव ताड़ गया और कहने लगा कि इतना घी पर्याप्त होगा अथवा और मँगवाया जाय? रही मक्खी से जूता चुपड़ने की बात, मैने सोचा कि जरा-सा भी घी व्यर्थ क्यों जाय? इसलिए उसका उसी समय उपयोग कर लिया गया। वैसे नीव में कितना भी घी लगे, मेरे यहाँ घी की कोई कमी नही है। कहते हैं तभी से 'वाणियै वाली माखी' ने एक कहावती पदांश का रूप धारण कर लिया।

इसी से मिलती-जुलती एक कथा 'जीवक चरित' में भी आती है जो यहाँ अविकल उद्धृत की जा रही है:

---

१. 'लोकवार्त्ता', अप्रेल १९४६, पृष्ठ १४०।
२. छत्तीसगढ़ की लोक-कथा (श्री चन्द्रकुमार अग्रवाल) भूमिका (ख)।

'साकेत में नगरसेठ की भार्या को सात वर्ष से शिर-दर्द था। बहुत से बड़े-बड़े दिगंत-विख्यात वैद्य भी उसको अरोग नही कर सके, और बहुत हिरण्य (अशर्फी) सुवर्ण लेकर चले गये। तब जीवक ने साकेत में प्रवेश कर आदमियों से पूछा—

'भणे ! कोई रोगी है, जिसकी मैं चिकित्सा करूँ ?'

'आचार्य ! इस श्रेष्ठि-भार्या को सात वर्ष का शिर दर्द है। आचार्य ! जाओ, श्रेष्ठि-भार्या की चिकित्सा करो।'

तब जीवक ने जहाँ श्रेष्ठि गृहपति का मकान था, वहाँ जाकर दौवारिक को हुक्म दिया :

'भणे ! दौवारिक ! श्रेष्ठि-भार्या को कह—आर्ये ! वैद्य आया है, वह तुम्हें देखना चाहता है।'

'अच्छा आर्य।' कह दौवारिक जाकर श्रेष्ठि-भार्या को बोला :

'आर्ये ! वैद्य आया है, वह तुम्हें देखना चाहता है।'

'भणे दौवारिक ! कैसा वैद्य है ?'

'आर्ये ! तरुण (दहरक) है।'

'बस भणे दौवारिक। तरुण वैद्य मेरा क्या करेगा ? बहुत से बड़े-बड़े दिगन्त-विख्यात वैद्य·····।'

तब वह दौवारिक, जहाँ जीवक कौमार भृत्य था, वहाँ गया। जाकर बोला—

'आचार्य !' श्रेष्ठि-भार्या सेठानी ऐसे कहती है 'बस भणे दौवारिक···।'

'जा भणे दौवारिक ! (सेठानी) को कह—आर्ये ! वैद्य ऐसे कहता है—अय्या ! पहले कुछ मत दो, जब अरोग हो जाना, तो जो चाहना सो देना।'

'अच्छा आचार्य।'

दौवारिक ने श्रेष्ठि-भार्या को कहा, 'आर्ये ! वैद्य ऐसे कहता है···।'

'तो भणे ! दौवारिक ! वैद्य आवे।'

'अच्छा अय्या !' जीवक को कहा, 'आचार्य ! सेठानी तुम्हें बुलाती है।'

जीवक सेठानी के पास जाकर···रोग को पहिचान, सेठानी को बोला :

'अय्ये ! मुझे पसर भर घी चाहिए।'

सेठानी ने जीवक को पसर भर घी दिलवाया। जीवक ने उस पसर भर घी को नाना दवाइयो से पकाकर, सेठानी को चारपाई पर उतान लेटवा कर नथनों में दे दिया। नाक से दिया वह घी मुख से निकल पड़ा। सेठानी ने पीकदान में थूककर, दासी को हुक्म दिया—

'हन्दजे ! इस घी को बर्तन में रख ले।'

तब जीवक कौमार भृत्य को हुआ आश्चर्य ! यह घरनी कितनी कृपण है, जो कि इस फेंकने लायक घी को बर्तन मे रखवाती है। मेरे बहुत से महार्घ औषध इसमें पड़े हैं, इसके लिए वह क्या देगी ? तब सेठानी ने जीवक के भाव को ताड़कर जीवक को कहा—

'आचार्य ! तू किस लिए उदास है ?'

'मुझे ऐसा हुआ आश्चर्य···।'

'आचार्य ! हम गृहस्थिनें आगारिका हैं, इस संयम को जानती हैं। यह घी

दासों, कमकरों के पैर में मलने और दीपक में डालने को अच्छा है। आचार्य ! तुम उदास मत होओ। तुम्हें जो देना है, उसमें कमी नहीं होगी।'

तब जीवक ने सेठानी के सात वर्ष के शिर-दर्द को एक ही नास से निकाल दिया। सेठानी ने अरोग कर दिया, सोच जीवक को चार हजार दिया। पुत्र ने मेरी माता को नीरोग कर दिया, सोच चार हज़ार दिया। बहू ने मेरी सास को नीरोग कर दिया, सोच चार हज़ार दिया। श्रेष्ठि-गृहपति ने मेरी भार्या को नीरोग कर दिया, सोच चार हज़ार, एक दास, एक दासी और एक घोड़े का रथ दिया।[1]

बुद्धचर्या से उद्धृत उक्त कहानी तथा सेठ कारीगरों की राजस्थानी कथा में अद्भुत साम्य है। घटना की रूपरेखा बदल जाने पर भी दोनों कथाओं की भावना एक ही है, केवल कलेवर भिन्न है, आत्मा दोनो की एक है। बुद्धचर्या की कहानी ने ही परिवर्तित होते-होते सेठ और कारीगरों की कथा का रूप धारण कर लिया है अथवा जैसे इतिहास की पुनरावृत्ति होती है, उसी प्रकार उक्त घटना-सम्बन्धी आवृत्ति राजस्थान में भी हुई है, नही कहा जा सकता।

बहुत सम्भव यही है कि हजारों वर्षों से यात्रा करता हुआ 'जीवक चरित' ही 'वाणिये वाली साखी' के रूप में बदल गया है। इस प्रकार का परिवर्तन प्रायः विश्व की सभी भाषाओं में देखा जाता है।

ख. कहावतों में अर्थ और नामगत परिवर्तन

ऊपर जो उदाहरण दिये गये हैं, उनमें बाह्य रूपरेखा भले ही बदल गई हो किन्तु कहावतो की अन्तर्हित भावना मे कोई परिवर्तन नही हुआ है किन्तु जिस प्रकार अर्थ मे परिवर्तन हो जाया करता है, उसी प्रकार विकास के क्रम में कहावतों के अर्थ मे भी कभी-कभी परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। उदाहरण के लिए भारतवर्ष की अधिकाश भाषाओं मे प्रचलित 'कहाँ राजा भोज, कहाँ गंगा तेली' इस सुप्रसिद्ध लोकोक्ति को लीजिये। यह लोकोक्ति वैषम्यमूलक अर्थ में प्रयुक्त होती है किन्तु काश्मीर मे आते-आते इसी कहावत ने 'Yetih Raja Bhoj, tatih Ganga Tili.'[2] अर्थात् 'जहाँ राजा भोज, वहाँ गगा तेली' का रूप धारण कर लिया। विषमतामूलक अर्थ को छोडकर उक्त कहावत समता-द्योतक अर्थ में प्रवृत्त होने लगी। काश्मीरी कहावत-संग्रह में बतलाया गया है कि गगा तेली बडा समृद्धिशाली था तथा उसने एक बार भोज के पूर्वज विक्रमादित्य का कुछ उपकार भी किया था।

यह तो कहावत-विषयक अर्थ-परिवर्तन की चर्चा हुई किन्तु कहावत के नामों में भी लोग किस प्रकार यतेच्छ परिवर्तन कर लेते है, यह भी इसी कहावत के विविध रूपान्तरो से प्रकट है। उक्त कहावत का गगा तेली बुन्देलखड में 'ठूँठा तेली' के वेश में विचरण करता दृष्टिगोचर होता है "कहाँ राजा भोज, कहाँ ठूँठा तेली" और फिर भोजपुर मे जाकर 'भोजवा तेली' का रूप धारण कर लेता है। इसी भोजपुर में यह भोजवा कही-कही 'लखुवा' भी बन जाता है। परन्तु बाँदा प्रान्त के निवासियों ने

---

१. बुद्धचर्या, श्री राहुल सांकृत्यायन, पृष्ठ २९९-३००।

2. A Dictionary of Kashmiri Proverbs and Sayings by the Rev. J. Hinton Knowles, p. 250.

गंडू को 'कनवा' बना डाला है—'कहाँ राजा भोज, कहाँ कनवा तेली।'[1]

किन्तु नाम-परिवर्तन के सम्बन्ध में भी एक बात अवश्य कही जायगी। विभिन्न भाषाओं मे गंडू तेली के भले ही अनेक नामान्तर मिलते हों किन्तु भारतीय संस्कृति के अमर प्रतीक भोज सर्वत्र एक रहे हैं।

ग. कहावतों में पाठान्तर

कहावतो के प्रचलन का मुख्य आधार श्रुति-परम्परा है। एक व्यक्ति किसी कहावत को जिस रूप में सुनता है, ठीक उसी रूप में उसे वह हमेशा स्मरण नहीं रहती। इसलिए कहावतो मे श्रुत्यन्तरों अथवा पाठान्तरों का हो जाना स्वाभाविक है। राजस्थानी भाषा से कुछ ऐसी कहावतें यहाँ उद्धृत की जा रही हैं जिनके पाठान्तर उपलब्ध हैं—

(१) उल्टी गत गोपाल की, गई सिटल्लू मांय।
काबल में मेवा कर्‌या, टींट बिरज के मांय॥

पाठान्तर

कहूँ-कहूँ गोपाल की, गई सिटल्ली चूक।
काबुल में मेवा पके, ब्रज में टेंटी चूक॥

(२) सावण छाछ न घालती, भर बैसाखां दूध।
गरज दिवानी गूजरी, घर में मांदो पूत॥

पाठान्तर

गरज दिवानी गूजरी, नूत जिमावै खीर।
गरज मिटी गुजरी नटी, छाछ नहीं रै बीर॥
आरत मीठी आपको, घर में मांदो पूत।
सांवण छाछ न घालतो, जेठ में काचो दूध॥
गरज दिवानी गूजरी, अब आई घर कूद।
सावण छाछ न घालती, भर बैसाखां दूध॥

(३) राड़ आडी बाड़ चोखी।

पाठान्तर

राड़ सूं बाड़ भली।

(४) निकली होठां, चढ़ी कोठां।

पाठान्तर

निकली होठां बेंधगी पोटां।

(५) रावलै रो तेल पल्ले में ही चोखो।

पाठान्तर

रावलो तेल ने खोला में ई झेल।

घ. कहावतों के रूपों में परिष्कार

बहुत सी कहावतें ऐसी होती हैं जो अपने संतुलित और सुन्दर पद-विन्यास

---

१. लोकवार्त्ता, सितम्बर १९४४ में श्री कृष्णानन्द गुप्त का लेख 'कहावतें—एक तुलनात्मक अध्ययन', पृष्ठ २०२, २०३।

के कारण लोकप्रियता प्राप्त कर लेती हैं। ऐसी कहावतों के पीछे ऐतिहासिक विकास की एक परम्परा पाई जाती है। स्टर्न (Sterne) की एक प्रसिद्ध कहावत है 'God tempers the wind to the shorn lamb.'। स्टर्न को यह उक्ति जार्ज हर्बर्ट (सन् १६४०) के लेखों में निम्नलिखित रूप में प्राप्त हुई थी—

'To a close shorn sheep God gives wind by measure.'

कहते हैं कि हर्बर्ट ने यह उक्ति फ्रेंच भाषा से ली थी और फ्रेंच भाषा ने इसे लेटिन से ग्रहण किया था।[१]

ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट है कि अनेक कहावतों के रूपों में परिष्कार होता रहता है। अपने वर्तमान रूप मे आते-आते उनको न जाने कितना समय लग जाता है।

कहावतों के विकास के अध्ययनार्थ आक्सफार्ड डिक्शनरी आव् इंगलिश प्रावर्ब्स (Oxford Dictionary of English Proverbs) का बडा महत्त्व है। इसमे प्रत्येक अँग्रेजी कहावत का कालक्रमागत इतिहास प्रस्तुत किया गया है।

ङ कहावतों का लोप और निर्माण—

विशेष परिस्थितियों में जिन कहावतों का प्रादुर्भाव होता है, उन परिस्थितियों के समाप्त होने पर धीरे-धीरे वे कहावतें भी लुप्त होने लगती हैं। 'कमावै धोती हाला, खा ज्याय टोपी हाला' एक राजस्थानी कहावत है जिसका अभिप्राय यह है कि हिन्दुस्तानी कमाते है और अंग्रेज खा जाते हैं। इस कहावत का निर्माण और प्रचलन अंग्रेजो के शासन-काल में हुआ था किन्तु अब देश के स्वतन्त्र हो जाने के बाद इस प्रकार की कहावतें धीरे-धीरे लुप्त हो जायँगी अथवा अंग्रेजी शासन-काल के स्मारक के रूप में राजस्थानी कहावतो के संकलनो की शोभा बढाती रहेंगी।

इसी प्रकार जिन कहावतों में राजस्थान के जागीरदारों से त्रस्त प्रजा की मनोवृत्ति का चित्रण हुआ है, वे भी अब काल के प्रवाह में बह जायँगी क्योंकि जब जागीरदारी प्रथा ही समाप्त हो गई है तो ऐसी कहावतों का व्यवहार भी अब नहीं के बराबर रह जायगा। जो सिक्के व्यवहार में नही आते, वे अजायबघरों की शोभा बढाया करते है।

कुछ अश्लील कहावतें भी होती हैं जो समाज के अशिक्षित-वर्ग मे प्रचलित रहती है किन्तु किसी प्रदेश में ज्यों-ज्यो शिक्षा का प्रचार बढता है, उस प्रदेश के निवासियों का जीवन-स्तर भी ऊँचा उठने लगता है जिसके परिणामस्वरूप ऐसी कहावतों को लोग हेय समझने लगते है।

बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, बहु विवाह, दहेज आदि से सम्बन्ध रखने वाली कहावतें भी तभी तक टिक पाती है जब कोई समाज रूढियों से ग्रस्त रहता है।

राजस्थान की एक कहावत में कहा गया है कि 'बैन हाँती री धणियाणी है, पांती री कोय नी' किन्तु यदि कभी पिता की सम्पत्ति में भाई के साथ बहिन को भी हिस्सा मिलने लगा तो इस प्रकार की कहावतों का रूप ही बदल जायगा।

इसी प्रकार यदि कृत्रिम वर्षा के प्रयोग कभी सफल हो गये अथवा सिंचाई

---

१. देखिये—Oxford Dictionary of English Proverbs compiled by W. G. Smith. p. 122.

की नूतन योजनाओं के परिणामस्वरूप देश में जल का अभाव दूर हो गया तो 'खेती बादल् में है' जैसी कहावतों का भी इतना महत्त्व नही रह जायगा।

जिस प्रकार पुरानी कहावतें, अप्रचलित अथवा लुप्त होती हैं, उसी प्रकार परिस्थितियों की विशेषता के कारण नूतन कहावतों का भी निर्माण होता है। चीनी के कंट्रोल के दिनों मे एक कहावत मैंने सुनी थी :

'मुरै की सांड और कंट्रोल की खाड कदेई न्हाल कोनी करै।'

अर्थात् बिना नकेल की ऊँटनी तथा कट्रोल की खाँड से हैरान ही होना पड़ता है।

किन्तु इस प्रकार की कहावते चिरस्थायी नही हुआ करती। देश की आर्थिक परिस्थितियो में परिवर्तन के साथ-साथ ऐसी कहावतें उद्भूत होती है और जब वे किसी आवश्यकता की पूर्ति नही करती तो विलीन हो जाती हैं।

इस प्रकार बहुत सी पुरानी कहावतों का अप्रचलन और उनका लोप तथा समय-समय पर नई कहावतो का निर्माण लोकोक्ति-संसार का नियम है किन्तु जिन कहावतों में सार्वजनिक सत्यों की अभिव्यक्ति होती है, वे निरन्तर चमकने वाले रत्नों की भाँति जगमगाती रहती है, उनकी आभा कभी मन्द नही पड़ती।

तृतीय अध्याय

राजस्थानी कहावतों का वर्गीकरण

वर्गीकरण के सिद्धान्त

कहावतों का वर्गीकरण किस आधार अथवा किन आधारों पर किया जाय, वास्तव में यह एक बड़ा जटिल प्रश्न है। एक ही कहावत को भिन्न-भिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से देखते हैं। उदाहरण के लिए एक राजस्थानी कहावत को लीजिये 'काणती भेड़ को ऱ्याड़ो ही न्यारो' अर्थात् कानी भेड का रहन-सहन ही अलग है। इसी आशय को व्यक्त करने वाली अन्य भाषाओं की भी कुछ लोकोक्तियाँ निम्नलिखित हैं :

(१) अलगी विलरिया के अलगे डेरा—भोजपुरी

(२) मुरारेस्तृतीयः पन्थाः—सस्कृत

(३) कानी गैया के अलगे बठान—बिहारी

उक्त राजस्थानी कहावत तथा कहावत नं० १ और ३ को पशुओं सम्बन्धी कहावतों के अन्तर्गत रखा जा सकता है, इनका सम्बन्ध सासारिक ज्ञान से जोडा जा सकता है, इन्हे सामाजिक कहावते भी कहा जा सकता है, अथवा ये कहावतें नैतिक अथवा चारित्रिक दुर्बलता को भी प्रकट कर सकती है। इसलिए कठिनाई यह है कि इन कहावतों को कौनसे वर्ग में रखा जाय ?

दूसरी बात यह है कि कहावतो का एक सामान्य वर्ग निर्धारित कर देना भी बड़ा दुष्कर व्यापार है क्योकि कहावतों के विषय इतने विविध होते हैं कि उनकी इयत्ता निर्धारित नही की जा सकती। किसी सामान्य वर्ग मे कई उपविभाग बनाये जायँ तो यह कठिनाई और भी बढ जाती है।

फिर भी वर्गीकरण के सम्बन्ध में विद्वानो ने कई सिद्धान्त स्थिर किये है।[१] संभवतः सबसे सरल और सीधा ढग तो वह है जिसका अनुसरण फैलन ने अपने कहावतों के कोश में किया है। उन्होने कहावतों के पहले शब्द को लेकर अकारादि-क्रम से उनका विन्यास कर दिया है। लेकिन इस पद्धति की त्रुटि यह है कि एक कहावत को सभी लोग उसी ढंग से शुरू नही करते। तब या तो यह हो सकता है कि कहावतों के पदार्थों को लेकर उनका वर्गीकरण किया जाय अथवा वर्ण्य-विषय को लेकर उनके वर्ग स्थिर किये जायँ। पहली पद्धति के अनुसार पक्षी, पेड़-पौधे आदि वर्गों के अन्तर्गत कहावतें रखी जायँगी, दूसरी पद्धति के अनुसार नीति-धर्म, अन्ध-विश्वास आदि वर्ग निर्धारित किये जायँगे। लेकिन कहने में उक्त दोनों पद्धतियाँ जितनी सरल दिखाई पड़ती हैं, व्यावहारिक दृष्टि से उनका निर्वाह उतना ही कठिन है। संभवतः वर्ण्य-

---

१. द्रष्टव्य बिहार प्रावर्ब्स (Behar Proverbs) के सम्पादक जान क्रिश्चियन (John Christian) के नाम लिखा हुआ जी० ए० ग्रियर्सन का पत्र (भूमिका में उद्धृत)।

विषय को लेकर कहावतों का वर्गीकरण करना अधिक उपादेय है और सबसे अन्त में एक ऐसी सूची दी जा सकती है जिसमें कहावतों के प्रत्येक महत्त्वपूर्ण शब्द का समावेश कर दिया जाय। यह सूची नितान्त आवश्यक है क्योंकि यदि इस प्रकार की सूची न दी जाय तो कहावतें आसानी से ढूँढ़ी नही जा सकतीं और यदि वे ढूँढ़ी न जा सकें तो फिर उनकी कोई उपयोगिता नहीं रह जाती। कहावतों के संग्रह तो एक प्रकार से संदर्भ-ग्रन्थ होते हैं और संदर्भ-ग्रन्थों की सब से बड़ी उपयोगिता यह है कि उन्हें आसानी से प्रयोग में लाया जा सके।

Behar Proverbs के सम्पादक ने कहावतो को निम्नलिखित छः वर्गो में विभक्त किया है—

(१) मनुष्य की कमजोरियों, त्रुटियों तथा अवगुणों से संबद्ध।
(२) सासारिक ज्ञान-विषयक।
(३) सामाजिक और नैतिक।
(४) जातियों की विशेषताओं से सम्बद्ध।
(५) कृषि और ऋतुओ-सम्बन्धी।
(६) पशु और सामान्य जीव-जन्तुओं से सम्बन्धित।

इसी प्रकार मैनवारिंग (Manwaring) ने अपनी मराठी प्रावर्ब्स (Marathi Proverbs) नामक पुस्तक मे कहावतों के १४ वर्ग निर्धारित किये है—कृषि, जीव-जन्तु, अंग और प्रत्यंग, भोजन, नीति, स्वास्थ्य और रुग्णता, गृह, धन, नाम, प्रकृति, सम्बन्ध, धर्म, व्यापार और व्यवसाय तथा प्रकीर्ण।

कहावतो के वर्गीकरण के सम्बन्ध मे जो चर्चा ऊपर की गई है, उससे मेरा अभिप्राय यह दिखलाने का रहा है कि वर्गीकरण की पद्धति के सम्बन्ध मे कहीं ऐकमत्य दिखलाई नही पड़ता और जहाँ तक मैं समझता हूँ, इस विषय में मतभेद बराबर बना रहेगा।

अपने द्वारा किये हुए राजस्थानी कहावतों के वर्गीकरण के विषय मे दो शब्द कहना यहाँ अप्रासगिक न होगा। रूप और वर्ण्य-विषय दोनों को लेकर मैंने राजस्थानी कहावतो का अध्ययन किया है। रूपात्मक अध्ययन करते समय मैंने तुक, छन्द, अलंकार, लौकिक न्याय, अध्याहार, सवाद, संख्या, व्यक्ति आदि उन सभी तत्त्वो पर विचार किया है जिन्होने राजस्थानी कहावतों के रूप को किसी न किसी अंश में प्रभावित किया है। वर्ण्य-विषय को लेकर मैंने राजस्थानी कहावतों का निम्नलिखित वर्गीकरण किया है :

(१) ऐतिहासिक कहावतें।
(२) स्थान-सम्बन्धी कहावतें।
(३) राजस्थानी कहावतों में समाज का चित्र।
  (क) जाति-सम्बन्धी कहावतें।
  (ख) नारी सम्बन्धी कहावत।
(४) शिक्षा, ज्ञान और साहित्य।
  (क) शिक्षा-सम्बन्धी कहावतें।
  (ख) मनोवैज्ञानिक कहावतें।

(ग) राजस्थानी साहित्य में कहावतें।

(५) धर्म और जीवन-दर्शन।

(क) धर्म और ईश्वर-विषयक कहावतें।

(ख) शकुन-सम्बन्धी कहावतें

(ग) लोक-विश्वास-सम्बन्धी कहावतें।

(घ) जीवन-दर्शन-सम्बन्धी कहावतें।

(६) कृषि-सम्बन्धी कहावतें।

(७) वर्षा-सम्बन्धी कहावतें।

(८) प्रकीर्ण कहावतें।

वर्गीकरण के सम्बन्ध मे यद्यपि मैंने अनेक ग्रन्थो से लाभ उठाया है तथापि किसी भी वर्गीकरण को मैंने ज्यों का त्यों नही अपनाया है। अपने द्वारा किए हुए वर्गीकरण को यथासाध्य वैज्ञानिक रूप देने का प्रयत्न किया गया है।

(क) रूपात्मक वर्गीकरण

१. राजस्थानी कहावतों में तुक के विविध रूप

तुक का महत्त्व—कहावतो के निर्माण मे तुक का बडा हाथ रहता है। तुकान्त रचना आसानी से याद हो जाती है और स्मृति में चिरस्थायित्व प्राप्त कर लेती है। भूल जाने पर भी अपेक्षाकृत सरलता से उसका पुनः स्मरण किया जा सकता है तथा सामान्यतः शुष्क गद्यात्मक वाक्य की अपेक्षा तुकान्त-रचना में अधिक आकर्षण भी पाया जाता है। यही कारण है कि तुकान्त-चोकोक्तियाँ अधिक लोकप्रिय हो जाती हैं।

तुक के विविध रूप राजस्थानी कहावतो मे उपलब्ध होते है जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं :—

(१) **द्विधा विभक्त**—तुकान्त कहावतो में से अधिकाश दो भागों में विभक्त रहती है और इन भागो के अन्तिम शब्दो की परस्पर तुक मिलती है। जैसे,

(क) कीड़ी नै कण, हाथी नै मण।

अर्थात् ईश्वर चीटी को उदर-पूर्ति के लिए जहाँ कण भर देता है, वहाँ हाथी को मन भर दे देता है।

(ख) काल्या जी का सूत, जाया जी का पूत।

अर्थात् सूत तो उसी का है जो कातता है और पुत्र उसी का है जो उसे पैदा करता है।

(ग) गोद को छोरो, राखणो दोरो।

अर्थात् गोद के पुत्र का रखना कठिन होता है।

कुछ कहावतें ऐसी भी होती हैं जो दो भागों में विभक्त तो रहती हैं किन्तु जिनके केवल अन्तिम शब्दों की ही परस्पर तुक नही मिलती, प्रथम और अन्तिम शब्दों की भी तुक मिलती हैं। जैसे,

(घ) **करन्ता सो भोगन्ता, खोदन्ता सो पड़न्ता।**

अर्थात् प्रत्येक मनुष्य को अपनी करनी का फल भोगना पड़ता है। जो दूसरों के लिए खड्डा खोदता है, वह स्वयं उसमें गिरता है।

(२) **त्रिधा विभक्त**—अनेक कहावतें ऐसी भी मिलती है जो तीन भागों में विभक्त रहती हैं और प्रत्येक भाग के अन्तिम शब्द की शेष भागो के अन्तिम शब्दों से तुक मिलती है। उदाहरणार्थ :

(क) एक बार योगी, दो बार भोगी, तीन बार रोगी।

अर्थात् योगी एक बार शौच जाता है, भोगी दो बार और रोगी तीन बार।

(ख) एक दिन पावणूं, दूजे दिन अनखावणू, तीजे दिन बाप को मुंघावणू।[1]

अर्थात् मेहमान तो एक दिन का ही होता है, दूसरे दिन वह अन्न खाने वाला (धन बरबाद करने वाला) समझा जाता है, अनादरणीय हो जाता है और तीसरे दिन तो वह गाली के योग्य हो जाता है अर्थात् सर्वथा उपेक्षणीय बन जाता है।

तीन भागो में विभक्त कहावते अपेक्षाकृत सख्या मे कम है।

(३) **चतुर्धा विभक्त**—अनेक कहावते ऐसी भी हैं जो आकार-प्रकार में छन्द के चार चरण जैसी जान पडती है। उदाहरण के लिए कुछ कहावते लीजिये :

(क) चालणी को चाम, घोड़े की लगाम।
संजोगी को जाम, कदे न आवै काम॥

अर्थात् चलनी का चमड़ा, घोड़े की लगाम और जोगी का लडका, ये तीनों किसी के नही होते।

(ख) कातिक की छांट बुरी, बाणियां की नाट बुरी,
भाया की आंट बुरी, राजा की डाँट बुरी।

अर्थात् कार्तिक की वर्षा बुरी, बनिये को 'नही' बुरी, भाइयों की लडाई बुरी और राजा की डाँट बुरी।

उक्त दोनो कहावतो में से प्रत्येक में चार-चार चरण है और प्रत्येक चरण के अन्तिम शब्दो की तुक मिलती है।

(४) **तुकों की झड़ी**—कुछ कहावतें ऐसी भी मिलती हैं जिनमें चरणों की कोई सीमा नही रहती, जिनमें तुकों की झडी-सी लग जाती है और जो प्रवाह और लय के साथ-साथ आगे बढ़ती चली जाती हैं। उदाहरण के लिए एक ऐसी कहावत पर विचार कीजिये—

'ओछो बोरो
गोद को छोरो
मुरै की साड
नातै की रांड
ओछै की प्रीत
बालू की भीत.....कदेई न्हाल कोनी करै।'

अर्थात् निकृष्ट ऋणदाता, गोद का लड़का, बिना नकेल की ऊँटनी, नाते की स्त्री (वैदिक मन्त्रो द्वारा जिसका विवाह-संस्कार न हुआ हो), ओछे मनुष्य की प्रीति तथा बालू की दीवार, ये कभी निहाल नही करते।

---

१. मिलाइये : 'एक दिन पहुना, दोसर दिन ठेहुना, तीसर दिन केहुना।'
(भोजपुरी लोकोक्ति)

इस प्रकार की कहावतो में वक्ताओं के मुख से एक साथ कहीं कम और कहीं अधिक तुकें सुनाई पड़ती हैं। ये कहावते आकार में इसी प्रकार की होती हैं।

(५) **खण्ड-हीन**—अनेक कहावतें ऐसी भी मिलती है जिनके पहले और अन्तिम शब्द में तुक तो दिखाई पडती है किन्तु जिनके कोई विभाग नही किये जा सकते, जो एक ही साँस में बोल दी जाती हैं। उदाहरणार्थ :

(क) जाणे सो ताणे।

अर्थात् बात को वही खीचता है (आगे बढाता है) जो जानता है।

(ख) साठी बुध नाठी।

अर्थात् साठ वर्ष की आयु होने पर मनुष्य की बुद्धि नष्ट हो जाती है।

(ग) हजारी बजारी।

अर्थात् जो सहस्राधीश है, वह बाज़ार से चाहे जो चीज खरीद सकता है।

(घ) पेट करावे वेठ।

अर्थात् पेट के लिए संघर्ष करना पड़ता है।

(ङ) शकती लारे भगती।

अर्थात् शरीर की शक्ति के अनुसार ही भक्ति की जाता है।

(च) तगी में कुण सगी।

अर्थात् धनाभाव या गरीबी की अवस्था में कोई साथ नही देता।

(६) **आंतरिक**—असंख्य कहावते ऐसी भी हैं जिनमें आतरिक तुक का निर्वाह देखा जाता है। आतरिक तुक नाद-सौन्दर्य की वृद्धि मे सहायक होता है। गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस में भी अनेक स्थानो पर आन्तरिक तुक का प्रयोग हुआ है।[1]

आन्तरिक तुक से सम्बन्ध रखने वाली कुछ राजस्थानी कहावतें लीजिये—

(क) **गाडी** सैं र **लाडी** सैं बच कर रैणं।

अर्थात् गाड़ी से और पहली स्त्री की मृत्यु के बाद लाई हुई नवविवाहिता स्त्री से बचकर रहना चाहिए।

(ख) झूठ को **बोलणियो** र धरती पर **सोवणियो** संकडेलो क्यूं भुगतै ?

अर्थात् झूठ बोलने वाला और धरती पर सोने वाला तगी क्यो सहे ?

(ग) मरै जको तो **बोली** सैं ही मर ज्यावै नई **गोली** सैं ही कोनी मरै।

अर्थात् प्रतिष्ठित मनुष्य के लिए तो अनादर ही मृत्यु के समान है।

(घ) **ओसर** चूक्या नै **मोसर** कोनी मिलै।

अर्थात् गया हुआ अवसर दुबारा हाथ नही आता।

(ङ) **ठाकर** नै **चाकर** घणा।

अर्थात् ठाकुर को सेवकों की क्या कमी है ?

(च) **चोरी** को धन **मोरी** में जाय।

अर्थात् चोरी का धन लाभप्रद नहीं होता, योंही बरबाद हो जाता है।

---

१. कब लगि रहिय सहिय मन मारे।
नाथ साथ धनु **हाथ** हमारे॥ (रामचरितमानस)

(छ) **रूआं धूआं अर मूंवां, जाड़ो कौनी लागै ।**

अर्थात् जिन पशुओं की पीठ पर बाल होते है, उनको जाडा नहीं सताता, अग्नि के पास जाडा नही लगता तथा मृतक को जाड़े से कोई भय नही रहता ।

(ज) **कम खाणो, र गम खाणो फायदो ही करै ।**

अर्थात् कम खाने तथा धैर्य धारण करने से लाभ ही होता है ।

ऊपर की कहावतो में जहाँ आन्तरिक तुक है, वहाँ शब्दो को मोटे टाइप में छापा गया है । आन्तरिक तुक के राशि-राशि उदाहरण राजस्थानी कहावतों में सहज ही मिल जायेंगे ।

(७) **तुक और संख्या**—कहावतों मे जहाँ संख्या का प्रयोग होता है, वहाँ तुक का महत्त्वपूर्ण योग रहता है ।

(क) 'छोड़ो ईस, बैठो बीस' राजस्थानी की एक कहावत है जिसका आशय यह है कि चारपाई की पाटी छोड़ दी जाय तो उस पर चाहे बीस आदमी बैठ जायँ, वह नही टूटेगी । यहाँ अनिश्चित संख्या के द्योतनार्थ निश्चित संख्या बीस का जो प्रयोग हुआ है, उसका मुख्य कारण 'ईस' के साथ तुक का निर्वाह करना है । 'बीस' के प्रयोग से "बैठो और बीस" में अनुप्रास की भी रक्षा हो गई है ।

इसी प्रकार (ख) "आँख है जो लाख है" में भी निश्चित संख्या "लाख" का प्रयोग आँख के साथ तुक मिलाने के लिए ही किया गया है ।

(८) **तुक और व्यक्ति**—कभी-कभी तुक के लिए भी कहावतों में तदनुरूप व्यक्तिवाचक नाम की कल्पना कर ली जाती है । जैसे,

(क) "अर्जन जैसा ही फर्जन, अर्थात् जैसे अर्जुन हैं, वैसे ही है उनके फर्जन्द (लड़के) । जैसा पिता, वैसा ही पुत्र । यहाँ "फर्जन" से तुक मिलाने के लिए "अर्जुन" नाम की कल्पना कर ली गई है ।

(ख) भाई भूरा, लेखा पूरा ।

निमन्त्रण में भोज्य-द्रव्य जब ठीक पर्याप्त ही रहा हो और भोजन कर लेने के बाद बचा भी कुछ न हो तथा निमंत्रितो को असली स्थिति का पता भी न चले तो उक्त लोकोक्ति का सामान्यतः प्रयोग किया जाता है । यहाँ "पूरा" से तुक मिलाने के लिए "भूरा" नाम का प्रयोग हुआ है ।

(९) **तुक और तथ्य**—अनेक लोकोक्तियाँ ऐसी भी मिलती हैं जिनमें तुक की ओर पहले ध्यान दिया गया है, तथ्य की ओर बाद में । इस प्रकार की लोकोक्तियों में तुक का चमत्कार जितना मिलता है, उतना तथ्य का नही । उनमें तथ्य को लक्ष्य में रखकर तुक पर नही पहुँचा जाता, तुक को लक्ष्य में रखकर तथ्य पर पहुँचा जाता है । उदाहरण के लिए एक राजस्थानी कहावत लीजिए—

आँख फड़ूकै बाँई । कै वीर मिलै कै साँई ।

अर्थात् यदि स्त्री की बाँई आँख फड़के तो या तो भाई मिले या पति मिले । साधारणतः लोक-विश्वास के अनुसार स्त्री की बाँई आँख का फड़कना शुभ और दाहिनी आँख का फड़कना अशुभ समझा जाता है किन्तु उक्त लोकोक्ति में शुभ परिणाम का जो स्वरूप निश्चित किया गया है, वह सब तुकदेव की कृपा है ।

ऊपर दी हुई कहावत में तुक की प्रमुखता अवश्य है किन्तु वस्तुतः तथ्य का

कोई हनन नही है, तुक का आश्रय लेने के कारण तथ्य को अपनी अभिव्यक्ति के लिए केवल एक नूतन प्रकार मिल गया है। तुक के लिए यदि तथ्य का बलिदान होता रहे तो केवल तुक के भरोसे लोकोक्तियाँ चिरस्थायित्व प्राप्त नहीं कर सकतीं। जिन कहावतों में तुक और तथ्य समान रूप से अपना जौहर दिखाते हैं, वे लोक-प्रियता के साथ-साथ मानस-पट पर भी चिर काल तक अंकित रहती है। 'भूख कै लगावण कोनी, नींद कै बिछावण कोनी' एक ऐसी ही कहावत है जो उदाहरण के तौर पर यहाँ रखी जा सकती है।

राजस्थानी कहावतों में, जैसा ऊपर दिखाया गया है, तुक के विविध रूप प्राप्त होते है किन्तु इसका अर्थ यह नही है कि इस भाषा में अतुकान्त कहावतों की संख्या कुछ कम है। राजस्थानी में अतुकान्त कहावतें भी बहुत बड़ी सख्या में उपलब्ध हैं।

२. राजस्थानी कहावतों में छन्द के विविध रूप

(१) **लय का महत्त्व**—"छन्दः-स्पन्दन समग्र सृष्टि मे व्याप्त है। कलाएँ ही नही, जीवन की प्रत्येक शिरा मे यह स्पन्दन एक नियम से चल रहा है। सूर्य, चन्द्र, ग्रह-मण्डल और विश्व की प्रगति मात्र में एक लय है जो समय के ताल पर यति लेती हुई अपना काम कर रही है। टेलेस्कोप, माइक्रोस्कोप, मनुष्य के निरावृत्त नेत्र तथा मनुष्य के मस्तिष्क के भीतर से विज्ञान ज्यो-ज्यो सृष्टि को देखता है, त्यों-त्यों उसे प्रत्यक्ष होता जाता है कि यह महान् सृष्टि एक अद्भुत सुर-सामंजस्य के बीच बँधी हुई है, इस क्रम मे छन्दोभंग नही होता, यतियाँ खिचकर आगे नही जाती, तथा समय अपनी ताल देना नही भूलता। केवल स्वर वाली कलाएँ ही नही, प्रत्युत चित्रण मूर्ति और स्थापत्य की कलाएँ भी काट-छाँट, रूप और रग के सतुलित प्रयोग से, इसी सामंजस्य का अनुसरण करती है।'[1]

ऊपर की पक्तियों में जिस स्वर-सामंजस्य की चर्चा की गई है, उसके दर्शन हमें कहावतों में भी होते हैं। लय, स्वर-सामंजस्य का ही एक रूप है। "एक विशिष्ट प्रकार की अविच्छिन्न प्रवहमान नियमित स्वर-लहरी या ध्वनि-समूह को 'लय' की संज्ञा दी गई है।"[2] तुक से भी कही अधिक महत्त्वपूर्ण है लय, क्योकि लय से ही किसी छन्द को गति मिलती है। तुकान्त रचनाएँ तो लय का आधार लेकर चलती ही हैं, अतुकान्त रचनाएँ भी लय का आश्रय नही छोड़ती यहाँ तक कि "मुक्त छन्द" भी लय से मुक्त होना नही चाहता। लयप्रधान कहावतों मे तुक और लय के प्रयोग की जो विशेष प्रवृत्ति देखी जाती है, उसका मुख्य कारण यह है कि कहावते प्रायः अलिखित होती है और अलिखित रचनाएँ तुक और लय की सहायता से न केवल स्मृति-पट पर चिरकाल तक अंकित रहती हैं बल्कि उनको यथेच्छ स्मृति-पथ में ले जाना भी अपेक्षाकृत सुगम होता है।

(२) **तुक और लय**—राजस्थानी कहावतों में तुक के विविध रूपों पर पहले

---

१. हिन्दी कविता और छन्द—श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' पारिजात, फर्वरी १९४६।

२. मुक्त छन्दों का विश्लेषण (श्री पुत्तूलाल शुक्ल एम. ए.,) हिन्दी अनुशीलन, वर्ष ४, अंक ३।

विचार किया जा चुका है। पद्यात्मक कहावतों में जितना महत्त्व तुक का है, उतना ही महत्त्व है लय का। जिन कहावतो में तुक का प्रयोग किया जाता है, उनमें तो तुक के साथ-साथ लय भी मिलती है। तुक के प्रकरण में ऐसी कहावतों के अनेक उदाहरण पहले दिए जा चुके हैं। किन्तु ऐसी भी बहुत सी राजस्थानी कहावतें हैं जिनमें तुक भले न हो, लय का प्रयोग प्रायः देखने को मिलता है। उदाहरण के लिए ऐसी कुछ कहावते लीजिये–

(१) घर का पूत कुँवारा डोलै, पाड़ोसी को नौ नौ फेरा।

अर्थात् घर के लड़के कुँवारे भटकते हैं जब कि पडौसी के यहाँ नौ-नौ भाँवर होते हैं।

(२) बुरी बुरी बामण कै सिर।

अर्थात् बुराई के लिए ब्राह्मण उत्तरदायी है।

इस प्रकार की कहावतो मे 'पूर्ण लय' का संगीत नही मिलता पर उसका एक लयांश रहता है, जिसे अग्रेजी मे 'रिदम' कहते है, इस लय को तुक और सुविधामय बना देती है।[1]

नीचे की राजस्थानी कहावतो मे तुक के प्रयोग के कारण 'लयाश' खिल उठा है।

(१) 'भाई बड़ो न भय्यो, सब से बडो रुपय्यो।'

अर्थात् न भाई बडा है, न भैया, सबसे बडा रुपया है।

(२) 'माया अंट की, विद्या कठ की।'

अर्थात् धन पास हो और विद्या कठस्थ हो, तभी काम आते है।

(३) 'स्यालो तो भोगी को, र ऊंद्यालो जोगी को।'

अर्थात् भोगी तो जाड़े की ऋतु में आनन्द मनाता है और योगी गर्मी में सुख पाता है।

(३) **कहावतें और आंशिक छन्द रचना**—जब कोई कवि दोहे तथा अन्य छन्दों की सृष्टि करता है तो छन्दशास्त्र के नियमानुसार वह सभी चरण बनाता है। किसी ने दोहे छन्द के केवल दो चरण ही बनाये तो दोहा अधूरा ही रह जायगा, चारों चरण बन जाने पर ही छन्द पूरा समझा जाता है किन्तु कहावत के सम्बन्ध में ऐसा कोई प्रतिबन्ध नही है। किसी छन्द का केवल एक चरण ही कहावत के रूप में प्रयुक्त हो सकता है, कभी-कभी कहावत के लिए दो चरणो की आवश्यकता पड़ सकती है और कभी-कभी चारो चरण ही कहावत के रूप में प्रयुक्त हो सकते हैं। क्रमशः एक-एक उदाहरण लीजिये—

(क) एक चरण वाली कहावतें—'घिरत ढुल्यो मूंगां कै मांय'; 'वाण्यो लिखै पढ़ै करतार।'

इन दोनों कहावतों को 'चौपई छन्द' के एक-एक चरण के रूप में अथवा वीर छन्द के एक चरण के उत्तरार्द्ध के रूप में ग्रहण किया जा सकता है। इस प्रकार की अनेक कहावतें राजस्थानी भाषा में हैं जिनको लेकर पूरे छन्द बनाये जा सकते हैं।

(ख) दो चरणों वाली कहावतें—'फागण में सी चौगणो, जे चालैगी बाल।'

यह एक कहावत है जिसका अर्थ यह है कि यदि हवा चले तो फाल्गुन में चौगुना जाडा पड़ने लगेगा। इस कहावत में दोहे छन्द के दो चरण हैं जिनमें क्रमशः

---

१. ब्रज लोक-साहित्य का अध्ययन—डा० सत्येन्द्र, पृष्ठ; ५३२।

१३ और ११ मात्राएँ हैं। यह कहावत दोहे के अवशिष्ट चरणों की अपेक्षा नहीं रखती। दो चरणों में ही कहावत समाप्त हो गई है। इस प्रकार की कहावतें राजस्थान में बहुत बड़ी संख्या में उपलब्ध हैं। उदाहरण के लिए ऐसी कुछ कहावतें लीजिये—

(१) चूनड ओढै गाँठ की, नाव पीर को होय।

अर्थात् चुनरी तो अपने पास से पैसे खच करके ओढ़ती है और नाम पीहर का होता है। जिसके पीहर वाले गरीब हों, उसके सम्बन्ध में उक्ति है।

(२) जैकी चाबै घूघरी, बैका गावै गीत।

अर्थात् जो जिसका खाता है, वह उसी के गीत गाता है।

(३) पाँच सात की लाकडी, एक जणै को भार।

अर्थात् यदि पाँच-सात आदमी मिलकर बोझ को आपस में बाँट लें तो उनके हिस्से मे एक-एक लकडी आती है; यदि न बाँटे तो एक के लिए वह भार-रूप हो हो जाता है। विवाह आदि मे मदद के लिए इस कहावत का प्रयोग होता है।

(४) बाप न मारी ऊदरी, बेटो तीरदाज।

अर्थात् पिता ने तो चुहिया भी नही मारी और पुत्र तीरन्दाज कहलाता है।

(५) सीर सगाई चाकरी, राजीपैरो काम।

अर्थात् साझा, सम्बन्ध और नौकरी दोनों ओर से राजी रहने पर ही निभ सकते हैं।

(६) मना विहूणा पावणा, घी घालूँ अक तेल।

अर्थात् हे बिना मन के पाहुने! तुम्हे घी खिलाऊँ या तेल?

(७) बाहर बाबू सूरमा, घर मे गीदड़दास।

अर्थात् बाहर तो बाबू साहब सूरमा कहलाते हैं और घर में गीदड़दास बने बैठे है!

उक्त कहावतो में दोहे के दो-दो चरणो का प्रयोग हुआ है। किन्तु दोहे के अतिरिक्त अन्य छन्दों के दो चरण भी राजस्थानी कहावतों में प्रयुक्त होते हैं। उदाहरणार्थ नीचे की कहावतों मे 'चौपई' छन्द के दो-दो चरणों का प्रयोग देखिये—

(१) खेती करै न बिणजी जाय।
विद्या कै बल बैठ्यो खाय॥

अर्थात् ब्राह्मण न खेती करता है, न वाणिज्य के लिए जाता है, वह अपनी विद्या के बल पर बैठा खाता है।

(२) बड्डी भू का बड्डा भाग।
छोटो बनड़ो घणा सुहाग॥

अर्थात् वर यदि छोटा हो और बहू बडी हो तो बहू के वृद्ध होने पर भी वह युवा ही रहेगा, इसलिए वर की ओर से स्त्री को अपनी मृत्यु तक सौभाग्य प्राप्त होता रहेगा। यह उक्ति राजस्थान के बाल-विवाह के प्रेमियों पर घटित होती है।

(ग) चारों चरण वाली कहावतें—

गैलो भलो न कोस को, बेटी भली न एक।
लहणो भलो न बाप को, साहब राखै टेक॥

कोस का भी रास्ता चलना अच्छा नही, बेटी एक भी अच्छी नहीं, ऋण तो

पिता का भी अच्छा नही—भगवान ही टेक रखे।

इस दोहे के चारो चरण मिलाकर कहावत के रूप में प्रयुक्त है, प्रथम तीन चरण अलग-अलग स्वतन्त्र रूप से भी तीन कहावतो के रूप में लिये जा सकते हैं।

(४) **अधूरा पूरा**—राजस्थानी भाषा में दोहों तथा अन्य छन्दों मे कुछ इस तरह के प्रयास भी किये गये जिन्हें 'अधूरा पूरा' कहते है। एक प्रचलित कहावत को लेकर उसे छन्दबद्ध कर दिया गया, अन्तिम चरण या चरणो में कहावत दे दी गई तथा शेष चरणों में व्याख्या द्वारा उस कहावत की एक प्रकार से पूर्ति कर दी गई। उदाहरण के लिए तीन 'अधूरे पूरे' यहाँ दिये जा रहे है—

(१) लाखां लोहां चम्मड़ां, पहली किसा बखाण।
बहू बछेरा डीकरां, नीमटियां परवाण॥

अर्थात् लाख, लोहा, चमड़ा, बहू, घोडे का बच्चा तथा पुत्र, इनकी पहले कैसी प्रशंसा ? प्रौढ होने पर ही इनका पता चलता है।

(२) अकल सरीरां ऊपजै, विद्वी न आवै सीख।
अणमांग्या मोती मिलै, माँगी मिलै न भीख॥

अर्थात् बुद्धि शरीर के साथ पैदा होती है, समझ-बूझ किसी के द्वारा प्रदान नहीं की जा सकती। बिना माँगे मोती तक मिल जाते हैं, माँगने पर भीख भी नही मिलती।

(३) हेठि ह थाली ऊपरि थाली, जिणमें घाली सात सुहाली।
गीत गावे नो नो जणी, हाँती थोड़ी हलर घणी॥[1]

अर्थात् नीचे थाली है, ऊपर थाली है किन्तु उसके अन्दर केवल सात सुहालियाँ रखी हैं, गीत गाने के लिए नौ-नौ स्त्रियां है—"हाते" थोडी है, हलचल अधिक है।

प्रथम तथा द्वितीय 'अधूरे-पूरों' के उत्तरार्द्ध कहावते हैं तथा तृतीय अधूरे पूरे का अन्तिम चरण एक कहावत है। ऐसा भी अनेक बार देखा जाता है कि किसी कवि द्वारा सम्पूर्ण छन्द की रचना की जाती है किन्तु कहावती लोकप्रियता छन्द के किसी अंश को ही मिल पाती है।

बहुत से कहावती अश तो ऐसे होते है जिनमे मात्राएँ बराबर-बराबर रहती हैं किन्तु अनेक कहावती टुकडे ऐसे भी मिलते है जिनमें आरोह-अवरोह अथवा उच्चारण-सौकर्य के अनुसार मात्राओं में भी कमी-बेशी कर ली जाती है। यहाँ दोनों प्रकार के कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं—

(५) **सममात्रिक** (१) घड़ै कुम्हार ८ मात्राएँ
भरै ससार ८ मात्राएँ
(२) राज सल्ला को ९ मात्राएँ
काज पल्ला को ९ मात्राएं
(३) घणा हेत टूटण नै १२ मात्राएँ
बड़ा नैण फूटण नै १२ मात्राएँ

(६) **असम मात्रिक**—(१) भागां का बलिया, १० मात्राएँ
रांधी खीर, होगा दलिया १५ मात्राएँ

---

१. अजायुद्धं मुनिश्राद्ध प्रभाते मेघडंबरम्। दम्पत्योः कलहश्चैव वहारम्भो लघुक्रिया।

(२) भीज्या कान ७ मात्राएँ
हुया असनान ८ मात्राएँ
(३) मानै तो देव ९ मात्राएँ
नहिं भीत को लेव १० मात्राएँ

(७) क्षति-पूर्ति—अनेक कहावतें ऐसी भी मिलती है जिनमें दो खण्डो के बीच 'और' के लघु रूप 'र' का प्रयोग कर मात्राओं की कमी पूरी करली जाती है। 'घी बाट रो र तेल हाट रो' इस कहावत के प्रथम खण्ड 'घी बाट रो' मे ७ मात्राएँ हैं जब कि 'तेल हाट रो' मे ८ मात्राएँ है किन्तु दोनों के बीच मे समुच्चयबोधक 'र' के प्रयोग से दोनो खडों मे मात्राएँ बराबर-बराबर हो गई हैं।

(८) लय-विहीन कहावतें—बातचीत मे ऐसी भी अनेक लोकोक्तियों का प्रयोग किया जाता है जिनसे किसी विशिष्ट कहावती रूप का परिचय नही मिलता। यहाँ दो ऐसी कहावतें उद्धृत की जा रही हैं जिनमे न तुक है, न लय।

(१) सरीर कै रोगी की दवा है, मन कै रोगी की कोनी।

(२) मारणिये सैं जिवाणियूँ ठाडो[1] है।

(९) उपसहार—यहाँ मात्राओ को लेकर राजस्थानी कहावतो के छन्दों की जो विवेचना की गई है, उसका यह अर्थ कदापि न समझा जाय कि कहावत बोलने वाले छन्दशास्त्र के नियमों का पूरा अनुसरण करते है। अनेक बार वे मात्राओ को घटा-बढा कर बोलते हैं। मेरे विवेचन का मुख्य अभिप्राय केवल यह दिखलाना है कि कहावत के निर्माताओ अथवा कहावत के प्रयोक्ताओ को छन्दशास्त्र का चाहे ज्ञान न हो, फिर भी कहावतो में छन्द का स्पन्दन मिलता है और उसके असख्य रूप दृष्टिगोचर होते है। सच्ची बात तो यह है कि छन्दो का प्रयोग तो पहले होता है, नियम बाद मे बनते हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे लक्ष्य-ग्रन्थो के बाद लक्षण-ग्रन्थो का निर्माण होता है। श्री देवेन्द्र सत्यार्थी ने यथार्थ ही कहा है कि 'ग्रामीण लोग मानव-छन्द से भले परिचित न हो, 'लय' और 'ध्वनि' का परिचय उन्हे खूब होता है। मानव-छन्द अभी कल का बच्चा है, इसके मुख में दूध के दाँत दिखाई देते हैं। ध्वनि उतनी ही पुरानी है जितनी पानी की लहर। 'लय' उस समय भी थी, जब प्रभात की प्रकाश-रेखा भी न थी।'[2]

३. राजस्थानी कहावतें और अलंकार

कुछ आलकारिक लोकोक्ति नामक एक स्वतन्त्र अलकार को मानकर चले है। लोक-प्रसिद्ध कहावत का किसी प्रसंग मे जहाँ उल्लेख किया जाता है, वहाँ लोकोक्ति अलंकार होता है।[3] बाँकीदास ग्रन्थावली में से निम्नलिखित दोहे को लीजिये—

गोलां सूँ न सरै गरज, गोला जात जबून।
ऊखाणो सायद भरै, सो गोलाँ घर सून॥

अर्थात् गोलों (दासी-पुत्रो) से काम नहीं निकलता है, दासी-पुत्र की जाति ही बुरी है। यह कहावत साक्ष्य भर रही है कि सौ दासी-पुत्रों के रहते हुए भी घर सूना रहता है।[4]

१. बलवान।
२. 'वर्तमान'; १५ अप्रैल, १९५४।
३. लोकप्रवादानुकृतिर्लोकोक्तिरिति कथ्यते (कुवलयानन्द)।
४. बाँकीदास ग्रन्थावली, दूसरा भाग, पृष्ठ ८८।

उक्त दोहे के चोथे चरण में लोक-प्रसिद्ध कहावत का उल्लेख होने के कारण 'लोकोक्ति' अलंकार का प्रयोग समझना चाहिए।

इस प्रकार यद्यपि लोकोक्ति को स्वतः एक अलंकार माना जा सकता है किन्तु लोकोक्तियों के रूप-निर्माण में अनेक प्रकार के शब्दालकारो तथा अर्थालकारों का योग रहता है जिनका अध्ययन बडा मनोरंजक एवं कुतूहलवर्द्धक है। राजस्थानी कहावतो के रूपात्मक अध्ययन मे यहाँ शब्दालकार तथा अर्थालंकार दोनों ही दृष्टियों से विचार किया जा रहा है।

अ. शब्दालंकार—शब्दालंकरो मे अनुप्रास का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। विश्व की प्रायः सभी भाषाओ की कहावतों में तुक की भाँति अनुप्रास का प्रयोग भी विशेष रूप से देखा जाता है। राजस्थानी भाषा भी इसका कोई अपवाद नही है। राजस्थानी में यद्यपि सभी प्रकार के अनुप्रासों के उदाहरण मिलते हैं तथापि वृत्यनुप्रास और छेकानुप्रास के प्रयोग प्रचुरता से उपलब्ध होते हैं। इन दोनों अनुप्रासों के कुछ उदाहरण लीजिये :

(१) **वृत्यनुप्रास—पूत** का **पग पालणै** ही दीख्यावै।

अर्थात् बालक के लक्षणों को देखकर बाल्यावस्था में ही उसके भविष्य की कल्पना करली जाती है।

(२) **जमी जोरू जोर** की, **जोर** हट्यां ओर की।

अर्थात् ज़मीन और स्त्री पर से जब ज़ोर हट जाता है तो वे दूसरे की हो जाती हैं।

वर्णमाला के अक्षरो को लेकर जो कहावते राजस्थानी भाषा में मिलती हैं, उनमें भी विशेषतः वृत्यनुप्रास की ही छटा दर्शनीय है। इस प्रकार की कुछ कहावतें यहाँ उद्धृत की जा रही हैं।

(क) **दाँत दराँती दायमो, दारी और दरबान।**
ये पाँच दहा बुरा, पत राखै भगवान॥

इस कहावत मे 'द' से प्रारम्भ होने वाली पाँच वस्तुओं, दाँत, दराँती, **दायमा**, दारी (पुंश्चली स्त्री) और दरबान को बुरा ठहराया गया है।

(ख) **मोत मानगी मामलो, मदी माँगण हार।**
पाँचू मम्मा एकसा, पत राखै करतार॥

अर्थात् मृत्यु, माँदगी (बीमारी), मामला (मुकद्दमा), मंदी और माँगनेवाला (ऋणदाता) 'म' से प्रारम्भ होने वाली ये पाँच वस्तुएँ बुरी हैं, भगवान ही इनसे बचाये।

(ग) **सांसी साह सरावगी, सिरीमाल सूनार।**
ये सस्सा पाँचू बुरा, पहले करो विचार॥

अर्थात् साँसी, साह, सरावगी, श्रीमाल और सुनार, 'स' से प्रारम्भ होने वाले ये पाँचों बुरे होते हैं। पहले भली भाँति सोच-समझकर ही इनसे व्यवहार करना चाहिए।

एक ही अक्षर से प्रारम्भ होने वाली कई वस्तुओं को कहावतों में एक साथ

देने से उनको याद रखना अपेक्षाकृत सरल होता है। सम्भवतः इसी कारण इस प्रकार की कहावतो का प्रादुर्भाव हुआ होगा। वर्णमाला के अक्षरो को लेकर सोचने की यह पद्धति भी काफी प्राचीन है। वाममार्गियो के पंच 'मकार' मद्य, मास, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन भी इसी प्रवृत्ति के परिचायक जान पड़ते हैं। ऊपर उद्धृत की हुई राजस्थानी कहावतों मे भी संख्या सर्वत्र पाँच ही है।

कुछ कहावते ऐसी भी है जिनमें यद्यपि स्पष्टतः यह नही कहा गया है कि ये 'ककार' अथवा 'मकार' निकृष्ट हैं किन्तु फिर भी जो वर्णमाला के एक ही अक्षर-विशेष से प्रारम्भ होती है और गिनती को लेकर चलती हैं। उदाहरण के लिए एक ऐसी कहावत लीजिये।

कागा कुता कुमाणसा, तीन्यां एक निकास।
ज्यां-ज्यां सेर्‌यां नीसरै, त्यां-त्यां करै विनास॥

अर्थात् कौवे, कुत्ते और दुर्जन, तीनो इकसार होते है, ये जिस मार्ग से निकलते हैं, वहाँ ही विनाश करते हैं अर्थात् नुकसान पहुँचाते हैं।

अनेक कहावतें ऐसी भी हैं जो गिनती को लेकर नही चलती किन्तु वर्णमाला के एक ही अक्षर का कई बार प्रयोग होने से वृत्यनुप्रास की प्रवृत्ति जिनमे स्पष्टतः देखी जा सकती है। उदाहरणार्थ—

(क) बीछू बानर ब्याल बिष, गर्दभ गडक गोल।
ये अलगा ही राखणा, यो उपदेश अमोल॥[1]

अर्थात् बिच्छू, बन्दर, सर्प, विष, गधे, कुत्ते और दरोगे को दूर ही रखना उचित है।

(ख) काग कुहाड़ो कुटिल नर, काटै ही काटै।
सुई सुहागो सापुरस, सांठै ही सांठै॥

अर्थात् कौआ, कुल्हाडा और कुटिल मनुष्य, ये काटते ही काटते है और सुई, सुहागा और सत्पुरुष, ये जोडते ही जोडते है।

(ग) कांसी कुत्ती कुभारजा, कर लागां कूकत।
सीसो सोनो सापुरस, मधुर बाण बोलंत॥

अर्थात् काँसी, कुतिया और कुभार्या जरा-सा हाथ लगने से कूकने लगते हैं किन्तु सीसा, सोना और सत्पुरुष हाथ लगने से और भी मधुर वाणी से बोलने लगते है।[2]

छेकानुप्रास—छेकानुप्रास मे अनेक व्यजनो की स्वरूप और क्रम से एक बार आवृत्ति होती है। राजस्थानी कहावतों मे छेकानुप्रास के भी अनेक उदाहरण सहज ही उपलब्ध हो जायेगे। उदाहरण—

(१) पीसो पास को, हथियार हाथ को।

अर्थात् पैसे की उपयोगिता तभी है जब वह अपने पास हो, इसी प्रकार

---

१. मेवाड की कहावतें, भाग १—(श्री लक्ष्मीलाल जोशी); पृष्ठ ६७.

२. मिलाइये, जैसे-जैसे मुझको छेड़ें, बोलूं अधिक मधुर मोहन।—श्री सुमित्रानन्दन पंत

हथियार भी हस्तगत होने पर ही काम देता है।

(२) नेम निभाणा, धर्म ठिकाणा।

अर्थात नियम और धर्म नियमी और धर्मी के पास ही रहते हैं।

प्रथम कहावत के पूर्वार्द्ध मे 'पस' उत्तरार्द्ध मे 'हथ' तथा द्वितीय कहावत के पूर्वार्द्ध मे 'नम' की एक बार स्वरूप और क्रम से आवृत्ति होने के कारण छेकानुप्रास अलंकार है।

अन्य अनुप्रास—"भाई कै मन भाई भायो, बिना बुलाये आपै आयो" में श्रुत्यनुप्रास माना जा सकता है क्योकि इस लोकोक्ति में एक ही स्थान से उच्चरित होने वाले 'ब' और 'भ' का अनेक बार प्रयोग हुआ है। सामान्यतः इस अनुप्रास को विशेष महत्त्व नही दिया जाता।

अन्त्यानुप्रास तो तुक का ही एक प्रकार है जिसका विवेचन पहले किया जा चुका है। लाटानुप्रास शब्द और अर्थ की पुनरुक्ति होने पर भी तात्पर्य मे भेद रहता है। जैसे,

"पूत सपूता क्यूँ धन सचै, पूत कपूता क्यूँ धन सचै ?"[१]

उक्त कहावत में 'क्यूँ धन सचै' की यद्यपि शब्दतः और अर्थतः आवृत्ति हुई है किन्तु तात्पर्य की दृष्टि से भेद अवश्य है। आशय यह है कि यदि पुत्र सपूत होगा तो स्वयं कमा लेगा, कपूत होगा तो जोडा हुआ धन भी उडा देगा। इसलिए दोनो अवस्थाओ में धन-सचय करना व्यर्थ है। यह लोकोक्ति हिन्दी और राजस्थानी, दोनों भाषाओ में समान रूप से प्रसिद्ध है।

वैण सगाई—डिंगल भाषा मे एक विशेष प्रकार का अनुप्रास होता है जिसे 'वैण सगाई' कहते है। यह एक प्रकार का शब्दालंकार है जिसके अनुसार सामान्यतः किसी चरण के प्रथम शब्द का प्रथम अक्षर उस चरण के अन्तिम शब्द के प्रथम अक्षर से मिलता है। वैण सगाई का एक लोकोक्तिगत प्रयोग लीजिए---

लोह तणी तलवार न लागै, जीभ तणी तलवार जिसी।

अर्थात् लोहे की तलवार उतनी नही लगती जितनी जीभ की तलवार लगती है। तलवार का घाव भर जाता है किन्तु बोली का घाव नही भरता। उक्त कहावती पद्य मे 'लोहे' और 'लागै' तथा 'जीभ' और 'जिसी' मे वैण सगाई का निर्वाह हुआ है।

कहावती रूप सामान्यतः बदलता नही, किन्तु डिंगल का कवि जब किसी कहावत का प्रयोग करता है तो वह कहावत को वैण सगाई के अनुरूप बदल देता है। उसकी दृष्टि मे कहावती रूप के निर्वाह की अपेक्षा वैण सगाई का निर्वाह अधिक महत्त्वपूर्ण है।

राजस्थानी की एक कहावत है "खाणो मन भातो, पैरणो जग भातो" अर्थात् जो मन को अच्छा लगे वह खाना चाहिए, जो ससार को अच्छा लगे, वह पहनना चाहिए।

---

१. राजस्थानी कहावतां (भाग दूसरो) : सम्पादक स्वामी नरोत्तमदास तथा पं० मुरलीधर व्यास; पृष्ठ २२।

डिंगल कवि के हाथों पड़कर यही कहावत निम्नलिखित रूप में परिवर्तित हो गई—

"पहरीजें पर प्रीत, खाईजें अपनी खुसी।"[1]

यहाँ 'प्रीत' और 'खुशी' का प्रयोग क्रमशः 'पहरीजे' और 'खाईजें' के साथ बैण सगाई के निर्वाहार्थ किया गया है।

तुक की भाँति लोकोक्तियो में प्रयुक्त नामों और संख्याओ के निर्धारण में भी अनुप्रास का विशेष हाथ रहता है जैसा कि निम्नलिखित उदाहरणो मे स्पष्ट है—

१. खेता खेती मत करै, उद्दम कर कइ ओर।
मोंठ मूसा खा गया, चारो लेग्या चोर॥

अर्थात् हे खेता! खेती मत कर; कोई और उद्यम कर। चूहे मोठ खा गये और चोर चारा ले गये। क्या रखा है ऐसी खेती में?

इस कहावत में 'खेती' के साथ अनुप्रास का निर्वाह करने के लिए 'खेता' नाम का जान-बूझकर प्रयोग किया गया है। मूसा, मोठ तथा चारो और चोर का सानुप्रास-प्रयोग भी यहाँ द्रष्टव्य है।

२. बारा कोसां बोली पलटै, वनफल पलटे पाकां।
सौ कोसां तो साजन पलटै, लखण नी पलटे लाखां॥

अर्थात् बारह कोस पर बोली बदल जाती है, पकने पर वनफल बदल जाते हैं, सौ कोस पर साजन बदल जाते हैं किन्तु लक्षण लाखो कोसो पर भी नही बदलते।

इस कहावती पद्य मे बारह, सौ तथा लाख, इन तीनों सख्याओं का प्रयोग हुआ है। पढ़ते ही यह स्पष्ट हो जाता है कि बोली के साथ अनुप्रास मिलाने के लिए 'बारह', साजन के साथ अनुप्रास मिलाने के लिए 'सौ' तथा लक्षण के साथ अनुप्रास मिलाने के लिए 'लाख' का प्रयोग हुआ है।

३. फूलां फूलगी, गैल का दिन भूलगी।

अर्थात् फूला (स्त्री-विशेष) अब घमड में आ गई, अपने सामने किसी को गिनती ही नही। पिछले दिन उसे अब याद नही रहे। धन हो जाने पर लोग गरीबी को भूल जाते है। यहाँ ऐसा लगता है कि 'फूलगी' क्रिया के साथ अनुप्रास की रक्षा करने के लिए 'फूला' का प्रयोग हुआ है।

४. कर ये महती मालपुआ, बोहरो लेसी हुया हुया।

अर्थात् हे महती! मालपूआ बनाओ, बोहरे को तो जैसे-जैसे अपने पास रुपये होते जायँगे, देते रहेगे। बिना अपने पास कुछ हुए, वह लेगा भी कहाँ से?

यहाँ 'मालपुआ' के साथ अनुप्रास के निर्वाहार्थ 'महती' नाम की कल्पना की गई है।

अनेक बार ऐसा भी देखा जाता है कि किसी कहावत के प्रथम और अन्तिम शब्दो में यदि तुक नही मिलती है तो उसकी कमी-पूर्ति सानुप्रास शब्दों द्वारा कर ली जाती है। 'जुग देख जीवणू' अर्थात् युग देखकर जीना चाहिए, इस कहावत में 'जुग'

---

१. सम्वोध अष्टोत्तरी सं० १८५८—हस्तलिखित प्रति से उद्धृत।

और 'जीवणूं' में अनुप्रास द्वारा काम चला लिया गया है।

जहाँ पर एक कहावत में दो अथवा दो से अधिक वस्तुओं के सम्बन्ध में मिलती-जुलती बात कही जाती है, वहाँ अनुप्रासमयी शब्दावलि का प्रयोग प्रायः देखा जाता है। जैसे,

"पानी पाला पावसा उत्तर सूं आवे।"

अर्थात् वर्षा, पाला और बादशाह उत्तर दिशा से ही आया करते हैं।

अनेक बार कहावतों के महत्त्वपूर्ण शब्द सानुप्रास होते है। जैसे,

(क) कथनी सूं करणी दोरी।

अर्थात् कहने से करना मुश्किल है।

(ख) करम में लिख्या कंकर तो के करै सिवसंकर।

अर्थात् कर्म में कंकड लिखे हों तो शिवशंकर क्या करे?

(ग) टाबरां की टोली बुरी।

अर्थात् बहुत से बच्चों का होना अच्छा नही।

(घ) नाई की परख नूंवां में।

अर्थात् नाखून काटने में ही नाई की चतुराई देखी जाती है।

(ङ) ब्या बिगाड़ै दो जणां के मूंजी के मेह।

अर्थात् विवाह या तो कंजूस से बिगडता है या वर्षा से।

ऊपर के उदाहरणों मे जो रेखांकित शब्द हैं वे ही अनुप्रासयुक्त और महत्त्वपूर्ण है।

अनुप्रासमयी पदावलि श्रुतिमधुर होती है, इसलिए लोक-रुचि स्वभावतः ही इस ओर दौड पडती है। संस्कृत के उन कवियो ने भी जो शब्दालकार को विशेष महत्त्व देते थे, अनुप्रास का प्रचुर प्रयोग किया है। हिन्दी साहित्य के पद्माकर आदि रीतिकालीन कवियों की अनुप्रासमयी भाषा अत्यन्त प्रसिद्ध है। अंग्रेजी कवि टेनीसन की रचनाओं मे अनुप्रास का प्रयोग बराबर मिलता है। वामनादि मराठी भाषा के कवियों ने भी स्थान-स्थान पर अनुप्रास का आश्रय लिया है। इसलिए राजस्थानी कहावतो मे भी यदि अनुप्रास का प्रचुर प्रयोग हुआ हो तो कोई आश्चर्य की बात नही।

यमक—वृत्यनुप्रास और छेकानुप्रास के बाद राजस्थानी कहावतों में यमक का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस अलंकार के कुछ उदाहरण लीजिये—

(क) घड़ै सुनार, पहरै नार अर्थात् गहने गढता तो सुनार है और पहनती है नारी।

(ख) मजूरी में के हजूरी ? अर्थात् जो परिश्रम करके पैदा करता है, वह किसी की हाजिरी क्यों दे?

(ग) के सहरां, के डहरां अर्थात् मनुष्य या तो शहर का आश्रय लेकर ही पल सकता है या उपजाऊ खेत पर निर्भर रहकर ही जीवन बसर कर सकता है।

समोच्चार-विनोद और श्लेष—अंग्रेजी में जिसे Pun[1] अथवा समोच्चार-विनोद कहते हैं, उसके भी अनेक उदाहरण राजस्थानी कहावतों में मिल जाते हैं। Pun के लिए समान उच्चारण वाले शब्दों को ले लिया जाता है और उच्चार-साम्य के आधार पर शब्द-क्रीडा चलती है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित कहावती पद्य को लीजिए—

बांस चढ़ी नटणी कहै, हुयां न नटियो कोय।
मैं नट के नटणी हुई, नटै सो नटणी होय॥

अर्थात् बाँस पर चढी हुई नटनी कह रही है कि किसी के पास देने की थोड़ी बहुत भी सामर्थ्य होने पर वह इन्कार न करे। दान न देने से, 'न' कहने से, नटने से मैं नटनी हुई। जो नटता है, दान नही देता है, उसे आगे के जन्म मे नटनी का नाच नाचना पडता है। इस पद मे नटणी (नाट्य करने वाली, इन्कार करने वाली,) नट के (नाट्य करके, इन्कार करके) तथा नटै (नाट्य करती है, इन्कार करती है) इन तीनों शब्दों के साथ खिलवाड़ किया गया है।

इसी प्रकार एक कहावती 'प्रश्नोत्तरी' को लीजिये—

"रास कोड ? कह—पहाड कै मान। दिवालो कोड ? कह—अम्बर कै मान। तो कह फाटै अम्बर कै थेगली कोनी लागै।"[2]

अर्थात् किसी ने पूछा—अन्न-राशि कितनी ? उत्तर—पहाड के बराबर। फिर पूछा—दिवाला कितना ? उत्तर—अम्बर जितना।

यह उत्तर सुनकर पूछनेवाले ने कहा कि यदि ऐसी बात है तो फटे अम्बर के जोड़ नही लग सकते।

यहाँ 'अम्बर' शब्द मे समोच्चार-विनोद है। कहने का तात्पर्य यह है कि अम्बर (वस्त्र) यदि फट जाय तो जोड लगकर सिलाई हो सकती है किन्तु अम्बर (आकाश) फटने पर उसके पैबद नही लग सकता।

कभी-कभी समान उच्चारण वाले किसी पद्यांश तथा पद में भी शब्द-विनोद देखने को मिलता है। 'बेगम' की जात कै गम कोनी' अर्थात् स्त्री जाति अधीर होती है। इस कहावत मे 'बेगम' के गम और दूसरे गम को लेकर शब्द-चातुर्य प्रदर्शित किया गया है। ऐसा जान पड़ता है मानो 'बेगम' शब्द को द्विधा विभक्त (बे+गम) कर

---

१. Pun शब्द की व्युत्पत्ति विवादास्पद है। कुछ लोग उसे इटली भाषा के 'Puntiglio' शब्द से व्युत्पन्न मानते है जिसका अर्थ है शब्द-श्लेष।

—चमत्कारियानु तत्त्वदर्शन (फिरोजशाह रुस्तमजी मेहता); पृ० १६७

२. मिलाइये—

अरे चन्द तुम गल्ह, इहां नाही अधिकारिय,
ए घर जानी खेल, नही डिमरू खिल्लारिय।
इहै अगि नहि दीप, अहै आगै होए दिष्षै,
जब फुटटै आकाश, कोन थिगरी सूं रष्षै॥
हम दुरे नही जीवन मरन, नह लगै गल्हा बुरी।
मा मत्ति इहै अप उब्बरी, करौ मन्ति गो ब्रह्म छुरी॥—पृथ्वीराज रासो; छंद ७०२

यह विनोद चला है। 'बेगम' है ही बे+गम अर्थात् बिना गम वाली, तब उसमें (ग़म) धैर्य कहाँ से हो ? किन्तु यदि 'बेगम' से यह अभिप्राय यहाँ न लिया जाय और बेगम के 'गम' को निरर्थक पदाश तथा दूसरे को सार्थक मानकर चला जाय तो यह यमक अलंकार का उदाहरण हो जायगा।

अनेक बार एक शब्द के प्रयोग से एक समान उच्चारण वाला दूसरा शब्द सामने आ जाता है जिससे भिन्न अर्थ की प्रतीति होने लगती है। जैसे,

बापो मत कह बखतसी. कांपत है केकाण।
एक बार बापो कह्यां, पवंग तजैलो प्राण॥

अर्थात् हे बखतसिंह ! अश्व को 'बाप बाप' मत कहो, यह सुनकर घोड़ा काँप रहा है। एक बार फिर 'बाप बाप' कह दोगे तो घोडा प्राण त्याग देगा क्योंकि तुम 'बाप-मार' जो ठहरे !

इस दोहे में 'बाप' शब्द के आधार पर व्यंग्य कसा गया है। घोडे को उत्साहित करने के लिए 'बाप बाप' का प्रयोग किया जाता है। प्रवाद प्रचलित है कि अपने पिता के घातक जोधपुरनरेश बखतसिंह जी अपने अश्व को एक बार 'बाप बाप' कहकर 'बिड़दा' रहे थे। इस पर एक चारण ने उक्त दोहे द्वारा ताना मारा था।

कभी-कभी श्लेष का आश्रय लेकर जो वक्रोक्ति प्रचलित हो जाती है, उसमें भी यह समोच्चार-विनोद देखने को मिलता है। नैणसी पर जब एक लाख रुपये का जुर्माना कर दिया गया तब उसने कहा लाख ! लाख, मेरे पास कहाँ ? लाख, जो बड़ पीपल से पैदा होती है, लखारो के यहाँ मिलेगी। मैं तो ताँबे का एक पैसा भी देने से रहा ![1]

व्यक्ति के नाम को लेकर जो समोच्चार-विनोद किया जाता है, वह भी कम आकर्षण और कुतूहल का कारण नही। निम्नलिखित कहावती दोहे में 'जड्डा' शब्द इस दृष्टि से ध्यान देने योग्य है।

धर जड्डो अम्बर जडा, जड्डा चारण जोय।
जड्डा नाम अलाह दा, और न जड्डा कोय॥

प्रवाद प्रचलित है कि नवाब खानखाना ने जड्डा नाम के एक चारण को तीन लाख रुपये इनाम मे दिये थे और उसकी प्रशसा में उक्त दोहा कहा था जिसका अभिप्राय यह है कि पृथ्वी और आसमान असीम है, इस चारण की कवित्व-शक्ति भी असीम है। इनके अतिरिक्त असीम नाम तो केवल परमात्मा का है, और कोई असीम नहीं।

इस प्रकार समोच्चार-विनोद के तथा श्लेष के अनेक रूप राजस्थानी कहावतों में उपलब्ध होते है।

जहाँ तक शब्दालंकारो का प्रश्न है, राजस्थानी भाषा की सामान्य लोकोक्तियों में वृत्यनुप्रास, छेकानुप्रास तथा यमक का प्रयोग विशेषतः देखने को मिलता है तथा श्लेष व समोच्चार-विनोद मुख्यतः साहित्यिक कहावतों में उपलब्ध होते है और ऐसा होना स्वाभाविक भी है।

---

१. लाख लखरां नीपजै, बट पीपल री साख।
नटियो मूतो नैणसी, ताबो देण तलाक॥

आ. अर्थालंकार

(१) **लोकोक्ति और अलंकार**—आचार्य भामह ने जहाँ प्रत्येक अलंकार को वक्रोक्तिमूलक[1] माना है, वहाँ आचार्य दण्डी के मतानुसार समस्त अलंकारो का एक मात्र आश्रय अतिशयोक्ति है।[2] किन्तु वस्तुतः देखा जाय तो भामह की वक्रोक्ति और दण्डी की अतिशयोक्ति में कोई तात्विक अन्तर नही है, अर्थ-वैचित्र्य अथवा वक्रोक्ति मूलतः अतिशय उक्ति ही है। किसी भी उक्ति मे अतिशयता अथवा वक्रता तभी आती है जब कि उसे लोकोत्तर रूप मे प्रस्तुत किया जाय। यही अभिव्यक्ति का वैचित्र्य है जिसके कारण किसी उक्ति को 'अलंकार' की संज्ञा मिलती है। अलकार वास्तव में अभिव्यक्ति की एक वैचित्र्यमयी प्रणाली का ही नाम है।

लोकोक्ति और अलकार का बडा घनिष्ठ सम्बन्ध है। संक्षिप्तता और अर्थ-गर्भितता के साथ-साथ चटपटापन (Salt) भी लोकोक्ति का एक प्रमुख गुण माना गया है, और लोकोक्ति में चटपटापन तभी आता है जब कि उसकी अभिव्यक्ति में कोई चमत्कार हो, कोई वैचित्र्य हो। दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते है कि अलकार के कारण ही लोकोक्ति में चटपटापन आता है। इस दृष्टि से विचार किये जाने पर अलंकार किसी भी श्रेष्ठ लोकोक्ति का एक आवश्यक गुण माना जाना चाहिए। मेरे कहने का अर्थ यह कदापि नही है कि प्रत्येक लोकोक्ति अलकारमयी होती है किन्तु इसमे संदेह नही, प्रत्येक भाषा की लोकोक्तियो में अनेक ऐसी श्रेष्ठ उक्तियाँ होती हैं जिनका चटपटापन हमें आकृष्ट करता है, जिनकी वैचित्र्यमयी अभिव्यक्ति से हम प्रभावित होते है।

(२) **अलकारों का वर्गीकरण**—राजस्थानी कहावतो में भी ऐसी अनेक वक्रोक्तियाँ हैं जिन्हे सहज ही अलकार के नाम से अभिहित किया जा सकता है। अलकारो के वर्गीकरण के सम्बन्ध में यद्यपि आचार्यों मे तीव्र मतभेद चला आता है तथापि हम सब अलकारो को निम्नलिखित चार वर्गों मे विभक्त कर सकते हैं।

(१) विरोधमूलक; (२) साम्यमूलक; (३) साहचर्यमूलक और (४) बौद्धिक शृंखलामूलक।[3]

राजस्थानी कहावतो से उक्त सभी वर्गों से सम्बन्ध रखने वाले अलकारों के कतिपय उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं।

(क) विरोधमूलक

(अ) **अधिक**—विरोधमूलक अलकारो के बड़े मर्मस्पर्शी उदाहरण हमे राजस्थानी कहावतो मे मिल जाते है। 'लुगाई कै पेट मे टाबर खटा ज्याय, बात कोनी

---

१. सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते,
यत्नोऽस्यां कविना कार्यः कोऽलंकारोऽनया विना।
—भामह काव्यालकार २।६५.

२. अलंकारान्तराणामप्येकमाहुः परायणम्,
वागीशमहितामुक्तिमिमामतिशयाह्वयाम्॥—काव्यादर्श २।२२७.

३. विस्तृत विवेचन के लिए देखिये 'आलोचना के पथ पर' में प्रकाशित लेखक का 'अलंकार और मनोविज्ञान' शीर्षक लेख।

खटावै' राजस्थानी भाषा की एक कहावत हैं जिसका तात्पर्य यह है कि स्त्री के पेट में बच्चा समाया रहता हे, बात नही समाती ! स्त्रियाँ कोई गुप्त भेद नही रख पाती, इस सामान्य-सी बात को जिस विरोध-पद्धति द्वारा यहाँ प्रकट किया गया है, वह बड़ी ज़ोरदार है। बच्चे और बात में आकार को लेकर वैषम्य प्रकट करना बड़ा कौतूहल-जनक है। भला बात का भी क्या कोई आकार होता है ? किसी बात को याद रखना, कहना, सुनना ये सब मनुष्य की चेतना से सम्बन्ध रखते हैं किन्तु गर्भस्थ-बच्चे से बात की तुलना कर इस तरह की एक लोकोक्ति कह दी गई है जो अपनी अभिव्यक्ति की भगिमा के कारण बडी प्रभावोत्पादक हो गई है।

अलंकारशास्त्र की दृष्टि से उक्त कहावत को 'अधिक' अलंकार का उदाहरण माना जा सकता है क्योकि आधार और आधेय में से किसी एक के आधिक्य-वर्णन को 'अधिक' अलकार कहते है।[1] यहाँ आधार पेट की अपेक्षा आधेय बात का आधिक्य प्रदर्शित किया गया है।

(आ) विषम—विषम अलकार की परिभाषा देते हुए काव्यप्रकाशकार ने कहा है कि—

क्वचिद् यदतिवैधर्म्यान्न श्लेषो घटनामियात्।
कर्तुः क्रियाफलावाप्तिर्नैवानर्थश्च यद् भवेत्॥

अर्थात् अत्यन्त असमानता के कारण जहाँ दो वस्तुओ में मेल घटित न हो अथवा जहाँ इष्टफल की प्राप्ति तो निश्चय ही न हो किन्तु साथ ही मे कोई अनर्थ और हो जाय, वहां विषम अलकार होता है।

'कठे राम राम, कठे ट्या-ट्या' तथा 'कठे राजा भोज, कठे गागलो तेली' जैसी लोकोक्तियो मे अनुरूपता के अभाव के कारण विषम अलकार समझना चाहिए। 'कागलो हंस हाली सीखै हो, आप हाली भी भूलगो' अर्थात् कौवा हंस की चाल सीख रहा था, अपनी भी भूल गया। यह कहावत भी विषम अलकार का उदाहरण है क्योकि यहाँ न केवल इष्ट की अप्राप्ति ही है बल्कि एक अनर्थ और घटित हो गया है। इसी प्रकार 'धणी की काच दाबण गई, आ पडी आपकी' अर्थात् पति की काँच दबाने गई किन्तु आ पडी अपनी। तथा 'गई बेटै ताई, खोयाई कसम नैं' अर्थात् गई थी पुत्र के लिए किन्तु पति भी गँवा आई[2] आदि कहावतो मे विषम अलकार के अनेक उदाहरण सहज ही मिल सकते हैं।

(इ) विरोधाभास—"भाई बरोबर बैरी नही, र भाई बरोबर प्यारो नही" में विरोधाभास अलकार है क्योकि इसमे एक ही साँस में दो विरोधी बाते कह दी गई है। यह विरोध केवल प्रातिभासिक है, तात्विक अथवा पारमार्थिक नही।

(ई) आक्षेप—आक्षेप अलकार के दो लोकोक्तिगत उदाहरण लीजिए—

१. "राजा कै बेटै केरडी मार दी, म्हे क्यूँ कहाँ" अर्थात् राजा के लड़के ने

---

१. आश्रयाश्रविणोरेकस्याधिक्येऽधिकमुच्यते—साहित्यदर्पण।

२. मिलाइये—
"पुत्रं भजन्त्याः प्रियोऽपि नष्टः।"

बछिया मार दी, मैं क्यों कहूँ ?

२. 'गूगो बडो क राम ? कह—बडो तो है सो ही है पण सापां का देवता नै साची बात कहकर कुण रुसावै' अर्थात् गूगा बडा या राम ? उत्तर—बडा तो जो है सो ही है अर्थात् राम ही बड़ा है किन्तु सच्ची बात कहकर साँपो के देवता गूगा को कौन रुष्ट करे ?

उक्त दोनों लोकोक्तियों में कही हुई बात का बड़े सुन्दर ध्वन्यात्मक ढंग से निषेध कर दिया गया है। बात कह भी दी गई है और प्रतिषेध भी कर दिया गया है।

(ख) साम्यमूलक

(अ) उपमा—साम्यमूलक अलंकारो मे उपमा, रूपक आदि अलकार प्रमुख हैं। "आबा की सी बीजली, होली की सी झल" राजस्थानी भाषा की एक प्रसिद्ध कहावती उपमा है जिसमें किसी नायिका के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वह दीप्ति मे आकाश में चमकती हुई बिजली तथा होली की ज्वाला के समान है। पूर्वार्द्ध की उपमा में नायिका का चापल्य, आकर्षण, लुका-छिपी, चकाचौंध करने की शक्ति आदि सब एक साथ ही व्यजित हो रहे हैं। संयोग की बात है कि स्व० प्रसाद जी ने भी कामायनी के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कुछ इसी तरह की बात कही थी "खिला हो ज्यो बिजली का फूल, मेघ बन बीच गुलाबी रंग।"

कहावतों में उपमा का बडा महत्त्वपूर्ण स्थान है। अरबी भाषा में तो कहावत के लिए जो Mathal शब्द प्रयुक्त होता है, उसका शाब्दिक अर्थ ही है उपमा अथवा सादृश्य। अरबवासियो के काव्य मे भी उपमाओं का औचित्य और उनका प्राचुर्य स्थान-स्थान पर देखने को मिलता है।[1] राजस्थानी भाषा की कहावतों में भी उपमाओं के उदाहरण बहुत बडी सख्या में उपलब्ध होते है।

(आ) रूपक – रूपक अलंकार वही फबता है जहाँ आरोप औचित्य लिए हुए होता है। उदाहरण के लिए राजस्थानी कहावतो मे से रूपक के दो उदाहरण लीजिए—

१. चालणी को पीदो, पूतमुई की छाती।

अर्थात् उस स्त्री का हृदय जिसका पुत्र काल-कवलित हो गया हो, चलनी का पैदा ही समझिए। जैसे चलनी के पैंदे में सैंकडो छिद्र होते हैं, उसी प्रकार पुत्र-शोक-विह्वला माता के हृदय में भी असख्य छेद हो जाते है। वह कभी पुत्र की किसी वस्तु को देखती है, स्मरण करती है अथवा दूसरों से सुनती है तो उसका हृदय शतधा विदीर्ण होकर चलनी हो जाता है।

२. "साँप चालती मौत है"

इस राजस्थानी कहावत मे भी साँप पर चलती-फिरती मौत का आरोप बहुत ही औचित्यपूर्ण हुआ है।

(इ) सम—अनुरूप वस्तुओ के वर्णन में सम अलकार होता है। इस अलंकार के भी बहुत से उदाहरण राजस्थानी कहावतो मे मिल जाते हैं। यथा,

(१) बडा की बडी ई बात अर्थात् बडो की बाते भी बडी ही होती है।

---

1. Introduction to the Proverbs of Arabia by H. A. R. Gibb.

(२) बडी रातां का बडा ई तडका अर्थात् बडी रातों के प्रातःकाल भी बड़े ही होते हैं।

(३) इसी खाट का इस्या ही पाया अर्थात् ऐसी खाट के पाये भी ऐसे ही होते हैं।

(४) इसै परथावा का इसा ही गीत अर्थात् ऐसे विवाहों के गीत भी ऐसे ही होते हैं।

(५) जसा साजन, उसा भोजन अर्थात् जैसे साजन हैं, वैसे ही भोजन मिलते हैं।

(६) जसा देव उसा ही पुजारा अर्थात् जैसे देव हैं, वैसे ही पुजारी हैं।

(७) खुदा जैडा ही फरेस्ता अर्थात् जैसा खुदा है, वैसे ही हैं फरिश्ते।

(ई) अर्थान्तरन्यास—अर्थान्तरन्यास और लोकोक्ति का बडा घनिष्ठ सम्बन्ध है। अर्थान्तरन्यास के रूप में प्रयुक्त अनेक उक्तियाँ कहावतें बन गई है, इसे कौन नही जानता ? 'भिन्नरुचिर्हि लोकः' जैसी पक्तियाँ सम्भवतः इसी श्रेणी के अन्तर्गत आती हैं।[1]

राजस्थानी लोकोक्तियो में से एक उदाहरण लीजिये—

आयाँ मुँह बोली नहीं, पिउ चाल्यो करि रोस।
आप कमाया काँमड़ा, दई न दीजे दोस॥

अर्थात् प्रियतम के आने पर जब नायिका मुँह से नही बोली तो प्रिय रुष्ट होकर चला गया। अपने किये हुए कामो के लिए दैव पर दोषारोपण नही करना चाहिए।

इस दोहे के उत्तरार्द्ध में अर्थान्तरन्यास अलंकार है जहाँ विशेष द्वारा सामान्य का समर्थन किया गया है।

(ग) साहचर्यमूलक

(अ) अप्रस्तुतप्रशंसा—अप्रस्तुतप्रशंसा आदि अलंकारों को 'साहचर्यमूलक' वर्ग में रखा जा सकता है। जहाँ तक अप्रस्तुतप्रशसा का सम्बन्ध है, प्रत्येक कहावत ही इस अलंकार का उदाहरण प्रस्तुत करती है क्योंकि कहावती वाक्य एक प्रकार से अप्रस्तुत-कथन ही होता है जिसका प्रयोग प्रस्तुत पर घटित करने के लिए हुआ करता है। उदाहरण के लिए एक कहावत लीजिए—

'एक म्यान में दो तलवार कोनी खटावै।'

एक स्थान में दो समान शक्ति वाले व्यक्तियो का निर्वाह नही हो सकता, इस प्रस्तुत अर्थ की प्रतीति कराने के लिए ही अप्रस्तुत-कथन के रूप में उक्त कहावत का प्रयोग हुआ है।

---

१. अथांगराजादवतार्य चक्षुर्योहीति जन्यामवदत्कुमारी।
नासौ न काम्यो न च वेद सम्यक् द्रष्टुं न सा **भिन्न रुचिर्हि लोकः**।
—कालिदास

(आ) मिथ्याध्यवसिति—मिथ्याध्यवसिति नामक एक अलंकार होता है जिसमें कोई एक असम्भव या मिथ्या बात निश्चित करके तब कोई दूसरी बात कही जाती है, और इस प्रकार वह दूसरी बात भी मिथ्या ही होती है। राजस्थानी लोकोक्तियों में कुछ ऐसे कहावती वाक्य हैं जो असंभव अर्थ को प्रकट करते हैं और मिथ्याध्यवसिति अलकार के निदर्शनार्थ रखे जा सकते है।

'ससै सीग की धनुषडी रमै बाँझ को पूत' एक ऐसी ही कहावत है जिसका आशय यह है कि यदि खरगोश के सीग का धनुष बनाया जा सके तभी वन्ध्या का पुत्र उससे खेल सकता है।

मिथ्याध्यवसिति अलकार को भी साहचर्यमूलक ही मानना चाहिए, क्योंकि इसमें एक असम्भव बात के साहचर्य से हम दूसरी असम्भव बात पर पहुँचते हैं।[1]

(घ) बौद्धिक शृंखलामूलक

बौद्धिक शृंखलामूलक अलंकारों मे से यथासख्य आदि के उदाहरण राजस्थानी कहावतो मे से दिये जा रहे हैं।

(अ) यथासख्य—यथासख्य अलकार के उदाहरणार्थ निम्नलिखित कहावती पद्य को लीजिये—

काल कुसम्मै ना मरै बामण बकरी ऊँट।
बो माँगै, वा फिर चरै, बो सूखा चाबै ठूंट॥'

अर्थात् अकाल अथवा कुसमय मे ब्राह्मण, बकरी और ऊँट नही मरते। ब्राह्मण माँगकर काम निकाल लेता है, बकरी इधर-उधर चरकर पेट भर लेती है तथा ऊँट सूखे डठल चबाकर ही जीवित रह जाता है। यहाँ पर दोहे के पूर्वार्द्ध में कही हुई वस्तुओ के कार्य का वर्णन उत्तरार्द्ध मे उसी क्रम से किया गया है। इसलिए इस दोहे में यथासख्य अथवा क्रमालंकार है।

(आ) देहली दीपक—देहली दीपक अलकार वहाँ होता है जहाँ एक ही पद का दो वाक्यों में अन्वय होता हो। उदाहरण के लिए निम्नलिखित राजस्थानी कहावत लीजिये—

बिना बाप को छोरो बिगड़ै, बिना माय की छोरी।

इसमें 'बिगड़ै' क्रिया 'बिना बाप को छोरो बिगड़ै' तथा 'बिना माय की छोरी बिगड़ै' इन दोनों वाक्यो के साथ लगती है।

राजस्थानी कहावतो में और राजस्थानी कहावतो मे ही क्यो, अन्य बहुत सी भाषाओ की कहावतो में भी देहली दीपक के बहुत से उदाहरण मिल जाते हैं क्योकि यह अलंकार वाक्य-लाघव मे सहायक होता है।

(इ) उत्तर—उत्तर अलंकार के अनेक भेदो में से एक भेद वह भी है जहां अनेक प्रश्नों का एक ही उत्तर दे दिया जाता है। इस अलंकार से सम्बन्ध रखने वाले

---

1. There is a saying both in greek and Latin 'where mice nibble iron' apparently referring to the land of nowhere.
—*Quoted in "The Ocean of Story", Vol. V. p. 66.*

बहुत से दोहे राजस्थानी भाषा में मिलते हैं। यथा,

गाड़ी पड़ी उजाड़ में, कांटो लागै पांव ।
गोरी सूखै सेज में, कह चेला, किण दाय ।
गुरूजी जोड़ी नाहीं ।

अर्थात् गाड़ी उजाड मे पड़ी है, पैर में काँटा लगता है और गोरी सेज में सूखती है। हे शिष्य ! यह क्योंकर हुआ ? शिष्य ने उत्तर दिया — 'जोड़ी नही।'

इस दोहे में 'जोड़ी' श्लिष्ट प्रयोग है। गाड़ी के पक्ष में बैलों की जोड़ी, पैर के पक्ष में जूतों की जोडी और गोरी के पक्ष में पति से तात्पर्य है। इस प्रकार तीन प्रश्नों का एक ही उत्तर यहाँ दे दिया गया है।

(ई) यूरोपीय अलकार—यूरोपीय अलकारो मे से भी मानवीकरण आदि के उदाहरण राजस्थानी कहावतों मे मिल जाते है। यथा,

(१) रिपिया ! तेरी रात दूजो नर जलम्यो नहीं ।
जे जलम्या दो च्यार तो जुग में जीया नहीं ॥

अर्थात् हे रुपये ! जिस रात तुम पैदा हुए, उस रात कोई भी पैदा नही हुआ क्योंकि तुम जैसा इस ससार मे कही कोई दिखलाई ही नही पडता। यदि कदाचित् दो-चार पैदा हुए हों तो वे जीवित नही रहे क्योकि यदि वे जीवित रहते तो देखने में तो आते।

(२) आ रं मेरा सम्पटपाट, मैं तनै चाटूं तू मनै चाट ।

अर्थात् हे मेरे सर्वनाश ! आओ, मैं तुम्हे चाटूँ और तू मुझे चाट।

उक्त उदाहरणो में 'रुपया' और 'सम्पटपाट' का मानवीकरण हुआ है।

(३) निष्कर्ष—ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि राजस्थानी कहावतो में अलकारो के प्रयोग के कारण चटपटापन आ गया है। दूसरी बात यह है कि कहावतों में अलकारों का प्रयोग अबोधपूर्व और अनायास होता है जिसके कारण अभिव्यक्ति सहज स्वाभाविक बनी रहती है, उसमें कृत्रिमता नही आ पाती। कहावतों के अधिकाश उद्भावक ऐसे होते हैं जिनको अलंकारशास्त्र का ज्ञान नही हुआ करता किन्तु फिर भी जिनकी कहावतो मे स्थान-स्थान पर अलकारो के सुन्दर उदाहरण मिल जाते हैं। अलकारो के ऐसे ही स्वाभाविक प्रयोगों के कारण भावोत्कर्ष में सहायता मिलती है।

राजस्थानी कहावतों से अलंकारो के जो उदाहरण ऊपर दिये गये हैं, वे केवल दिग्दर्शन के रूप में है। वैचित्र्यमयी अभिव्यक्ति के सभी प्रकारों पर यहाँ विचार नही किया गया है, यहाँ केवल उन्ही अलकारों को विचारार्थ लिया गया है जिनसे उनके वैज्ञानिक वर्गीकरण में किसी प्रकार की सहायता मिली है। अभिव्यक्ति के सभी प्रकारों को गिनकर रख देना वस्तुतः संभव नही होता। यही कारण है कि आलंकारिकों में अलकारो की संख्या के सबध में सदा से मतभेद चलता आया है और कदाचित् हमेशा चलता रहेगा। वैसे कहावतो मे ही अभिव्यक्ति के ऐसे प्रकार मिल सकते हैं जिनका आलंकारिको द्वारा अभी तक कोई नामकरण ही नही किया गया हो।

४. राजस्थानी कहावतों के अध्याहार

स्वल्पाक्षरता श्रेष्ठ कहावत का गुण है। इसलिए जिन कहावतों में न्यूनतम शब्दों के प्रयोग के द्वारा अधिकतम अर्थ की अभिव्यक्ति होती है, वे कहावतें श्रेष्ठ समझी जाती हैं। अनेक कहावतें ऐसी होती हैं जिनमें अर्थ का अध्याहार करना पड़ता है। यह अर्थ का अध्याहार राजस्थानी लोकोक्तियों में अनेक रूपो में उपलब्ध होता है।

(१) **अध्याहार के विविध रूप** – (क) **उद्देश्य (Subject) का अध्याहार।**

(अ) 'ढल्यो घाटी, हुयो मांटी।'

अर्थात् जब भोजन कंठ की घाटी को पार कर गया तो मिट्टी हो गया क्योंकि स्वाद तो जिह्वा में ही है।

(आ) 'निकली होठां, चढी कोठां।'

अर्थात् बात मुँह से निकलते ही सब जगह फैल जाती है।

(इ) 'धायो मीर, भूखो फकीर, मर्‌यां पाछै पीर।'

अर्थात् मुसलमान यदि तृप्त हो तो अमीर कहलाता है, भूखा हो तो फकीर कहा जाता है और मरने पर पीर कहलाता है।

उक्त दोनों कहावतों में क्रमशः भोजन, बात और मुसलमान का अध्याहार किया गया है। ये तीनों शब्द यहाँ कर्त्ता कारक में हैं।

(ख) **विधेय (Predicate) का अध्याहार।**

(अ) 'राजा को दान, प्रजा को स्नान।'

अर्थात् राजा दान करके और प्रजा स्नान करके ही पुण्य-लाभ करती है क्योकि दान देने की शक्ति सामान्य प्रजा-जन में नही होती। कहने का तात्पर्य यह है कि राजा दान द्वारा जितना पुण्यार्जन करता है, प्रजा उतना ही पुण्यार्जन स्नान द्वारा कर लेती है।

(आ) 'फलको जेट को, टाबर पेट को।'

अर्थात् फुलकों के समूह के बीच का जो फुलका होता है, वह मुलायम होता है तथा पेट का बालक ही काम देता है, गोद का नही।

(इ) 'लुगाई को न्हाणूं, मरद को खाणूं।'

अर्थात् स्त्री का स्नान और पुरुष का भोजन जल्दी होना चाहिए। जो स्त्री स्नान-शृंगार में अपना बहुत सा समय लगा देती है, वह कहावती दुनियाँ में अच्छी नही समझी जाती। राजस्थान में एक दूसरी कहावत मे कहा गया है 'एडी रगड़ी अर बहू बगडी'[1] अर्थात् गाँवों में अधिक साफ-सुथरे रहने से भी स्त्री की निन्दा होने लगती है। पुरुष भी भोजन करने में यदि अधिक समय देने लगे तो उसे परिवार के पालन-पोषण के लिए धनार्जन आदि में अधिक समय नहीं मिलेगा।

जैसा ऊपर की व्याख्या से स्पष्ट है, तीनों कहावतों में विधेय का अध्याहार किया गया है।

---

१. मेवाड़ की कहावतें, भाग १; (पण्डित लक्ष्मीलाल जोशी); पृष्ठ ११।

(२) **अध्याहार का कारण**—ऊपर जितनी कहावतें उद्धृत की गई हैं, उन सब में न्यूनपदत्व के कारण अध्याहार करना पड़ता है और सम्भव है, इस न्यूनपदत्व का कारण लोकोक्तिकारो की तुकप्रियता हो किन्तु ऐसी भी अनेक कहावतें मिलती हैं जिनमे तुक का अभाव होते हुए भी अध्याहार करना पड़ता है। उदाहरणार्थ—

(अ) 'दूबली अर दो साढ।'

अर्थात् गाय-भैंस यदि निर्बल हो और किसी वर्ष अधिक मास के कारण दो आषाढ़ आ जाये तो उनके लिए वर्षा के अभाव में और भी मुश्किल पड़ती है।

(आ) 'देस चोरी, परदेस भीख।'

अर्थात् देश मे चोरी और परदेश मे भीख प्रकट नहीं होती।

अनेक बार छन्द के अनुरोध से भी कहावतों में अध्याहार कर लिया जाता है। 'लीप्यो-पोत्यो आँगण, पहरी-ओढ़ी नार' राजस्थानी भाषा की एक कहावत है जिसका तात्पर्य यह है कि लिपा-पुता आँगन और पहनी-ओढ़ी स्त्री सुन्दर लगती है। इस कहावत में क्रिया के प्रयोग के बिना ही दोहे-छन्द के दो चरण पूरे हो गये जिन्होने लोकोक्ति का रूप धारण कर लिया।

ऊपर के विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि अनेक बार चाहे तुक अथवा छन्द अध्याहार के कारण भले ही रहे हो किन्तु अध्याहार का मुख्य कारण है वह सामासिकता जो श्रेष्ठ कहावत का एक गुण ठहराया गया है।

(३) **न्यूनपदत्व और अध्याहार**—लोकोक्तियाँ सामान्यतः सहजबोध्य होती हैं। इसलिए अंग्रेजी मे एक कहावत प्रचलित है कि किसी मूर्ख के सामने जब कोई कहावत कही जाती है तो उसका अर्थ उसे समझाना पड़ता है।[1] आशय यह है कि जिसमें तनिक भी बुद्धि होगी, वह लोकोक्ति का अर्थ समझ जायगा किन्तु इस उक्ति को सर्वांश मे स्वीकार नही किया जा सकता क्योकि कभी-कभी न्यूनपदत्व के कारण लोकोक्तियो में भी दुर्बोधता आ जाती है। अध्याहार के बल पर ही हम इस प्रकार की कहावतो का अर्थ समझ पाते हैं।

५. राजस्थानी भाषा की कथात्मक कहावतों के विविध रूप

अनेक कहावतें ऐसी होती है जिनके आकार-प्रकार और रंग-ढग को देखकर ही पता चल जाता है कि उनमे से प्रत्येक के पीछे कोई-न-कोई कथा अवश्य है। राजस्थानी भाषा में इस प्रकार की कथात्मक कहावतें विविध रूपों में उपलब्ध होती हैं जिनमें से उदाहरण के लिए कुछ रूप यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

(१) **समस्त घटनात्मक**—बहुत सी कहावतो मे घटनाओं द्वारा ही कथा समझ ली जाती है। जैसे,

(अ) नो पेठा तेरा लगवाल।
घोड़तै ने लेगो कोतवाल॥

एक व्यापारी के पास ९ कुष्माण्ड थे। वह उन्हें बेचने के लिए एक नगर में

---

1. "when a fool is told a proverb, the meaning of it has to be explained to him."

प्रविष्ट हुआ तो वहाँ के अधिकारियों ने कर के रूप में उससे वे नवों कुष्माण्ड छीन लिये और फिर भी कर वसूल करने वाले चार और बाकी बच गए ! कोतवाल ने उसका गधा ही छीन लिया !!

(आ) फूड़ के घर हुई कुंवाड़ी, कुत्ता मिल चाल्या रेवाड़ी ।
कारणं कुत्तै लीन्या सूण,[1] करा तो ली परण ढकसी कूण !

अर्थात् फूहड़ के घर किवाड़ लग गये । इसलिए कुत्तो ने मिलकर रिवाडी जाने का निश्चय कर लिया क्योकि घर के किवाड़ बन्द हो जाने पर वे अब अन्दर नही जा सकेंगे । इतने में काने कुत्ते ने शकुन देखकर कहा—हमे रिवाडी जाने का कष्ट नही उठाना चाहिए । फूहड़ के घर मे किवाड़ तो अवश्य हो गये हैं किन्तु वह उनको बन्द करने का कष्ट कभी न उठायेगी । इसलिए हम पहले की तरह बिना किसी आशंका के अन्दर प्रवेश करते रहेगे ।

(इ) आधो घाल्यो ऊँखली, आधो घाल्यो छाज ।
सांगर साटै धरण गई, मघरो मघरो गाज ।।

एक बार अनावृष्टि के कारण जब अकाल पडा तो किसी किसान को विवश होकर सांगर के बदले ही अर्थात् बहुत कम मूल्य मे अपनी स्त्री को बेच देना पडा । आधा अन्न तो ऊँखली में रख लिया, आधा छाज में । इतना ही अन्न उसे मिला । अब जब बादल गरजता है तो किसान उससे धीरे-धीरे गरजने के लिए कह रहा है ताकि वह व्यथित न हो । अब चाहे वर्षा होती रहे, उसकी स्त्री तो गई ।

उक्त तीनों कहावतों में सम्बन्धित सभी घटनाओं का उल्लेख हुआ है ।

(२) **प्रमुख घटनात्मक**—

(अ) तिरिया चरित न जाणे कोई । खसम मार के सत्ती होई ।

अर्थात् स्त्री के चरित्र को कोई नही जान सकता, वह अपने पति को मारकर सती हो गई !

(आ) दगो कर्‌यो बणिए की जोय । पूत खसम नै लीनी रोय ।

अर्थात् बनिये की स्त्री ने दगा दिया जिससे पुत्र और पति के लिए उसे रोना पड़ा ।

उक्त दोनों कहावतों में कथा की सब घटनाओं का उल्लेख नही हुआ है, उद्धृत प्रत्येक कहावत मे केवल प्रमुख घटना दे दी गई है किन्तु मात्र प्रमुख घटना के उल्लेख से सारी कहावत का मर्म नही खुलता । कहावत को भली भाँति समझने के लिए पूरी कथा का समझना आवश्यक होता है ।

(३) **शीर्षकात्मक**—कुछ कहावते ऐसी हैं जो कथाओं के शीर्षक जैसी जान पड़ती हैं । उदाहरणार्थ नीचे लिखी कहावते लीजिए—

(अ) तुरत दान महा पुन ।[2]

---

१. पाठान्तर :
"बांडै कुत्तै बीद्या सूण" ।

२. इस कहावत पर पूरी कहानी के लिए देखिए जैन जगत, वर्ष ७, अंक १—में प्रकाशित श्री अक्षयचन्द्र शर्मा का लेख ।

अर्थात् तुरत दान देने से बडा पुण्य होता है।

(आ) साच कह्यां मार्‌यो जाय।

अर्थात् सत्य कहने वालों की मौत है।

इस प्रकार की कहावतों में सारी कथा का सार शीर्षक में ही समाया रहता है।

(४) **शिक्षात्मक**—कुछ कहावतें ऐसी भी हैं जिनमें कथा के माध्यम से कोई शिक्षा दी जाती है। उदाहरण के लिए एक कहावत लीजिये—

चिड़ी चोल मारती, कागलियाजी सुणें।
साँची कही है सायरां, जो बावै सो लुणें॥[1]

यहाँ 'जो बावै सो लुणें' शिक्षा (Moral) के रूप में प्रयुक्त है।

इस शिक्षात्मक कहावत के पहले 'साची कही है सायरां' अर्थात् कवियों ने सत्य कहा है, इस पदावलि का प्रयोग हुआ है। राजस्थान की लोक-कथाओं के बीच-बीच मे बहुत सी कहावते बिखरी पड़ी हैं। बात कहने वाला जब यथास्थान लोक-प्रचलित कहावतो का प्रयोग करता है तो वह अनेक बार 'सायरां साची कही है' और 'सायरां रा वचन झूठा को हुवै नी' द्वारा लोकोक्ति की अवतारणा करता है। मलय भाषा में भी 'विज्ञजन ऐसा कहते हैं' द्वारा किसी कहावत का उपक्रम किया जाता है।[2]

(५) **चरम वाक्यात्मक**—अनेक कहावतें ऐसी है जो किसी कथा के चरम वाक्य के रूप में प्रयुक्त हैं। उदाहरण के लिए एक निम्नलिखित कहावत लीजिये—

'बाबाजी, आपरै ही चरणां रो परसाद है' राजस्थान में प्रचलित एक लोकोक्ति है जिसका मर्म समझने के लिए हमें निम्नलिखित घटना को लक्ष्य में रखना होगा—

'एक बाबाजी एक दूकानदार के पास गये। बाबा बड़े प्रतिष्ठित थे, दूकानदार के लिए उनका स्वागत करना आवश्यक हो गया। किन्तु दूकानदार था बड़ा कंजूस। जूठे हाथों कुत्ते को भी नही हटाता था। बाबाजी ने अपने जूते दूकान की सीढ़ियो पर रख दिये थे। दूकानदार ने मन ही मन सोचा—क्या ही अच्छा हो, यदि 'मियांजी की ही मोगरी और मियांजी का ही सिर' वाली नीति का प्रयोग किया जाय। दूकानदार ने तुरन्त अपने नौकर से इशारा किया कि वह बाबाजी के जूते बेच दे। किसी यजमान से हाल ही में नये जूतों की जोडी बाबाजी को मिली थी। जूते बेच दिये गये और बिक्री से जो कुछ वसूल हो सका, उससे बाबाजी के लिए बड़ी अच्छी मिठाइयाँ मँगवाई गईं। जब बाबाजी पेट भर मिठाई खा चुके तो बड़े आत्मसन्तोष और प्रशंसा के स्वर में कहने लगे—"क्या ही स्वादिष्ट मिठाई आज प्राप्त हुई है। श्रद्धा और भक्ति-भाव से खिलाई हुई वस्तु में स्वभावतः ही मिठास बढ़ जाया करता है।"

---

१. द्रष्टव्य 'मरु भारती' वर्ष २, अंक २ में प्रकाशित श्री मनोहर शर्मा का 'राजस्थान की लोक-गाथाएँ' शीर्षक लेख।

2. Proverbs are frequently introduced in writing by the expression "Saperti Kala arif" as say the wise.

(—*Racial Proverbs* (*S. G. Champion*), *Introduction, P. XVI.*

दूकानदार ने उत्तर दिया, "बाबाजी, यह आपके ही चरणो का प्रसाद है !"

यह उक्त कथा का चरम वाक्य है जो कहावत के रूप में प्रयुक्त होने लगा है। यह वाक्य नाटकीय व्यग्य (Dramatic irony) का भी अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है।

कथात्मक कहावतो के कुछ प्रकारो का निर्देश ऊपर किया गया है किन्तु सब प्रकारों का उल्लेख करना न तो यहाँ सम्भव ही है और न वाछनीय ही।

६. राजस्थानी कहावतों के संवाद

क्या महाकाव्य, क्या नाटक, क्या उपन्यास और क्या आख्यायिका, सभी में संवादों की योजना दृष्टिगोचर होती है। संवाद, मुख्यतः एक नाटकीय उपकरण है जिसके समावेश से रोचकता बढती है और उक्तियाँ भी प्रभावोत्पादक बन जाती है। राजस्थानी कहावतो के रूप-निर्माण मे सवाद-शैली के विविध रूप दिखलाई पडते है। संवाद-पद्धति के न जाने कितने प्रकार होते है और इस शैली का आश्रय लेने से किस प्रकार आकर्षण में वृद्धि हो जाती है, यह दिखलाने के लिए राजस्थानी कहावतो से कुछ उदाहरण यहाँ दिये जा रहे है। राजस्थानी कहावतों के संवादों को हम दो भागों में बाँट सकते है (१) वे सवाद जिनमें मानवी सृष्टि का योग है और (२) वे संवाद जिनमें मानवेतर सृष्टि अपना हाथ बँटाती है। कुछ उदाहरण लीजिये—

(१) मानवी सृष्टि और कथोपकथन के प्रकार—

(क) वाद-विवाद के रूप में संवाद

किसी ने कहा—

"मरद तो मूच्छयाल बको, नैण बकी गोरिया।
सुरहल तो सींगाल बंकी, पोड बंकी घोड़िया॥"

अर्थात् मर्द तो वही श्रेष्ठ है जो मूँछो वाला हो, कामिनी तो वही है जिसके नेत्र बाँके हों, गाय तो वही है जिसके सीग अच्छे हों और घोडी तो वही है जिसके सुम सुन्दर हो।

इस उक्ति को सुनकर राजस्थानी संस्कृति के सच्चे प्रतिनिधित्व करने वाले किसी व्यक्ति ने तुरन्त इसका सशोधन के रूप मे प्रतिवाद उपस्थित करते हुए कहा—

"मरद तो जब्बान बंको, कूख बकी गोरिया।
सुरहल तो दूधार बकी, तेज बकी घोड़िया॥"

अर्थात् मर्द तो वही है जो जबान का धनी हो, रानी तो वही है जो वीर-प्रसविनी हो, गाय तो वही है जो दूध देने वाली हो (कोरे सीगो को लेकर कोई क्या करे ?) घोड़ी तो वही है जो तेज चलने वाली हो।

(ख) प्रश्नोत्तर के रूप में संवाद

प्रश्नोत्तर के रूप में प्रचलित संवादों को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। (१) एक व्यक्ति द्वारा प्रश्न और दूसरे व्यक्ति द्वारा उत्तर और (२) स्वतः ही प्रश्न और स्वतः ही उत्तर।

(अ) परस्पर प्रश्नोत्तर—(१) परस्पर प्रश्नोत्तर के रूप में प्रचलित निम्न-

लिखित कहावती पद्यों को लीजिये--

खड्यो न दीसै पारधी, लग्यो न दीसै बाण।
मैं तोय बूजूं हो पिया, आँ किस विध तज्या पिराण।
जल थोड़ा नेहा घणा, लग्यो प्रीत को बाण।
'तूं पी तूं पी, करत आँ, मिरगाँ तज्या पिराण॥

एक बार एक दम्पति किसी वन-खण्ड में जा रहे थे। उन्होने मृगो का एक जोडा मरा हुआ देखा किन्तु न तो वहाँ कोई शिकारी ही दिखाई पडता था और न मृगों के कही कोई घाव ही था। पत्नी ने अपने प्रिय से जब मृग-दम्पति की मृत्यु का कारण पूछा तो उसने उत्तर दिया कि यहाँ पानी थोड़ा था, प्रेम की अधिकता थी; 'तू पी', 'तू पी' करते हुए ही दोनो ने अपने प्राण दे दिये। किसी शिकारी के बाण से नही, प्रेम-बाण से विद्ध होकर ही मुगो के इस जोड़े ने अपना प्राणोत्सर्ग कर दिया।

इस प्रकार के सवाद मे एक लघु कथा का-सा आनन्द मिलता है।

(२) **गुरु-चेला-सवाद**—गुरु-चेला-सवाद के कहावती दोहे राजस्थान में अत्यन्त प्रसिद्ध है। इस प्रकार के दोहो में गुरु शिष्य से एक साथ तीन-चार प्रश्न पूछता है और शिष्य उन सब प्रश्नो का एक ही उत्तर देता है जो अनेकार्थवाची होने के कारण सब प्रश्नो पर एक समान घटित होता है। उदाहरणार्थ गुरु-चेला-संवाद सम्बन्धी एक पद्य लीजिए :—

पान सड़ै घोड़ो अड़ै, विद्या बीसर ज्याय,
रोटी जलै अँगार में, कह चेला, किण दाय।
गुरूजी फेर्‌यो नाहीं।

अर्थात् पान सडता है, घोडा अडता है, पढा हुआ याद नही रहता, रोटी अंगारों में जलती है। हे शिष्य! बतलाओ, यह क्योकर हुआ? शिष्य ने उत्तर दिया, 'फेरा नही।' यहाँ 'फेरा नही' श्लिष्ट प्रयोग है। पान इसलिए सड़ा कि उलट-पलट नही किया गया, घोड़ा इसलिए अडा कि फिराया नही गया, विद्या का विस्मरण इसलिए हुआ कि पुनरावृत्ति नही की गई, रोटी अगारो मे इसलिए जली कि उल्टी नहीं गई।

श्री अगरचन्दजी तथा भँवरलालजी नाहटा ने विक्रम की १७वी शताब्दी के प्रारम्भ मे होने वाले जैन कवि कुशललाभ के 'पिंगल सिरोमणि' ग्रन्थ के आधार पर गुरु-चेला सवाद सम्बन्धी पद्यों की संख्या ३५० मानी है।[१]

(३) **आनन्द-करमानन्द-संवाद**—श्री खेतसिंह जी मिश्रण के मतानुसार महान् वैयाकरण हेमचन्द्र के समय मे सिद्धराज सोलंकी के दरबार में कंकालण भाटडी को परास्त करने वाले दो चारणो की एक जोड़ी थी जिनका नाम था आनन्द और करमानन्द। इस जोड़ी की एक विशेषता यह थी कि आनन्द दोहे की पहली पंक्ति बनाता और करमानन्द दूसरी पंक्ति मे उसका उत्तर देता। ज्ञान, नीति, प्रेम और व्यावहारिक बुद्धि से सम्बन्ध रखने वाले आनन्द करमानन्द के बहुत से दोहे आज भी गुजरात,

---

१. देखिये : 'गुरु-चेला संवाद' श्री अगरचन्दजी नाहटा तथा श्री भंवरलालजी नाहटा, राजस्थान भारती, भाग २, अंक १।

काठियावाड़ और राजपूताने में प्रसिद्ध हैं। उदाहरण के लिए एक दोहा लीजिये :

आणंद कहे करमाणंदा, काँटो बड़ो के शरीर।
आश वलूंधी सुन्दरी, सौंपी दियो शरीर॥

श्री खेतसिंहजी मिश्रण का अनुमान है कि हेमचन्द्र की प्राकृत व्याकरण में उद्धृत निम्नलिखित दोहा भी, बहुत सम्भव है, आनन्द करमानन्द का ही बनाया हुआ हुआ हो—

बिंबाहरि तणु रयणवणु किउ ठिउ सिरि आणंद।
निरुवम रसु पिएँ पिअविजणु सेसु हो विण्णी मुद्द॥

अर्थात् हे आनन्द! बिंब फल के समान अधर पर किया हुआ यह दंत-क्षत कैसी शोभा दे रहा है? ऐसा लगता है, मानो प्रिय ने अनुपम रस पीकर बाकी रस के ऊपर इसलिए छाप लगादी है कि उसे और कोई न पी जाय![1]

(आ) **स्वतः प्रश्न और स्वतः उत्तर**—ऐसी कहावते भी अनेक हैं जहाँ स्वतः उठाये गये प्रश्न का स्वतः ही उत्तर दे दिया गया है। उदाहरण के लिए एक कहावत लीजिये--

'कुत्ती क्यूं घुसै है? कह—टुकड़ै खातर।'

अर्थात् कुत्ती क्यो भौकती है? उत्तर—टुकडे के लिए।

इस प्रकार की कहावतो में ऐसा नही होता कि एक व्यक्ति प्रश्न करता है और दूसरा उसका उत्तर देता है। अभिव्यक्ति को प्रभावशाली बनाने के लिए इस प्रकार की प्रश्नोत्तर-पद्धति एक चातुर्यपूर्ण कौशल का काम देती है।

(२) **मानवेतर सृष्टि और संवाद**—अनेक कहावते ऐसी है जिनमें सृष्टि के प्राणियों ने कहावत को जोरदार बनाने में योग दिया है जैसे

(अ) मकोडो कह—मा! मैं गुड की भेली उठा ल्याऊँ। कह—कड़तू कानी देख!

अर्थात् मकोड़ा (कीट-विशेष) कहता है कि हे माँ! मैं गुड़ की भेली उठा लाऊँ! उसे उत्तर मिला—अपने कटि-प्रदेश की ओर तो देख! तात्पर्य यह है कि अपने सामर्थ्य के अनुसार ही काम किया जा सकता है।

(आ) धोली! धाड़ आई। बाँधैगो, वो ही नीरैगो।

किसी ने कहा—हे धवल गाय! डाकू आ रहे हैं। गाय ने उत्तर दिया—इससे मुझे क्या? मुझे तो जो बाँधेगा, वही मेरे लिए दाने-पानी की भी व्यवस्था करेगा।

(इ) टाँडो क्यूं हो, कै साँड हाँ। गोबर क्यूं करो? कै—गऊ का जाया हाँ।

अर्थात् गरजते क्यों हो? साँड है। गोबर क्यो करते हो? गाय से पैदा हुए हैं।

अवसरवादियों को लक्ष्य में रखकर यह कहावत कही गई है।

इस प्रकार की कहावतों में मानवेतर सृष्टि के प्राणी प्रतीकवत् व्यवहृत होते हैं।

---

१. चारण साहित्य मां दुहा नुं स्थान। (श्री खेतसिंहजी नारायणजी मिश्रण) चारण वर्ष १, अंक ४, पृष्ठ ७-८।

७. राजस्थानी कहावतों में 'लौकिक न्याय' का रूप

संस्कृत में जिस प्रकार अजाकृपाणी आदि न्याय प्रचलित हैं, उसी प्रकार राजस्थानी भाषा में कुछ ऐसे दृष्टान्त हैं जो कहावतों की भाँति ही प्रचलित है। इस प्रकार के दृष्टान्त वस्तुतः 'लौकिक न्याय' ही हैं। निम्नलिखित उदाहरण से प्रकृत विषय का स्पष्टीकरण हो सकेगा :

'नाई हालो ठोलो, वाणिया हालो टक्को।'

एक नाई किसी बनिये के यहाँ हजामत बनाने गया। जब वह हजामत बना चुका तो उसने बनिये की टाट को एक बार अपनी अँगुलि की ग्रन्थि से बजाया। यद्यपि इससे बनिया मन ही मन रुष्ट तो बहुत हुआ तथापि उसने नाई को उसकी करतूत का फल चखाने के उद्देश्य से कृत्रिम हर्ष प्रकट किया और उसे एक टका भेट कर दिया। वही नाई एक दिन किसी ठाकुर के यहाँ हजामत बनाने गया। बनिये से पुरस्कार मिल जाने के कारण उसे तो हजामत के बाद टाट बजाने का चस्का पड़ गया था। इसलिए पुरस्कार के लिए लालायित होकर ठाकुर के सिर पर भी उसने अँगुलि की ग्रन्थि को आजमाया। ठाकुर ने इसे अपना अपमान समझा और तुरन्त ही तलवार हाथ में ले नाई का सिर धड से अलग कर दिया।

इस प्रकार जब किसी को उसके कुकर्म की सजा दिलवाने के लिए कुछ प्रलोभन देकर कुमार्ग की ओर प्रवृत्त कर दिया जाता है, तब उक्त 'न्याय' का प्रयोग किया जाता है।

'गुजराती कहेवत संग्रह' में इसी घटना का निम्नलिखित रूप में उल्लेख हुआ है :

"एक पैसावालो वाणीओ अेक हजामनी पासे हजामत करावा बेठो, हजामत करी रह्या पछी हजामे वाणीआने माथे, सारी हजामत थई छे के केम ते जोवा, हाथ फेरव्यो सारी हजामत थई मालुम पड़ी अेटले हजामे वचली आगली वालीने वाणीआना माथा मा टकोरो मार्यो। वाणीआने रीस तो चडी, पण ते दबावी राखी ने मुनीम ने हुकम कर्यो के अेक सुना मोहोर धाअेजाने आपो। धाअेजे मान्युं के टकोरो मारयो ते सारी बात छे, केम के हजामती अेक सुना मोहोर टकोराथी पाकी। धांअेजाए टकोरा माखानो रिवाज बराबर ग्रहण कर्यो ने कोई अमीरनुं वतुं करूं तो टकोरो मारूं। तेम करतां बादशाही फोजना सेनापतिनुं वतुं करवा जोग आव्यो, त्यारे हजामत करीने सेनापति ने टकोरो मार्यो तेनी साथे ज सेनापतिअे धाअेजानुं शिर उडावी दीधुं ते ऊपर थी आ दोहरो थयो छे।"[1]

राजस्थानी और गुजराती आख्यान में अन्तर इतना ही है कि राजस्थान के नाई को बनिये से एक टका मिला है जब कि गुजराती नाई को एक स्वर्ण-मोहर, राजस्थानी नाई की मृत्यु हुई है एक ठाकुर के हाथों, जब कि गुजरात का नाई बाद-

१. मिलाइये : टोकर साथी हजाम नी, आप्युं भलुं इनाम।
शिर छेदाव्युं हजाम नुं, जुओ वणिक नां काम॥
—गुजराती कहेवत संग्रह : (आशाराम दलीचंद शाह); द्वितीय संस्करण, पृ० ४३८।

शाही फौज के सेनापति द्वारा मारा गया है किन्तु तत्त्वतः दोनों भाषाओं में प्रचलित आख्यान एक ही हैं।

किन्तु काश्मीर तक आते-आते इस उपाख्यान का आकार-प्रकार बदल गय यद्यपि इसकी आत्मा में कोई परिवर्तन नही हुआ। Rev. J. Hinton Knowle ने 'काश्मीरी कहावतों और उक्तियो के अपने कोश' में एक कहावत संगृहीत की है 'नमाज की अँगुलि'[1] जिसके पीछे निम्नलिखित कथा कही जाती है :—

"एक उच्चवंशीय पठान जुम्मा मसजिद में नमाज पढ़ रहा था किन्तु पीछे से एक आदमी उसे अँगुलि से परेशान कर रहा था। पठान ने उसे एक रुपया दिया तंग करने वाले व्यक्ति ने पठान को तो तंग करना छोड़ दिया किन्तु इस प्रकार रुपया मिल जाने से उसे शरारत करने में मज़ा आने लगा। उसने एक दूसरे नमाज पढ़ने वाले के साथ शरारत करना शुरू किया किन्तु यह दूसरा व्यक्ति उग्र स्वभाव का था। वह तुरन्त उठ खडा हुआ, म्यान से अपनी तलवार निकाली और शरारती का सिर धड से अलग कर दिया।"[2]

यह नही कहा जा सकता कि इस आख्यान का मूल स्रोत क्या है किन्तु इतना निश्चित है कि देश-काल की भिन्नता के कारण इस प्रकार के आख्यानो मे वाह्य परिवर्तन होते रहते है। काश्मीरी आख्यान मे वहाँ की परिस्थितियो के अनुरूप ही परिवर्तन हो गया है जो स्वाभाविक है।

राजस्थानी भाषा मे इस प्रकार के बहुत से दृष्टान्त मिलते हैं और प्रसंग आने पर कहा जाता है 'नाई कै ठोलै हाली बात हुई।' राजस्थानी मे इस प्रकार के दृष्टान्तो का यद्यपि नामकरण नही हुआ है किन्तु इन्हे यदि 'लौकिक न्याय' की सज्ञा दी जाय तो कुछ अनुचित न होगा। 'अजाकृपाणी' आदि न्यायो के सादृश्य पर उक्त दृष्टान्त को 'नाई-ठोलो न्याय' के नाम से अभिहित किया जा सकता है। परिशिष्ट मे इस प्रकार के कुछ दृष्टान्त राजस्थान के 'लौकिक न्यायो' के नाम से ही संग्रहीत कर दिये गये है।

८. राजस्थानी कहावतों में व्यक्ति

१. नाम और गुण का वैषम्य—व्यक्ति का आश्रय लेकर भी कहावतों में अनेक प्रकार के भाव व्यक्त किये गये हैं। राजस्थानी कहावतो में इस प्रकार के नामों का प्राचुर्य है जिनमें व्यक्तियों का नाम उनकी स्थिति के विरोध रूप मे आता है। उदाहरणार्थ—

(क) आंख्यां में गीड पड़ै नांव मिरगानैणी।

अर्थात् आँखें तो नेत्र-मल से लिप्त है और नाम है मृगनयनी!

---

1. Nemazi Sung unguj. (A Dictionary of Kashmiri Proverbs and sayings by J. H. knowles)

2. Because sentence against an evil work is not executed speedily, therefore the heart of the sons of men is fully set in them to do evil.

Eccl. Viii-ii

(ख) नांव गंगाधर न्हावै कोनी ऊमर में ।

अर्थात् नाम तो गंगाधर है किन्तु उम्र में कभी स्नान ही कहीं करता ।

(ग) नांव लिछमीधर कन्नै कोनी छिदाम ही ।

अर्थात् नाम तो है लक्ष्मीधर, पास में छदाम तक नहीं ।

(घ) नांव तो हजारीलाल घाटो ग्यारा सै को !

अर्थात् नाम तो है हज़ारीलाल और घाटा है ग्यारह सौ का !

(ङ) नाव सीतल्दास, दुर्वासा सो झाली ।[1]

अर्थात् नाम तो है शीतल्दास और है दुर्वासा-सा प्रचण्ड क्रोधी !

(च) कक्कै को फूट्यो आक ई को आवै ना र नांव है विद्याधर ।

अर्थात् ककहरे का फूटा अक्षर भी नही जानता और नाम है विद्याधर ।

(छ) नाव तो बशीधर, आवै कोनी अलगोजो बजाणू ही ।

अर्थात् नाम तो है वशीधर किन्तु अलगोजा बजाना ही नही जानता ।

उक्त राजस्थानी कहावतो से नाम और गुण के वैषम्य पर अच्छा प्रकाश पडता है ।

२. **नाम और गुण का सामंजस्य**—कतिपय कहावते ऐसी भी मिलती हैं जिनमें नाम और गुण का सामजस्य मिलता है ।

(क) "माना चाली सासरै, मनावण वालो कूण ।" एक ऐसी ही कहावत है जिसका अभिप्राय यह है कि माना ससुराल चली, उसको मनाने वाला कौन ? "माना" से तात्पर्य उस हठीली स्त्री से है जो बात-बात पर रूठ जाती है । जिसका नाम ही "माना" (मानिनी) है, उसे कोई कैसे मना सकता है ?

इसी प्रकार की एक दूसरी लोकोक्ति लीजिये—

(ख) जठै भागा भागी जा, उठै भाग अगाऊ जा ।

अर्थात् 'भागा' नाम की स्त्री जहाँ भी भगकर जाती है, वही भाग्य उसके आगे दौडकर पहले ही पहुँच जाता है । 'भागां' का शाब्दिक अर्थ है 'भाग्यशालिनी ।" 'भागां' यथा नाम तथा गुण की लोकोक्ति चरितार्थ करती है ।

ऐसी भी बहुत सी कहावते हैं जिनमे व्यक्तियो का नाम है, मगर उनका सम्बन्ध लोक-मानस की रचना-शक्ति से है । उनमें कहावत के अभिप्राय के अनुसार ही नाम की रचना हुई है और अर्थ को स्पष्ट करने की दृष्टि से ही जिसका महत्त्व है ।[2] (ग) गगा गयां गंगादास, जमना गया जमनादास" जैसी कहावतों में नामकरण सम्बन्धी यह प्रवृत्ति स्पष्टतः देखी जा सकती है । अवसरवादी को लक्ष्य में रखकर उक्त लोकोक्ति का प्रयोग होता है ।

धनहीन और धनवानों मे कितना अन्तर होता है, यह निम्नलिखित कहावतों में प्रयुक्त एक ही नाम के तीन रूपान्तरों द्वारा स्पष्ट है ।

(घ) "माया तेरा तीन नाम, परस्या, परसी, परसराम ।" ज्यों-ज्यों मनुष्य

---

१. मिलाइये : 'नाम कई सीतल्दासजी ने बतलाया तो भोभल्दासजी ।'

२. द्रष्टव्य : "मंगल प्रभात" अप्रैल १९५७ में प्रकाशित रसूल अहमद द्वारा लिखित "कहावतों मे व्यक्ति" शीर्षक लेख, पृष्ठ ९६ ।

के पास पैसा बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों उसकी कदर भी बढ़ती जाती है। किसी गरीब आदमी को लोग 'परस्या' जैसे छोटे नाम से पुकारते हैं। उसकी आर्थिक अवस्था में सुधार होने से वह 'परसी' हो जाता है और धनवान होने पर तो लोग उसे 'परसराम' (परशुराम) कहने लगते है। यह सब पैसे की माया है।

(३) **तुक, अनुप्रास तथा नाम**—कभी-कभी तुक तथा अनुप्रास के लिए भी कहावतो में तदनुरूप नाम की कल्पना कर ली जाती है जिसका विवेचन तुक तथा अनुप्रास के प्रकरण में यथास्थान किया जा चुका है।

(४) **नाम और समोच्चार-विनोद** (Pun)—किसी के नाम को लेकर राजस्थानी कहावतो मे व्यग्यात्मक शब्द-विनोद भी चलता है। एक बाबाजी का नाम था 'बैंगनदास' जिसको लक्ष्य में रखकर किसी मनचले व्यक्ति ने कहा—'बाबोजी रा बाबोजी ने तरकारी री तरकारी।"[1] अर्थात् बैंगनदास भी क्या ही सुन्दर नाम है जिसमें बाबाजी के बाबाजी बने रहे और इसी मे तरकारी का भी अन्तर्भाव हो गया!

(५) **जड़ पदार्थ आदि का मानवीकरण**—अनेक कहावते ऐसी भी मिलती हैं जिनमें जड़ पदार्थो को भी इस तरह प्रस्तुत किया गया है मानो वे व्यक्तियो के नाम हों। उदाहरण के लिए निम्नलिखित राजस्थानी कहावते लीजिये :

(क) रूपलाल जी गुरू, बाकी सब चेला।

अर्थात् रुपया गुरु है, बाकी सब चेले हैं।

(ख) **अनजी नाचै अनजी कूदै, अनजी करै गटरका।**
आज अनजी घर में नहीं, कूण करैला मटरका॥[2]

तात्पर्य यह है कि अन्न के बल पर ही सब राग-रग और नाच-कूद सूझते हैं।

(ग) **धन धन माता राबड़ी ! जाड़ हालै न जाबड़ी।**

अर्थात् हे राबड़ी माता ! तू धन्य है जिसके सेवन करने में न दाढ़ हिलती है, न जबड़ा।

ऊपर उद्धृत पहली कहावत में रुपया के लिए 'रूपलालजी' का प्रयोग हुआ है। इस प्रयोग के कारण कहावत में जहाँ किंचित् विनोद का पुट आ गया है, वहाँ इसके कारण उक्ति की प्रभावकता भी बढ गई है। यही बात दूसरी कहावत में अन्न के लिए प्रयुक्त 'अनजी' के लिए कही जा सकती है। तीसरी कहावत में किसी वृद्ध द्वारा माता राबडी का जयजयकार भी मधुर हास्य की सृष्टि कर देता है।

कुछ कहावतों में पशुओं को भी इस तरह रखा गया है मानों वे स्त्री-पुरुषों के नाम हों। उदाहरणार्थ :

'नव सौ ऊंदर मार मिनां बाई तीरथ चाल्या।'

उक्त कहावत में बिल्ली के लिए प्रयुक्त 'मिनां बाई' ऐसा लगता है मानो वह किसी स्त्री का नाम हो।

(६) **नामों का संक्षेपीकरण**—सस्कृत व्याकरण के नियमानुसार देवदत्त के

---

१. मारवाड रा ओखाणा, पृ० ५२।

२. 'अनियूं नाचै, अनियूं कूदै, अनियूं तोड़ै तान।'

तीन रूप बनते है, देविक, देविय और देविन । संक्षेपीकरण की इस प्रवृत्ति का मूल कारण है अनुकम्पा जो बड़े छोटों के प्रति दिखलाते हैं, वत्सलता अथवा प्यार के कारण छोटे नाम रख लिये जाते हैं।[1]

राजस्थानी कहावतो में व्यक्तिवाचक नाम अनेक बार अपने सक्षिप्त रूप में व्यवहृत हुए है ।

(क) 'असो भगवानियूं भोलो कोनी जो भूखो गायां में जाय' ।

अर्थात् भगवानिया ऐसा भोला नही है जो भूखा गाय चराने के लिए जाय ।

इस कहावत में 'भगवानदत्त' अथवा 'भगवानदास' के स्थान में उसके लघु रूप 'भगवानियू' का प्रयोग हुआ है । जिस प्रकार देवदत्त का संक्षिप्त रूप 'देविय' बनता है, उसी प्रकार 'भगवानदत्त' से 'भगवानिय' (भगवानियू) बन सकता है किन्तु राजस्थानी भाषा में इस प्रकार का प्रयोग सामान्यत: लघुता-द्योतक है ।

(ख) 'जैतलदे बिना किसो राती जुगो ?'

अर्थात् जैतलदे विषयक गीतो के बिना रात्रि-जागरण व्यर्थ है । इस कहावत का 'जैतलदे' शब्द भी जैतलदेवी का लघु रूप (जैतलदेई—जैतलदे) है ।

राजस्थानी कहावतों में प्रयुक्त इन व्यक्तिवाचक नामों से भाषा-सम्बन्धी बहुत से तथ्यों पर प्रकाश पडता है ।

(७) **हिन्दू व मुसलिम नाम**—यद्यपि हिन्दू नामों के साथ-साथ राजस्थानी कहावतों में मुसलमानो के नाम भी मिलते है किन्तु उनकी संख्या अपेक्षाकृत बहुत कम है । उदाहरण के लिए दो कहावतें लीजिये :

(क) **अमूजान की बाकरी, खा गई सगलो खेत ।**
धाक पड़ी लखधीर की, खा गयो खाल समेत ।।

अर्थात् अमूजान की बकरी सारा खेत खा गई । जब लखधीर की धाक पडी तो वह उसे खाल समेत खा गया । सेर को सवा सेर मिल जाने पर बुद्धि ठिकाने आ जाती है ।

(ख) मेरो खुदाबकसियो ढाई सेर की लापसी खा ज्याय पण खा ज्याय कै भड़वा की !

अर्थात् मेरा लड़का खुदाबख्श अढाई सेर लपसी खा जाय पर पैसा पास हो तब न !

मुसलमानों के इन नामो से स्पष्ट है कि इस प्रकार की कहावतें हिन्दू मुसलमानों के सम्पर्क के बाद बनी हैं । अनेक कहावतें ऐसी भी हैं जो मुसलमानो के यहाँ से ही आई हैं ।

कहावतो में कभी-कभी तो रचयिता का नाम भी जडा रहता है ।[2] कभी-कभी प्रभाव-वृद्धि तथा तथ्य की प्रामाणिकता के लिए किसी प्रसिद्ध व्यक्ति का नाम रख

---

१. अनुकम्पायाम् (V. 3. 76)—India as known to Panini by Dr. V.S. Agrawala: p. 183.

२. राम भरोसै ऊकलै आधण **ईसरदास** ।

दिया जाता है,[1] कभी-कभी किसी को सम्बोधित की हुई कोई उक्ति कहावत बन जाती है,[2] तो कभी यह भी सम्भव है कि जिस व्यक्ति के साथ घटना घटित हुई हो, उसी का कहावत में नाम रह गया हो।[3]

९. राजस्थानी कहावतों में संख्या

राजस्थानी कहावतों मे संख्या के प्रयोग को हम दो भागों में बाँट सकते हैं; समुच्चयात्मक और असमुच्चयात्मक। विचारार्थ सबसे पहले समुच्चयात्मक सख्या को लीजिये।

(१) **समुच्चयात्मक**—स्मरण-शक्ति को सहायता पहुँचाने की दृष्टि से समुच्चयात्मक संख्या का महत्त्वपूर्ण स्थान है। संख्या-पद्धति का आश्रय लेकर कई वस्तुएँ जब एक पद्य में जड़ दी जाती हैं तो उन्हे याद रखना बड़ा सुगम हो जाता है। वैसे तो आधुनिक युग में भी पंचसूत्री तथा दससूत्री आदि कार्यक्रम चलते हैं तथापि सख्याओं के रूप में सोचने की प्रवृत्ति कहावतो मे विशेष रूप से देखी जाती है। उदाहरण के लिए कुछ राजस्थानी कहावते लीजिए।

(क) **तीन संख्या**—(अ) आओ, बैठो, पीओ पाणी, तीन बात तो मोल नी आणी।[4]

अर्थात् आवभगत, बैठने के लिए आसन और पीने के लिए पानी, इन तीन चीजों का मूल्य नही लगता।

(आ) धोबी को गधो, स्यामी की गाय, राजा को नोकर तीनूं गत्ता सैं जाय।

अर्थात् धोबी का गधा, साधु की गाय और राजा का नौकर, ये तीनो फिर दूसरे किसी काम के नही रह जाते।

(ख) **चार संख्या**—

(अ) **धान पुराणा, घी नवाँ, घर कुलवन्ती नार।**
चौथी पीठ तुर ग री, धरम तणा फल च्यार॥[5]

अर्थात् पुराना धान, नया घी, घर में कुलीन स्त्री और सवारी के लिए घोड़े की पीठ, ये चार धर्म के फल है।

---

१. जैडा में तैड़ो मिल्यो सुणजो राजा भोज।
२. हेत कपट विवहार रहे न छानो राजिया।
३. इलोजी घोड़ा रा पारखू।
४. संस्कृत सुभाषितकार ने एक ऐसे ही प्रसंग में निम्नलिखित चार वस्तुओं का उल्लेख किया है—

तृणानि भूमिरुदकं वाक्चतुर्थी च सूनृता।
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन॥

५. मिलाइये—

छाछ छांवली छोकरा अर छंदगाली नार।
चारों छछा तब मिले जब तूठें करतार।

अर्थात् ईश्वर की दया-दृष्टि होने पर ही छाछ, छाया, बाल-बच्चे और शृंगार-प्रिय स्त्री मिलती है। —मेवाड़ की कहावतें, भाग १, पृष्ठ ३३-३४।

(आ) लूखा भोजन मग बहण, बडका बोली नार।
मदर चुवै टपूकड़ाँ, पाप तणाँ फल च्यार॥

अर्थात् रूखा-सूखा भोजन, पैदल रास्ते चलना, बढ़-चढ़ कर बोलने वाली स्त्री और टपकने वाला घर, ये चार पाप के फल है।

(इ) भैंसो मींडो बाकरो चौथी विधवा नार।
ये च्यारूँ, माड़ा भला, मोटा करै बिगाड़॥

अर्थात् भैंसा, भेड़ा, बकरा, और विधवा स्त्री, ये चारों दुबले-पतले ही अच्छे; हृष्ट-पुष्ट होने पर ये बिगाड़ करते है।

(ग) **पाँच सख्या**—पाँच संख्या से सम्बन्ध रखने वाले अनेक पद्य वृत्यनुप्रास के प्रसंग मे उद्धृत किये जा चुके है।

(घ) **छः सख्या**—छ संख्या से सम्बन्ध रखने वाले कहावती पद्यों का प्रायः अभाव है।

(ङ) **सात संख्या**—जहाँ तक सात संख्या का प्रश्न है, राजस्थानी भाषा में निम्नलिखित सात सुख अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।

पहलो सुख नीरोगी काया। दूजो सुख हो घर में माया॥
तीजो सुख पुत्र अधिकारी। चोथो सुख पतिवर्ता नारी॥
पाँचवों सुख राज में पासा। छठो सुख सुस्थाने बासा॥
सातवों सुख विद्या फलदाता। ए सातों सुख रच्या विधाता॥

वस्तु-समुच्चय की दृष्टि से ७ वस्तुओ से अधिक संख्या के कहावती उदाहरण प्रायः नही मिलते क्योकि कहावत के लिए उपयुक्त छोटे छंद मे बहुत सी वस्तुओं को एक साथ नही रक्खा जा सक्ता और सख्या बढाकर कई छन्द एक साथ बनाने से फिर उन वस्तुओं को याद रखना कठिन हो जाता है। एक छन्द में चार-पाँच वस्तुओं का समुच्चय अपेक्षाकृत सुगमता से हो जाता है, यही कारण है कि चार और पाँच संख्या को लेकर कही हुई समुच्चयात्मक कहावते संख्या में अधिक मिलती है।

(२) **असमुच्चयात्मक**—असमुच्चयात्मक संख्या का प्रयोग तुक, अनुप्रास तथा वैषम्य आदि के लिए किया जाता है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित राजस्थानी कहावत लीजिये—

क. अनुप्रास और तुक

हाथी हजार को, महावत कोडी च्यार को।'

यहाँ पर 'हजार' का प्रयोग हाथी के साथ अनुप्रास की रक्षार्थ किया गया है तथा महावत के साथ 'च्यार' का प्रयोग 'हजार' और 'च्यार' की तुक मिलाने के लिये हुआ है। ऐसा जान पड़ता कि कहावतों में तुक और अनुप्रास संख्या को बहुधा निर्धारित करते हैं। टर्की भाषा में 'हजार' संख्या का बहुत प्रयोग होता है जैसा कि निम्नलिखित तीन कहावतों के प्रयोग से स्पष्ट है।

(1) One accident teaches more than a thousand good counsels.

(2) A thousand worries do not pay one single debt.

(3) Measure a thousand times before cutting once.

ऊपर से देखने पर ऐसा मालूम पडता है कि टर्की भाषा में हजार का प्रयोग उस अत्युक्ति की प्रवृत्ति के कारण है जो पौरस्त्य देशों की विशेषता है किन्तु वस्तुतः इसका मुख्य कारण यह है कि टर्की भाषा में 'एक हजार' के लिए जो शब्द प्रयुक्त होते हैं वे हैं 'Bin, bir'. जिनमें अनुप्रास और नाद-सौन्दर्य इतना है कि प्रयोक्ता इन शब्दों के प्रयोग का लोभ संवरण नही कर पाते।[1]

विश्व की प्रायः सभी भाषाओ की कहावतों में अनुप्रास और तुक संख्याओं को प्रभावित करते हैं।

ख. संख्या और वैषम्य आदि

'सात बार, नो त्युंहार' अर्थात् बार तो सात होते है किन्तु त्यौहार नौ हो जाते है। दिनों और त्यौहारों के वैषम्य को लेकर इस कहावत में व्यंग्य कसा गया है।[२] अनेक बार अपनी बात पर बल देने तथा उक्ति को प्रभावशाली बनाने के लिए भी एक बडी संख्या का प्रयोग किया जाता है। 'एक नन्नू सो दुख हड़ै' अर्थात् एक 'नही' कह देने से सौ दुख दूर हो जाते है। इस कहावत मे 'सौ' के प्रयोग से उक्ति को बल मिल गया है। संख्या के सम्बन्ध में जो अत्युक्तियाँ कहावतों में मिलती हैं, उनके कारण भी उक्तियाँ प्रभावोत्पादक बन जाती है। अनेक बार संख्या का प्रयोग शाब्दिक अर्थ को प्रकट करने के लिए नही होता, वह किसी तथ्य की प्रतीति कराने के लिए एक प्रमुख साधन है।

१०. राजस्थानी कहावतों के रूप पर संस्कृत का प्रभाव

भारतवर्ष की प्रायः सभी भाषाएँ किसी न किसी रूप में संस्कृत वाङ्मय द्वारा प्रभावित हुई है। राजस्थानी भाषा भी इसका कोई अपवाद नही है। जहाँ तक राजस्थानी लोकोक्तियो का सम्बन्ध है, संस्कृत भाषा ने उसके रूप को अनेक प्रकार से प्रभावित किया है।

(१) **अनुवाद**—राजस्थानी में कुछ कहावते ऐसी हैं जो संस्कृत कहावतो की अनुवाद-सी जान पड़ती है। जैसे,

राजस्थानी लोकोक्ति	संस्कृत लोकोक्ति
(क) हाथी रे पग में सगलां रा पग अर्थात् हाथी के पैर में सबके पैर समा जाते है।	(क) सर्वे पदा हस्तिपदे निमग्नाः।
(ख) मूंड मूंड री मत न्यारी। अर्थात् जितने मस्तिष्क है, उतनी ही बुद्धियाँ हैं।	(ख) मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना।

---

1. Introduction to the proverbs of Turkey by S Topalian P. C. IV.

२. इस कहावत को यदि व्यंग्यात्मक न माना जाय तो यह समृद्धिसूचक भी मानी जा सकती है।

(ग) टावर कुटाबर हो जावै, मायत कुमायत को हुवै नी। अर्थात् पुत्र कुपुत्र हो जाता है, माता कुमाता नही होती।

(ग) कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।

(घ) खावै जिसो अन्न, तिसो हुवै मन्न। अर्थात् जो जैसा अन्न खाता है, उसका वैसा ही मन हो जाता है।

(घ) यादृशं भक्षयेदन्नं बुद्धिर्भवति तादृशी।

(ङ) मिनखा में नाई, पखेरुवां में काग। अर्थात् मनुष्यों में नाई तथा पक्षियों मे कौवा चालाक होता है।

(ङ) नराणां नापितो धूर्तः, पक्षिणां चैव वायसः।

(च) ऊत गांव में अरंड ही रूंख। अर्थात् छोटे गाँव में एरण्ड ही पेड़ समझा जाता है।

(च) निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते।

(२) **वेश-परिवर्तन**—कुछ लोकोक्तियाँ ऐसी हैं जो संस्कृत से राजस्थानी में आई हैं किन्तु तत्सम रूप में ग्रहण करने के प्रयास मे जिनके वेश में यत्किंचित् परिवर्तन हो गया है। 'आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखी भवेत्' यह संस्कृत की एक प्रसिद्ध लोकोक्ति है जो राजस्थानी में आते-आते 'आहारे व्योहारे लज्जा न कारे' के रूप में बदल गई है। 'व्योहारे' के साथ तुक मिलाने के लिए राजस्थानी लोकोक्ति में 'कारे' रह गया है। जैसा पहले कहा जा चुका है, कहावतों के रूप-निर्माण में इस तुक का बडा हाथ है। संस्कृत की इसी लोकोक्ति ने मराठी भाषा में 'आहारीं व्यवहारीं कदापि लज्जा न धरी' का रूप धारण कर लिया है। यहाँ भी 'व्यवहारी' और 'धरी' का तुक द्रष्टव्य है।

संस्कृत का कोई कहावती वाक्य जब राजस्थानी में आया है तो तुक अथवा उच्चारण की सुविधा के लिए उसके रूप में लोक-मानस ने यथेच्छ परिवर्तन कर लिया है। 'व्यापारे वर्धते लक्ष्मीः' अथवा 'व्यापारे वसते लक्ष्मीः' के स्थान में 'व्योपारे वधते लक्ष्मी' राजस्थान में कहावत की भाँति प्रचलित हो गया।

इसी प्रकार 'अग्रे अग्रे विप्राणां नदी नालः विवर्जितः' के स्थान में 'अग्रे अग्रे ब्राह्मणा नदी नार विवर्जिता' अथवा 'अग्रे अग्रे ब्राह्मणा नदी नाला वरजन्ते' बोलचाल में प्रयुक्त होने लगे। इसी प्रकार निरक्षरों से सम्बद्ध राजस्थानी भाषा की निम्न-लिखित कहावत में 'ॐ नमः सिद्धम्' के स्थान में 'ओनामासी धम' रह गया :

'ओनामासी धम, न बाप पढ़े न हम।'

(३) **संस्कृतीकरण**—राजस्थानी में कुछ लोकोक्तियाँ ऐसी भी है जिन्हें संस्कृत रूप देने का प्रयास किया गया है। उदाहरणार्थ दो लोकोक्तियाँ लीजिये :

(क) खड खडेतूं पंडेतू। (खंडे खंडे तु पंडितः।)

अर्थात् ज्ञान क्रमशः ही प्राप्त किया जा सकता है।

(ख) पापोपाप समोसमा।

(४) सादृश्य—कभी-कभी ऐसी लोकोक्ति भी सुन पड़ती है जो संस्कृत की किसी प्रसिद्ध पक्ति के अनुकरण पर बना ली गई है। 'भज कलदारं, भज कलदारं कलदारं भज मूढमते' एक ऐसी ही लोकोक्ति है जो श्री शंकराचार्य के 'भज गोविन्दं भज गोविन्दं, गोविन्दं भज मूढमते' के सादृश्य पर बनी है। कविराजा ऊमरदान ने 'भज गोविन्दं' के गीत की तरह 'भज कलदार' का गीत बनाया है जो उनके कविता-संग्रह ऊमर काव्य में छपा है। इस प्रकार की रचनाओं में विडम्बन-काव्य (Parody) का आनन्द मिलता है।

११. राजस्थानी कहावतों का एक विशिष्ट रूप

चन्द्रायण (चांद्रायण)[1] छन्द मे कुछ इस प्रकार के कहावती पद्य राजस्थान की सामान्य जनता में प्रचलित हैं जिनके अन्तिम चरण में कहा जाता है—

(अ) एता दे करतार फेर नह बोलणा।

अथवा

(आ) एता दे करतार फेर क्या चावणा।

अथवा

(इ) एता दे करतार फेर क्या बोलणा।

इस प्रकार के दो छन्द यहाँ उद्धृत किये जाते है।

उणी गाँव में पीर उणी में सासरो।
आथमणी दिस खेत चुवै नह आसरो॥
नाडी खेत नजीक जठे हल खोलणा।
एता दे करतार फेर नह बोलणा॥

जाट की बेटी परमात्मा से प्रार्थना करती है कि हे करतार! एक ही गाँव में मेरे नैहर और ससुराल दोनो हो, पश्चिम दिशा मे खेत हो, मेरी झोपडी चुवा न करे। खेत के पास ही तलैया हो जहाँ हल खोल सकूँ। यदि मुझे इतना-सा दे दे तो मैं कुछ नही बोलूँगी।

ठाकुर ह्वै बो जाँण समज्झै अक्खराँ।
सीरोई तरवार बहै सिर वक्करां॥
पातां साँमी पांत क पैल परूसणा।
एता दे करतार फेर क्या चावणा॥

एक चारण परमात्मा से प्रार्थना करता है कि हे परमपिता! ठाकुर जो मिले, वह बहुत सी बातो का जानकार हो, गुणी हो जो कविता को समझ सके। सिरोही की तलवार बकरो पर चलती रहे। जब थाल परोसने का समय आवे तब

---

१. चांद्रायण एक मात्रिक छन्द होता है जिसके प्रत्येक चरण में ११ और १० के विराम से २१ मात्राएँ होती है। पहले विराम पर जगण और दूसरे पर रगण होना चाहिए।

—हिन्दी शब्द सागर, (दूसरा भाग); पृष्ठ ६६७

सबसे पहले मुझे ही थाल मिले। यदि इतना-सा तू प्रदान करे तो फिर मुझे और कुछ माँगना नही है।

श्री रामदेवजी चोखानी ने संवत् १९९२ में 'राजस्थानियों की अभिलाषाएँ' शीर्षक एक लेख राजस्थान वर्ष १, संख्या ४, में प्रकाशित करवाया था जिसमे इस प्रकार के करीब २० छन्दो का हिन्दी अनुवाद सहित संग्रह किया गया था। इसके बाद डा० सत्यप्रकाश ने इन छन्दों के सग्रह-कार्य को और आगे बढाया और उन्होने इस विषय पर कुछ लेख भी लिखे।

इस प्रकार के इच्छा-विषयक कहावती पद्य केवल राजस्थान में ही नही, अन्य प्रदेशों में भी मिलते है। डा० सत्येन्द्र के शब्दों मे कुछ लोकोक्तियाँ ऐसी भी होती है, जिनमें लोकोक्तिकार सुखदायक वस्तुओ की संयोजना कर देता है। इनमें वह यह बताना चाहता है कि किस प्रकार की स्थितियाँ मनुष्य को आनन्द दे सकती है। ऐसी लोकोक्तियाँ 'ओलना' कहलाती हैं।

रिमझिम बरसै मेह कि ऊँची रावटी।
कामिन करै सिंगार कि पहरै पामटी॥
बारह बरस की नारि गरे में ढोलना।
इतनौ दे करतार फेरि ना बोलना॥

एक अन्य लोकोक्तिकार सुख की यह कल्पना करता है।

बर पीपर की छाँह कि संगत घनों की।
भाँग तमाखू मिर्च कि मुट्ठी चनों की॥
भूरी भैंस को दूध बतासे घोलना।
इतनौ दे करतार फेरि ना बोलना॥[1]

डा० सत्येन्द्र द्वारा उद्धृत दोनों कहावती पद्य चाद्रायण छन्द में ही है और आकार-प्रकार तथा भावना की दृष्टि से भी राजस्थानी छन्दो से पूरे-पूरे मिल जाते हैं।

---

१. ब्रज लोक-साहित्य का अध्ययन, (डा० सत्येन्द्र); पृष्ठ ५४१।

(ख) विषयानुसार वर्गीकरण

१. राजस्थान की ऐतिहासिक कहावतें

(१) **ऐतिहासिक कहावतों की भारतीय परम्परा**—राजस्थान की पद्यात्मक ऐतिहासिक कहावतें एक प्रकार से राजस्थान की ऐतिहासिक गाथाएँ ही हैं। भारतवर्ष में गाथाओं की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। 'गाथा' शब्द का प्रयोग एक प्रकार के विशिष्ट साहित्य के अर्थ में ऋग्वेद[1] में ही किया गया है जहाँ इसे रैभी और नाराशसी से अलग निर्दिष्ट किया गया है। ब्राह्मण-ग्रन्थो मे गाथाओ का विशिष्ट उल्लेख उपलब्ध होता है। ऐतरेय ब्राह्मण[2] में ऋक् और गाथा में पार्थक्य दिखलाया गया है। ऋक् दवी होती थी और गाथा मानुषी अर्थात् गाथाओ की उत्पत्ति में मनुष्य का उद्योग ही प्रधान कारण होता था। ब्राह्मण-ग्रन्थो के अनुशीलन से यही प्रतीत होता है कि गाथाएँ ऋक्, यजुः और साम से पृथक् होती थीं, अर्थात् गाथाओ का व्यवहार मत्र के रूप में नही किया जाता था। अतः प्राचीन काल में किसी विशिष्ट राजा के किसी अवदान (सत्कृत्य) को लक्षित कर जो गीत समाज में प्रचलित रूप से गाये जाते थे, वे ही 'गाथा' नाम से साहित्य का एक पृथक् अग माने जाते थे। निरुक्त[3] में दुर्गाचार्य ने स्पष्ट रूप से दिखलाया है कि वैदिक सूक्तो मे कही-कही जो इतिहास उपलब्ध होता है, वह कही ऋचाओं के द्वारा, और कही गाथाओ के द्वारा निबद्ध हुआ है। ऋचाओं के समान गाथाएँ भी छन्दोबद्ध हुआ करती थी।

वैदिक गाथाओ के नमूने शतपथ ब्राह्मण[4] तथा ऐतरेय ब्राह्मण[5] मे उपलब्ध होते हैं जिनमे अश्वमेध यज्ञ करने वाले राजाओ के उदात्त चरित्र का सक्षेप मे वर्णन किया गया है। दुष्यन्त-पुत्र भरत-विषयक एक गाथा लीजिए—

महाकर्म भारतस्य न पूर्वे नापरे जनाः।
दिवं मर्त्य इव हस्ताभ्यां नोदापुः पचमानवाः॥

अर्थात् जिस प्रकार मनुष्य अपने हाथो से आकाश को नही छू सकता है, वैसे ही पंच मानवो मे से भूत और भविष्यत् के कोई भी मनुष्य भरत-पुत्र के अद्भुत कार्य की समता नही कर सकते।

इन ऐतिहासिक गाथाओ की परम्परा महाभारत-काल में भी अक्षुण्ण दीख पड़ती है। महाभारत में इसी दुष्यन्त-पुत्र भरत के सम्बन्ध में अनेक अन्य गाथाएँ दी गई हैं जो नितान्त प्राचीन प्रतीत होती है।[6] ऐतरेय वाली गाथाएँ ठीक उसी रूप में श्रीमद्भागवत के सप्तम स्कन्ध में भी उपलब्ध होती है।[7]

---

१. ऋग्वेद, १०।८५।६।
२. ऐतरेय ब्राह्मण, ७।१८।
३. स पुनरितिहास ऋग्वदो गाथावदश्च (निरुक्त ४।६)।
४. शतपथ ब्राह्मण, १३।५।४।
५. ऐतरेय ब्राह्मण, ८।४।
६. आदिपर्व, ७४ अ०, ११०-११३।
७. श्री बलदेव उपाध्याय द्वारा लिखित भोजपुरी ग्राम-गीत की भूमिका, पृष्ठ ६-७।

आगे चलकर पालि, प्राकृत और अपभ्रंश में भी गाथाओं का निर्माण बराबर होता रहा। अपभ्रंश-काल के बाद राजस्थानी भाषा में तो इस प्रकार की गाथाओं का जाल-सा बिछ गया। राजस्थान की बातों, ख्यातों तथा कथा-काव्यों के बीच-बीच में असंख्य गाथाएँ बिखरी पड़ी हैं जिन्हें हम ऐतिहासिक कहावतों, उपाख्यानों अथवा प्रवादों का नाम दे सकते हैं। डाक्टर सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या के शब्दों में "राजस्थान की जनता में जो स्वाभाविक इतिहास-बोध विद्यमान है, उसका अच्छा परिचय इन ऐतिहासिक प्रवादों से मिल जाता है।" किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि राजस्थान में जितनी ऐतिहासिक गाथाएँ अथवा कहावतें मिलती हैं, उनमें से सब इतिहास की कसौटी पर भी खरी उतरती हैं।

(२) **इतिहास और अनुश्रुतियाँ**—किसी प्रदेश की ऐतिहासिक किंवदन्तियों का बाहुल्य उसके विशिष्ट इतिहास-बोध का परिचायक अवश्य होता है किन्तु सभी देशों में इतिहास के साथ परम्परागत अनुश्रुतियाँ इस तरह मिली रहती हैं कि उनका पृथक्करण यदि असम्भव नहीं, तो कठिन अवश्य हो जाता है। अनुश्रुतियाँ पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप में चली आती हैं और मौखिक आदान-प्रदान के कारण उनमें बहुत से क्षेपकों का भी समावेश हो जाता है। इसलिए कोई आश्चर्य की बात नहीं, यदि वैज्ञानिक पद्धति द्वारा इतिहास प्रस्तुत करने वाले इतिहासकार अनुश्रुतियों को सन्देह की दृष्टि से देखें। मारवाड़ 'नवकोटि मारवाड़' के नाम से प्रख्यात है जिसकी 'साख' का निम्नलिखित कहावती छप्पय अत्यन्त प्रसिद्ध है[1]—

मंडोवर सामन्त हुवो, अजमेर सिद्धसुव।
गढ़ पूगल गजमल्ल हुवो, लोद्रवै भांणभुव।
आलपाल अरबद, भोजराजा जालन्धर।
जोगराज घरघाट हुवो, हांसू पारक्कर।
नवकोटि किराडू सजुगत, थिर पंवारहर थप्पिया।
धरणीवराह धर भाइयां, कोट बांट जू जू किया॥

अर्थात् मारवाड़ में धरणीवराह नाम का एक बड़ा प्रतापी राजा हुआ था। उसने अपने राज्य को नौ जिलों में बाँटकर जब अपने भाइयों को अलग-अलग प्रदेश सौंपे तो मंडोर सामन्त को, अजमेर सिन्धु को, पूंगल गजमल को, लोद्रवा भान को, आबू आलपाल को, जालन्धर अर्थात् जालोर भोजराज को, घाट (ऊमरकोट) जोगराज को और पारकर हंसराज को मिला। कोट किराडू (बाड़मेर) धरणीवराह के पास रहा। प्रवाद प्रचलित है कि मारवाड़ राज्य के नौ कोट (किले) होने से, मारवाड़ 'नौकोटी' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। धरणीवराह के समय का कोई शिलालेख व ताम्र-पत्र नहीं मिलता, तथापि वक्ष्यमाण प्रमाण से उसका समय स० १०४० के लगभग होना चाहिए। हस्तिकुण्डी के राष्ट्रकूट धवल के सवत् १०५३ के बीजापुर के शिलालेख से जाना जाता है कि धरणीवराह अणहिलवाड़ा पाटण के स्वामी सोलंकी मूलराज प्रथम और राष्ट्रकूट धवल का समकालीन था। उक्त शिलालेख में लिखा है कि मूलराज ने धरणीवराह को उखेड़ दिया। तब वह भागा हुआ राठौड़ धवल राजा की शरण में

१. राजस्थान के सांस्कृतिक उपाख्यान, पृष्ठ ८६-८७।

आया और शरणागतवत्सल धवल ने मूलराज की परवाह न करके उसे अपने यहाँ रख लिया।[1]

किन्तु इस छप्पय की ऐतिहासिक तथ्यता अत्यन्त संदेहास्पद है। श्री ओझाजी ने इस छप्पय के सम्बन्ध में लिखा है —

'अनुमान होता है कि यह छप्पय किसी ने पीछे से बनाया हो और उसके बनाने वाले को परमारों के प्राचीन इतिहास का ठीक-ठीक ज्ञान न हो।'[2]

ओझा जी की भाँति श्री विश्वेश्वरनाथ रेउ भी उक्त छप्पय की प्रामाणिकता स्वीकार नहीं करते।[3]

बहुत सम्भव है कि नवकोटि नाम शाकम्भर सपादलक्ष आदि की तरह प्रचलित हुआ हो। उस हालत में 'कोटि' का अर्थ दुर्ग नहीं, करोड़ होना चाहिए।

कुछ भी हो, राजस्थानी इतिहास के प्रमाणभूत आचार्य श्री ओझा जी के उपर्युक्त स्पष्ट साक्ष्य के होते हुए धरणीवराह-विषयक छप्पय में निर्दिष्ट नवकोटि मारवाड़ सम्बन्धी इस प्रवाद को मात्र किंवदन्ती ही मानकर चलना चाहिए, उसे ऐतिहासिक तथ्य के रूप में गृहीत नहीं किया जा सकता।

राजस्थान में अनुश्रुति अथवा किंवदन्ती के रूप में प्रचलित एक दूसरे छप्पय पर भी विचार कीजिये—

"आदि मूल उतपत्ति, ब्रह्मपण क्षत्री जांणां।
आणदपुर सिणगार, नयर आहोर बखांणां॥
दल समूह राव रांण, मिले मंडलीक महा भड़।
मिले सबै भूपती, गुरू गहलोत नरेसर॥
एकलल मल्ल थू ज्यू अचल, कहे राज बापै कियो।
एकलिंग देव आ दूठतां, राजपाट इण पर दियो॥"

अर्थात् उसकी मौलिक उत्पत्ति तो ब्राह्मण से है किन्तु हम इसे क्षत्रिय के रूप में ही जानते आये है। वह आनन्दपुर का शृंगार है और 'आहोर' उसकी राजधानी है। सैन्य-समूह, राव, राणा, महाभट, माडलिक शासक, सब राजा और कुलगुरु गहलोत नरेश्वर से आ मिले। कहा जाता है कि इस अद्वितीय मल्ल बापा ने ध्रुव की तरह अटल राज्य किया और एकलिंग देव ने उस पर प्रसन्न होकर राजपाट उसे ही सौंप दिया। इस छप्पय से जान पड़ता है कि गहलौत पहले ब्राह्मण थे, बाद में वे क्षत्रिय हो गये। श्री डी० आर० भंडारकर ने 'गुहलौत' शीर्षक[4] अपने लेख में उक्त छप्पय को

---

१. यं मूलादुदमूलयद्गुरुबलः श्रीमूलराजो नृपो
दर्पान्धो धरणीवराहनृपतिः यद्वद्द्विषः पादपम्
आयातं भुवि कांदिशीकमभिको यस्तं शरण्यो दधौ
दंष्ट्रायामिन रूढमूढमहिमा कोलो महीमण्डलम्॥
—मारवाड़ का संक्षिप्त इतिहास : (पंडित रामकर्ण आसोपा); पृष्ठ ११-१२

२. सिरोही का इतिहास : (श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा); पृष्ठ १४७।
द्रष्टव्य हिन्दी टाड राजस्थान के प्रकरण ७वें पर श्री ओझा जी की टिप्पणी नं ७४, पृष्ठ ३७६

3. "It is also said that owing to these nine chiefships Marwar has come to be known as 'नवकोटि मारवाड़' but there is very little truth in the above 'छप्पय'। —*The Glories of Marwar*

4. Journal of the Royal Asiatic Society of Bengal, June 1909.

उद्धृत किया है और अनेक प्रमाणों द्वारा इस छप्पय के ऐतिहासिक तथ्य को स्वीकार करते हुए वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि गहलोत पहले ब्राह्मण थे, बाद में वे क्षत्रिय हो गये। इस प्रकार जो ब्राह्मण से क्षत्रिय हुए, वे 'ब्रह्मखत्री' कहलाने लगे।[1]

ऊपर जो दो छप्पय उद्धृत किये गये है, उनसे जान पड़ता है कि एक छप्पय तो ऐतिहासिक दृष्टि से भ्रामक है तथा दूसरा छप्पय अनुश्रुति के रूप में प्रचलित होने पर भी इतिहास की कसौटी पर खरा उतरता है। इससे स्पष्ट है कि अनुश्रुतियों में ऐतिहासिक तथ्य मिलता है और नही भी मिलता। अनुश्रुतियो के ऐतिहासिक तथ्या-तथ्य के सिद्धान्त को किसी ने निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया है—

'बिना कल्पना के अथवा बिना नमक-मिर्च मिलाये मजा नही आता किन्तु अत्यधिक कल्पना का प्रयोग भी दुःख का कारण बन जाता है। जिस प्रकार स्वाद की वृद्धि के लिए आटे में नमक डाला जाता है, उसी प्रकार रसास्वाद के लिए उतनी ही मात्रा में कल्पना का प्रयोग किया जाना चाहिए। बढी हुई तोद से जैसे यह अनुमान लगा लिया जाता है कि तोदधारी को आराम मिला है, नदियों से जिस प्रकार नालों की सत्ता प्रकट हो जाती है, वर्षा से ही जैसे पता चलता है कि गर्मी पड चुकी है, उसी प्रकार गीतो से इस बात का आभास मिलता है कि उनमे वर्णित घटनाएँ घटित हो चुकी हैं।[2]

किन्तु उक्त सिद्धान्त को, बिना पर्यालोचन के, यों ही स्वीकार नही किया जा सकता क्योकि ऐसे भी गीतो की सृष्टि हुई है जिनमें निदिष्ट घटनाएँ कभी घटित हुई ही नही। उदाहरण के लिए एक गीत लीजिये :

"अजे सूर झलहलै, अजे प्राजलै हुतासण।
अजे गग खलहलै, अजे सावत इद्रासण॥
अजे धरणि ब्रह्माण्ड, अजे फल फूल धरत्ती।
अजे नाथ गोरक्ख, अजे अहमात सकत्ती॥
आजू होलोहल धू अटल, वेद धरम बाणारसी।
पतसाह हूत चीतोडपत, राण मिलै किम राजसी॥"[3]

अर्थात् अभी तक सूर्य तेजमय है, अभी तक अग्नि में दाहक शक्ति है, अभी तक गंगा बह रही है, इन्द्र का आसन अभी तक ज्यो का त्यों है, पृथ्वी और ब्रह्माण्ड अभी तक अपनी-अपनी सीमा पर स्थित है, फल-फूल अभी तक पूर्ववत् पृथ्वी पर वर्तमान हैं, अभी तक गोरखनाथ विद्यमान हैं, और योगमाया ने अभी तक अपनी-अपनी शक्ति धारण

---

१. द्रष्टव्य मारवाड सेंसस रिपोर्ट (सन् १८९१); पृष्ठ ४८२-८३।

2. Without fiction there will be a want of flavour,
But too much fiction is the cause of sorrow.
Fiction should be used in that degree.
That salt is used to flavour flour.
As a large belly shows comfort to exist,
As a rivers show that brooks exist,
As rain shows that heat has existed,
So songs show that events have happened.
—रासमाला Forbes; पृष्ठ २६६

३. महाराणा यश प्रकाश, ठाकुर भूरसिंह शेखावत द्वारा संगृहीत, पृष्ठ १६७-१६९।

कर रखी है, समुद्र अभी तक अपनी मर्यादा पर अटल बना हुआ है और काशी ३ यथावत् स्थित है, फिर चित्तौड का महाराणा राजसिंह बादशाह से क्यों कर मिलेगा

वंशभास्कर के रचयिता महाकवि सूर्यमल्ल लिखते है कि उक्त छप्पय जिलि चारणवास के कम्मा नामक नाई ने महाराणा राजसिंह जी को बादशाह से मिलने लिए दिल्ली जाते समय मार्ग में सुनाया था, जिसे सुनते ही वे वापिस उदयपुर लौ आये थे। इस छप्पय को पढ़कर पाठक के मन में भी कुछ इसी प्रकार की धारण बँधती है किन्तु ऐतिहासिक तथ्य इसके विपरीत है। इतिहास के विज्ञ पाठक जानते कि महाराणा राजसिंह जी ने बादशाह से मिलने का कभी इरादा किया ही नही। त फिर इस छप्पय की सार्थकता क्या ? वस्तुस्थिति यह है कि जैसे महाराणा राजसि की प्रशंसा मे अन्य लोग काव्य-रचना करते थे, वैसे ही इस नाई ने भी यह छप्पय उ महाराणा के लिए बनाकर उनको सुनाया था।

ऐसी स्थिति में अनुश्रुतियों के मूल्याकन मे बडी सावधानी की आवश्यकता है उनके सम्बन्ध में प्राय: यह देखा जाता है कि उनका कलेवर अनेक प्रकार की कपोल कल्पनाओं से आवेष्टित हो जाता है। किन्तु अन्य प्रमाणो के अभाव में इतिहासका को भी अनुश्रुतियों की शरण लेनी पड़ती है, और फिर भारतवर्ष मे तो और ३ अधिक कठिनाई रही है। यहाँ के निवासियो ने महापुरुषो के जीवन की वास्तवि घटनाओ को महत्त्व न देकर उनके द्वारा दिये गये उपदेशों मे सन्निहित उनके सास्कृ तिक जीवन को ही सर्वाधिक गौरव प्रदान किया है। यही कारण है कि मुसलमान के इस देश में आने से पहले राजतरगिणी जैसे कुछ अपवादो को छोडकर भारतव का कालक्रमागत इतिहास नही मिलता। अलबरूनी ने लिखा है कि हिन्दू लोग वस्तुअ के ऐतिहासिक अनुक्रम की ओर विशेष ध्यान नही देते, घटनाओ के कालक्रमागत वर्ण की ओर वे सचेष्ट नही है और ऐतिहासिक घटनाओ की जानकारी के लिए जब उन आग्रहपूर्वक पूछा जाता है तो वे निश्चय ही गप हाँकने लगते है।[1]

जैसा ऊपर कहा गया है, अनुश्रुतियो मे सत्य और कल्पना का बडा जटि सम्मिश्रण मिलता है। तथ्यान्वेषण करनेवाला इतिहासकार अनेक प्रकार के साधक बाधक प्रमाणो का आश्रय ले, कपोल-कल्पना में से सत्य को पृथक् करने का प्रयत्न करता है। यह निःसन्देह इतिहासकार का क्षेत्र है जिसमे प्रवेश करने का ध्येय लेखक का नही है। राजस्थान की जिन ऐतिहासिक कहावतो का विवेचन नीचे किया ज रहा है, उनके स्वरूप तथा प्रकारादि-निर्धारण तक ही लेखक ने मुख्यत: अपने आपक सीमित रखा है। यद्यपि विषय के स्पष्टीकरण के लिए स्थान-स्थान पर इतिहास सम्बन्धी टिप्पणियाँ दी गई है तथापि इतिहासकार से जिस शोध-दृष्टि की आशा औ अपेक्षा की जाती है उसका अनुसन्धान यहाँ नही किया जाना चाहिए क्योकि इन पृष्ठ मे राजस्थान की ऐतिहासिक कहावतो का अध्ययन किया जा रहा है, राजस्थान क इतिहास का नही। राजस्थान के इतिहास का आश्रय उसी अंश तक लिया गया

1. "The Hindus do not pay much attention to the historica order of things, they are careless in relating the chronological succe ssion of things, and when they are pressed for information, the invariably take to tale-telling." —*Albruni's Indi*

जिस अंश तक ऐतिहासिक कहावतों के समझाने और उनके विश्लेषण में सहायता मिलती है। किसी प्रकार की भ्रांत धारणा न हो, इसलिए प्रारम्भ में ही यह स्पष्ट कर देना आवश्यक एवं वांछनीय है कि ऐतिहासिक कहावतें इतिहास के लिए अमूल्य सामग्री तो अवश्य प्रस्तुत करती हैं किन्तु जिस रूप में वे हमें मिलती हैं, उस रूप को सर्वांश में ऐतिहासिक तथ्य मानने की भूल नहीं करनी चाहिए।

राजस्थान की ऐतिहासिक कहावतें गद्य (गद्य) तथा गद्य दोनों रूपों में मिलती हैं। यहाँ अध्ययन के लिए दोनों ही प्रकार की कहावतों का उपयोग किया गया है।

(३) **ऐतिहासिक कहावतों का वर्गीकरण**—प्रायः प्रत्येक देश की भाषा में ऐतिहासिक कहावतें मिलती हैं किन्तु राजस्थान एक ऐसा प्रदेश है जहाँ इस प्रकार की कहावतों का प्राचुर्य है। जहाँ छोटे से छोटे गाँव में थर्मापली और लियोनीदास के दृश्य उपस्थित हो चुके हों, उस प्रदेश की अनेक घटनाएँ यदि ऐतिहासिक कहावतों के रूप में प्रचलित हो गई हों तो इसमे आश्चर्य की कोई बात नही। राजस्थान में आज भी ऐसे व्यक्ति मिल जाते है जो अपने कंठाग्र कहावती दोहों की सहायता से राजस्थान के इतिहास की अनेक घटनाएँ सुनाते चले जाते हैं। इस प्रकार की ऐतिहासिक कहावतें अनेक रूपो में उपलब्ध होती हैं। सबसे पहले हम घटनाओं से संबद्ध कहावतों पर ही विचार कर रहे हैं।

(क) **घटनाओं से संबद्ध**—'घटनाओं के साथ जुडी हुई उन कहावतों को, जिनका अर्थ उन घटनाओं को जाने बिना नही खुलता, 'वातालार्थ' कहते हैं। वे मनोरंजक और शिक्षाप्रद तो होती ही हैं, उनसे अनेक ऐतिहासिक बातों का बोध भी होता है। इस प्रकार के अनेक वातालार्थ ख्यातो में 'साखी या साख' नाम से विविध छन्दो के रूप में मिलते है। चारणों, भाटो एवं पुराने लोगों की बातचीत में भी बहुत से सुनने में आते हैं।[1] उदाहरण के लिए ऐसी कुछ कहावतें लीजिये :

(अ) "बीलाड़ी पर पड़ो सिलाड़ी।
म्हे तो लेसां बांजरगढ़॥"

अर्थात् बीलाडी पर शिला पड़े, हम तो बाजरगढ लेगे। प्रसिद्ध है कि जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह प्रथम (सं० १६९५-१७३५) ने प्रसन्न होकर किसी ब्रह्म-भट्ट कवि को बीलाड़ा गाँव उदक (पुण्यार्थ) लिखने की आज्ञा दी। गाँव बडा और तीस हज़ार की वार्षिक आय का था, इसलिए राजकर्मचारी ने इतना बडा गाँव देना ठीक न समझा। उसने युक्ति से चारण को पूछा कि बीलाड़ी लोगे या बांजरगढ ? भट्ट जी बांजरगढ का नाम सुन कर फूल उठे और उसका पट्टा लिखा लाये। जब वहाँ पहुँचे तो गढ के स्थान पर एक छोटा-सा बांजड़ा गाँव देखा तो महाराज के पास जाकर रोये। महाराज ने दीवान से पूछा तो उसने अर्ज की :

"कलम दिवानी बह गया,
क्या बदे का सारा ?"

अर्थात् दीवानी कलम आप ही चल गई, मेरा कुछ वश नही। तब महाराज ने चारण से कहा कि जो भाग्य मे था सो मिल गया, उसी पर सन्तोष करो।

---

१. राजस्थानी भाग ३, अंक १ में प्रकाशित श्री जगदीशसिंह गहलोत का 'राजपूताने के वातालार्थ' शीर्षक लेख; पृ ३०।

बीलाड़ा मिल जाता तो उसके पास रहता भी या नहीं, मगर बांजड़ा जो एक छोटा-सा गाँव चार सौ रुपये की आय का है, अब तक उसकी सन्तान के पास है। इसी से मिलता-जुलता एक दूसरा 'वातालार्थ' है :

(आ) "भाग नहीं भैरोदे जोगा।
टैला जोगी टाट॥"

जोधपुर के एक महाराजा ने किसी चारण को भैरोदे का शासन-पत्र लिख देने का हुक्म फरमाया। भैरोदा मेडते परगने का एक बडा गाँव है। दीवान बख्शी लोगों ने चाल करके चारण से कहा—बारठ जी, भैरोदा लेकर क्या करोगे, टीलागढ ले लो बारठ जी गढ़ के नाम से राजी होकर टीलागढ का पट्टा लिखा लाये। टीलागढ ढूँढते-ढूँढते वहाँ पहुँचे तो उसकी जगह टैला नाम का छोटा सा गाँव पाया। 'नाम बड़े, दर्शन थोडे' वाली मसल हुई।

टैला लाखावत चारणों के पास माफी का गाँव है। उसकी सनद तलाश करने पर देखी गयी तो मालूम हुआ कि यह गाँव सवत् १७०७ की श्रावण सुदी ५ तारीख २३ जुलाई, सन् १६५० ई०) मंगलवार को महाराजा रामसिंह राठौड़ ने बारठ अजब दान के पोते और रामदान के बेटे तेजदान को दिया था। उसकी सन्तान में रूपदान सुमकरण, हिंगलाजदान आदि उसे अभी तक भोगते हैं। इस कहावत को वे भी कहते हैं पर इसका असली हाल नही जानते। यह कथा यदि सत्य है तो इसका सम्बन्ध तेज दान से होना चाहिए।[1]

(इ) "भाग लल्ला! प्रथीराज आयो।
सिंह के सांथरै स्याल ब्यायो॥"

अर्थात् हे लल्ला! पृथ्वीराज आ गया। अब यदि अपनी खैर चाहता है तो भग चल। सिंह की गुफा में गीदड ने बच्चा दिया है, कैसे निर्वाह होगा!

इतिहास में प्रसिद्ध है कि लल्ला नामक पठान ने सोलंकियो से टोडा छीन लिया था। महाराणा श्री रायमल्ल जी के ज्येष्ठ पुत्र श्री पृथ्वीराज जी अत्यन्त यशस्वी और प्रतापी हुए। वे इस समाचार से कुपित होकर अकस्मात् टोडे जा पहुँचे थे, और टोडा विजय करके इन्होने सोलंकियों को दे दिया था। इस आकस्मिकता के कारण लोग इस बात का अनुमान भी न लगा सके कि क्योंकर महाराज इतना शीघ्र टोडा पहुँच सके। कहते है, उसी दिन से यह 'उडणा पृथ्वीराज' के नाम से प्रसिद्ध हो गये। उनकी वीरता का तो इतना आतंक छा गया कि उक्त पद्य ही कहावत के रूप में प्रचलित हो गया।

(ई) अलाउद्दीन महिमशाह (मुहम्मदशाह) से, जो नव मुस्लिमो का नेता था, रुष्ट हो गया था। मुहम्मदशाह ने अलाउद्दीन के सेनापति उलूगखां और नसरतखां के अशिष्ट व्यवहार के कारण जालोर के पास बगावत की और जालोर आदि होता हुआ यह रणथम्भोर पहुँचा। यह वास्तव में महान् वीर और योद्धा था। रणथम्भोर के शासक राव हमीर चौहान ने उसे निर्भीकतापूर्वक शरण दे दी। बादशाह ने हमीर को लिखा कि वह पठान को अपने पास न रखे किन्तु हमीर ने जो उत्तर भिजवाया, वह

१. 'राजपूताने के वातालार्थ (श्री जगदीशसिंह गहलोत); राजस्थानी भाग ३, अंक १।

केवल राजस्थान में ही नही, बल्कि उत्तर भारत में भी कहावत की भाँति समय-समय पर प्रयुक्त होता है :

"सिंह संग सत्पुरुष बच, केल फलै इक बार।
तिरिया तेल हमीर हठ, चढ़ै न दूजी बार॥"

अलाउद्दीन ने किले पर घेरा डाल दिया। वर्षों के युद्ध के बाद वीरता से लड़ते हुए हमीर ने अपने प्राण दे दिये। वह पठान भी जिसको हमीर ने शरण दी थी, अलाउद्दीन के विरुद्ध लड़ता हुआ काम आया।

घटनाओं से सम्बद्ध जो कहावतें ऊपर दी गई हैं, वे सब प्रसंगोद्भूत है किन्तु अनेक बार परम्पराप्राप्त प्रचलित पद्यों का भी प्रसंगानुरूप उपयोग कर लिया जाता है जैसा कि नीचे दिए हुए उदाहरण से प्रकट होगा—

(उ) जोधपुर के राजा मालदेव की रानी उमादे रूठी रानी के नाम से विख्यात है। उमादे के साथ जैसलमेर से दहेज में आई हुई भारमली दासी पर राव मालदेव के आसक्त होने के कारण जब वह अपने पति से रुष्ट हो सदा के लिए जैसलमेर जा बैठी, तब मालदेव ने उमादे को समझाकर वापिस जोधपुर लिवा लाने के लिए कवि आशानन्द को जैसलमेर भेजा। आशानन्द जब जैसलमेर पहुँचे तब उमादे ने अपने पति की अपनी ओर सच्ची प्रीति और हार्दिक आकर्षण जानने के लिए प्रश्न किया कि मेरे पति ने भारमली को अब तक रख छोड़ा है या निकाल दिया है? इस पर आशानन्द ने रानी को मानवती देख कहा—

"मान रखै तो पीव तज, पीव रखै तज माण।
दोय-दोय गयन्द न बंधही, हेकै खम्भू ठाण॥"

अर्थात् यदि तू अपना मान रखना चाहती है तो पति का परित्याग करदे और पति को रखना चाहती है तो मान को तज दे क्योंकि एक ही 'खुम्हालै' (हाथी बाँधने के खमे) पर दो हाथी नही बँधा करते।

आशानन्द का यह दोहा सुन मानवती उमादे ने सदा के लिए मालदेव का परित्याग कर दिया और अपनी सारी आयु पिता के घर में ही बिता दी।

ऐसा लगता है कि यह दोहा आशानन्द के मुख से उसी समय निकल पड़ा हो और रूठी रानी के इस प्रसंग में यह अत्यन्त समीचीन भी लगता है। इसका उत्तरार्द्ध तो आकार-प्रकार मे भी निश्चय ही एक कहावत जान पडता है। किन्तु निम्नलिखित प्राकृत गाथा को पढकर स्पष्ट हो जाता है कि उमादे को समझाते समय आशानन्द ने गाथा के लोक-प्रचलित राजस्थानी रूपान्तर का ही प्रयोग किया था—

"जइ माणो कीस पिओ अहव पिओ कीस करिए माणे।
माणिणि दोवि गइन्दा, एक्कर कम्भे न वज्झन्ति॥"[१]

आशानन्द द्वारा प्रयुक्त दोहा 'कबीर ग्रन्थावली' में भी निम्नलिखित रूप में उपलब्ध है—

---

१. जयवल्लभां नाम वज्जालग्गं, माण वज्जा; पृष्ठ ७३।
संस्कृत छाया—

यदि मानः किं प्रियो ऽथवा प्रियः किं क्रियते मानः।
मानिनि द्वावपि गजेन्द्रावेकस्तम्भे न बध्येते॥

'खंभा एक गइन्द दोइ, क्यूं करि बंधिसि बारि ।
मानि करै ती पीव नहिं, पीव तो मानि निवारि ।।' ४२ ।।
(चितावणी को अंग; पृष्ठ २५)

इतिहास में घटना और व्यक्ति का पार्थक्य एक असम्भव व्यापार है क्योंकि व्यक्ति द्वारा ही घटना घटित होती है और घटना स्वतः व्यक्ति के चरित्र को प्रभावित करती है। इस प्रकार घटना और व्यक्ति के सम्बन्ध में पारस्परिक क्रिया-प्रतिक्रिया का सिद्धान्त लागू होता है। यहाँ पर मात्र विश्लेषण की सुविधा के लिए ही प्रधानता के आधार पर ऐतिहासिक कहावतों के घटना-प्रधान और व्यक्ति-प्रधान जैसे वर्ग निर्धारित कर लिए गये हैं।

राजस्थान मे व्यक्ति-प्रधान कहावतें अपरिमित संख्या मे प्राप्त होती है। उदाहरणार्थ कुछ कहावते यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं।

(ख) व्यक्ति-प्रधान—

(अ) 'नटियो मूतो नैणसी, तांबो देण तलाक' राजस्थान मे कहावत की भाँति प्रयुक्त है। नैणसी का जन्म सं० १६६० में हुआ था। स० १७१४ मे जोधपुर महाराज जसवन्तसिंह प्रथम ने इसे अपना दीवान बना लिया था। एक बार किसी कारण से महाराज, नैणसी और उसके भाई सुन्दरदास पर नाराज हो गये और दोनो को कैद कर लिया। फिर संवत् १७२५ मे उन पर एक लाख रुपये का जुर्माना कर उन्हें छोड दिया गया। परन्तु नैणसी ने एक पैसा तक देना मजूर नही किया जिस पर सं० १७२६ मे दोनो भाइयों को फिर कैद कर लिया गया। राजस्थान मे इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित कहावती दोहे अत्यन्त प्रसिद्ध है—

"लाख लखारां नीपजै, बड़ पीपल री साख।
नटियो मूतो नैणसी, तांबो देण तलाक ।।
लेसी पीपल लाख, लाख लखारां लाभसी ।
तांबो देण तलाक, नटिया सुन्दर नैणसी ।।"[1]

अर्थात् एक लाख रुपये जुर्माने की बात सुनकर नैणसी ने कहा था कि लाख तो लखारो के यहाँ मिलेगी जो बड-पीपल से पैदा होती है। मैं तो ताँबे का एक पैसा भी न दूँगा। यही बात कहकर नैणसी के भाई सुन्दरदास ने भी जुर्माना देने से साफ इन्कार कर दिया था।

जेल में जब इन दोनो भाइयो को कष्ट दिये जाने लगे तो कटारी खाकर संवत् १७२७ में उन्होने आत्म-हत्या करली। 'मूता नैणसी की ख्यात' के रचयिता के रूप मे नैणसी का नाम राजस्थान में अत्यन्त प्रसिद्ध है।

(आ) उन व्यक्तियो के सम्बन्ध मे भी जिनके विषय मे इतिहास ने मौन धारण कर रखा है, राजस्थान में असख्य कहावती पद्य सुनाई पडते है। उदाहरण के लिए एक प्रचलित पद्य लीजिये—

"तरुवर ज्याहीं मोरिया, सरवर ज्याहीं हंस ।
बाघो ज्याहीं भारमली, बारू ज्याहीं मंस ।।"

१. राजस्थान के सांस्कृतिक उपाख्यान; पृष्ठ ७३।

अर्थात् जहाँ तरुवर हैं, वहीं मोर हैं; जहाँ सरोवर है वहीं हंस है; जहाँ बाबा है, वहीं भारमली है; जहाँ मदिरा है, वहीं मांस है।[1]

(इ) गोगा को लेकर राजस्थान में अनेक कहावतें प्रचलित है। उदाहरण के लिए एक कहावत लीजिए—

"गांव-गांव गोगो ने गांव-गांव खेजड़ी" अर्थात् गाँव-गाँव में गोगा है और गाँव-गाँव में खेजड़ी का वृक्ष है।

गोगा चौहान राजस्थान मे देवता की भाँति पूजा जाता है। जिसे साँप काटता है, उसके गोगा के नाम का डोरा बाँधते है जिसको ताती कहते है। गोगा का 'थान' जिसमे साँप की मूर्ति, पत्थर में खुदी होती है बहुधा गाँवों में होता है। इसीलिए उक्त राजस्थानी कहावत प्रचलित हुई है।

गोगा के थान प्रायः खेजडी के नीचे होते है और गाँव में जिसके घर साँप निकलता है, वह गोगाजी को याद करके दूध के छीटे देता है। मेह बरसने पर जिस दिन हल चलाना शुरू करते है, गोगाजी के नाम की राखी जिसको 'गोगा राखड़ी' कहते हैं, नौ गाँठे देकर हल और हाली के बाँधते हैं तथा बार-बार यह पढ़ते हैं "हली बालदी गोगो रखवालो।"[2]

(ई) रामदेवजी मारवाड के एक सत्यवादी वीर हो चुके हैं। कहते हैं कि भैरव नामक एक दुष्ट को मारने से रामदेव जी की ख्याति चारों ओर फैल गई थी। मुसलमान हिन्दू सभी इन्हें पूजने लगे और ये रामशाह पीर के नाम से पुकारे जाने लगे। संवत् १५१५ में इन्होने मारवाड के रूणेचा गाँव में जीवित समाधि ले ली। राजस्थान के अनेक स्थानो मे रामदेवजी के उपलक्ष में मेले भरते हैं और देवता की भाँति इनकी पूजा होती है। जहाँ मेले भरते हैं, वहाँ बहुत से यात्री जाते है किन्तु यात्रियों में ज्यादा निम्न श्रेणी के लोग होते हैं जिससे यह कहावत राजस्थान में प्रसिद्ध हो गई—

"रामदेवजी नै मिल्या जिका ढेढ ही ढेढ (कामड़िया ही कामड़िया)" अर्थात् रामदेवजी को सबके सब चमार ही मिले। रामदेवजी के पुजारी भी चमार-साधु होते हैं जो 'कामडिया' कहलाते हैं।

(उ) इसी प्रकार की एक कहावत पाबूजी के सम्बन्ध में कही जाती है **"पाबूजी नै मिलिया जिका सै थोरी ही थोरी"** अर्थात् पाबूजी को जितने भी मिले, सब थोरी ही मिले। यद्यपि थोरियो ने पाबूजी के प्रति बडी स्वामि-भक्ति का परिचय दिया था किन्तु आजकल इस लोकोक्ति का प्रयोग ऐसे अवसर पर होता है जब किसी को एक के बाद एक इस तरह के व्यक्ति मिलते हैं जिनके कारण इष्ट-सिद्धि में सहायता नही मिलती। थोरियो के सामाजिक निम्न स्तर के कारण सम्भवत. यह कहावत इस अर्थ में रूढ़ हो गई।

ऊपर व्यक्ति-सम्बन्धी जो कहावते दी गई हैं, वे राजस्थान के अनेक पुरुषों के नामों के सम्बद्ध हैं। कुछ कहावतें ऐसी भी हैं जो स्त्रियों के नामो को लेकर प्रवृत्त

---

१. बाबा और भारमली के प्रेमाख्यान के सम्बन्ध में देखिए 'राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद'; पृष्ठ १९-२३।

२. रिपोर्ट मरदुमशुमारी, राज मारवाड़, बाबत सन् १८९१ ईसवी; भाग ३, पृष्ठ १४।

हुई हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित दो कहावतें लीजिये--

(ऊ) "**राज पोपा बाई रो, लेलो राई राई रो।**" एक ऐसी ही कहावत है। पोलखाता और अन्धेरगर्दी के प्रतीक के रूप में पोपाबाई का नाम राजस्थान में विख्यात है, किन्तु न केवल राजस्थान मे बल्कि मध्यभारत, गुजरात, मालवा आदि अनेक राज्यो में पोपाबाई इसी रूप में विख्यात है तथा पोपाबाई के सम्बन्ध मे इन सभी प्रदेशो में कहानियाँ प्रचलित है।[1] कवि राजा बाकीदास ने भी एक स्थान पर कहा है--

"**पोपां बाई प्रगट हुवै, नवी चलावे नीत।**"

बांकीदास ग्रन्थावली[2] की टिप्पणियो में कहा गया है कि पोपाबाई एक कुम्हारिन थी जो खडेले के राज्य इलाके जयपुर मे हुई थी। उसका पोल का राज्य मशहूर है। अन्त में वह अपनी ही मूर्खता से शूली पर टँगी थी। उसके राज्य में सब धान बाईस पसेरी बिकता था। श्रीयुत गणपतलाल जी जोशी[3] के मतानुसार पोपाबाई गुजरात के राजकर्ताओं के वश में उत्पन्न हुई थी। गुजरात के शासक अपनी उदारता और विशालहृदयता के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। इस देवी का हृदय विशेष उदार था। उसका लाभ नौकरों ने उठाया जिससे उसके राज्य की कीर्ति मन्द पड गई। मध्य-भारतीय पोपाबाई को भी कुम्हारिन ही कहा गया है किन्तु राजस्थान और मध्य-भारत की पोपाबाई-सम्बन्धी कहानियो में अन्तर है।

(ए) '**अरे, ये तो बाँका पग बाई पद्मा रा**' अर्थात् ये तो बाई पद्मा के बांके पैर हैं।

जिस पद्मा को लेकर यह कहावत प्रचलित हुई है, वह एक साहसिक महिला थी। उसकी सगाई प्रसिद्ध कवि बारहठ शंकर से हुई थी। एक बार बारहठजी अपने नौकर-चाकरो के साथ कही जाते हुए पद्मा के गाँव पहुँचे। पद्मा के पिता उस दिन वहाँ नही थे। ऊँट-घोड़ों पर सवार प्रतिष्ठित अतिथियो को जब पद्मा ने घर पर आया देखा तो उनके आतिथ्य-सत्कार के लिए वह स्वयं मर्दाने कपड़े पहनकर बाहर आ गई और अतिथियो का यथोचित सत्कार किया। तत्पश्चात् विदा होकर जब अतिथि गाँव से बाहर निकलकर जा रहे थे तो एक व्यक्ति ने उनके हुक्के की मनुहार की। प्रसंगवश बारहठजी ने कहा कि जिनसे हम मिलने आये थे, वे तो मिले नही परन्तु उनके कुँवर बहुत समझदार हैं जिन्होने हम सब की बडी आवभगत की। यह सुन कर उस व्यक्ति ने कहा कि हमारे ठाकुरो के तो एक बाईजी ही है, कुँवर तो कोई भी नही। इस पर मतभेद होने पर उस व्यक्ति ने कहा कि उन कुँवरजी का पद-चिन्ह मुझे दिखला दो तो मैं पहचान जाऊँगा कि पद—चिन्ह किसका है? यही किया गया और पद-चिन्ह देखते ही वह बोल उठा '**अरे, ये तो बाँका पग बाई पद्मा रा**'। पद्मा के पैर कुछ टेढे पडते थे। बारहठजी को जब निश्चय हो गया कि पुरुष-वेश में वह

---

१. पोपाबाई-सम्बन्धी कहानियों के लिए देखिये 'लोकवार्ता' वर्ष १, अंक ४, मार्च १९४५।

२. बाकीदास ग्रन्थावली (दूसरा भाग); पृष्ठ २०।

३. शारदा, जुलाई १९४४।

पद्मा ही थी ती उन्होने रुष्ट होकर सगाई छोड़ दी। पद्मा को हार्दिक दुःख हुआ किन्तु एक बार जिसके साथ उसका सम्बन्ध स्थिर हो चुका था, उसको छोडकर स्वप्न में भी वह दूसरे की कल्पना नही कर सकती थी। इसलिये उसने आजन्म कौमार्य-व्रत का सकल्प कर लिया। पद्मा की प्रतिभा की खबर सर्वत्र फैल गई। जब बीकानेर यह खबर पहुँची तो वीर अमरसिह ने उसे बुला लिया और तभी से वह उनके अन्तःपुर में रहने लग गई थी।

पद्मा का समय सन् १५९७ के लगभग माना जाता है। वह चारण मालाजी सांदू की पुत्री थी। बीकानेर के अमरसिह उन दिनो अकबर के विरुद्ध क्रान्तिकारी स्वर उठाकर उसके कोष इत्यादि को लूटने मे प्रवृत्त रहते थे, पर अकबर के विशाल वैभव के सामने इस छोटे से आत्माभिमानी सरदार की भला क्या चलती? मुगल सेना ने उनके सैनिकों को कुचलते हुए उनका गढ़ घेर लिया। अमरसिंह उस समय निद्रावस्था में थे। सोते हुए सिह को छेड़ने का साहस किसी मे नही था क्योकि अमरसिंह क्रोध में अपना विवेक खो बैठते थे। ऐसी स्थिति में पद्मा ने ही 'जाग रे जाग कलियाण जाया' गीत द्वारा उनकी निद्रा भंग की थी। आक्रमणकारियों को परास्त करते हुए अमरसिह वीर गति को प्राप्त हुए। पद्मा ने अपने कर्त्तव्य का पालन किया।[1]

राजपूताने में किसी सदेहास्पद बात का निश्चय होने पर या कोई नई बात मालूम होने पर **'अरे, ये तो बाँका पग बाई पद्मा रा'** ये शब्द कहावत की तरह प्रचलित हो गये।

(ऐ) राजस्थान मे प्रचलित ऐतिहासिक कहावतो में से कुछ ऐसी भी हैं जिनका राजस्थान के इतिहास से कोई सम्बन्ध नही है। **'कठे राजा भोज, कठे गांगलो तेली'** यह तो एक ऐसी कहावत है जो उत्तरी भारत की प्रायः सभी भाषाओ मे समान रूप से प्रचलित है। 'महाराष्ट्र वाक् सम्प्रदाय कोश' मे इस कहावत की व्याख्या में कहा गया है—

'कहाँ भोज राजा, कहाँ गंगु (गंगा तेली); कोठें भोज राजा व कोठें गंगा तेली; गंगराज तैलप येथे मुंजराजालाच चुकीने भोज सबोधून ह्मण रचिली आहे। मुंजाचें राज्य तैलपानें घेतले तेव्हाँची त्याँची तुलना केली आहे, भोज राजा उदार तर गगराज तैलप त्या मानान काँहीच नाही, तु० गते मुंजे यश. पुंजे निरालंबा सरस्वती।'[2]

उक्त व्याख्या के अनुसार कहावत का भोज मुंज राजा है और गंगा तेली है गंगराज तैलप। यद्यपि यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि गंगराज तैलप (९७३-९९७) ने परमार वंश के मुंज का वध कर डाला था किन्तु जब तक कोई पुष्ट प्रमाण न मिले, केवल इसी के आधार पर गगा तेली को गगराज तैलप और भोज को मुंज नही ठहराया जा सकता।

श्री पी० के० गोडे ने गगा तेली की एक सस्कृत में लिखी हुई लोक-कथा का पता लगाया है जिसका सारांश निम्नलिखित है—

---

१. राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद (प्रथम शतक); पृष्ठ ८५-८८।

२. महाराष्ट्र वाक् संप्रदाय कोश, विभाग पहला, संपादक यशवंत रामकृष्ण दाते और चिन्तामण गणेश कर्वे; पृष्ठ २४९-२५०।

एक छात्र दक्षिण देश के प्रतिष्ठानपुर में गया। उसने अपने आचार्य से तीस वर्ष तक विद्याध्ययन किया। उसे अपनी विद्वत्ता का बडा गर्व था। वह पण्डितो को पराजित करने के लिए गुजरात, मारवाड़ आदि प्रदेशो की ओर बढा। उसने अपने सिर पर अंकुश रख लिया, अपने पेट को एक कपड़े से ढक लिया ताकि उसकी विद्या फूटकर न निकल जाय। उसका अनुचर एक निःश्रेणी (सीढी) इस उद्देश्य से साथ रखता था कि यदि वाद-विवाद में पराजित प्रतिपक्षी आसमान में भी जाना चाहे तो वह इस सीढ़ी पर चढ़कर उसे नीचे गिरा देगा। यदि प्रतियोगी पाताल मे चला जाय तो वह कुदालों की सहायता से, जो वह हाथ मे लिये रहता था, उसे पाताल खोदकर बाहर निकाल लेगा। अनुचर अपने हाथ में तृणपुलक इसलिए लिये रहता था कि प्रतिपक्षी के पराजित होते ही पराजय के चिन्हस्वरूप उसे दाँतो-तले तृण दबाने को विवश कर दिया जाय। गुजरात मारवाड के पण्डितो को जीतकर इस छात्र ने सरस्वती कंठाभरण आदि की उपाधियाँ प्राप्त करली। तब यह सुनकर कि भोज राजा के यहाँ पचास प्रसिद्ध पण्डित हैं, वह उज्जयिनी गया और पचासों पण्डितो को शास्त्रार्थ में परास्त कर दिया जिनमे कालिदास, क्रीडाचन्द्र और भवभूति आदि प्रमुख थे। भोज-राजा खिन्नमन होकर विनोद के लिए वन मे गया। लौटते समय उसकी दृष्टि गाँगा नामक तेली पर पड़ी जो घाणी से तेल निकाल रहा था और एक घडे मे डाल रहा था। तेली यद्यपि काना था लेकिन राजा भोज को वह बुद्धिमान् जान पडा। उसने तेली से पूछा कि एक भट्टाचार्य से क्या तुम वाद-विवाद कर सकोगे। तेली ऐसा करने को राज़ी हो गया। बड़े सम्मान से वह सभा मे लाया गया और सिंहासन पर बिठलाया गया। उसने सुन्दर वस्त्र पहन रखे थे और स्वर्णाभूषणो से वह सुसज्जित था। अपने तुन्दिल शरीर से वह मदमत्त गजराज की भाँति शोभित हो रहा था। उसके सभा मे प्रवेश करते ही राजा खड़े हुए और साथ ही सभी सभासद। तब उसे एक सिंहासन पर बिठलाया गया। शास्त्रार्थ शुरू हुआ। दक्षिणीय भट्टाचार्य ने अपनी एक अँगुलि दिखाई, तेली भट्टाचार्य ने रुष्ट होकर दो अँगुलियाँ दिखलाईं।[1] इस पर दक्षिणीय भट्टाचार्य ने पाँच अँगुलियों वाला अपना हाथ आगे कर दिया। तब भोजराज के भट्टाचार्य ने अपनी बद्ध मुष्टि दिखला दी। इस पर दक्षिणीय भट्टाचार्य ने अपने सिर पर से अकुश उतार लिया, विद्यापट्ट पेट से अलग कर दिया, सीढी तोड़ डाली, कुदालों को अलग डाल दिया और तृणपुलक को आग लगा दी। भोज भट्ट के चरणो मे गिर पड़ा और अपनी हार स्वीकार कर ली। भोजराज के पूछने पर दक्षिणीय भट्टाचार्य ने कहा कि वाद-विवाद के प्रारम्भ मे मैने एक अँगुली दिखलाई जिसका आशय यह था कि शिव एक है। आपके भट्टाचार्य ने यह सकेत करते हुए दो अँगुलियाँ दिखलाई कि यद्यपि शिव एक है, वह शक्ति से युक्त है। फिर पाँच इन्द्रियों के सूचनार्थ मैंने पाँच अँगुलियाँ दिखलाई तो आपके भट्टाचार्य ने बद्धमुष्टि दिखलाकर यह जताया कि इन्द्रियो का निग्रह संभव है। राजा भोज ने गांगा तेली से भी वाद-विवाद के बाबत प्रश्न किया तो उसने दूसरा ही उत्तर दिया। वह कहने लगा—भट्ट ने मुझे एकाक्षी प्रकट करने के लिए जब एक अँगुली उठाई तो मैने उसे दो अँगुलियाँ दिखलाईं कि तुम्हारी दोनो आँखे

१. ऐसी ही एक कथा कालिदास और विद्योत्तमा के सम्बन्ध में भी सुनी जाती है।

फोड़ डालूँगा। तब दक्षिणीय भट्ट ने पाँच अँगुलियों वाला अपना हाथ इस आशय से दिखलाया कि मैं तुम्हें चाँटे लगाऊँगा। यह सुनकर राजा सहित सारी सभा खिल-खिला कर हँस पडी। गागा तेली के दिन फिरे, राजा ने उसका बड़ा सम्मान किया। राजा ने सभासदो से कहा—आप सभी को सफलता मिली, इसलिए आपके शब्द मेरे लिए सत्य सिद्ध होगे।

श्री गोडे के अनुसार उक्त लोक कथा ही **"कहाँ राजा भोज, कहाँ गंगा तेली"** की लोक पूल । यह कथा सन् १६५० से पुरानी ही प्रतीत होती है क्योकि जिस कागज पर यह लिखी हुई मिलती है, वह २५० वर्ष से अधिक पुराना है। १६वी शती के भोज प्रबन्ध से यह पूर्ववर्ती है या परवर्ती, यह नही कहा जा सकता किन्तु पिछले ३५० वर्षों से यह कथा देश मे प्रचलित रही है जिसने राजा भोज और गंगा तेली की लोकोक्ति को जन्म दिया है।[1]

सुविख्यात पुरातत्वविद् स्व० डा० हीरालाल जी ने कलचुरिनरेश गागेय देव और तैलप चालुक्य के साथ गगू और तेली शब्दों का सम्बन्ध स्थापित किया था। उनकी सम्मति में गंगू और तेली क्रमशः गागेय और तैलप के विकृत रूप हैं। नहीं कहा जा सकता कि यह कल्पना कहाँ तक ठीक है।

मौलाना नियाज फतेहपुरी ने गंगुवा तेली के सम्बन्ध मे एक दूसरा ही मत प्रकट किया है। उन्ही के शब्दो में "कहावतो की एक किस्म और है जिन्हें तलमीही कहते है, याने उनका तअल्लुक किसी-न-किसी तारीखी रिवायत से होता है। एक मसल मशहूर है **"कहाँ राजा भोज और कहाँ गंगुवा तेली।"** इस कहावत मे इशारा है उस रिवायत की तरफ कि मालवा व गुजरात के राजा भोज ने अपनी लड़की गंगुवा तेली के लडके से विवाह दो थी, सिर्फ इसलिए कि उसने एक बार दीपक राग गाकर महल के चिराग रोशन कर दिये थे।[2]

"राजा भोज और गंगू तेली" विषयक जो भिन्न-भिन्न मत-मतान्तर मिलते हैं, उनके सम्बन्ध मे अभी निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता। यह इतिहास के आचार्यों की गवेषणा का विषय है।[3]

(ग्रो) राजा भोज की गुणग्राहकता, दानशीलता और प्रसिद्धि के कारण किसी-किसी लोकोक्ति में राजा भोज का नाम जोड दिया गया है जिससे कहावत पर प्रामाणिकता की छाप लग जाय।

उदाहरण के लिए प्रश्नोत्तरी के रूप मे प्रचलित इस लौकिकी गाथा को लीजिए—

"केडो चालै डोकरी, कैंका काडै खोज।
काँई थारो खो गयो, पूछै राजा भोज॥

---

1. Vide "The Story of King Bhoja and Ganga Teli in Sanskrit and its relation to a proverb current in the Marathi Language."
—*The poona Orientalist Vol. x., 3 & 4. July 1945-Oct. 1945*

२. रेडियो सग्रह, (त्रैमासिक) वर्ष १, अंक २ में 'कहावतें' शीर्षक मौलाना नियाज फतेहपुरी की वार्ता, पृष्ठ ३५।

३ विशेष विवरण के लिए देखिये मरु-भारती वर्ष ४, अक ३ में प्रकाशित 'एक कहावती लोक-कथा' पृ० ११४-१५-१६।

म्हारै सै थारै गई, जैका काढ़ूँ खोज ।
थारै सै बी जायगी, मत गरबावै भोज ।।"

अर्थात् हे बुड्ढी स्त्री, तुम झुक-झुक कर चल रही हो, किसके खोज निकालती हो, तुम्हारा क्या खो गया है ? बुढिया राजा भोज के इस प्रश्न का उत्तर देती है—मेरी युवावस्था जाती रही, वह आज तुम्हारे पास है, मैं उसी को खोज रही हूँ, किन्तु याद रखना, वह तुम्हारे पास भी सदा के लिए न रहेगी। इसलिए हे भोज ! गर्व न कर ।

उक्त राजस्थानी कहावत को पढ़ते ही संस्कृत सुभाषितकार का निम्नलिखित श्लोक अनायास स्मरण हो आता है—

"अधः पश्यसि किं बाले तव किं पतितं भुवि ।
रे रे मूढ न जानासि गतं तारुण्य मौक्तिकम् ।।"

अर्थात् हे बाले ! नीचे क्या देख रही हो ? भूमि पर तुम्हारा क्या गिर पड़ा है ? स्त्री ने उत्तर दिया—मूढ ! तुम्हे मालूम नही, मेरा यौवन रूपी मोती चला गया !

प्रकारान्तर से मलिक मुहम्मद जायसी भी यही कह गये है—

"मुहम्मद विरिध जो नइ चलै, काह चलै भुंइ टोइ ।
जोवन रतन हिरान है, मकु धरती में होइ ।।"

युधिष्ठिर द्वारा किये गये यक्ष के प्रश्नोत्तरो पर जैसे हम पूर्ण विश्वास-सा करने लगते हैं, उसी प्रकार उक्त राजस्थानी प्रश्नोत्तर भी हमे इसके सम्पूर्ण सत्य को स्वीकार करने के लिए विवश कर देता है । इस सत्य की लोकप्रियता तो इसी से स्पष्ट है कि किस प्रकार यह भिन्न-भिन्न भाषाओं में भिन्न-भिन्न रूप मे अवतरित हुआ है । इसको पढकर हम सोचते ही रह जाते है कि **"जो आके न जाय ऐसा बुढ़ापा देखा, जो जाके न आय ऐसी जवानी देखी ।"** राजस्थानी कहावत में भुक्तभोगी की उक्ति होने से बुढिया की कही हुई बात बडी मार्मिक हो गई है ।

(ग्रो) राजस्थान मे ऐसी भी अनेक कहावते है जिनमें पौराणिक पुरुषो का निर्देश हुआ है । जैसे,

१. **"बैरोचन कै कस अर हिरणाकुश कै प्रहलाद ।"**

जब योग्य व्यक्ति के अयोग्य अथवा अयोग्य के घर योग्य का जन्म होता है तब उक्त कहावत का प्रयोग किया जाता है ।

२. **"सोनू गयो करण कै साथ ।"**

अर्थात् सोना तो कर्ण के साथ चला गया । कर्ण जैसे दानी अब इस ससार में नही रहे । विशेष गुणी की मृत्यु होने पर उस गुणविशेष के स्मरणार्थ यह कहावत प्रयुक्त होती है ।

३. **"नन्द रा फन्द तो कृष्ण जाणै परण कृष्ण रा छन्द कोई नी जाणै ।"**

अर्थात् नन्द का फन्द तो कृष्ण जानते है किन्तु कृष्ण की कूटनीति को समझने वाला कोई नही । भागवत की वह कथा प्रसिद्ध है जिसमें कृष्ण ने वरुण-पाश से नन्द को मुक्ति दिलाई थी । जो स्वयं सबके छल-कपट को समझता हो किन्तु जिसका छल-कपट अन्य सभी की पहुँच के बाहर हो, ऐसे व्यक्ति के सम्बन्ध मे उक्त कहावत व्यवहृत होती है ।

इस प्रकार की पौराणिक प्रसग-गर्भित कहावतें न केवल राजस्थान में, बल्कि भारत के सभी प्रदेशों में प्रचलित है।

सवाद-पद्धति हमारे देश की अत्यन्त प्राचीन पद्धति है। वेदो में भी यम-यमी जैसे संवादो के हमें दर्शन होते हैं। रामचरितमानस की तो समस्त कथा ही सवादों द्वारा कहलवाई गई है। इतिवृत्त भी यदि वार्तालाप के माध्यम द्वारा प्रस्तुत किया जाय तो उसका विशेष प्रभाव पडता है। सवाद के रूप मे जो ऐतिहासिक कहावते राजस्थान में मिलती है, उनका सम्बन्ध ऐतिहासिक व्यक्तियों के साथ होने से वे हमारे लिये असाधारण आकर्षण की वस्तु बन गई हैं। यह स्वाभाविक भी है कि महत्त्वपूर्ण व्यक्तियो की बातचीत में हमारी अभिरुचि हो। इस अभिरुचि के कारण ऐतिहासिक महापुरुषों के सवादो को हम बार-बार स्मृति-पथ पर लाया करते है जिसके कारण वे कहावती रूप धारण कर लेते है। वार्तालाप के रूप मे प्रचलित इस प्रकार के कहावती प्रसंग राजस्थान मे असंख्य है। नमूने के रूप में कुछ उदाहरण यहाँ दिये जा रहे है।

(ग) वार्तालाप-सम्बन्धी—

(अ) **'नरां नाहरां डिगमरां पाक्यां ही रस होय'** अर्थात् मर्दों, सिहों और दिगम्बरों (योगियो) में रस-परिपाक अवस्था पकने पर ही होता है। यह सूक्ति कहावत की भाँति राजस्थान मे प्रचलित है। किन्तु निम्नलिखित वार्तालाप को समझ लेने पर ही इस उक्ति का मर्म समझ में आता है—

बीकानेर के महाराज रायसिह जी के छोटे भाई पृथ्वीराज सुप्रसिद्ध 'पीथल' कवि थे जिनकी 'बेलि क्रिसन रुकमणी री' डिंगल का सर्वोत्तम काव्य समझा जाता है। इनकी रानी चापादे को भी कवि-हृदय मिला था। मुंशी देवीप्रसाद ने इनका रचना-काल वि० स० १६५० माना है।[1] कहते है कि एक बार महाराज अपनी दाढी सँवार रहे थे। दाढी मे उनको एक सफेद बाल दिखाई पड़ा तो उन्होने उसे उखाडकर फेंक दिया। पीछे से रानी चापादे ने महाराज को ऐसा करते देख लिया। महाराज मुस्कराकर कविता मे ही अपनी प्रिया से कहने लगे—

"पीथल धौला आविया, बहुली लागी खोड़।
पूरे जोवन पदमणी, ऊभी मुक्ख मरोड़॥
पीथल पलीट भुक्कियां, बहुली लागी खोड़।
मरवण मत्त गयन्द ज्यूं, ऊभी मुक्ख मरोड़॥"

पीथल कहता है कि सफेद बाल उग आए, यह तो बड़ी खोड़ (खोट, खराबी, त्रुटि) लग गई। बड़ा बुरा हुआ कि पूर्ण यौवन को प्राप्त पद्मिनी-सी मोहिनी प्रिया खड़ी हुई मेरी ओर देखकर मुख मरोड़ रही है। पीथल कहता है कि दाढ़ी के बाल पकने लगे, बड़ा बुरा हुआ, जिसके कारण मदोन्मत्त हाथी के समान प्रिया मरवण खड़ी-खडी मुख मरोड़ रही है। यह सुनकर चांपादे महाराज का भाव ताड़ गई और उनकी आत्म-ग्लानि के भाव को दूर करती हुई अपने पति के संतोषार्थ कहने लगी—

---

१. मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियां : (डा० सावित्री सिन्हा); पृष्ठ ३६।

"प्यारी कह पीथल सुणो, धौलां दिस मत जोय।
नरां नाहरां डिगमगां, पाख्यां ही रस होय॥"

प्यारी कहती है कि हे पीथल ! सुनो, सफेद बालो की ओर न देखो "नरां नाहरां डिगमगां, पाख्यां ही रस होय।"

(आ) इसी प्रकार "धर रहसी, रहसी धरम, खप जासी खुरसाण" एक कहावती दोहे का अश है। कहते हैं कि महाराणा प्रताप के पुत्र महाराणा अमरसिह के लिए मुगलो से युद्ध करते-करते जब ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई कि या तो उनको देश छोडना पडता या उनको कैद होना पडता तो उन्होने अपने मित्र अब्दुर्रहीम मिर्जाखा खानखाना को, जो हिन्दी, फारसी, अरबी, सस्कृत आदि के विद्वान् होने के साथ-साथ अच्छे कवि भी थे, निम्नलिखित दोहे लिखकर भेजे—

"गोड़ कछावा राठवड़, गोखां जोख करन्त।
कहजो खानखान ने, बनचर हुया फिरन्त॥
तवरां सूं दिल्ली गई, राठोड़ां कनवज्ज।
अमर पयंपै खान ने, वो दिन वीसै अज्ज॥"

अर्थात् गौड, कछवाहा और राठौड महलो में झरोखो मे, मौज उडा रहे हैं। खानाखान से कहना कि हम जगलो मे भटक रहे है। तंवर राजपूतो से दिल्ली गई, राठोड़ो से कन्नौज गया। अमरसिह के लिए भी वह दिन आज दिखाई दे रहा है। इस सन्देश के उत्तर में खानखाना ने नीचे लिखा हुआ दोहा लिख भेजा—

"धर रहसी, रहसी धरम, खप जासी खुरसाण।
अगर विसम्भर ऊपरां, राखो नहचो राण॥"

अर्थात् धरती और धर्म रह जायेंगे, खुरासान वाले मुगल खप जायेगे। हे राणा अमरसिह, तुम विश्वम्भर भगवान पर भरोसा रखो। राज्य तो आते-जाते रहते है, धरती और धर्म ही हमेशा बने रहेगे। खानखाना के उत्तर की ये मार्मिक पक्तियाँ आज भी अवसर पडने पर राजस्थान में लोकोक्ति की भाँति व्यवहृत होती है। इस उत्तर से महाराणा का उत्साह बढ गया और वे निरन्तर लडाइयाँ लडते रहे।

(इ) मनुष्य के जीवन मे बहुत सी ऐसी बाते हैं जो विवादास्पद है, जिनके विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ नही कहा जा सकता। किन्तु जो पैदा हुआ है, उसकी मृत्यु निश्चित है, इसमे किसी को सन्देह नही। अँग्रेजी साहित्य में तो निश्चयात्मकता के लिए मृत्यु एक कहावती उपमान के रूप में प्रयुक्त होता है और वह मृत्यु भी कब आ जाय, इसका कोई ठिकाना नही। प्रबन्ध चिन्तामणि मे अपभ्रंश का एक दोहा मिलता है—

"ऊग्गा तावि जहि न किउ, लक्खउ भणइ निघट्ट।
गणिया लब्भइ दीहड़ा, के दहक अहवा अट्ठ॥"[1]

अर्थात् कुशल लाखा का कथन है कि शत्रु का उदय होते ही यदि उसे नष्ट न किया जाय तो फिर न जाने भविष्य मे क्या हो ! गिने-गिनाये आठ-दस दिन ही तो

---

१. नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग २, स० १९७८ में प्रकाशित 'पुरानी हिन्दी' : (पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी); पृष्ठ ३४।

जीने के लिए मिलते है। सम्भवत: प्रबन्ध चिन्तामणि के उक्त पद्य के आधार पर ही राजस्थान में लाखा फूलाणी आदि का निम्नोक्त मार्मिक प्रवाद प्रचलित हुआ हो—

"मरदो माया माणलो, लाखो कहै सुपट्ठ।
घणा दिहाड़ा जावसी, के सत्ता के अट्ठ॥"

अर्थात् हे मनुष्यो ! अधिक से अधिक सात या आठ दिन के लिए ही तो यह माया मिली है, क्यो नही इसका उपभोग कर लेते ? यह लाखा की स्पष्ट उक्ति है। इस पर लाखा की पत्नी कहती है—

"फूलाणी ! फेरो घणो, सत्ता सूं अठ दूर।
रोते देख्या मुलकता, वे नहिं उगते सूर॥"

स्वामिन् ! सात और आठ में तो बहुत अन्तर है। जिन्हे हमने रात्रि में हँसते हुए देखा था, वे प्रात.काल होते ही उस लोक को चल दिये जहाँ से लौटकर कोई नही आता। फूलाणी की पुत्री ने इसका प्रतिवाद करते हुए कहा—

"लाखो भूल्यो लखपति, मा भी भूली जोय।
आंखां तणे फरूकड़े, क्या जाणू क्या होय॥"[1]

अर्थात् माता-पिता दोनो ने ही अच्छी तरह विचार कर बात नही कही। सच तो यह है कि आँखो के फड़कने मे जितना समय लगता है, उसमे ही न जाने क्या का क्या हो जाय।

दासी ने तो, जो यह सब सुन रही थी, और भी सूक्ष्म दृष्टि का परिचय देते हुए कहा—

"लाखो अंधो, धी अँधी, अँध लाखा री जोय।
साँस बटाऊ पावणों, आवे न आवण होय॥"

अर्थात् लाखा, उसकी स्त्री, उसकी लडकी सब इस प्रकार बाते करते हैं जैसे उन्होने दुनिया को देखा ही न हो। आँखो के फड़कने में भी तो समय लगता है। साँस के जाने में समय कैसा ? अरे, श्वास तो बटाऊ (पथिक) के समान है, एक बार आकर फिर आये न आये, इसका कौन भरोसा ! श्वासोच्छवास के बीच का जो समय है, उसमे ही कितनी बडी घटना घटित हो जाय, जीव महाप्रयाण के लिए निकल पड़े।

नश्वर जीवन का तथ्य दासी की उक्ति में चरम सीमा पर पहुँच जाता है। **'आँखां तणे फरूकड़े क्या जाणूं क्या होय'** और **'साँस बटाऊ पावणो आवै न आवण होय'** दोनो ही लोक-प्रचलित उक्तियाँ है जो ऊपर के कहावती वार्तालाप में से जीवन-निष्कर्ष के रूप में निकल पडी है। कविकुल गुरु की सूक्ति **'मरण प्रकृतिः शरीरिणाम्'** से इन लोकोक्तियो अथवा बोध-वाक्यो की तुलना की जा सकती है।

(ई) प्रवाद है कि राव चूँडा ने नागौर की विजय के बाद राज्य का प्रबन्ध अपनी नई रानी को सौप दिया। रानी ने कई मदो में कटौती कर दी। घोड़ो को जो

---

१. मिलाइये : "धरम विलब न कीजियइ, खिण खिण त्रूटइ आय।
आँखि तणइ फरूकडइ, घड़ी घरू थल थाय॥"
— कविवर समयसुन्दर-कृत सीताराम चौपाई

घी दिया जाता था, वह भी बन्द कर दिया। रावजी को जब इस बात का पता चला तो उन्होने कहा—

"कलह करे मत कामणी, घोड़ां घी देतांह ।
आडा कदेक आवसी, वाडेली बहतांह ॥"

अर्थात् हे कामिनी ! घोड़ों को घी देते समय कलह मत कर। कभी तलवार चलाने का काम पड़ने पर अर्थात् युद्ध का अवसर उपस्थित होने पर ये घोड़े काम आयेगे।

वाक्-चातुर्य प्रदर्शित करते हुए रानी ने उत्तर दिया—

"आक बटूकै पवन भख, तुरियां आगल जाय।
मै तनै पूछूं सायबा, हिरण किसा घी खाय ॥"

अर्थात् हे स्वामिन् ! मै आपसे पूछती हूँ कि हरिण कौनसा घी खाते है ? वे तो आक चबाते है और पवन का भक्षण करते हैं। फिर भी दौड़ में घोडो से आगे निकल जाते है।

रानी की इस कटौती की नीति से असन्तुष्ट होकर सरदार भी एक-एक करके रावजी को छोडकर चल दिये। रावजी ने रानी को कोसना शुरू किया किन्तु अब उपाय ही क्या रह गया था ? कहा जाता है कि शत्रुओ ने परिस्थिति से लाभ उठाकर रावजी पर विजय प्राप्त की। नागौर शत्रुओ के हाथ चला गया और स्वयं रावजी भी इस युद्ध मे खेत रहे।[1]

उक्त संवाद भी राजस्थान में कहावत की भाँति प्रचलित है।

(उ) बूँदी के हाडा चौहान बुधसिह विपत्तिग्रस्त होकर अपनी रानी चूँडावत के घर वेगूँ चले आये। वेगूँ के रावत देवीसिह ने इनकी बडी खातिरदारी की और इन्हे बड़े सम्मान से अपने पास रखा, अपनी जागीर ही इनके सुपुर्द कर दी। इस अहसान का बुधसिह पर बहुत प्रभाव पडा। उन्होने रावत देवीसिह से कहा—

"धर पलटी, पलट्यो धरम, पलट्यो गोत निसंक।
दवो हरीचंद राखियो, अधपतियाँ सिर अक ॥"

अर्थात् जमीन गई, ईमान गया, गोत्री भाई भी निःशक बदल गये। ऐसे समय हरिसिह के पुत्र देवीसिह ने राजा बुधसिह के ऊपर बहुत बडा अहसान किया। उसके उत्तर में रावत देवीसिह ने कहा।

"देवा दरियावां तणो, होड न नाडो होय।
जो नाडो पाजां छलै, तो दरियाव न होय ॥"

---

१. राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद (प्रथम शतक); पृष्ठ ३१-३२.
मिलाइये—

कांदा खायां कमधजां, घी खायो लोगाह।
चूरू चाली ठाकरां, बाजते ढोलाह ॥

अर्थात् ठाकुरों को प्याज खाने को मिला और लोगों ने घी के माल उडाये। हे ठाकुर साहब, (चूरू ठाकुर साहब से तात्पर्य है) इसी का फल है कि आपका यह किला ढोल बजते हुए हाथ से निकल रहा है।

राजस्थान रा दूहा, भाग पहलड़ो : (श्री नरोत्तमदास स्वामी); पृष्ठ ६६।

अर्थात् दरियाव स्वरूप राजा बुधसिंह की बराबरी देवा-जैसा नाला कर नहीं कर सकता। नाले का पानी अपनी सीमा का अतिक्रमण करके भी बहने लग जाय तब भी वह दरियाव नहीं बन सकता।

महाराव बुधसिंह बारह वर्षों तक वेगूं में रहे और विक्रम संवत् १७९६ में वेगूं के पास बाधपुरे गाँव में इनका देहान्त हो गया।[1]

उक्त दोहे का उत्तरार्द्ध एक कहावत-सा जान पडता है। ऐसा लगता है कि यह पंक्ति प्रसगोदभूत है। कहावत के रूप में राजस्थान में चाहे इस पक्ति का प्रचलन न हुआ हो किन्तु इसमे एक कहावत बनने की क्षमता है, इसका आकार-प्रकार भी कहावतोचित है।

(घ) स्थानीय कहावतें—

कुछ कहावतें ऐसी होती है जो स्थान-विशेष में ही अधिक प्रचलित होती हैं। इस प्रकार की कहावतें प्राय. दुनिया के सभी देशो मे मिलती हैं। राजस्थान में भी ऐसी कहावतो का अभाव नही है। उदाहरण के लिए कुछ कहावतें लीजिए।

(अ) **'सपनै देखै सांखली नापासर रा रूंख'** अर्थात् हे साँखली! अब नापासर के पेड़ों को स्वप्न मे ही देखना।

नापासर के सुप्रसिद्ध नापा साखला की वीर पुत्री सांखली अपनी कोमल भावनाओ के लिए प्रसिद्ध थी। अपनी सखी-सहेलियों से जितना प्यार सांखली करती थी, उतना और कोई शायद ही कर पाता हो। होली-दिवाली पर नगर भर की कुमारियाँ राज-महल में एकत्र हुआ करती थी। राज्य की ओर से सबको एक रंग के रेशमी वस्त्र पहनने को मिलते थे। साखली उन सब के साथ डाँडियो का सुप्रसिद्ध नाच नाचती थी। वह अपने पिता की लाड़ली बेटी थी। नापा पुत्री की बात को टालते न थे। बाप और बेटी का प्रेम प्रसिद्ध था।

सांखली सपनी मातृभूमि के कण-कण से प्रेम करती थी। उसकी माँ बचपन में मर चुकी थी। विमाता की उससे बनती न थी, पर साखली के आगे विमाता की कुछ चलने न पाती थी। नापा अपनी बेटी के लिए सब कुछ करने को तैयार था। राज्य के छोटे-मोटे सभी अफसर साखली के आगे हाथ जोडे खडे रहते थे।

बडी मनौती मनाने पर विमाता के पुत्र हुआ पर वह बडा कुरूप था, काना और कुबडा। नापा को वह फूटी आँख न सुहाता था, साखली पर ही उसका सारा वात्सल्य न्यौछावर था।

सांखली बडी हुई। नापा उसका विवाह किसी घर-जमाई के साथ करके उसे वही रखना चाहता था ताकि वह राज्य-भार सँभालने मे अपने अयोग्य भाई का हाथ बँटा सके। विमाता भला उसे कब सहन कर पाती! षड्यन्त्र रचकर उसने नापा की अनुपस्थिति मे धोखा देकर साखली का विवाह दूरदेशवासी राणा से कर दिया। सारा नापासर रो रहा था। विदा होती हुई साखली को विमाता ने शरारत की हँसी हँसते हुए कहा था—

---

१. चौहान कुल कल्पद्रुम, प्रकाशक न्यायरत्न देसाई लल्लूभाई सन् १९२७; पृष्ठ ७७।

"सपनै देखै सांखली, नापासर रा रूख।"

(आ) **'वणज्या एक बार तो रतन'** एक बार तो रतन बन जा।

इस कहावत का निकास इस प्रकार है—"स्वनामधन्य एव भगवद्भक्त सेठ रामरत्न जी डागा वर्तमान सुविख्यात फर्म बंशीलाल जी अबीरचन्द के मालिकों के पुरखे थे। आप जाति के माहेश्वरी डागा थे। महादेव के आप पूर्ण भक्त थे और दानी तो ऐसे थे कि लोग उन्हे दूसरा कर्ण कहा करते थे। उनकी दानशीलता से लोग इतने प्रभावित हो गये कि वे उन्हें रत्न ही कहकर पुकारते थे। उनके द्वार से कभी कोई याचक खाली हाथ नही लौटा। कजूस व्यक्ति को लज्जित करने के लिए आज भी कहा जाता है कि 'एक बार तो सेठ रामरत्न बन जा।'[1]

उक्त दोनो कहावते अधिकतर बीकानेर की ओर ही प्रचलित हैं।

(इ) **"काल पड़े तो कुम्भा धणी, मेह बरसे तो मजूरी घणी।"**

अर्थात् मेवाड़ के राणा कुम्भा की प्रजा कहती है कि यदि अकाल पड़ा तो हमारे राजा मालिक है, वे हमारा पालन करेंगे और यदि वर्षा हुई तो मजदूरी बहुत। हमको किसी प्रकार की चिन्ता नही है।

(ई) **"सन्त सगाई ना करे, माथे ना बांधे मौड़।**
परणी लावे पार की, जाय घोसुण्डे दौड़॥"

अर्थात् वैरागी साधु न तो सिर पर मौड़ बाँधते है और न सगाई ही करते हैं। ये तो घोसूँडे के मेले मे जाकर दूसरो की विवाहित स्त्री को ले आते है। मेवाड़ के घोसूँडे नामक गाँव मे पहले बाबो का एक मेला लगता था जिसमे अपनी नापसन्दगी की पत्नियाँ कपडे से पूरी ढँककर बैठा दी जाती थी। जिसके जी मे जो आती, वही उसे उठा लाता था और कम से कम आगामी मेले तक एक वर्ष उसे रखना ही पड़ता था।[2]

इ, और ई, कहावतों का मेवाड़ की तरफ ही अधिक प्रचार है।

(उ) **माया माँणी बाघलां कै लाखै फूलाणी।**
रहती पंती माँणगो, हरगोविन्द नाटाणीं॥[3]

अर्थात् ऐश्वर्य या तो बाघलो ने भोगा या लाखा फूलाणी ने, बचा-खुचा ऐश्वर्य भोगा हरगोविन्द नाटाणी ने। यह नाटाणी जयपुर का खडेलवाल महाजन था जिसने महाराजा ईश्वरीसिह जी को धोखा देकर केशवदास खत्री मुसाहिब को जहर पिलवाकर मरवा दिया और आप मुसाहिब हो गया, और राज्य के धन को ऐश-आराम और दातारी में उडाकर दातार मशहूर हो गया, और मारके का काम पडा तब माधोसिह जी में मिल गया कि जिससे ईश्वरीसिह जी को भी विष से आत्म-हत्या करनी पड़ी। यद्यपि यह बड़ा षड्यन्त्रकारी था तो भी याचको ने इसके दान की बड़ी

---

१. राजस्थानी कहावतें, भाग दूसरो : संपादक प्रो० नरोत्तम दास स्वामी तथा पंडित मुरलीधर व्यास विशारद; पृष्ठ १२२।

२. मेवाड की कहावतें, भाग १ : (पं० लक्ष्मीलाल जोशी); पृष्ठ १८६-१८७।

३. बांकीदास ग्रन्थावली (तीसरा भाग), भूमिका; पृष्ठ २८-२९।

प्रशंसा की है। उसी समय का ईश्वरीसिंह जी का कहा हुआ यह मर्मस्पर्शी वाक्य प्रसिद्ध है—

"साँचो तू ईसरा, झूठी या काया।
प्याला केशोदास ने पाया सो पाया॥"

उक्त कहावत जयपुर की तरफ अधिक प्रसिद्ध है।

(ङ) राजवंशों से सम्बद्ध—

राजवशों को लेकर भी राजस्थान में अनेक कहावते कही जाती है। उनमे से अत्यन्त प्रसिद्ध उक्तियों का आश्रय ले यहाँ दिग्दर्शन मात्र कराने की चेष्टा की जा रही है।

(अ) **"जद कद दिल्ली तंवरां"** राजस्थान की एक प्रसिद्ध कहावत है जिसका अर्थ है कि जब कभी दिल्ली पर किसी ने शासन किया तो तवरो ने ही। हमारे पास कोई ऐसा ऐतिहासिक साधन नही है जिसके आधार पर हम दिल्ली पर तंवरों के अधिकार की तिथि निश्चित कर सकें। ·····परम्परा से यह प्रसिद्ध है कि अनगपाल ने संवत् ७९२ में दिल्ली नगर बसाया। हम इस अनगपाल को अनंगपाल प्रथम मानें तो यह मानना असंगत न होगा कि राजा वत्सराज प्रतिहार के समय के आस-पास तवरो ने दिल्ली नगर बसाया। पुराना इन्द्रप्रस्थ उस समय से पहले उजड चुका होगा। सन् १३२८ के दिल्ली म्यूजियम के शिलालेख मे भी तवरो द्वारा दिल्ली के बसाये जाने का उल्लेख है। उसके अनुसार पृथ्वी पर हरियाना नाम का स्वर्ग-तुल्य देश है। वहाँ तोमरो द्वारा निर्मित दिल्ली नाम की पुरी है। तोमरो के अनन्तर कटको को दूर कर प्रजा के पालन मे तत्पर चाहमान राजाओ ने वहाँ राज्य किया।

तवरो का सबसे प्राचीन उल्लेख पेहवे के एक शिलालेख में मिला है। उसके अनुसार तोमर जाउल के वश मे वज्रट नाम का एक पुरुष हुआ जिसने खूब उन्नति की।···जाउल के वशजो का दिल्ली प्रदेश से शायद कुछ सम्बन्ध रहा हो। उसे ही तवर अपना मूल स्थान मानते आये हैं।

तोमरवश के कुछ अन्य व्यक्तियो का उल्लेख हमे सवत् १०३० (ई० सन् ९७३) के हर्षनाथ के शिलालेख में मिलता है। चौहान और तोमर, दोनो कन्नौज के प्रतिहार राजाओ के सामन्त थे। प्रतिहार सम्राट् महेन्द्रपाल की मृत्यु के बाद जब प्रतिहार साम्राज्य की शक्ति क्षीण होने लगी तो इधर-उधर के दूसरे सामन्तो की तरह इन्होने भी सिर उठाना और परस्पर लड़ना शुरू किया।

चौहान-तवर-संघर्ष से इतिहास के पृष्ठ भरे है। किन्तु अर्णोराज की मृत्यु के बाद जब विग्रहराज चतुर्थ गद्दी पर बैठा तो मुसलमानो ने फिर अपनी किस्मत आजमाई। किन्तु वे फिर हारे और चौहान फिर एक बार उत्तर की तरफ बढ़े। तत्कालीन प्रमाणो और अनुश्रुति से भी यह सिद्ध है कि चौहानो ने तवरो को हराया तथा दिल्ली और हासी के दुर्गों को हस्तगत कर लिया। तवरों के स्वाधीन राज्य की इससे इतिश्री हुई। उस समय दिल्ली का राजा सम्भवतः मदनपाल तवर था। श्री जिनपाल रचित खरतरगच्छ पट्टावली से हमे ज्ञात है कि संवत् १२२३ में यही

मदनपाल दिल्ली का राजा था।[1]

मुद्दत तक दिल्ली में तंवरो का राज्य रहने से उक्त कहावत प्रचलित हुई होगी किन्तु तंवरो के राज्य की इतिश्री होने पर भी अब इस कहावत की सार्थकता क्या है ? डाक्टर दशरथ शर्मा के शब्दो मे "तंवर अब भी आशा करते हैं कि दिल्ली में किसी-न-किसी दिन तंवरों का राज्य होगा। तवर सरदार मूँछों पर ताव देते हुए 'जद-कद दिल्ली तवरा' कहते है तो प्रतीत होता है कि स्वप्न-ससार मे भी कुछ आनन्द है। आठ सौ वर्ष मे तंवर दिल्ली पर अधिकार जमाने का स्वप्न लेते रहे है। किन्तु अधिकतर यह स्वप्न ही रहा है। तलवार के बल पर इस लम्बे अर्से में किसी तंवर ने दिल्ली को पुनः हस्तगत करने का प्रयत्न भी नही किया।"

वस्तुस्थिति शायद यह है कि कोई कहावत जब एक वार प्रचलित हो जाती है, तो अभिधेयार्थ घटित न होने पर भी, उसका प्रचलन रुकने नही पाता क्योकि प्रस्तुत के अतिरिक्त कहावत का एक अप्रस्तुत अर्थ भी हुआ करता है जिसके बल पर चिरकाल तक वह अपना अस्तित्व बनाये रखती है। 'जद कद दिल्ली तवरा' इस लोकोक्ति का केवल तवर ही प्रयोग नही करते, आज भी जब किसी का अधिकार छीन लिया जाता है तो वह उसकी पुनः प्राप्ति के लिए गर्वोक्ति के रूप मे कहता सुना जाता है, 'जद कद दिल्ली तवरा'। दिल्ली चाहे आज तवरो की न रही हो किन्तु कहावत का प्रयोक्ता अपने हृदय के उद्‌गार इसी कहावत के माध्यम द्वारा व्यक्त कर जाता है। कहावत की महिमा ही कुछ ऐसी है।

(आ) एक दूसरी कहावत है **"कीली तो ढीली थई, तंवर हुए मतहीन"**। कहते हैं कि एक तवर राजा से ज्योतिषियो ने कहा था कि एक ऐसा शुभ क्षण आता है जिसमें कीली गाडने से आपका राज्य सदा के लिए अचल हो जायगा क्योकि वह कीली शेषनाग के मस्तक में जा पडेगी। एक बडी कीली अष्टधातु की बनवाई गई। जब वह शुभ वेला आई तो पंडितो ने कीली को जमीन में गाड दिया और राजा से कहा कि अब आपका राज्य अचल हो गया। किन्तु राजा को इस पर यकीन नही आया और उसने जिद्द करके कीली उखडवाई। कीली की नोक खून से भरी हुई देख पंडितो ने कहा—देख लीजिये, यह शेषनाग का खून है। राजा ने शर्मिन्दा होकर पंडितों से फिर कीली गाडने को कहा किन्तु उन्होने उत्तर दिया 'वह पानी मुल्तान गया।' कुछ लोग कहते है कि यह कीली वासुकि नाग के सिर पर गाडी गई थी और उसके उखेड़ने से तंवर उखड़ गये। चौहानो ने उनसे दिल्ली का राज्य छीन लिया और तंवर दूसरे मुल्कों मे निकल गये।[2]

उक्त कहावत मे धर्म-गाथा अथवा दन्त-कथा के तत्त्व का समावेश हो गया है। आज जब इतिहास का वैज्ञानिक अध्ययन किया जा रहा है, इस प्रकार की

---

१. राजस्थान भारती, भाग ३, अंक ३-४ में प्रकाशित डाक्टर दशरथ शर्मा का 'दिल्ली का तोमर' (तंवर राज्य); पृष्ठ १७-२१।

२. रिपोर्ट मरदुमशुमारी राज मारवाड, बाबत सन् १८९१ ईसवी; भाग ३; पृष्ठ ८।
मिलाइये—

"तंवरा सूं दिल्ली गई, राठोडां कनवज्ज।
अमर पंवारां खान ने, वो दिन दीसै अज्ज॥'

कहावतें विश्वसनीय नही रह गई है। इस कहावत से यही अर्थ लिया जाना चाहिए कि चौहानों ने तवरों से दिल्ली का राज्य छीन लिया था।

(इ) पंवारों के सम्बन्ध में निम्नलिखित कहावतें भी बहुत समय से चली आती हैं—

"पिरथी बडा पंमार, पिरथी परमारां तणी।
एक उजीणी धार, बीजो आबू बैसणो॥
ज्यां पमार त्यां धार है, धारा जठे पमार।
बिन पमार धारा नहीं, धारा बिना पमार॥"

अर्थात् पृथ्वी पर पंवार राजपूत बड़े हैं, पृथ्वी ही पवारों की है। उनके बैठने की जगह एक तो उज्जैन और धार है और दूसरे आबू के पहाड हैं। जहाँ पवार है, वही धारा है। जहां धारा है, वही पंवार है। पवारों के बिना धारा नही और धारा के बिना पवार नही।

जिस जाति ने वाक्पति और भोज, उदयादित्य एव जयदेव जैसे महापुरुषों को जन्म दिया, वह वास्तव मे महान् थी, उसका प्रभुत्व अत्युच्च था। अपनी प्राचीन गरिमा से परमार वश अब भी गौरवान्वित है। ऐसे वश के सम्बन्ध मे यदि उक्त कहावते प्रचलित हो गई हो तो यह सर्वथा स्वाभाविक है, इसमे आश्चर्य की कोई बात नही।

(ई) 'राजकुलां राठौड़' और 'रणबंका राठौड़' जैसी अनेक कहावतें राठौडो के सम्बन्ध में प्रसिद्ध हैं। हाडो के सम्बन्ध मे भी कहा जाता है—'हाडा बांका राड़ में' अर्थात् हाडे युद्ध मे बाके होते हैं किन्तु इस उक्ति की अपेक्षा 'रणबंका राठौड़' अधिक प्रचलित है।[1] राठौड़ मैदान की लडाई को हमेशा पसन्द करते थे और बादशाही फौज मे तो हमेशा हरावल मे यही रहते थे, किले की लड़ाइयो में भी इन्होने सब जगह प्रसिद्धि ही प्राप्त की है।

(उ) 'गाड़ा टलै, हाडा न टलै' यह हाडो के सम्बन्ध में सबसे प्रसिद्ध कहावत है। हाडा चौहान राजपूतो की एक शाखा है। बूंदी का राज्य देवा जी हाडा ने स्थापित किया था। देवाजी के वशधरो ने वीरता मे बडा नाम पैदा किया जिसके कारण उपर्युक्त कहावत प्रचलित हो गई। अन्य राजवशो के सम्बन्ध मे भी यद्यपि कहावती पक्तियो का अभाव नही है, तथापि विस्तार-भय से यहाँ उन सबका विवेचन अभीष्ट नही है।

निष्कर्ष—ऊपर जो कहावतें दी गई है, उनमे अनेक ऐतिहासिक है, अनेक अर्द्ध-ऐतिहासिक हैं तथा कुछ धर्म-गाथाओ से सबद्ध हैं। राजस्थान की भाँति चीन की भाषा में भी इस प्रकार की कहावतों का प्राचुर्य है। एच० स्मिथ[2] ने अपने

---

१. बलहट बंका देवडा, करतब बंका गोड।
हाडा बांका गाढ में, रणबंका राठोड॥
गरुड़ खगा लंका गढा, मेरु पहाडां मोड।
रूंखा में चन्दन भलो, राजकुलां राठोड॥

2. Vide proverbs and Common Sayings from the Chinese by Arthur H. Smith Chapters V-Vi. Proverbs containing Allusions to

कहावतों-सम्बन्धी ग्रन्थ में चीन की अनेक ऐतिहासिक कहावतों की प्रसंग-सहित व्याख्या की है। कहावतों के तुलनात्मक अध्येता के लिए यह ग्रन्थ बहुमूल्य सामग्री से भरा हुआ है। स्काटलैण्ड में भी इतिहास-सम्बन्धी कहावतें विशेष रूप से पाई जाती हैं।[1]

राजस्थान की ऐतिहासिक कहावतों से जो उदाहरण ऊपर दिये गये है, वे प्रायः पद्यात्मक हैं। इन कहावती पद्यों में इतिहास-बोध और काव्य दोनों का सुन्दर सम्मिश्रण हुआ है। राजस्थान में ऐसे अनेक लोग पाये जाते हैं जिन्होंने इतिहास के ग्रन्थों का कभी कोई अध्ययन नही किया किन्तु फिर भी इतिहास की बहुत-सी बातों से जिनका परिचय है। इसका मुख्य कारण यह है कि बहुत-से कहावती दोहे आज भी लोगों की जबान पर है। दोहो द्वारा इतिहास को सजीव बनाये रखना राजस्थान और गुजरात जैसे प्रान्तो की अपनी विशेषता रही है।

इतिहास-सम्बन्धी जो पद्य राजस्थान मे कहावत की भाँति प्रचलित है, उन्हें राजस्थान की ऐतिहासिक कहावतो का नाम दिया गया है। किन्तु इन ऐतिहासिक कहावतो और सर्व-सामान्य लोकोक्तियो मे थोडा अन्तर है। **'करणी भोगै आपकी, कै बेटो कै बाप'** अर्थात् चाहे पिता हो, चाहे पुत्र, सब अपने किये का फल भोगते है। **'गाय न बाछी, नींद आवै आछी'** अर्थात् जिसके पास न गाय है, न बछिया, वह निश्चिंत होकर सोता है। इस प्रकार की सामान्य लोकोक्तियाँ जितने विस्तृत जन-समुदाय में प्रचलित है, उतनी व्याप्ति इन पद्यात्मक ऐतिहासिक कहावतो की नही है। इतिहास-सम्बन्धी ये कहावतें राजवशो, चारणो तथा राजस्थानी भाषा के विद्वानों मे अधिक प्रचलित है।

उक्त कहावतो मे ऐतिहासिक तथ्य कितना है और कल्पना के अंश का समावेश किस मात्रा मे हो गया है, इस दृष्टि से किसी विद्वान् ने इनका विधिवत् वैज्ञानिक अध्ययन अभी नही किया है। राजस्थान का इतिहास लिखने वाले विद्वानो ने स्थान-स्थान पर अपने ग्रन्थो मे इन कहावतो का उल्लेख अवश्य किया है।

राजस्थान के इतिहास से सम्बन्ध रखनेवाली कहावतो में सामन्ती युग की झलक मिलती है, वर्तमान जनतत्रात्मक युग मे बहुत-सी कहावतो का रंग भी फीका पड गया है किन्तु फिर भी राजस्थान के सास्कृतिक इतिहास की दृष्टि से इनका विशेष महत्त्व है। पुरानी परम्परा के चारणो तथा बडे-बूढो के मुख से ही इस प्रकार के उपाख्यान सुनने को मिलते है। ये उपाख्यान विस्मृति के गर्भ मे विलीन न हो जायँ, इस दृष्टि से पहला महत्त्वपूर्ण कार्य इनको संग्रह करने का है।

कहना न होगा, राजस्थान की ऐतिहासिक कहावतें स्वतः एक अनुसधान का विषय है।

Historical, Semi-Historical, Legendary or Mythical Persons & Events pertaining to Specific places or districts.

1 Historical Scotish Proverbs.

—*Chambers's Journal, Feb., 1897.*

२. राजस्थान की स्थान-सम्बन्धी कहावतें

(१) **प्रास्ताविक**—राजस्थान में शहरों आदि के सम्बन्ध में अनेक कहावती पद्य प्रचलित है। कोई स्थान भी जब अपनी विशेषताओ के कारण लोगों की दृष्टि में महत्त्व प्राप्त कर लेता है तो उसके सम्बन्ध में कहावतें चल पड़ती है।

इस प्रकार की कहावतो को स्थान-सम्बन्धी कहावतो का नाम दिया गया है जो ऐतिहासिक कहावतों के अन्तर्गत 'स्थानीय कहावतो' से भिन्न हैं। स्थानीय (Local) कहावतो से तात्पर्य उन कहावतो से है जो एक ही प्रदेश अथवा शहर में विशेष प्रचलित है किन्तु स्थान-सम्बन्धी कहावतो की व्याप्ति स्थानीय कहावतो से कही अधिक होती है। कुछ विद्वान् इस प्रकार की कहावतो को भौगोलिक कहावतो का नाम देते हैं। स्वामी नरोत्तमदास जी ने अपने 'राजस्थान रा दूहा' में इस प्रकार के कहावती पद्यो को 'भौगोलिक' वर्ग के अन्दर रखा है।

(२) **वर्गीकरण**—यहाँ स्थान-सम्बन्धी कहावतो को शहर, नदी-नाले तथा किले, इन तीन वर्गों मे विभक्त किया गया है। सबसे पहले शहरो-सम्बन्धी कहावतों के उदाहरण दिये जा रहे है।

(क) शहरों-सम्बन्धी—

(१) ऋतुओं को लक्ष्य में रखकर—

(अ) "सीयाल् खाटू भलो, ऊनाल् अजमेर।
नागाणो नित नित भलो, सावण बीकानेर॥"

(आ) "स्याल् भलो ज मालवो, ऊनालै गुजरात।
चोमासै सोरठ भलो, बड़वो बारहमास॥"

अर्थात् शीतकाल मे खाटू, ग्रीष्म मे अजमेर और श्रावण में बीकानेर अच्छा लगता है, जोधपुर का नागौर शहर तो सभी ऋतुओ में पसन्द किया जाता है। इसी प्रकार शीतकाल मे मालवा, ग्रीष्म मे गुजरात तथा वर्षा में सोरठ अच्छा है किन्तु वडवा (गुजरात) तो सभी ऋतुओ में अच्छा लगता है।

प्रथम दोहे का अन्तिम चरण 'सावण बीकानेर' राजस्थान मे अत्यन्त लोकप्रिय हुआ है। वस्तुतः वर्षा-ऋतु मे बीकानेर की शोभा देखते ही बनती है।[1]

दूसरे दोहे से यह भी स्पष्ट है कि किसी एक प्रदेश मे अन्य प्रदेशो के शहरों के सम्बन्ध मे भी कहावते बन जाया करती है।

ऊपर के दोहो में विभिन्न ऋतुओ को लेकर स्थानो की श्रेष्ठता के सम्बन्ध में लोक-मत की अभिव्यक्ति हुई है। अनेक कहावते ऐसी भी मिलती हैं जिनमें स्त्री-पुरुषों आदि को लेकर शहरो को उत्कृष्ट ठहराया गया है। उदाहरण के लिए नीचे लिखे कहावती पद्य अथवा पद्याशो पर विचार कीजिये—

(२) स्त्री-पुरुषों को लक्ष्य में रखकर—

(अ) "मारवाड़ नर नीपजे, नारी जैसलमेर।
तुरी तो सिन्धां सांतरां, करहल् बीकानेर॥"

---

१. मिलाइये—
बोर मतीरा बाजरी, खेलर काचर खाण।
अनधन धीणां धूपटा, बरसाल् बीकाण॥

(आ) "घर घर पदमण नीपजै, अइहो घर जेसाण।"

(इ) "उर चोड़ी कड़ पातली, जीकारा री बाण।
जे सुख चावै जीव रो, तो धण माड़ेची आण॥"

अर्थात् मर्द तो मारवाड़ में ही उत्पन्न होते हैं और स्त्रियाँ जैसलमेर मे। घोड़े सिन्ध में ही जन्म लेते है और ऊँट बीकानेर में। धन्य है जैसलमेर की धरा जहाँ घर-घर में पद्मिनियाँ जन्म लेती है। यदि सुख प्राप्त करना चाहो तो जैसलमेर की पद्मिनी लाओ जिसका वक्ष.स्थल चौडा और कटि-प्रदेश पतला होता है और स्वभावतः ही बातचीत में जो सम्मान-सूचक 'जी' का प्रयोग करती है।

ऊपर के पद्यो मे मारवाड के पुरुषो और जैसलमेर की स्त्रियों की प्रशसा की गई है, किन्तु इसका अर्थ यह नही है कि राजस्थान के अन्य शहरो की कामिनियो के सम्बन्ध में कहावती पद्यो का अभाव है। 'ढोला मारू रा दूहा' के मालवणी-मारवणी सवाद में मारवणी ने मारवाड की कामिनियो के सम्बन्ध में जो निम्नलिखित पद्य कहे है वे अर्थवाद के रूप मे प्रयुक्त होने पर भी कहावत की भाँति प्रचलित हैं—

(ई) "मारू देश उपन्निया, तिहां का दन्त सुसेत।
कूझ बची गोरंगिया, खंजर जेहा नेत॥
मारू देश उपन्नियां, सर ज्यउं पध्धरियाह।
कड़वा कदे न बोलही, मीठा बोलणियाह॥
देश निवाणं सजल जल, मीठा बोला लोइ।
मारू कांमिणि विखणि धर हरि दीयइ तउ होइ॥"[1]

अर्थात् जो मारू देश मे उत्पन्न हुई है, उनके दाँत बडे उज्ज्वल होते है, वे क्रौचशावको की भाँति गौर वर्ण होती है, और उनके नेत्र खजन जैसे होते है। मारू देश में उत्पन्न हुई स्त्रियाँ तीर की भाँति सीधी होती है, वे भी कटु वचन नही बोलती और स्वभाव से ही मीठी बोलने वाली होती है। वहाँ की भूमि नीची और उपजाऊ है, पानी स्वच्छ एव स्वास्थ्यप्रद है और लोग मीठे बोलने वाले है। ऐसे मारू देश की कामिनी, ईश्वर ही दे तो, दक्षिण की भूमि मे मिल सकती है।

इसी प्रकार उदयपुर की कामिनियाँ जब झरोखो के बाहर अपने सुन्दर शरीर को निकालती है तो उन्हे देखकर देवो का भी मन डिग जाता है, मनुष्यो की तो बात ही कितनी!

(उ) "उदियापुर री कामणी, गोरवां काढ़ै गात।
मन तो देवां रा डिगै, मिनखां कितीक बात॥"

राजस्थान मे ऐसी भी अनेक कहावते उपलब्ध है जिनके द्वारा देशगत विशेषताओं पर अच्छा प्रकाश पडता है। विभिन्न शहरों के सम्बन्ध मे कुछ उक्तियाँ लीजिये—

(३) देशगत विशेषताओं को लक्ष्य में रखकर।

ढूंढाड़

(अ) "ऊँचा परबत सेर बन, कारीगर तरवार।
इतरा वधका नीपजै, रंग देस ढूंढाड़॥"

---

१. 'ढोला मारू रा दूहा'; प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा, काशी; पृष्ठ २२३

अर्थात् जहाँ ऊँचे पर्वत हे, वनों में शेर रहते है, तलवार के कारीगर जहाँ प्रसिद्ध है, ऐसे ढूँढाड़ देश को धन्य है ।

आमेर

(आ) "बागां बागां बाबड़्यां, फुलवादां चहुँ फेर ।
कोयल करै टहकड़ा, अइहो धर आंबेर ।।"[1]

अर्थात् धन्य है आमेर की धरा जहाँ बाग-बाग मे वाटिकाएँ हैं, चारों ओर फुलवारियाँ है और कोकिल जहाँ मधुर स्वर मे आलाप करती रहती है ।

जयपुर

(इ) "जे न देख्यो जैपरियो तो कल में आकर के करियो ।"

अर्थात् यदि जयपुर नही देखा तो मनुष्य-जन्म लेकर क्या किया ? जयपुर की प्रशसा मे यह कहावत कही जाती है । वैसे भी जयपुर को 'भारतवर्ष का पेरिस' कहा गया है ।

किन्तु इसके साथ-साथ यह भी कटु सत्य है कि यदि पास मे पैसा हो तभी जयपुर का आनन्द लूटा जा सकता है, अन्यथा वहाँ कोई नही पूछता ।

"जैपुर पैसा हो तो जैपुर नहीं तो जमपुर है ।" (कनै पीसो हो तो जैपर नईं तो जमपुर)।

जयपुर-विषयक एक कहावत मे यह भी कहा गया है 'जैपुर शहर चितरवां छाजा, लोग मजूर लुगाई राजा, अर्थात् जयपुर शहर मे छज्जे रगे हुए है, मर्द तो कमाते है और औरतें उड़ाती है ।

बीकानेर

(ई) "ऊँठ, मिठाई, अस्तरी, सोनो गहणो, साह ।
पाँच चीज पिरथी सिरे, वाह बीकाणा वाह ।।"

अर्थात् धन्य है वह बीकानेर जहाँ ऊँट, मिठाई, स्त्री, स्वर्णाभूषण और साहूकार, ये पाँच वस्तुएँ पृथ्वी मे सबसे बढकर है ।[2]

मारवाड़

(उ) "जल ऊंडा, थल ऊजला, नारी नवले वेस ।
पुरष पटाधर नीपजै, अइहो मुरधर देस ।।"

अर्थात् वह मरुधर देश धन्य है जहाँ का जल गहरा है, स्थल उज्ज्वल है, नवयुवती स्त्रियाँ है तथा जहाँ तलवारधारी वीर पुरुष उत्पन्न होते हैं ।

"ढोला मारू रा दूहा' की मालवणी ने मारवाड की निन्दा मे में जो निम्नलिखित दोहे कहे थे, वे भी कहावत की भाँति प्रसिद्ध हैं—

---

१. राजस्थान रा दूहा : (स्वामी नरोत्तमदास); पृष्ठ १०२ ।

२. राजपूताने के वातालाप : (श्री जगदीशसिह गहलोत); राजस्थानी भाग ३, अक ३, जनवरी १९४० ।

पाठान्तर

दारू अमल मिठाइयां, सोनों गहणो साह ।
पाँच थोक पृथ्वी सिरे, वाह बीकाणा वाह ।।

अर्थात् शराब, अफीम, मिठाई, विशेषतः मिश्री, सोने के आभूषण और सेठ लोग, ये पाँच चीजें बीकानेर में संसार भर से अच्छी होती है ।

"बालउं बाबा, देसड़उ, पाँणी जिहां कुवांह ।
आधी रात कुहक्कड़ा, ज्यउं माणसां मुवांह ॥
बालउं, बाबा, देसड़उ, पांणी संदी तांति ।
पाणी केरइ कारणइ, प्री छंडइ अधरांति ॥
जिण भुइ पन्नग पीयणा, कयर कंटाला रूंख ।
आके फोगे छांहड़ी, हूंछां भांजइ भूख ॥"[1]

अर्थात् हे बाबा, ऐसा देश जला दूँ जहाँ पानी गहरे कुओ मे मिलता है और जहाँ पर लोग आधी रात को ही पुकारने लगते है मानो मनुष्य मर गये हो । हे बाबा, उस देश को जला दूँ जहाँ पानी का भी कष्ट है और पानी निकालने के लिए प्रियतम आधी रात को ही छोड़कर चले जाते है । जिस भूमि मे पीणे साँप है, जहाँ करील और ऊंटकटारा घास ही पेड़ गिने जाते है, जहाँ आक और फोग के नीचे ही छाया मिलती है और जहाँ भुरट नामक कँटीली घास के बीजो से ही भूख दूर होती है ।

निम्नलिखित कहावती पद्य में मारवाड की प्रजा की साधारण रहन-सहन और खाने-पीने की व्यवस्था का वर्णन किया गया है—

"आकन का झोंपड़ा, फोगन की वाड़ ।
बाजरी का सोगरा, मोठन की दाल ।
देखी राजा मानसिंह, थारी मारवाड़ ॥"

अर्थात् मारवाड में रहने के लिए आक के झोपड़े और फोग की बाड़े हैं तथा खाने के लिए बाजरी के सोगरे और मोठ की दाल है । हे राजा मानसिह ! तेरी मारवाड़ देख ली ।[2]

मारवाड़ की रेल के सम्बन्ध में कही हुई निम्नलिखित पंक्तियों ने भी कहावत की-सी ख्याति प्राप्त कर ली है—

"नहीं तार, नहिं टेम है, नहीं बत्ती में तेल ।
आ चालै मन रे मते, मारवाड़ री रेल ॥"

हाड़ोती और मेवाड़

(ऊ) हाड़ौती अर्थात् बूँदी और कोटा राज्यों में सधवा और विधवा स्त्रियाँ एक ही रंग के कपड़े (काले और रगीन) पहनती है । इसलिए किसी मारवाड़ निवासी ने (जहाँ ऐसा वेश नही है) कहा है—

"देख्यो, हाड़ा थारो देस, रांड सुहागण एक ही भेस ।"[3]

हाडौती का-सा हाल मेवाड में भी है । इसलिए कोई हाड़ा के स्थान में 'राणा' भी बोलते हैं । विधवा स्त्री पक्के रंग के और सुहागिन कच्चे रग के कपडे पहनती और ओढती है ।

आबू और सिरोही

(ए) राजस्थान के एक कहावती पद्य में पृथ्वी और आसमान के बीच आबू

१. 'ढोला मारू के रा दूहा'; प्रकाशक—नागरी प्रचारिणी सभा; पृष्ठ २१८-१९-२१ ।
२. राजपूताने के वातालाप (श्री जगदीशसिह गहलोत); राजस्थानी, भाग ३, अंक ३ ।
३. वही ।

को तीसरा लोक कहा गया है—

"जमी ओर आसमान बिच, आबू तीजो लोक।"

पहाड़ के शिखर-शिखर पर जहाँ केतकी फूली हुई है और झरने-झरने पर जहाँ चमेली है, उस आबू की प्राकृतिक सुषमा को देखते हुए और कोई वस्तु अच्छी नहीं लगती—

"टूँके टूँके केतकी, झरणे झरणे जाय।
अर्बुद की छवि देखतां, और न आवै दाय॥"

कहते हैं कि सिरोही के महाराव सुरताण देवडा ने अपनी रानी को, जो राड़-धड़े की राजकुमारी थी, उक्त दोहा सुनाया था जिससे असहमत होकर रानी ने उत्तर दिया था—

"जब खाणों भखणो जहर, पालो चलणो पंथ।
आबू ऊपर बैसणो, भलो सरायो कंथ॥"

अर्थात् जहाँ जौ खाने पडते हैं, अफीम का सेवन होता है और पैदल चलना पडता है, हे कत ! उस आबू पर बैठने की आपने भली प्रशसा की। रहने योग्य स्थान तो राडधड़ा (मारवाड राज्य के मालाणी परगने का एक इलाका) ही है जहाँ का निवास देवताओ को भी दुर्लभ है। राडधड़े की प्रशसा मे उसने निम्नलिखित दोहा कह सुनाया—

"धर ढांगी आलम धणी, परबल लूणी पास।
लिखियो जिण ने लाभसी, राड़धड़ा रो बास।"

अर्थात् जहाँ ढागी नामक रेत के टीले की जमीन है, आलमजी नामक इष्टदेव रक्षक है और प्रबल लूणी नदी पास ही बहती है, ऐसे राडधड़े का निवास तो जिसके भाग्य में लिखा है, उसी को मिलेगा।

एक दोहे मे कहा गया है कि आबू में रहकर चम्पा का सुख भोगो, पहाड पर चढो और उमदा आम खाओ। यदि आबू से दूर जा पडे तो न जाने क्या हाल होगा ?

"चम्पा माणो, गिर चढ़ो, आंबा भखो अवल्ल।
अरबुद सूं अलग़ा रहे, जिण रो कोण हवल्ल।"

आबू तथा सिरोही-विषयक कुछ गद्यात्मक कहावते भी मिलती है। जैसे,

१. **"आबू री छाया ने प्रभु री माया।"**

२. **"आबू री छाया में लीला लहरे है।[1]"**

३. **शमशेर तो सिरोही की** अर्थात् तलवार तो सिरोही की ही प्रसिद्ध है।

सिरोही की तलवार क्यो प्रसिद्ध हुई ? इस विषय मे कहा जाता है कि वर्तमान समय में जहाँ पर नीलकंठेश्वरजी महादेव का मन्दिर है, उस जगह एक बावडी थी जिसका पानी बहुत तेज था। वह पानी पिलाने से हथियार बहुत तेज हो जाते थे। दूसरी बात यह कही जाती है कि सिरोही के लोहार कच्चे लोहे को इस तरह पक्का बनाते थे कि एक खड्डे में लोहा रखकर उसमे गोबर भर ऐसी रसायन उस पर डालते थे कि उस रसायन से आकृष्ट होकर बिजली उस पर गिरती थी, जिससे गोबर

---

१. सिरोही की कहावतें, दीपावली विशेषांक, लोकवाणी; पृष्ठ १४।

जलकर लोहा भी पक्का हो जाता था।[1]

आबू और सिरोही ही क्यों, अन्य स्थानों के सम्बन्ध में भी कतिपय कहावतें ऐसी हैं जो दोहो के रूप में नही हैं। उदाहरणार्थ—

१. **"सांगर फोग थली को मेवो"** अर्थात् रेगिस्तान वालों के लिए तो सांगर और फोग जैसी वस्तुएँ ही मेवे का काम देती है।

२. **"सामर पड्यो सो लूण"** अर्थात् सांभर झील में जो पड़ा वही नमक हो गया। इस झील मे मरे हुए ऊँट, भेड, बकरी आदि सब गलकर नमक के रूप में परिवर्तित हो जाते है। 'सांभर जाय अलूणो खाय' तथा 'साभर में लूण रो टोटो' जैसी कहावते भी सांभर के सम्बन्ध में सुनी जाती है।

३. **"साजा बाजा केस, गोड़ बंगाला देस"** अर्थात् बगालियो के केश सजे-सजाये रहते है।

तुलनात्मक—कुछ कहावतें ऐसी होती है जिनमे अनेक स्थानो की विशेषताएँ एक ही पद्य मे दिखला दी जाती है। कतिपय उदाहरण लीजिये—

(अ) पख हाड़ोती मालवे, ढब देखै ढूँढाड़।
अखर परखै मुरधरां, आडम्बर मेवाड़॥[2]

अर्थात् हाडौती (बूँदी कोटा) व मालवा मे पक्ष और ढूँढाड (जयपुर राज्य) में ढब (वसीला) देखते है। मारवाड में अक्षरो (विद्या) को परखते हैं और मेवाड़ में आडम्बर पसन्द किया जाता है।

(आ) कभी-कभी **"चूरू तेरी चूरमो, बिसाऊ तेरी बाटी"** जैसी सानुप्रास कहावते भी सुनने में आती है।[3]

(इ) मारवाड़ मनसूबै डूबी, पूरब डूबी गाणा में।
खानदेश खुरदां में डूबी, दक्षिण डूबी दाणा में॥

उक्त पद्य मे मारवाड़, पूर्व, खानदेश और दक्षिण की विशेषताओं का एक साथ उल्लेख कर दिया गया है।

(ई) उपालंभोक्ति अथवा व्यग्योक्ति के रूप मे निम्नलिखित दोहा राजस्थान में अत्यन्त लोकप्रिय है—

कहीं कहीं गोपाल की, गई सिटल्ली भूल।
काबुल में मेवा किया, व्रज में किया बबूल॥[4]

कुछ कहावती पद्य ऐसे भी मिलते है जिनके चरणो में भिन्न-भिन्न वस्तुओं

---

१. चौहान कल्पद्रुम, पृष्ठ १९७।

२. राजपूताने के वार्तालापं (श्री जगदीशसिह गहलोत) राजस्थानी भाग ३, अंक ३, पृष्ठ ३०।

३. पाठान्तर—
"चूरू तेरो चूरमो, बिसाऊ तेरी दाल।"

४. पाठान्तर—
कहूं कहूं गोपाल की, गई सिटल्ली चूक।
काबुल में मेवा पके, व्रज में टेटी चूक॥
रिपोर्ट मरदुमशुमारी, राज मारवाड़, सन् १८९१, तीसरा हिस्सा; पृष्ठ ६१५।

का उल्लेख होता है और अपनी विभिन्न विशेषताओं के कारण उन्हें प्रशस्य ठहराया जाता है। जैसे—

(उ) **सोरठियो दूहो भलो, भलि मरवण री बात।**
जोबन छाई धण भली, तारां छाई रात॥[1]

इस दोहे के प्रथम चरण मे सोरठ के दोहे, द्वितीय चरण में मरवण की बात, तृतीय चरण में युवती स्त्री और चतुर्थ चरण में तारों छाई रात की प्रशंसा की गई है।

(ख) नदी-नालों-सम्बन्धी

नदी-नालो से सम्बन्ध रखने वाली कहावते भी राजस्थान मे प्रसिद्ध हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित दो कहावतें लीजिये—

(अ) **"बलूं बूठी ने तलूं तूठी"** यह कहावत लूणी नदी के विषय में है। इसका तात्पर्य यह है कि यह आडावला पहाड़ अजमेर में से तो बूठी अर्थात् बरसी है और पहाड़ के नीचे या तलवाड़े गाँव के पास तूठी अर्थात् तुष्ट हुई है।

लूणी नदी आडावला पहाड़ से निकलती है और फिर उसी पहाड़ के नदी-नालों से, जो जगह-जगह मिलते जाते है, बढती हुई तलवाड़ा (मारवाड़) गाँव के पास फैल जाती है जहाँ उसके पानी से हजारो मन गेहूँ निपजता है। दूसरा अर्थ यह हो सकता है कि कहाँ तो बरसी है और कहाँ तुष्ट हुई है अर्थात् पानी तो कही का और उसका फायदा कही ही पहुँचता है।

(आ) **"रेडियो रणका करै, लूणी लहरां खाय।**
बांडी बपड़ी क्या करै, गुहियां सें घर जाय॥"

अर्थात् मारवाड़ में रेड़िया और गुहिया दो नाले हैं और लूनी तथा बाड़ी नदियाँ है। दोहे में चारों के गुण-अवगुण बतलाये गये है। रेडिया तो रण अर्थात् शोर करता हुआ चलता है, लूनी लहरे खाती हुई जाती है, बांडी बेचारी क्या करती है अर्थात् किसी का कुछ बिगाड़ नही करती, और गुहिये से तो घर चला जाता है क्योंकि वह बहुत जोर से चढता है।[2]

उदयपुर की पीछोला झील सम्पूर्ण राजस्थान में अत्यन्त प्रसिद्ध है। पीछोला के उस पत्थर को भी निम्नलिखित दोहे में सौभाग्यशाली कहा गया है जिस पर सहारे के लिए पैर रखकर उदयपुर की सुन्दरियाँ पानी भरती है—

(इ) **भाटा तूं सोभागियो, पीछोला री टग्ग।**
गुललंजा पाणी भरै, ऊपर दे दे पग्ग॥[3]

(ग) किलों-सम्बन्धी

नदी-नालों, झीलों और तालाबों के सम्बन्ध में राजस्थान जैसे मरुस्थल में अधिक कहावतें न मिलती हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं किन्तु जिस प्रदेश में

---

१. पाठान्तर—
सोरठियो दूहो भलो, घोड़ी भली कुमैत।
नारी बीकानेर नी, कपड़ो भलो सपेत॥

२. 'राजपूताने के वातालार्थ' राजस्थानी, भाग ३, अंक ३, पृ० ३४।

३. उदियापुर लंजा सहर, माणस घणमोलाह।
दे झाला पाणी भरै, रंग रे पीछोलाह॥

चित्तौड़ और रणथम्भोर जैसे किले हैं और जो भीषण युद्धों की क्रीडा भूमि रहा है, उससे यह सहज ही आशा की जा सकती है कि वहाँ किलों-सम्बन्धी कहावतो का प्राचुर्य रहा होगा किन्तु सच तो यह है कि राजस्थान में किलो के सम्बन्ध मे स्वतन्त्र उक्तियाँ कम मिलती हैं; योद्धाओ के वीरतापूर्ण कार्यों के साथ-साथ उनका वर्णन अवश्य मिलता है जैसा कि नीचे के कुछ उदाहरणो से स्पष्ट है—

(अ) खगां जु बांकी खेतड़ी, भड़ कांको अभमाल।
गढ़पति राख्यो गोद में, नवकूंटी रो लाल॥
गड़ बांको डूंगर गुड़ै, भड़ बांको झूंझार।
एकज आगै असुर गण, भाग्या पांच हजार॥
खडपुर सीकर खेतड़ी, दांतो खड़ दुरंग।
बेलां जुध आगा बढ़ै, रायसलोतां रंग॥
गहर बिसाऊ नवलगढ, सूरज कोट सुढंग।
चेलो कीरत चौकड़ी, रायसलोतां रंग॥
दाब फतेपुर देश में, कर तुरकां नै तंग।
सीकर गढ़ घाल्यो सिवै, रायसलोतां रग॥

आमेर के किले के सम्बन्ध मे निम्नलिखित दोहे प्रसिद्ध है—

(आ) घर ढूंढाहड़ देश दृढ़, गढां गिरवरां घेर।
चौतरफां सेती फबै, अनुपम गढ़ आमेर॥
ऊँचा गढ़ आमेर का, नीचा घणां निवास।
भुजां भरोसे थां भड़ां, दिली पलस्सै वास॥

किन्तु जैसा ऊपर कहा गया है, किलो के सम्बन्ध में स्वतन्त्र उक्तियाँ विरल है। किलो-सम्बन्धी स्वतन्त्र रचना करने वालो मे कविराज बाँकीदास का नाम अग्रगण्य है। अपने भुरजालभूषण मे उन्होने चित्तौड़ को लक्ष्य मे रखकर सत्तर दोहे कहे है जिनमें से निम्नलिखित पचाश प्रसिद्ध है—

(इ) 'ओ सातूं अकलीम में, चावो गढ़ चीतोड़।' अर्थात् चित्तौड़ का यह किला सातो विलायतो मे प्रसिद्ध है।

'चंगों गढ़ चीतोड़' अर्थात् चित्तौड़ का किला उत्कृष्ट है। इस किले के न सीढी लग सकती है, न सुरग। यह सब गढो का सिरताज है।[1]

चित्तौड़ को सर करने के सम्बन्ध में आसफखाँ और अकबर का निम्नलिखित वार्तालाप अत्यन्त प्रसिद्ध है जिससे इस दुर्ग की दुर्गमता का दृश्य आँखो के सामने प्रत्यक्ष हो उठता है।

---

१. सिर मांडल गुजरात सिर, दसझ कीधी दौड़।
उण सोंगा रो वैसणो, चंगो गढ चीतोड़॥
नीसरणो लागै नहीं, लागै नहीं सुरंग।
लड़ नहि लीधो जाय ओ, दीधो जाय दुरंग॥
—बांकीदास ग्रन्थावली दूसरा भाग, पृष्ठ ६४

अकबर सूँ ऊभो करै, आसिफखांन अरज्ज ।
हजरत गढ़ कीजे हलो, करो जेज किण अज्ज ।।

अर्थात् आसफखाँ खडा हुआ बादशाह से अर्ज कर रहा है कि हजरत ! गढ़ पर आक्रमण कर दीजिये, देर किस कारण हो रही है ?

आसिफखां अकबर कहै, भींतां भुरजां जोय ।
बांको गढ़ भड़ बांकड़ा, हलो कियां की होय ।।
भीतरलां फूटां भड़ां, कै खूटां सामान ।
इण गढ़ में होसी अमल, खम तूँ आसिफ़खान ।।[1]

अर्थात् चित्तौड़ के किले की दीवारो को देखकर अकबर कहता है कि हे आसफखाँ ! पहले तो यह गढ ही बडा बाँका है, फिर इसकी रक्षार्थ बाँके राजपूत योद्धा उद्यत हैं, इसलिए केवल आक्रमण करने से ही क्या हो सकता है ? यह किला तो तभी सर हो सकता है जब इसके अन्दर के योद्धाओ मे फूट पड जाय और वे हमसे आ मिले अथवा इसके अन्दर की रसद खतम हो जाय, इसलिए हे आसफखाँ ! तू धैर्य रख ।

दुर्गरक्षक जयमल ने इस प्रकार चित्तौड की रक्षा की जिससे बादशाह के दाँत खट्टे हो गये । कई महीने बीत जाने पर भी वह किले पर अपना अधिकार न कर सका । कूटनीतिज्ञ बादशाह ने चालाकी से काम लेना चाहा । उसने जयमल से कहलवाया कि यदि एक बार चित्तौड़ हमे सौप दिया जाय तो हम तुम्हे ही चित्तौड़ का सूबेदार बना देगे । जयमल ने जो उत्तर लिखकर भेजा उसे राजस्थान के कवि ने इस प्रकार पद्यबद्ध किया है ।

जैमल लिखै जबाब जब, सुणजै अकबर साह ।
आण फिरै गढ़ ऊपरां, तूटां सिर पतसाह ।।
है गढ़ म्हारो हूँ धणी, असुर फिरै किम आण ।
कूँची गढ़ चित्तौड़ री, बीधी मुज्झ दिवाण ।।

अर्थात् जयमल उत्तर देते है कि हे अकबर शाह ! सुनिये, मेरे सिर के टुकड़े-टुकड़े होने पर ही चित्तौडगढ पर आपकी दुहाई फिर सकती है । और आप यह खूब कहते हैं कि चित्तौड तुम्हे सौप दूँगा और यहाँ का सूबेदार बना दूँगा । चित्तौड़ तो मेरा ही है और मै ही यहाँ का स्वामी हूँ । एकलिंग के दीवाण महाराणा ने इस किले की कुँजी मुझे सौप दी है, इसलिए मेरे जीते-जी यहाँ मुगलों की दुहाई कैसे फिर सकती है ?

राजस्थान का इतिहास इस बात का साक्षी है कि जयमल ने अपने प्राणो की आहुति देकर भी अपने वचन को पूरा किया ।

कहते है कि मौर्य वश के राजा चित्रांगद ने इस किले को बनवाया था । इसी से इसको चित्रकूट (चित्तौड़) कहते हैं । बापा रावल ने मौर्य वंश के अन्तिम राजा मानमोरी से यह किला छीनकर अपने अधिकार में कर लिया था । इस सम्बन्ध में निम्नलिखित दोहे कहे जाते है—

१. बांकीदास ग्रन्थावली, दूसरा भाग पृष्ठ १०० ।

चित्रकोट चित्रांगदे, मोरी कुल महिपाल।
गढ़ मंड्या अवलोकि गिर, देवनसीढा ढाल॥
संगहि लिए सीसोदिए, दुर्गराह रिषिदान।
बापा रावल वीरवर, वसुमति जासु बखान॥
पाट अवल मेवाड़पति, रघुवंशी राजान।
बापा रावल वड बहत, थिरि चीतोड़ सुथान॥

चित्तौड के सम्बन्ध में कही गई उक्ति 'गढो में चित्तौडगढ़ और सब गढ़ैया है' राजस्थान की उक्ति नही रह गई, सम्पूर्ण उत्तरी भारत में लोकोक्ति की भाँति प्रचलित है।

(३) **निष्कर्ष**—ऊपर जो स्थान-सम्बन्धी कहावते दी गई है, उन सबकी व्याप्ति भी एक समान नही है। कुछ कम प्रचलित है और कुछ अधिक। कुछ शिक्षित वर्ग में प्रचलित हैं और कुछ शिक्षित-अशिक्षित सभी वर्गों की सामान्य सम्पत्ति हैं।

परिस्थितियो मे परिवर्तन के साथ-साथ अनेक कहावतो की व्याप्ति तथा उनके तथ्य मे भी अन्तर पडता है। जोधपुर के महाराजा मानसिह के जमाने मे मारवाड़ के सम्बन्ध मे एक कहावत प्रसिद्ध हुई थी—

आकन की झोंपड़ी, फोगन की बाड़।
देखो राजा मानसिह, थारी मारवाड़॥

किन्तु मानसिह के समय से लेकर अब तक मारवाड की स्थिति मे परिवर्तन हो जाने से यह कहावत न तो अब उतनी प्रचलित कही जा सकती है और न इसमे व्यक्त तथ्य ही सर्वांश मे स्वीकृत किया जा सकता है।

स्थानो से सम्बन्ध रखनेवाली कहावते अथवा कहावती पद्य केवल राजस्थान में ही नही, प्राय. भारत के सभी प्रान्तो मे प्रचलित है। उदाहरणार्थ भोजपुरी भाषा की एक कहावत लीजिये जो भोजपुरियो के अक्खडमन के विषय मे समूचे बिहार मे खूब मशहूर है।

भागलपुर का भगेलुआ भैया, कहल गांव का ठग।
जो पावै भोजपुरिया, तोड़ै दोनों का रग॥

३. राजस्थानी कहावतों में समाज का चित्र

एक दृष्टि से देखा जाय तो सभी कहावते सामाजिक होती है क्योकि समाज जिस तथ्य को स्वीकार करता है, वही कहावत के रूप मे प्रचलित हो पाता है। इसलिए किसी भी प्रदेश के सामाजिक जीवन से परिचय प्राप्त करने के लिए उस प्रदेश की कहावतो का अध्ययन नितान्त आवश्यक है। जिस प्रदेश की सामाजिक स्थिति का अध्ययन हमें अभीष्ट है, उस प्रान्त के लोगो की नारी के सम्बन्ध मे क्या धारणा है, बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, विधवा-विवाह आदि के सम्बन्ध में उस समाज के क्या विचार है, सामाजिक सस्थाएँ वहाँ किस रूप में विकसित है, मनुष्यो के जीवनादर्श किन सिद्धान्तों पर अवलम्बित हैं, कौनसे व्यवसायो को वह समाज आदर की दृष्टि से

---

१. भोजपुरी ग्रामगीत (प्रकाशक हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग) की भूमिका, पृष्ठ १३।

देखता है और किन्हें वह हेय समझता है, इन सबकी जानकारी जितनी कहावतों के द्वारा हमें प्राप्त हो सकती है, उतनी अन्य किसी साधन द्वारा नहीं।

जिस प्रकार वंशानुक्रम, शिक्षा-दीक्षा तथा वातावरण आदि के कारण वैयक्तिक संस्कारों का निर्माण होता रहता है, उसी प्रकार एक विशिष्ट जीवन-पद्धति का अवलम्बन करते रहने के कारण जातियों के भी संस्कार बन जाते हैं और वे जातिगत संस्कार ज्ञात या अज्ञात रूप में उस जाति के व्यक्तियों को भी प्रभावित करते रहते हैं। इसी प्रकार किसी भी समाज में नारी का जो स्थान है, उससे उस समाज-विशेष के उच्च अथवा निम्न सास्कृतिक स्तर का पता चल जाता है। यही कारण है कि आगे के पृष्ठों में राजस्थान की सामाजिक स्थिति का अध्ययन करने के लिए जाति तथा नारी-सम्बन्धी कहावतो को लेकर अपेक्षाकृत विस्तार से विचार किया गया है। दूसरी बात यह भी है कि सामाजिक कहावतों में जाति तथा नारी के सम्बन्ध मे ही सर्वाधिक कहावतें उपलब्ध होती हैं।

राजस्थान के आर्थिक और राजनैतिक जीवन से सम्बद्ध कहावतों को भी मैंने सामाजिक वर्ग के अन्तर्गत ही रखा है। समाज की व्यापक परिधि में अर्थ और राजनीति का भी अन्तर्भाव हो जाता है।

(क) राजस्थान की जाति-सम्बन्धी कहावतें

(१) **कहावतों के दो वर्ग**—सर हर्बर्ट रिजले ने कहावतों के दो वर्ग निर्धारित किये हैं (क) सामान्य और (ख) विशेष। सामान्य वर्ग से सम्बन्ध रखने वाली कहावते वे हैं जिनमे किसी सार्वकालिक अथवा सार्वदेशिक सत्य की अभिव्यक्ति होती है। ऐसी कहावतों पर सामाजिक परिवर्तन तथा आर्थिक व राजनीतिक क्रान्तियों का कोई प्रभाव नही पड़ता। उदाहरण के लिए इस प्रकार की कुछ कहावते लीजिये—

(१) काज सर्‌या दुख बीसर्‌या, बैरी होगा बैद। (राजस्थानी)[1]

(२) गरज सरी के वैद वेरी। (गुजराती)

(३) अर्थ रो सर्यो ने वैद रो वेरी। (कच्छी)

(४) गरज सरो, वैद्य मरो। (मराठी)

(५) उपाध्यायश्च वैद्यश्च ऋतुकाले वरस्त्रियः।
सूतिका दूतिका नौका कार्यान्ते ते च शष्पवत्। (सस्कृत)

इन कहावतों में देश-भेद के कारण भाषा-भेद अथवा रूप-भेद भले ही हो गया हो किन्तु भाव की एकरूपता सर्वत्र दृष्टिगोचर होगी।

विशेष-वर्ग से संबद्ध कहावतो का क्षेत्र सीमित होता है। वे भी यद्यपि

---

१. मिलाइये—
1. The danger past, and God forgotten. (*English*)
2. When the wound is healed, the pain is forgotten. (*Danish*)
3. The river past, the saint forgotten. (*Spanish*)
4. The peril past, The saint mocked. (*Italian*)
5. When the daughter is dead, what use of a son-in-law? (*Telugu*)

अनुभव पर आश्रित होती हैं तथापि यह अनुभव देश, काल और समाज की सीमाओं से बँधा होता है।[1] कहना न होगा कि जाति-सम्बन्धी कहावतें विशेष-वर्ग की कहावतें हैं, सामान्य-वर्ग की नही।

(२) **जाति-सम्बन्धी कहावतें**—शताब्दियों से जाति-प्रथा भारतवर्ष के सामाजिक जीवन पर छाई हुई है। राजस्थान में तो जाति-पाँति का बन्धन अपेक्षाकृत और भी कड़ा रहा है। जिस प्रदेश के आचार-विचार, लेन-देन, साख-सम्बन्ध, मान-मर्यादा आदि का आधार जाति-प्रथा रही हो, उस प्रदेश में जाति-सम्बन्धी कहावतों की प्रचुरता कोई आश्चर्य का विषय नही।

प्रमुख जातियाँ

ब्राह्मण—यहाँ हम विचारार्थ सब से पहले ब्राह्मण-सम्बन्धी कहावतों को ले रहे हैं। प्राचीन सामाजिक व्यवस्था मे चाहे ब्राह्मण को सर्वोच्च स्थान दिया गया हो किन्तु राजस्थानी कहावतों में जिस ब्राह्मण का चित्र अकित हुआ है, उसमें उसकी मूर्खता, भिक्षा-वृत्ति, मिष्टान्न-प्रियता तथा दक्षिणा-लिप्सा आदि ही मुखरित हुई है। कहावती ब्राह्मण की यदि झाँकी देखनी हो तो निम्नलिखित कहावते नेत्रोन्मीलन का काम करेंगी।

"बामण नै साठ बरस तांई तो बुध आवै कोन्या अर पछै जा मर।"[2]

अर्थात् साठ वर्ष तक तो ब्राह्मण को बुद्धि नही आती और पीछे वह जाता है मर। तात्पर्य यह है कि ब्राह्मण जन्म से मृत्युपर्यन्त मूर्ख ही बना रहता है।

मूर्खता के साथ-साथ ब्राह्मण की भिक्षा-वृत्ति भी अत्यन्त प्रसिद्ध है। ब्राह्मणेतर विशेषत: वैश्य-माताएँ अपने कर्त्तव्य-पराङ्मुख किसी पुत्र को समझाते अथवा आड़े हाथों लेते समय बहुधा कहा करती है कि ब्राह्मण का लड़का यदि कोई कारबार न करे और निकम्मा भी रह जाय तब भी वह किसी प्रकार माँगकर गुजर कर सकता है किन्तु दूसरो के लिए तो किसी रोजगार के अतिरिक्त चारा ही नही।

ब्राह्मण के लिए कहा गहा गया है कि **"ब्राह्मण हाथी चढ्यो बी मांगै"** अर्थात् सम्पन्न होने पर भी ब्राह्मण अपने माँगने की आदत से बाज नही आता। कहते हैं कि एक बार श्री महाराजा मानसिंहजी ने प्रसन्न होकर एक श्रीमाली ब्राह्मण को किसी परगने की हाकिमी इनायत कर दी थी। जब उसकी सनद दस्तखत होकर श्रीमाली साहब को मिली तो आपने पूछा कि **"इण में अमारो पेटियो पण लिखेयूं छे"** अर्थात् इसमें हमारा पेटिया भी लिखा है न? महाराजा साहब ने यह सुनकर उसका पेटिया कोठार से चालू कर दिया और सनद वापिस लेकर फरमाया—सच है, **"राजयोग्याः नहि विप्रा भिक्षायोन्या पुनः पुनः।"**[3]

एक अन्य कहावत में कहा गया है कि भिक्षा-वृत्ति अपना लेने के कारण ब्राह्मण अकाल में भी भूखों नही मरता—

---

१. The people of India by Sir Herbert Risley, p. 125-126.

२. मिलाइये—"बामन का बेटा बावन वर्ष तक पौगा।"

३. रिपोर्ट मरदुमशुमारी, राज मारवाड़. सन् १८९१; पृष्ठ १५५।

"काल कुसम्मै ना मरै, बामण बकरी ऊंट।
बो मांगै बा फिर चरै, बो सूखा चावै ठूंठ॥"

प्रसिद्ध है कि **"बामण कै हाथ में सोना को कचोलो है।"** सोने के कचोले से तात्पर्य उसकी यजमान-वृत्ति से है। आज भी राजस्थान में ऐसे बहुत से ब्राह्मण हैं जो निरक्षर भट्टाचार्य है, गाँजे-सुलफे मे मस्त रहते हैं और यजमान-वृत्ति के आधार पर गुलछर्रे उड़ाते हैं। किन्तु यह स्थिति बहुत समय तक बनी नही रह सकती। सामाजिक जीवन में अब परिवर्तन हो रहा है, वैज्ञानिक युग और देश-विदेश के सम्पर्क के कारण हमारी धारणाएँ बदल रही है। ब्राह्मणों के प्रति अब यजमानों की भी वह पहले जैसी श्रद्धा नही रही। ब्राह्मण का जीवन आज उपेक्षित हो रहा है। वर्तमान समय में त्याग-तपस्या और विद्वत्ता के बल पर ही वह अपने पूर्व-गौरव को प्राप्त कर सकता है, अन्यथा नही। ब्राह्मण जब तक भिक्षा-वृत्ति नही छोड़ेगा, समाज उसे आदर की दृष्टि से नही देखेगा।

कई कहावते राजस्थान में ऐसी भी है जिनमें ब्राह्मण की मिष्टान्न-प्रियता का उल्लेख हुआ है। **"बामण रीझै लाडुवां"** तथा **"बामण रो जी लाडू में"** इसी प्रकार की कहावते हैं जिनका तात्पर्य यह है कि ब्राह्मण लड्डुओ पर रीझता है तथा ब्राह्मण का जी लड्डुओ में रहता है। ब्राह्मण की मिष्टान्न-प्रियता जगद्विख्यात है। कालिदास आदि के सस्कृत-नाटकों मे भी जहाँ ब्राह्मण को विदूषक बनाया गया है, वहाँ उसकी मोदकप्रियता को लेकर हास्य की सृष्टि की गई है।

ब्राह्मण की दक्षिणा-लिप्सा और उसकी स्वार्थपरता के चित्र भी अनेक कहावतों में मिलते है जैसे, **"बामण तो हथलेवो जुड़ावण रो गर्जी है"** अर्थात् ब्राह्मण का स्वार्थ तो केवल पाणिग्रहण करवाने तक है, बाद मे वर-वधू चाहे जीवित रहे या न रहे, उसकी दक्षिणा तो उसे मिल ही जाती है। **"बींद मरो बीनणी मरो, बामण रो टको त्यार।"**

"अग्गे अग्गे ब्राह्मणा नदी नाला वरजन्ते" से भी स्पष्ट है कि ब्राह्मण अपने लिए कोई खतरा मोल लेना नही चाहता किन्तु जहाँ प्राप्ति की कुछ आशा हो, वहाँ वह तुरन्त पीछे हो लेता है। **"बामाणियूं बतलायो, लैरां लाग्यो आयो।"**

ऐसी कहावतो का भी अभाव नही है जिनसे ब्राह्मण की अकिंचनता प्रकट होती है—

बामण सें बामण मिल्यो, पूरबला जनम का संस्कार।
देण लेण नं कुछ नहीं, नमस्कार ही नमस्कार॥"

अर्थात् पूर्व-जन्म के सस्कारो के कारण ब्राह्मण से ब्राह्मण की भेट हुई किन्तु वहाँ लेन-देन के लिए कुछ नही, केवल नमस्कार ही नमस्कार है।

एक कहावत मे तो यहाँ तक कह दिया गया है कि ब्राह्मण से कोई भलाई का काम नही होता।

"काल बागड़ सूं नीपज, बुरो बामण सूं होय।"

अर्थात् बागड़ में अकाल पड़ता है और ब्राह्मण से बुरा होता है।

ब्राह्मण में भी इस दृष्टि से "दायमा ब्राह्मण" को और भी निकृष्ट ठहराया गया है।

खटमल कुत्तो दायमो, जय्यो[1] मांछर जूं।
अकल गई करतार की, इता बणाया क्यूं॥

दायमा कभी किसी का मित्र नही होता। यदि सयोगवश किसी का मित्र बन भी जाय तो बाद में धोखा देता है। दायमा की जाति ही बुरी होती है। खाने के बाद वह खिलानेवाले को ही हानि पहुँचाता है। जिस प्रकार धान मे कायमा (एक तरह का काला कूडा) होता है, उसी प्रकार ब्राह्मणो मे दायमा होता है। कहा जाता है कि एक बार एक गुर्जरगौड तथा दायमा दोनो विदेश गये और वहाँ खूब धनोपार्जन किया किन्तु संयोगवश दायमा बीमार पड गया। उसने सोचा कि मै तो मर जाऊँगा और यह गुर्जरगौड अपने घर जाकर आनन्द करेगा। इस कारण उसने गुर्जरगौड से कहा कि जब मेरे प्राण निकल जाएँ तो मेरे मस्तक मे कील ठोक देना। इससे मेरे प्राण ब्रह्मरन्ध्र से निकलेगे और मुझे मुक्ति मिलेगी। गुर्जरगौड ने ऐसा ही किया। परिणाम-स्वरूप वह हत्या के अपराध में फाँसी पर चढाया गया। तभी से कहावत चल पडी कि मरा हुआ दायमा जीवित गुर्जरगौड को खा गया।[2]

ब्राह्मणो में दायमा सबसे अधिक चतुर समझा जाता है। एक कहावत में कहा गया है "बिना पढ्योड़ो दायमो, पढ्यो पढ़ायो गौड़ै" अर्थात् दायमा यदि पढा हुआ न भी हो तो भी वह शिक्षित गौड से कम नही समझा जाता। किन्तु दायमो मे पहले पढ़े-लिखे लोग ज्यादा होते थे, इसीलिये "भणिया पूछ भावे दायमा पूछ" यह कहावत प्रसिद्ध हो गई।

पुरा काल मे ब्राह्मणो की वचन-सिद्धता प्रसिद्ध थी। सम्भवत. निम्नलिखित कहावत मे उसी की ओर सकेत किया गया है—

"बामण कह छूटै, बलद वह छूटै।"

अर्थात् बैल जैसे जमीन जोत डालता है, वैसे ही ब्राह्मण वचन कह डालता है।

ब्राह्मण बुरा भी हो तो भी उस पर प्रहार नही किया जाता। इसीलिए एक कहावत में कहा गया है।

"गायां बायां बामणां भाग्यां ही भला।"

अर्थात् गायो, स्त्रियो और ब्राह्मणो के आगे भागना ही अच्छा। इन पर प्रहार करके अथवा इनका वध करके विजय भी प्राप्त कर ली जाय तो भी वह कलक का कारण होती है।

ब्राह्मणो से सम्बन्ध रखने वाली जो लोकोक्तियाँ ऊपर दी गई हैं उनमे से

---

१. एक कीट-विशेष जिसके काटने से बडी खाज (खुजली) चलती है।

२. दधीचपुत्रं कदी न मित्र, जे मित्र तो दगं दगा।
दायमा की दारी जात, खायां पछे मारे लात।
धान में कायमो अर बामणां में दायमो।
मर्यो दायमो जीवता गूजर गोड ने खाग्यो॥
—मेवाड की कहावतें; भाग १—(पडित लक्ष्मीलाल जोशी); पृष्ठ १८१।

अधिकांश में ब्राह्मण-जाति के कृष्ण पक्ष का ही चित्रण हुआ है। इससे स्पष्ट है कि ये लोकोक्तियाँ उस समय की बनी हुई हैं जबकि ब्राह्मणों का अधःपतन हो चुका था, अन्यथा मनुस्मृति में जिसके लिए कहा गया है—

"ब्राह्मणस्य तु देहोऽयं क्षुद्रकामाय नेष्यते।
इह क्लेशाय तपसे प्रेत्यानन्तसुखाय च॥"

उस ब्राह्मण का चित्र कहावती ब्राह्मण के चित्र से तनिक भी नहीं मिलता किन्तु लोकोक्तियाँ किसी के साथ पक्षपात नही करतीं, जैसा देखती हैं, वैसा ही वे कह देती हैं। उन्हें इस बात की चिन्ता नही रहती कि वे किसके सम्बन्ध में क्या कह रही हैं।

राजपूत—जिस धरती पर मनुष्य रहता है और जो उसके अधिकार में है तथा जिसके साथ उसके पूर्वजों की स्मृतियाँ लिपटी हुई हैं, उस धरती के साथ मनुष्य-मात्र का स्वाभाविक, नैसर्गिक मोह होता है। किन्तु यह धरती-प्रेम राजपूतों में सर्वाधिक दिखलाई पड़ता है। उस धरती को जब उनसे कोई छीनना चाहता है तो वे उसके सामने अपने प्राणो का मूल्य भी कुछ नही समझते। कहा भी है।

"धर जातां भ्रम पलटतां, त्रिया पड़न्तां ताव।
तीन दिवस ये मरण रा, कूण रंक कुण राव॥"

अर्थात् जब अपनी भूमि पर कोई दूसरा अधिकार कर रहा हो, धर्म-परिवर्तन की जबरदस्ती चेष्टा की जा रही हो और स्त्रियों की मान-मर्यादा पर जब आँच आ रही हो तो कौन ऐसा है जो इन तीन अवसरो पर भी अपने प्राणो की बाजी न लगा दे?

एक प्रसिद्ध कहावत के अनुसार राजपूतो की तो जाति ही जमीन है,[1] जमीन न होने पर राजपूत अपने को राजपूत नही समझते। जमीन पास है तो नीचे दर्जे का राजपूत भी ऊँचा हो जाता है, नही तो ऊँचा भी नीचा है। राजपूत को रे, अरे या तू कहकर पुकारना गाली देने के बराबर है।[2]

किन्तु राजपूतों ने जब अपना कर्त्तव्य पालन करना छोड़ दिया तो इस प्रकार की कहावतें प्रचलित हो गईं—

(१) ठाकुर गया, ठग रह्या रह्या मुलक रा चोर।
(२) रजपूती धोरां मे रलगी, ऊपर रलगी रेत।
(३) रजपूती रैई नही, पूगी समंदा पार।

अर्थात् जो सच्चे ठाकुर थे, वे तो चल बसे, अब तो केवल मुल्क के चोर रह गये हैं। राजपूती तो अब रह ही नही गई, वह तो टीबों में मिल गई और ऊपर मानों रेत पडी है। राजपूती तो अब सात समुद्र पार जा पहुँची।[3]

बनिया—राजस्थान की जाति-सम्बन्धी कहावतों में बनिये के विषय में सबसे

---

१. राजपूत री जात जमी।
२. नाहर नै रजपूत नै रैकारे री गाल।
३. राजस्थानी की जाति सम्बन्धी कहावतें: (श्री नरोत्तमदास स्वामी)।

अधिक कहावतें मिलती हैं। निम्नलिखित कहावतों द्वारा उसकी जातिगत विशेषताओं पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

(१) "बाणियो के तो आंट में दे के खाट में दे।"[१]

अर्थात् बनिया या तो मुश्किल का कोई अवसर आने पर अथवा बीमार होने पर डाक्टर आदि को देता है या धार्मिक कृत्यों में व्यय करता है।

(२) "बाणियो खाट में तो बामण ठाठ में।"

अर्थात् बनिया यदि बीमार होता है तो फिर ब्राह्मण के ठाठ हैं क्योंकि ऐसे मौक़े पर जप-तप आदि के लिए वह ब्राह्मण को नियुक्त करता है।

(३) "बाणियो ठाठ में तो बामण खाट में।"

अर्थात् बनिया जब अमन-चैन में रहता है तो धर्म-कर्म के प्रति वह उदासीन हो जाता है जिससे धनाभाव के कारण बेचारा ब्राह्मण रुग्णवत् अपना जीवन व्यतीत करता है।

(४) "आम नींबू बाणियो, कंठ भोच्यां जाणियो।"

अर्थात् आम, नीबू और बनिया, ये दबने पर ही रस देते हैं।

(५) "बड़ो पकोड़ो बाणियो तातो लीजै तोड़।"[२]

अर्थात् बनिये, पकोड़े और बड़े को गरमागरम ही तोड़ लेना चाहिए।

(६) "रुठ्योड़ो भूपाल अर तूठ्योड़ो बाणियो बराबर।"

अर्थात् रूठा हुआ राजा और सन्तुष्ट बणिया, दोनों बराबर होते है क्योंकि राजा रुष्ट होकर भी जितना दे देता है, बनिया तुष्ट होकर भी उससे अधिक नहीं देता। कहा भी है—

"राजा प्रसन्नो गजभूमिदानम्।
बणिक् प्रसन्नो वमड़ीछदामम्॥"

(७) "बिणज करैला बाणियां और करैला रीस।"

अर्थात् व्यापार तो बनिये ही करेंगे, और सब तो केवल झगड़ा ही मोल लेंगे। गीता में यथार्थ ही कहा गया है "कृषिगौरक्षवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।"

किन्तु यदि बनिये से गांव बसाने के लिए कहा जाय तो यह उसके वश का रोग नही क्योंकि गाव बसाने का काम वंश-परम्परा से क्षत्रिय लोग ही करते आये है, बनियों का पैतृक व्यवसाय व्यापार करना रहा है। इसलिये बनिये से यह आशा नही की जा सकती कि वह गांव बसाने के काम में सफलता प्राप्त कर सकेगा।

(८) "गांव बसायो बाणियो, पार पड़े जद जाणियो।"

---

१. 'आंटै आयो बाणियो गरम ही ढल जाय तो ढलजाय।'

२. मिलाइये—

बड़ो बड़कलो बाणियो कांसी और कसार।
ताता ही नै तोडिये, ठंडा करै विकार॥
अथवा
इतना तो ताता भला, ठंडा करै ॥

राजस्थान में एक कहावती दोहा प्रसिद्ध है जिसमे कहा गया है कि यदि बनिया स्वर्ग में भी चला जाय तो भी वह व्यापार करने की अपनी आदत नहीं छोड़ेगा; वह स्वर्ग के स्वामी से ही सौदा करने लगेगा और बीच में कुछ टक्का-पैसा खा जायगा।

"वाणयो वाण न छोड़सी, जे सुरगापुर जाय।
साहब सों सौदो करै, कोई टक्को-पीसो खाय॥"

राजस्थान मे अधिकतर बनिये लोग सट्टा करके मालामाल हो जाते हैं किन्तु सट्टा करनेवालो के लिए यह भी असम्भव नही कि कभी वे कौडी-कौडी के मोहताज हो जायँ।

"कर रे बेटा फाटको, घर को रह्यो न घाट को।
कर रे बेटा फाटको, खड्यो पी दूध को बाटको॥"[1]

(९) **"विणजी लाग्यो वाणियो, चूटी लागी गाय।**
बावड़ै तो बावड़ै, नहिं दूर नीकल ज्याय॥"

अर्थात् व्यापार मे फँसा हुआ बनिया तथा दूसरो के खेत मे हरा-हरा घास चरने वाली गाय वापिस आये तो आये, नही तो ये दोनो अपने काम में लगे ही रहते है। उस बनिये को जो समय पर व्यापार नही करता, निम्नलिखित लोकोक्ति में गँवार ठहराया गया है—

"बखत पड़े विणजे नहीं सो बाणियो गँवार।"

(१०) बनिया जिस घसीट लिपि मे लिखता है उसे भगवान् ही पढ सकता है—

"बणियो लिखे पढ़े करतार।"

इसलिए उसकी धन-सम्पत्ति और उसके व्यापारिक रहस्य को समझ लेना टेढ़ी खीर है।

(११) बनिया यदि दिवालिया भी हो जाय तो भी वह पुराने बहीखातो को देख कर किसी के नाम कोई रकम निकाल ही देता है—

"खूट्यो बाण्यो जूना खत जोवै।"

(१२) एक कहावत मे कहा गया है कि **"बैठतो बाणियों र उठती मालण ठगावै"** अर्थात् शुरू-शुरू में दूकान खोलनेवाला बनिया और शाम को बेचकर घर जाने की उतावली करनेवाली मालिन, ये दोनो ठगाते है अर्थात् सस्ता सौदा बेचते हैं। कम मूल्य पर वस्तुएँ बेचने से बनिए की पैठ जम जाती है जिसके कारण भविष्य मे वह खूब कमाता है क्योकि **"नामूंद बाण्यो कमा खाय, नामूंद चोर मार्‌यो जाय।"**

(१३) बनिये का मुख्य लक्ष्य पैसा पैदा करना होता है, उसके अन्य सब कार्य-व्यापार इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए साधन रूप होते है। पैदा अधिक होते रहने पर वह भूख-प्यास की भी परवाह नही करता। इसीलिए एक कहावत मे कहा गया है **"भूखो बाण्यो हँसै।"**

---

१. मिलाइये—"कद सूंता कद सेठ।"

बनिया अपना काम बना लेना भली प्रकार जानता है जैसा कि नीचे के कहावती पद्य से स्पष्ट है—

(१४) "और मंत्री सब कीजिये, एक कीजे बाणिया।
उरो बुलावे मीठो बोले, करे मन का जाणिया॥"[1]

अर्थात् मन्त्रियों मे एक पद वैश्य को अवश्य देना चाहिए, क्योकि वह मीठा बोलकर जिसे चाहे अपने पास बुला देता है, तदनन्तर इच्छानुसार कार्य करता है।

बनिये के लिए यह प्रसिद्ध है कि वह पदाधिकारियो की खुशामद करके किसी न किसी प्रकार अपना काम बना ही लेता है। घूँस देकर भी वह अपनी अर्थ-सिद्धि कर लेता है क्योकि घूँस देने मे जो व्यय उसे करना पडता है, उससे चौगुनी प्राप्ति वह रिश्वत की सहायता से कर लेता है। इसीलिए राजस्थान मे एक कहावत प्रसिद्ध है कि यदि यमराज के यहाँ घुँस चलती तो बनिया कभी मरता ही नही।[2]

ऊपर दी हुई कहावतो मे बनिये की अवसरवादिता तथा उसकी व्यापारिक एवं व्यावहारिक कुशलता का चित्रण हुआ है। अनेक कहावते ऐसी भी हैं जिनमें उसकी स्वार्थपरता तथा कायरता उभर आई है। उदाहरण के लिए ऐसी कुछ कहावते लीजिये—

(१) बाणयो मीत न वेस्या सती। कागा हस न गधा जती॥"

इस कहावत से स्पष्ट है कि बनिया किसी का मित्र नही होता, वह स्वार्थी होता है तथा अपना काम निकाल लेने के बाद मुँह से बात नही करता।

(२) "च्यार चोर चोरासी बाणिया के करै बापड़ा एकला बाणिया॥"

अर्थात् चार चोर हैं और चौरासी बनिये, बेचारे अकेले बनिये क्या करे? इस कहावत में बनिये की कायरता पर बडा जबरदस्त व्यग्य है।

(३) "जाण मारै बाणियो, पिछाण मारै चोर।"

अर्थात् बनिया जानकार को अधिक ठगता है और भेद से चोरी होती है।

राजस्थानी कहावतो मे कृषक और बनियो को लेकर एक आध ऐसी लोकोक्ति भी मिल जाती है जो आधुनिक युग की प्रगतिशील भावना के अनुरूप है। एक ऐसी ही कहावत लीजिए जिसमे कहा गया है कि किसानो को तो (जो अन्न पैदा करनेवाले हैं) घटिया अनाज खाने को मिलता है और महाजन गेहूँ खाकर मौज करते है।

"कुरा करसा खाय, गेहूँ जीमै बाणियाँ।"

इसी प्रकार श्रम की प्रतिष्ठा करनेवाली एक अन्य कहावत मे कहा गया है—

"चावलां की भग्गर[3] को के होवै, बाजरै की को तो सोक्यूं हो।"

कहने का अभिप्राय यह है कि गरीब का लडका मूर्ख रहने पर भी शारीरिक श्रम तो कर ही सकता है किन्तु वह अमीर का लडका किस काम का, जो ऐश-आराम

---

१. मेवाड़ की कहावतें; प्रथम भाग (पंडित लक्ष्मीलाल जोशी) पृष्ठ १६६।

२. "घू स चालती तो बाणियो धरमराज नै भी घूं स दे देतो।"

३. बहुत दिनों तक पडे रहने के कारण जो अन्न चूर्ण सदृश हो जाता है, उसको भग्गर कहते हैं।

का जीवन व्यतीत करने के कारण शिक्षा के लाभ से तो वंचित रह ही जाता है, शारीरिक श्रम भी जिससे नही बन पड़ता।

जाट—जाट-विषयक कहावतें भी राजस्थानी में कम नही है। बनिये आदि की तुलना में उसे **"पिच्छम बुद्धि"** कहा गया है, जाट को बुद्धि बाद में आती है। जामाता, भानजा और रैबारी के साथ-साथ जाट के लिए भी कहा गया है कि वह कभी अपना नही होता जैसा कि निम्नलिखित कहावती दोहे से प्रकट है—

"जाट जंवाई भाणजो, रैबारी सूनार।
कदै न होसी आपणा, कर देखो ब्योहार॥"

इसी प्रकार किसी जाट की कृतघ्नता के सम्बन्ध मे प्रसिद्ध है कि एक बार बैलों आदि के अभाव में वह अपने खेत को नही जोत सका। इसलिए वह बैठा-बैठा विलाप कर रहा था कि दूसरो के खेत लहलहायेंगे और मेरा खेत खाली पड़ा रहेगा। शूकरो के स्वामी ने जाट को दुखी देखकर उससे दु.ख का कारण पूछा और सारा हाल सुनकर कहा, "यदि आधा हिस्सा देने के लिए तैयार हो जाओ तो खेत हम बाह दें।" जाट ने यह शर्त स्वीकार करली। उसने खेत में चने बिखेर दिये और शूकरों ने घुटनों तक जमीन फाड दी। बहुत चने लगे। खेत आधा-आधा बाँट लिया गया। अच्छा हिस्सा जाट ने अपने लिए रख लिया, दूसरा शूकरों को दे दिया।

शूकर अपना खेत तो चरते ही थे, किन्तु अपनी आदत से लाचार होकर दूसरों के खेतों में भी चरने जाया करते थे। खेतवाले उन पर कुल्हाड़े का प्रहार किया करते किन्तु इसका उन पर कोई असर नही होता था। चन्दन के एक वृक्ष से रगड़ कर वे अपना घाव ठीक कर लिया करते थे। जाट चाहता था कि यदि शूकर किसी तरह मर जायँ तो सारा खेत उसी का हो जाय। उसने एक दिन शूकरो के स्वामी से सारा भेद मालूम कर लिया। दूसरे दिन खाती को बुलवाकर उसने चन्दन का पेड़ कटवा डाला और कुल्हाडों से वह शूकरों को मारने लगा। परिणाम यह हुआ कि घाव ठीक न होने के कारण शूकर एक एक-कर मरने लगे। एक दिन शूकर-स्वामी वही बैठकर रोने लगा जहाँ जाट कभी रोया था। किसी बटोही ने वराह को दुखी देख उसके दु.ख का कारण पूछा। उसने सारा हाल कह सुनाया। तब उस पथिक ने शूकर-स्वामी को सम्बोधित करते हुए कहा—

"जाट न जायो गुण करै, चणै न मानी बाह।
चन्नण बिड़ो कटाय की, अब क्यूं रोवै वराह॥"[१]

अर्थात् जाट किसी का गुण नही मानता, चना जोताई नही मानता। चन्दन का वृक्ष कटवाकर हे वराह! अब क्यो रो रहे हो।

"जाट न जायो गुण करै" राजस्थान में कहावत की भाँति प्रसिद्ध है।

जाट मारवाड़ में **"मोडी जात"** समझी जाती है और यह माना जाता है कि जब तक उसके साथ सख्ती न की जाय, तब तक वह कुछ काम नही देता। इस सम्बन्ध में एक प्राचीन **"दो सखुन"** तथा राजिया का एक प्रसिद्ध सोरठा लीजिये—

---

१. श्री गणपति स्वामी द्वारा संगृहीत एक लोक-गाथा के आधार पर जो बिड़ला सेंट्रल लाइब्रेरी के सौजन्य से प्राप्त हुई।

"कपड़ा तो सपीठ नहिं, मूंज मेल नहिं खाय।
कह्यो न मानै चोधरी, कहो चेला किण वाय।"
गुरूजी ठोरिया नहीं।
"दे मुख में डाट, फूंदाला दोला फिरै।
जद रस आवै जाट, रागां बागां राजिया॥"

"जाट जड़ूले मारिये" इस कहावत मे तो यहाँ तक कह दिया गया है कि जाट को छोटी अवस्था में ही मारना चाहिए क्योकि वयस्क होने पर वह वश में नही आता।

जाट की खुशामदी वृत्ति के सम्बन्ध में निम्नलिखित कहावत प्राय: सुनी जाती है।

"जाट कहै सुण जाटणी, ई गाँव में रहणूं।
ऊंट बिलाई ले गई, हांजी हांजी कहणूं॥"

अर्थात् जाट अपनी स्त्री से कहता है कि हमें तो इसी गाँव में रहना है, इसलिए बिना खुशामद के काम चल नही सकता। यदि कोई यह भी कहे कि बिल्ली ऊँट को उठा ले गई तो भी हमे उसकी हाँ मे हाँ मिलानी चाहिए।

जो आदमी जिस तरह का पेशा करता है, जिस तरह के वातावरण में वह रहता है, उसका ध्यान उसी की ओर जाता है। जाट ने गंगा स्नान किया तो पूछ बैठा—इसको खुदवाया किसने? "जाट गंगाजी न्हायो–कह खुदाई कुण है?" गगा की पवित्रता की ओर उसका ध्यान नही गया, उसका ध्यान खुदाई की ओर ही गया।

जाट में मसखरापन भी खूब पाया जाता है। उसकी मसखरी में एक अजीब-सा भोलापन, एक अजीब-सी शरारत तथा एक अजीब-सा अक्खडपन मिलता है जिसके कारण राजस्थान में जाट-सम्बन्धी अनेक प्रसंग कहावतो की भाँति प्रयुक्त होने लगे हैं। कुछ उदाहरण यहाँ दिये जा रहे है—

(१) एक चौधरी चौपाल पर बैठा था। एक भलामानस उधर से निकला। सोचा कि चौधरी बैठे हैं, चुपचाप निकल जाना ठीक नही। जरा राम-रमी ही कर लें। बोला —**चौधरी बैठो है? कै तूं गुड़ाय दे।** अर्थात् चौधरी जी, बैठे हो! चौधरी जी ने उत्तर दिया—बैठा तो हूँ ही, तुझे अच्छा नही लगता तो मत बैठा रहने दे, उठाकर पटक दे। बेचारा अपना-सा मुँह लिये चलता बना।[1]

(२) एक मुसलमान मर गया था। उसकी कब्र मे से लाश निकालकर एक जरख लिए जा रहा था। जाट ने इसे देख लिया और उस मुसलमान के लड़के से जाकर कहा—अरे, तेरे पिता को तो जरख ले जा रहा था। लड़का नाराज़ होकर कहने लगा—कैसा जरख, अरे फरिश्ता कह। चौधरी बोला—मियाँ, नाराज क्यों होता है, जिसे तू फरिश्ता कहता है उसे ही मैं जरख कहता हूँ। बात वही है, केवल कहने-कहने में अन्तर है।

---

१. देखिये—राजस्थानी की जाति-सम्बन्धी कहावतें (श्रीनरोत्तमदास स्वामी)।

"थारी म्हारी बोली में, इतरो ही फरक।
तूं तो कहै फरेस्ता अर हूं कहूं जरख ॥"[1]

(३) कहते है कि एक बार चारण लोग राठौड़ वीर दुर्गादास का यश बखान रहे थे। वहाँ एक जाट भी उपस्थित था। उसने कहा—अब मेरी भी सुनो और निम्नलिखित पद्य कह सुनाया जिस पर सब वाह-वाह करने लगे—

"ढम्मक ढम्मक ढोल बाजै दे दे ठोर नागरां की।
आसे घर दुरगो नहिं होतो सुन्नत होती सारां की ॥"

अर्थात् आसकरन के घर यदि दुर्गादास पैदा नही हुआ होता तो बादशाह सबको मुसलमान बना डालता।

(४) राजस्थान की एक कहावत है—**"नट बुध आवे पर जट बुध नहीं आवे।"** कहते हैं कि नट जाट के सामने तमाशा नही करते क्योकि जाट से चुप नही रहा जाता। वह किसी न किसी तरह उनकी बात को काट देता है। प्रसिद्ध है कि एक बार किसी बाजीगर ने ककड के गेहूँ बनाकर लोगो से कहा कि देखो, यह गेहूँ है, इसकी सब चीजे बन सकती हैं। वहाँ एक जाट भी बैठा था। वह तुरन्त बोल उठा—तू झूठ बोलता है। इसकी दाल तो नही बन सकती। यह सुनकर सब लोग हँसने लगे और बाजीगर खिसिया गया।[2]

(५) जाट गुड को बडी अमूल्य वस्तु समझते है। एक जाट राजा की सवारी देखकर आया था। उसने अपनी स्त्री से कहा कि राजा जी के सोने के पागड़े है। जाटनी ने उत्तर दिया कि राजा जी बडे आदमी है, सोने के ही क्या, गुड के पागड़े बना सकते हैं। जाटनी से इतना सुनते ही एक और जाट बोल उठा—राजा जी की सब दीवारे ही गुड की होगी। जब मन मे आता होगा, उनमे से गुड तोड़कर खा लेते होगे।

(६) एक जाट के लिए कहा जाता है कि वह बीस के ऊपर गिनती नही जानता था। अपने ऊँट को बेचने के लिए जब वह गया तो खरीदार ने ७० रुपये देने को कहे। जाट ने उत्तर दिया "सित्तर मित्तर तो मैं जानता नही, मुझे तो पूरे तीन बीसी (साठ रुपये) चाहिएँ।[3]

किन्तु आजकल इस प्रकार ठगे जाने वाले जाट दिखलाई नही पडते।

जगल में जाट को छेडना खतरे से खाली नही समझा जाता। दूसरे खेती करने वालों की अपेक्षा जाट वीर और दृढाग होते हैं। खेती करने मे भी वे बडा परिश्रम

---

१. पाठान्तर—
"बोली बोली आंतरो, बोली बोली फरक।
तू तो कहै फरेस्ता 'र मैं कहूं जरख ॥"

२. रिपोर्ट मरदुमशुमारी, राज मारवाड, बाबत सन् १८९१ ई०, तीसरा हिस्सा; पृष्ठ ५१।

३. "सित्तर मित्तर हूँ समझूं कोयनी, तीन बीसी पूरी लेसूं"।
—राजस्थानी कहावतां, भाग दूसरो (स्वामी नरोत्तमदास स्वामी और पंडित मुरलीधर व्यास), पृष्ठ १५५।

करते हैं। **"आसोजां का तावड़ा जोगी होगा जाट"** से स्पष्ट है कि आश्विन की कडी धूप में भी वे अपने खेतों में काम करते रहते है। परिश्रम करने से खेती में उनको बरकत भी खूब होती है, इसीलिए **"जाट जठे ठाठ"** की कहावत प्रचलित हुई है।

एक कहावत में कहा गया है कि जाट दूध बेचने को पुत्र बेचने के बराबर समझता है।[1] किन्तु आर्थिक संघर्ष के कारण आजकल ऐसी बात नही रह गई, जाट भी अब दूध बेचने लगे हैं।

धनी वर्ग के मुकाबले जाट को कोई अच्छा भोजन नही मिलता, और न समाज में ही उसका कोई ऊँचा स्तर है। इसीलिए जाट के सम्बन्ध मे निम्नलिखित कहावतें प्रचलित हुई है—

(१) **जाट के भांवै कुंवाड़ ही पापड़।**

अर्थात् जाट को पापड नसीब नही होते।

(२) **जाट की बेटी 'र का का जी की सूं।**

अर्थात् जाट की लडकी और काका जी की शपथ !

छोटा भी जब नजाकत ज्यादा दिखलाने लगता है तो इस कहावत का प्रयोग होता है।

(३) **जाटणी की छोरी 'र फलकै बिना दोरी।**

अर्थात् जाट की लडकी को फुलका कहाँ मिलता है ? इसलिए यदि उसे फुलका न मिले तो उसका रूठना कैसा ?

किन्तु अब राजनैतिक परिवर्तन के साथ-साथ जाटों की स्थिति में भी परिवर्तन हो रहा है। उनमे शिक्षा का प्रचार भी बढ रहा है। शिक्षा-प्रचार के साथ साथ उनका आर्थिक और सामाजिक स्तर भी बढेगा।

(३) पेशेवर जातियाँ

गूजर—अब कुछ पेशेवर जातियो को लीजिये। गूजर भेड-बकरी अधिक चराते है और खेती कम करते हैं। खेती करने की अपेक्षा मवेशी चराने का पेशा उनको अधिक पसन्द है। इसीलिए एक कहावत प्रचलित है **"कै गूजर को दायजो, कै बकरी कै भेड़"** अर्थात् गूजर का दहेज ही क्या ? या तो बकरी या भेड। भेड-बकरी चराने के कारण गूजर लोग गाँवों के बाहर, बस्ती के किनारे एक तरफ को रहते हैं जहाँ उन्हे पानी और चारे की सुविधा रहती है। **"गूजर जहाँ ऊजड़"** की लोकोक्ति का यही रहस्य जान पडता है।

राजपूताने के कुछ हिस्सो मे गूजर चोरी और डकैती के लिए भी बदनाम है। गूजरों में स्वामि-भक्ति और विचारो की स्थिरता नही पाई जाती। इसीलिए राजस्थान की एक लोकोक्ति में कहा गया है, **"नाजर, गूजर मेर कुता, सोये पीछे सात मता।"** अर्थात् हिजडे, गूजर, मेर और कुत्ते की मति बहुत जल्दी बदल जाती

१. "दूध बेचो भांवै पूत बेचो।"

है। सोने के पहले उनका जो विचार रहता है, वह सोकर उठने पर नही रहता।

माली—मालियों के सम्बन्ध में उतनी कहावतें नही मिलती जितनी जाट और गूजरों के सम्बन्ध में मिलती है। नीचे की लोकोक्ति में मालियों को दूर-दूर बसने के लिए कहा गया है क्योकि ये परस्पर लड़ते बहुत है।

"माली अर मूला छोदा ही भला।" अर्थात् माली और मूल (जैसे मूली आदि) दूर-दूर ही अच्छे।

नाई—राजस्थान की जाति-सम्बन्धी कहावतों मे नाई का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वह अपनी चतुराई के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध है। मनुष्यो में नाई, पक्षियों में कौवा और जलचरो में कछुआ, ये तीनों धोखेबाज होते है।[1] अनुभवी व्यक्ति नाइयों का बहुत विश्वास नही करते। कहते है, सिवाने का किला एक नाई की दग़ेबाजी से ही टूटा था। इसलिए अब भी किसी नाई को रात के समय उस किले मे नही रहने देते। **"नाई बात गँवाई"** यह भी एक राजस्थानी कहावत है।

नाई अपने आपको आपस मे ठाकुर कहते हैं। **"नाई री जान में से कोई ठाकर"** की कहावत इसी कारण चली है। किसी कवि ने नाई के लिए ठाकुर नाम को अमान्य ठहराते हुए लिखा है—

"आंख आवण, घर सिलावण, सोकड़ बहनड़ नांव।
नाई ठाकुर भाट राजा पांचों नांव कुनांव॥
जगतन को भगतण कहें, कहें चोर को साह।
नाई को ठाकर कहें, तीनों उलटी राह॥"

किन्तु नाई ठाकुर के नाम से बड़ा प्रसन्न होता है। सेन भगत के नाम से वह और भी खुश होता है क्योकि सेन भगत एक नाई ही था जो साधुओ की संगति मे अपना बहुत सा समय लगाता था। कहते हैं कि एक बार उसके यहाँ कुछ साधु आ गये और जिस राजा की हजामत बनाने वह जाया करता था, उसके पास ठीक समय पर न पहुँच सका। इसलिए भगवान स्वयं नाई का रूप धारण कर उस राजा की हजामत बनाने चले गये थे। इसीलिए भगवद्भक्तो मे यह कहावत चली आती है—

"सेन भगत का सांसा मेट्या, आप भये हर नाई।"

नाई मौके पर कटाक्ष करने से भी नही चूकता। एक बार एक नाई किसी राजा की हजामत बना रहा था। एक चारण को अपने से नीचे बैठे हुए देखकर कटाक्ष करके बोला।

"चारण मत कर चतुर्भुज, नाई कीजे नाथ।
आधी गादी बैठवो, माथा ऊपर हाथ॥[2]

---

१. मिनखां में नाई, पखेरुवां में काग।
पाणी वालो काछवो, तीनूं दग्गैबाज॥
"नराणां नापितो धूर्तः पक्षिणां चैव वायसः।"

२. मिलाइये—
खग वाहां री खाट, बैठे जाय बराबरी।
नाई किसब निराट, रच्छाणी सूं राजिया॥
—रिपोर्ट मरदुमशुमारी राज मारवाड़, बाबत सन् १८९१ ई०, पृष्ठ ४५९

अर्थात् हे चतुर्भुज ! मुझे चारण न बनाना, नाई बनाना क्योकि नाई राजा के पास आधी गद्दी पर बैठता है और राजा के मस्तक पर हाथ रखता है।

चारण ने भी जवाब में कहा—

"चारण कीजै चतुर्भुज, नाई मत कर नाथ।
बानी ऊपर बैठवो, ऐंठवाड़े में हाथ ॥"

अर्थात् हे चतुर्भुज ! मुझे चारण बनाना, नाई नही क्योकि नाई राख के पास बैठता है और उच्छिष्ट वस्तुओ पर उसका हाथ पड़ता है।

हिन्दुओ में विवाह-शादी तथा मृत्यु दोनों अवसरों पर नाई की उपस्थिति अनिवार्य होती है। इस दृष्टि से समाज के लिए नाई अत्यन्त उपयोगी है किन्तु स्पृश्या-स्पृश्य सभी की हजामत बनाते रहने के कारण वह सदा अपवित्र समझा जाता है। इसीलिए **'नाई दाई बैद कसाई इणको सूतक कदे न जाई'** जैसी कहावतो में नाई का भी नाम सम्मिलित कर लिया गया है। इसी प्रकार एक दूसरी कहावत है। **"आर धार और सुसकार"** जिसके अनुसार गाड़ीवान और तेली जो बैलों के आर चबूते हैं, नाई जो धार अर्थात् उस्तरे से हमेशा काम लेता रहता है और धोबी जो सुसकार करते हुए हर प्रकार का गदा कपड़ा धोता है, इन सब को निकृष्ट ठहराया गया है।

धोबी—राजस्थानी भाषा में धोबी के सम्बन्ध मे इनी-गिनी कहावते ही उपलब्ध है। **"धोबी को कुत्तो घर को न घाट को"** यह तो एक ऐसी कहावत है जो प्रायः सभी प्रादेशिक भाषाओ में मिल जाती है। धोबी मोल लेकर कपडा कम पहनते हैं, दूसरो के यहाँ से धुलने के लिए जो कपडे आते है, उन्ही से वे अपना काम चलाते रहते हैं। इसीलिए निम्नलिखित दोनो कहावते प्रचलित है—

(१) **"धोबी बेटा चान सा चोटी न पट्टा।"**

अर्थात् धोबी का लडका दूसरो के चन्द्र-धवल वस्त्रो पर बना-ठना फिरता है।

(२) **"धोबी कै घर में बड़गा चोर, डूब्या और ई और।"**[1]

अर्थात् धोबी के घर मे चोरी होने पर दूसरो को ही हानि उठानी पडती है।

बहुत से धोबी अपने पास गधे रखते है क्योकि धोने के लिए जो कपडे उनके पास आते है, उन्हे वे गधो पर लादकर तालाब पर ले जाते है। इसी से **"धोबी को हांते गधो खाय"** इस लोकोक्ति का विकास हुआ है।

धोबी का **'कुण्ड'** जिसमें वह कपडे धोता है, इतना मलिन समझा जाता है। सामान्यतः नरक-कुण्ड से उसकी तुलना की जाती है। राजस्थान में प्रतिज्ञा करने वाले से कहलवाया जाता है कि यदि मैं अपना वचन चूक जाऊँ तो धोबी के कुण्ड मे पड़ूँ।

साँसी यद्यपि स्वयं नीची जाति के होते हैं किन्तु ये भी धोबी को अपने से नीचा समझते है और उसके घर की रोटी नही खाते। जब उनमे से किसी को कोई काम नही करना होता है तो कहते है कि अमुक काम करूँ तो धोबी की रोटी खाऊँ।

---

१. पाठान्तर—

"धोबी रे घरे लाय लागी, बूडा बस्ती रा लोग।"

दर्जी—दर्जियो का कहना है कि सिलाई का पेशा तो बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है किन्तु उस पुराने जमाने के दर्जी अब नहीं रहे। हम लोग तो राजपूतो से दर्जी हुए हैं। परशुरामजी ने जब क्षत्रियो का वध किया तो हमारे पूर्वजों ने सुई लेकर अपनी प्राण रक्षा की थी। इस 'साख' का निम्नलिखित कहावती पद्य प्रसिद्ध है—

"छत्री मार निछत्री कीधो, सूई ले ओलो ले लीधो।"

दर्जी को चिढ़ाने के लिए (**"पूरा माटी"** कहा जाता है जिसका अर्थ यह है कि वह पूरा मर्द नही है। **'माटी'** शब्द राजस्थान में पति के अर्थ मे प्रयुक्त है।

दर्जियो की कायरता के सम्बन्ध में जोधपुर की तरफ एक कहावत **"दरजियाँ वाली पाल है"** जो बहुत समय से चली आ रही है। इस कहावत के पीछे निम्नलिखित कथा सुनने मे आती है—

"पाल एक गाँव है जो जोधपुर से करीब तीन कोस की दूरी पर स्थित है। एक बार कुछ दर्जिने कण्डे बीनने के लिए जगल में गई थी। पाल के किसी आदमी ने उनके कण्डे छीन लिये। इस पर दर्जी बहुत उत्तेजित हो गये और गज कतरनी ले-ले कर पाल मारने को चले। पाल पहुँचते-पहुँचते उनको रात हो गई। उन्होने निश्चय किया कि प्रातःकाल उठकर पाल वालो से लडेगे। वे अजीब ढंग से एक लम्बी कतार बनाकर इस प्रकार सो गये कि एक का सिर दूसरे की टाँगो के नीचे था। किन्तु जो दर्जी सबसे आगे था वह यह सोचकर कि लडाई मे कही सबसे पहले मे ही न मारा जाऊँ, अपनी जगह से उठकर सबसे पीछे आ सोया। यह देखकर दूसरा भी चुपके से उठा और जाकर उसके पीछे सो गया। फिर तीसरे-चौथे ने भी ऐसा ही किया। तात्पर्य यह है कि यो करते-करते वे सबके सब जोधपुर के सिवानची दरवाजे तक हटते चले आये। इतने मे प्रात काल हो गया। अपने को दरवाजे के पास देखकर सब आश्चर्य मे भरकर कहने लगे कि यहाँ कैसे आ गये। फिर बोले, खैर, अब तो घर चलो, पाल वालो पर फिर कभी आक्रमण करेगे। इस प्रकार सब दर्जी अपने-अपने घरो को वापिस आ गये। तभी से दर्जियो के पाल मारने के सम्बन्ध मे उक्त कहावत प्रचलित हुई है। जब कोई अपने बूते से बाहर काम करना चाहता है और उसमे उसे सफलता नही मिलती तब इस कहावत का प्रयोग किया जाता है।"[1]

ढोली—ढोली नाम ढोल बजाने से पडा है। ढोली गाने-बजाने और माँगने का काम करते है। ये ढोल, सारंगी, ढोलक और नगारे बजाकर यजमानो के यहाँ गाते हैं। जोधपुर की तरफ के ढोली नौबत खूब बजाते हैं और इस बात का दावा करते है कि शहनाई बजाने में कई राग और बोल ये साफ निकाल लेते है। प्रसिद्ध है कि जब चित्तौड के किले मे राव रिडमलजी को सीसोदियो ने धोखे से मारा था तो एक ढोली ने शहनाई में निम्नलिखित गीत गाकर जोधाजी को, जो नीचे थे, भगने का अवसर दिया था—

---

१. देखिये—रिपोर्ट मरदुमशुमारी राज मारवाड, बाबत सन् १८९१ ईसवी, तीसरा हिस्सा, पृष्ठ ४८०।

"जोधा थारो रिड़मल मारणो, भाग सके तो भाग ।"

डोम ढोलियों को जाडा बहुत लगता है । इस विषय में निम्नलिखित पद्य अत्यन्त प्रसिद्ध है—

"सींगाला सी ऊतरे, आधे जातां माह ।
तुरियां फागण ऊतरे, नर बांदर वेसाख ।।
डूमां कदे न ऊतरे, थितिया बारे मास ।।"

अर्थात् भेड-बकरी तथा भैंस का जाडा आधे माह उतर जाता है, घोड़ों का फाल्गुन में तथा मनुष्यो और बन्दरो का वैशाख में उतर जाता है किन्तु डोमो पर जाड़े का भूत बारहों महीने सवार रहता है ।

डोम झूठे भी बहुत होते हैं । झूठ कहती है कि मै और कही चाहे न मिलूँ, डोमों के यहाँ अवश्य मिलूँगी ।

कारीगरां कमनीगरां और बजाजां हट्ट ।
जो एता मैं ना मिलूँ, डूमां में अलबत्त ।।

ढाढी—ढाढी भी ढोलियो से मिलती-जुलती जाति है, अन्तर यह है कि ढोली जहाँ ढोल बजाते हैं, वहाँ ढाढी सारंगी या रबाब बजाने का काम करते है । ढाढियो का कहना है कि रामचन्द्रजी के जन्म के समय भी हम उपस्थित थे और हमें बडी बधाई मिली थी जिसकी "साख" का निम्नलिखित गीत प्रसिद्ध है—

"दसरथ के घर राम जनमिया, हंस ढाढण मुख बोली ।
अठारा किरोड़ ले चौक मेलिया, काम करन को छोरी ।।"

अब भी जब किसी के पुत्र उत्पन्न होना है और ये बधाई गाने के लिए जाते हैं तो सबसे पहले यही गीत गाते है ।

नट—नट तमाशा दिखाकर जीविकोपार्जन करते है और जब सन्तान उत्पन्न होती है तो स्त्री को तेल ज्यादा खिलाते है । लडके-लडकियो को भी जब ये कसरत कराते है तो तेल ही पिलाते है क्योंकि तेल से हड्डियाँ मुलायम बनी रहती है, इसलिए "तेल जितरा खेल" यह कहावत नटो मे अत्यन्त प्रचलित है ।

हीजड़े—हीजडे जनाने वेश मे रहते, गाते-बजाते और नाचते हैं । जनाने वेश मे रहने के कारण ये जल्दी-जल्दी अपनी दाढी-मूँछ मुँडाया करते हैं । इसीलिए एक राजस्थानी लोकोक्ति के अनुसार ये जो कुछ कमाते हैं, उसका मूँछ मुडाने में ही सफाया हो जाता है ।[1] हीजडो से यह आशा नही की जा सकती कि वे किसी युद्ध मे विजय प्राप्त कर लेगे । अतः एक दूसरी राजस्थानी कहावत मे कहा गया है कि हीजडों ने भी क्या कभी कतार लूटी है ?[2]

नाजर—हीजड़े और नाजर मे अन्तर यह है कि नाजर के दाढी-मूँछ नहीं होती । इसलिए कई रजवाडो मे बादशाही जमाने से ही जनानी ड्योढियो पर नाजरों को रखने का रिवाज चलता आया है । कई नाजर ऐसे हुए है जिन्होने रियासतों में

---

१. हीजडे की कमाई मूँछ मुँडाई में गई ।
२. हीजडा भी कदे कतार लूटी है ?

दीवान रहकर बडी ख्याति प्राप्त की थी। ख्वाजा फरासत दीवान और नाज़िर हरकरण के लिए प्रसिद्ध है कि वे जोधपुर के महाराजा श्री जसवन्तसिह जी और तख़तसिंह जी के बड़े कृपापात्र थे। किसी समय नाजिर हरकरण के तो जरा सी जबान हिला देने से समस्त रियासत का काम-काज चलता था। इसीलिए **"बारे नाचे बादरियो, मायें नाचे नाजरियो"** की कहावत चल पडी।

नाजर-सम्बन्धी किसी-किसी कहावत मे मधुर विनोद के भी दर्शन होते हैं। किसी ने नाजर को आशीर्वाद दिया— नाजरजी, आपकी वश-वृद्धि हो। उत्तर मिला कि बस मुझ पर ही इतिश्री है।[1]

गोला—गोला कही दरोगा कही खवास, कही चाकर, कही चेला और कहीं वजीर के नाम से प्रसिद्ध है। इसी प्रकार इनकी स्त्रियाँ भी डावड़ी, माणस, वडारण और दरोगण आदि अनेक नामो से पुकारी जाती है।

राजपूतों में गोला-गोली रखने का विशेष रिवाज है। गोलो के सम्बन्ध में जो कहावते राजस्थान में प्रचलित हैं, उनसे उनकी कृतघ्नता का ही पता चलता है। उदाहरण के लिए कुछ कहावते लीजिये—

सौ गोलां ही घर सूनो।

अर्थात् सौ गोलों के रहते हुए भी घर सूना है।

"गोला किणसूँ गुण करै, ओगणगारा आप।
माता जिण री खाबली, सोला जिण रा बाप॥"

अर्थात् गोलों से किसी का भला नही होता। जिनकी माता पुंश्चली और सोलह जिनके पिता है, ऐसे गोले अवगुणो की खान होते हैं।

गोलों के सम्बन्ध मे राजिया को सम्बोधित कर कहा हुआ निम्नलिखित दोहा भी अत्यन्त प्रसिद्ध है—

"गोला घणा नजीक, रजपूतां आदर नहीं।
उण ठाकर री ठीक, रण में पड़सी राजिया॥"

अर्थात् जो ठाकुर बहुत से गोलो को आश्रय देता है और राजपूतों का सम्मान नही करता, उसे युद्ध का प्रसग उपस्थित होने पर सब पता चल जायेगा।

"गोलै कै सिर ठोलो" और **"गोलै को गुर जूतो"** जैसी कहावतों में बतलाया गया है कि गोले पिटने से ही ठीक होते है।

गोला-गोली रखने की प्रथा दास-प्रथा का ही अवशेष है। राजस्थान में भी अब इस प्रथा के विरुद्ध प्रतिक्रिया होने लगी है।

खटीक—पुराने समय से ही खटीकों का काम पशुओं के काटने का रहा है। इसीलिए **"छाली रोवै जीव ने खटीक रोवै मांस ने"** तथा **"छाली खटीक ने ही धोजै है"** जैसी लोकोक्तियाँ प्रचलित हुई हैं किन्तु जब से कसाई मांस बेचने लगे तब से खटीको का पेशा केवल खाल रंगने का रह गया।

---

१. नाजरजी, बेल बधो! वै बस म्हा तांणी ही है।

ढेढ—ढेढों के सम्बन्ध में अनेक कहावतें सुनी जाती हैं। ढेढ के लिए स्वर्ग में भी बेगार तैयार है।[1] उसका मन हमेशा तुच्छ घृणित पदार्थों में रहता है।[2] ढेढ के शाप से गाय-बैल आदि नही मरते,[3] ढेढ का स्पर्श करो या गले लगाकर मिलो, एक ही बात है।[4] उसके साथ छककर भोजन करो अथवा अँगुलि भरकर चक्खो, दोनों में क्या अन्तर है ?[5] ढेढणी यदि रनवास में जा आये तो फिर अपने बराबर किसी को नही समझती।[6]

सुनार—सुनार के लिए प्रसिद्ध है कि जब वह गहने गढ़ता है तो सोने की चोरी किये बिना नही रहता यहाँ तक कि अपनी माता का भी सोना खा जाता है। सम्भवत: यही कारण है कि शकुनशास्त्रियो की दृष्टि मे सुनार का दाएँ-बाएँ किसी ओर भी मिल जाना एक प्रकार का अपशकुन समझा जाता है।

"आटो कांटो घी घड़ो, खुल्लै कैसां नार।
बावों भलो न दाहिणो, ल्याल़ी जरख सुनार॥"

अर्थात् आटा, काष्ठ, घी का घडा, विधवा स्त्री, भेडिया, जरख और सुनार, ये न बाएँ अच्छे न दाएँ, यात्रा मे सर्वथा निषिद्ध हैं।

खाती—खाती समाज के लिए एक अत्यन्त उपयोगी जाति है। खेती के लिए हल, चक्की के लिए गाला, दरवाजो के लिए किवाड तथा सोने के लिए चारपाई आदि बनाने मे सर्वत्र उसी का हाथ दिखलाई पडता है किन्तु उसे यह पसन्द नही कि रास्ते चलते सभी उसे बिना मतलब तग करते रहें। एक कहावत मे वह अपना दुखड़ा इस प्रकार रो रहा है—

"बैवतेरी लाठी ही लांबी हु ज्याय।"

अर्थात् जो उधर कर गुजरता है, उसी की लाठी लम्बी हो जाती है। खाती को बैठे देख लिया कि चट उससे अपनी लाठी कटवाने के लिए दौड पड़े मानो उसे और कोई काम ही नही है।

किन्तु खाती जहाँ बैठकर काम करता है, वहाँ खटाखट बहुत होती है, इसलिए एक अन्य कहावत मे कहा गया है—

"खोटा काम ठेठ सूं कीन्या, घर खाती ने मांग्या दीन्या।"

अर्थात् प्रारम्भ से ही बुरे काम किये, माँगने पर खाती को घर दे दिया। खाती के पास खटाखट के अतिरिक्त आने-जाने वालो का ताँता बँधा रहता है और लकड़ी के बुरादे आदि से कूडा भी बढता रहता है।

तेली—तेली चालाक समझा जाता है। एक तेली से रुपया भंजाने के लिए कहा

---

१. ढेढ नैं सुरग में भी बेगार।
२. ढेढ रो मन ल्यावडै में।
३. ढेढां री दुरसीस सूं दाव थोडा ही मरै।
४. ढेढ रो पल्लो लगावो भावै बाथे पडो।
५. ढेढ रैं साथे धाप र जीमो भांवै आंगली भर कर चाखो।
६. ढेढणी अर रावल़ै जा आई!

गया तो उसने उत्तर दिया "मैं हूँ तेली, ढूंगो रिपिये की धेली !" तेलियों के सम्बन्ध में निम्नलिखित कहावते अत्यन्त प्रसिद्ध है—

(१) तेली सूं खल ऊतरी, हुई बलीते जोग ।

अर्थात् घाणी से जब खली उतर गई तो वह ईधन के योग्य हो गई ।

(२) घरे घाणी तेली लूखो क्यूँ खावै ।

अर्थात् घर पर घानी होते हुए तेली रूखा-रूखा क्यो खावे ?

(३) तेली रो बलद सौ कोस जाय परो तो ही घरे रो घरे ।

अर्थात् तेली का बैल यदि सौ कोस भी चल ले तो भी घर का घर पर ही रहेगा ।

भील—भील एक प्रसिद्ध जगली जाति है जो राजपूताना, सिन्ध और मध्य भारत के जंगलो और पहाडों में पाई जाती है । इस जाति के लोग बहुत वीर और तीर चलाने में सिद्धहस्त होते हैं । क्रूर और भीषण होने पर भी ये सीधे, सच्चे और स्वामिभक्त होते हैं । कुछ लोगों का विश्वास है कि ये भारत के आदिम निवासी हैं । पुराणों मे इन्हे ब्राह्मणी कन्या और धीवर पुरुष से उत्पन्न सकर माना गया है ।[1]

राजस्थान मे भीलो का निवास प्राचीन काल से है । महाराजा प्रताप के सहायक के रूप मे ये विख्यात है । इधर देशी रियासतो के कारण इनका काफी शोषण हुआ है और समय की दौड में ये पिछड गये है । साक्षरता का इनमे प्राय. अभाव है किन्तु व्यावहारिक ज्ञान की कमी इनमे नही है । लोक-वार्ताओ, कहावतो और लोकगीतो के रूप मे भीलों का व्यापक साहित्य प्राप्त होता है जिसके आधार पर उनकी ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक स्थिति का अध्ययन किया जा सकता है । इस महत्त्वपूर्ण कार्य मे कहावतें सर्वाधिक उपयोगी सिद्ध होगी । श्री गिरधारीलाल शर्मा द्वारा सम्पादित और राजस्थान विश्व विद्यापीठ उदयपुर द्वारा प्रकाशित "राजस्थानी भीलों की कहावते" शीर्षक पुस्तक की पाण्डुलिपि से कुछ कहावते यहाँ साभार उद्धृत की जा रही हैं—

(१) ऊठो बैठो ने धरती माते सूरज तये जेम तपो ।

स्वस्थ रहो और धरती पर सूर्य तपता है, उसी प्रकार तपो ।

(२) राजा राम चौवदे वर अन वगर् बेडे माए रेग्या जैम रहे ।

राजा राम चौदह वर्ष बिना अन्न के रह गये, हम भी उसी प्रकार रहेगे ।

(३) काम मोटो है, नाम मोटो नी ।

काम बडा है, नाम नही ।

(४) करै चाकराई सो करै ठाकराई ।

अर्थात् जो सेवा करता है, वही ठकुराई कर सकता है ।

ऊपर की कहावतों से स्पष्ट है कि भील काम करने मे विश्वास रखते है तथा कष्ट-सहिष्णु होते है ।

---

१. हिन्दी शब्द सागर (नागरी प्रचारिणी सभा) तीसरा भाग; पृष्ठ २५७३ ।

भीलों की अनेक कहावतों में एकता, आत्म-सम्मान आदि जीवन के अनेक उच्च आदर्शों का प्रकटीकरण हुआ है। जैसे,

(१) आटा माये लूण मलं जैम मली नै रवा हूँ फायदो है।

अर्थात् आटे मे नमक की तरह मिलकर रहने में लाभ है।

(२) ईजत नूं मनख, वगर ईजत नूं ढांढूं।

अर्थात् इज्जत के बिना मनुष्य पशु-तुल्य है।

(३) कणानी हांची झूठी ने करवी, कणाक नु गैर नेकली जासें।

अर्थात् इधर-उधर सत्य का झूठ और झूठ का सत्य नही करना चाहिए, ऐसा करने से किसी का घर बरबाद हो जाता है।

(४) अन्दर हरको गैरो, धरती हरको भारी वेई ने रैवो।

अर्थात् इन्द्र के समान गम्भीर और धरती के समान भारी (उदार) होकर रहना चाहिए।

कुछ कहावते ऐसी भी मिलती है जिनका भीलो के शोषण से सम्बन्ध है। जैसे,

(१) करसो हात कमावे वाण्या ना बेटा हारू।

अर्थात् किसान अपने हाथ से कमाता है किन्तु बनिये के पुत्र के लिए।

(२) अणभणिया भील मन जाणिया पलाणे।

अर्थात् अशिक्षित भीलो को कष्ट पहुँचाकर भी उनसे स्वेच्छापूर्वक काम लिया जाता है।

भीलों में गरीबी के कारण अनेक बार ऐसे अवसर आ जाते है जब घर वाले ऋण ले लेते है और चुकाना पडता है लडको को।

"करबा वाला तो कीदूं, चोरां ना गाबड़ा अमलाना।"

अर्थात् करने वालो ने तो कर्ज कर लिया किन्तु बाद मे आपत्तियाँ उठानी पडी लडकों को।

भील ईश्वर में विश्वास करते है। ईश्वर पर लोगों की घटती हुई आस्था को देखकर उनका जी दुखी हो उठता है।

"आज रामं कूंण ओल्के आपे राम हैं।" अर्थात् आज राम को कौन पहचानता है, सब राम बने बैठे है।

सामाजिक जीवन से सम्बध रखने वाली निम्नलिखित कहावतें भी यहाँ उल्लेखनीय हैं

(१) अवाला फेरा है, आज ते हाहूनो काले बऊनो।

अर्थात् यह तो उल्टा चक्र है, आज सास का समय है तो कल बहू का होगा।

(२) आदमी ना हो कायदा, लुगाई नो एक कायदो।

इस कहावत का सकेत बहुपत्नी-प्रथा की ओर है।

भीलो में नीति-सम्बन्धी कहावतो का भी अभाव नही है। इस प्रकार की कुछ कहावतें लीजिये—

(१) आखाने भरोसे आधो चूकी जाहो ।

अर्थात् पूरे को प्राप्त करने की दुराशा में आधा भी खो दोगे ।

(२) आज वार है ते काले कवार भी है ।

अच्छे दिन सदा नही रहते ।

यहाँ हम उन कहावतो की ओर भी दुर्लक्ष्य नही कर सकते जो भीलों के सम्बन्ध में प्रचलित है । उदाहरण के लिए ऐसी कुछ कहावतें लीजिये—

(१) भील के कंई ढील ?

अर्थात् भील के काम करने में क्या देर होती है ? वह सदैव कार्य करने को तत्पर रहता है ।

(२) भील, भंगी, भगतण, भोपा, देता लेतां वाजे बोझा ।

अर्थात् भील, भंगी, वेश्या और भोपे से लेन-देन करनेवालों को लोग गँवार समझते है ।

(३) भीलो का गाना कुछ अजीब तरह का होता है । उस सम्बन्ध में निम्न-लिखित कहावती पद्य उल्लेखनीय है—

कांई चारण री चाकरी, कांई आरण री राख ।
कांई भील रो गावणों, कांई साटिये री साख ॥

गाडिया लुहार—गाडिया लुहार घर बाँधकर नही रहते । ये गाडे (शकट) में ही अपने घर का सारा सामान लिये फिरते रहते हैं । स्थायी रूप से ये किसी एक गाँव में नही रहते । इसीलिए **"गाडिये लुहार को कुणसो गांव ?"** एक राजस्थानी कहावत ही बन गई है ।

प्रसिद्ध है कि जब महाराणा प्रताप को मुगलों के आक्रमण के कारण चित्तौड़ छोड देना पडा तो उन्होने प्रतिज्ञा की थी कि जब तक चित्तौड वापिस नही ले लूँगा, तब तक चारपाई पर नही सोऊँगा, सोने-चाँदी के बर्तनो मे भोजन नही करूँगा और जमकर कभी भी एक स्थान पर नही रहूँगा । कहा जाता है कि वर्तमान गाडिया लुहारो के पूर्वजो ने भी उस समय शपथ ली थी कि जब तक बादशाह से बैर का बदला नही ले लेगे, घर बाँधकर नही बैठेंगे और गाडों में ही बैठे फिरते रहेगे । उनके द्वारा ली हुई शपथ के शब्दो **"ऊंधा खाट गालजो और फिरता ही मरजो"**[1] ने कहा-वती ख्याति प्राप्त कर ली है ।

गाडिया लुहार जब गाडों में चारपाइयो को लादते हैं तो उन्हे औंधी रखते हैं । निश्चित रूप से हम यह नही कह सकते कि वे चारपाइयो को औधी क्यों रखते है किन्तु सम्भव है आराम का जीवन न बिताने की महाराणा प्रताप की प्रतिज्ञा से इसका कोई प्रत्यक्ष या परोक्ष सम्बन्ध हो ।[2]

मुसलमान—मुसलमानो से सम्बन्ध रखने वाली कहावतें यद्यपि धर्म के अन्त-र्गत रखी जानी चाहिएँ किन्तु सामान्य जनता उन्हे जाति मानकर ही चलती है ।

---

1. These Ten years by A. W. T. Webb, p. 143.
2. Ibid, p. 148-149.

यही कारण है कि राजस्थानी भाषा की जाति सम्बन्धी कहावतों के प्रसंग में मुसलमानों से सम्बन्ध रखने वाली कहावतो पर भी यहाँ विचार किया जा रहा है। सर हर्बर्ट रिजले ने भी इसी आधार पर इस प्रकार की कहावतों को अपने ग्रन्थ में जाति-सम्बन्धी कहावतों के अन्तर्गत रखा है।[1]

राजस्थान में मुसलमानों के सम्बन्ध में जो कहावतें प्रचलित हैं उनमें से कुछ नीचे उद्धृत की जा रही हैं—

१. काको बेटो ना देगो तो देगो ही कुण।
२. काकै ताऊ की बेटी भू बरोबर है।
३. घर जाई नै घर घर क्यूं जाण दे।
४. घर को वायजो घर में ही राखले।
५. घर की बेटी, घर की भू।
६. अेय घर में जाई अर अें ही घर में ब्याई।
७. काकै जाई भाण अर तायै जायो भाई।
बो बै को लोग अर बा बैंकी लुगाई॥
८. असल मियें की याही जांण।
भीतर बीबी आदी भांण॥
९. काकै जाई पर घर जाय।
तो तायै जायो दोजक मांय॥
१०. काको रूसै तो अपनी बेटो ना दे।
११. टाबरपण का काका ताऊ, 'रभर जोबिन का सुसरा।
१२. काको रूसै तो रूसण दो, बेटी तो काकी दे देनी।
१३. काकै कै जामसी जिकी नै तो तायै नै सुसरो कैणो पड़सी।
१४. तायै जाया खड़ा पुकारै सुण अें काका की लाली।
सागै खाया सागै खेल्या, अब तूं पर घर क्यूं चाली॥
१५. चाचै कै घर नका पडन्ता जां मरदा का जीव डरै।
मिलस घर में रोता फिरै कुंवारा बै के खोसातूड़ करै॥
१६. सुण ओ काका कवै भतीजो, तेरी जाई घर रैसी।
मिलसी रोज बंदगी करसी, मरियां कांधा वा देसी॥
१७. आवै आंगण सासरो, आवै आंगण पीर।
१८. भाई कै आँगण ना देकर, अपनी बेटी पर घर दे।
सागो भतीजो फिरै कुंवारो, ऊ भड़वै को काको के॥

ऊपर की कहावतों से स्पष्ट है कि मुसलमानो के यहाँ चचे की लडकी से शादी हो जाती है। बल्कि सच तो यह है कि "मुसलमान चचा और भुवा की बेटी से निकाह

---

1. The people of India by Sir Herbert Risley, p. 138.

२. श्री गणपति स्वामी द्वारा संगृहीत और बिडला सेंट्रल लाइब्रेरी, पिलानी के सौजन्य से प्राप्त।

करने को ज्यादा पसन्द करते है। भाई जब विवाह करके आता है तो बहन दरवाजा रोककर खड़ी हो जाती है और अपना नेग माँगती है। हिन्दुओं में तो उसको जोडा, कपडा और जेवर देकर राजी करते हैं किन्तु मुसलमानो में यह इकरार होता है कि यदि भाई के बेटी होगी तो बहन के बेटे को दी जायेगी और बहन के बेटी होगी तो भाई के बेटे के वास्ते ले ली जायगी और ऐसा ही होता भी है, लेकिन जिन ननद-भावज में मेल न हो तो उस इकरार को एक अजब चालाकी से टाल दिया जाता है और वह है दूध पिलाना। जैसे कोई भावज अपनी ननद से नाराज है और अपनी बेटी उसको नही दिया चाहती है और न उसकी लिया चाहती है तो उसके बेटे और बेटी को दो-चार मर्द औरतो के देखते हुए किसी बहाने से अपना दूध पिला देगी। फिर उनका निकाह कभी नही होगा क्योकि धाय का दर्जा माँ के बराबर ही रखा गया है।[१]

मुसलमानो में चचा जब रुष्ट होता है तो भतीजे को डर रहता है कि चचा कही रुष्ट होकर अपनी लडकी न देने का निर्णय न करले। चचे की बेटी से विवाह करने के कारण ही "आधं आँगण सासरो, आधं आँगण पीर" जैसी कहावते प्रचलित हुई है। जो चचा अपने भतीजे को लडकी नही देता उसे ऊपर की कहावतो मे अभिशप्त ठहराया गया है।

४. **तुलनात्मक कहावते**—अब तक जाति-सम्बन्धी जिन कहावतो पर विचार किया गया है, उनमे से प्राय सभी ऐसी है जो किसी एक जाति-विशेष से सम्बन्ध रखती है किन्तु ऐसी भी बहुत सी कहावते है जिनमे कई जातियो का एक साथ उल्लेख हुआ है और गुण दोनो की दृष्टि से जिनकी पारस्परिक समताओ अथवा विषमताओं पर प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार की कुछ तुलनात्मक कहावतो को हम नीचे उद्धृत कर रहे है—

१. "अग्गम बुद्धी जाणियो, पिच्छम बुद्धी जाट।
तुर्तबुद्धि तुरकड़ो, बामण सम्पटपाट॥
२. बातां रीझै बाणियो, रागां सूं रजपूत।
बामण रीझै लाडुवां, बाकल रीझै भूत॥
३. बणी बणावै बाणियो, बणी बिगाड़ै जाट।
४. बीजाबरगी बाणियो, दूजो गूजरगोड।
तीजो मिलै जो वाहिमो, करै टापरो चोड़॥
५. जंगल जाट न छेड़िये, हाटां बीच किराड।
रंघड़ कदे न छेडिये, जद तद करै बिगाड॥
६. राम राम चौधरी, सिलाम मियांजी।
पगे लागूं पांडिया, दंडोत बाबाजी॥

---

१. रिपोर्ट मरदुमशुमारी राज मारवाड, बाबत सन् १८९१ ई०, पृष्ठ ५९७।

७. छोडा छोलण बूट उपाडन, थपथपियो ओ नाई।
एता चेला न करो गुरूजी, का र न आवै कांई ॥
८. बामण नाई कूकरो, जात देख घुर्राय।
कायथ कागो कूकड़ो, जात देख हरसाय ॥
९. अबे तबे का एक रुपय्या, अठे कठे का आना बार।
इकडम तिकडम आठाहि आना, शूं शां आना च्यार ॥
१०. के कवित्त सोहै भाट नै, खेती सोवै जाट ने ।
११. तेलण सूं नहिं मोचण घाट, वैरी मोगरी बैरी लाट।

अर्थात् बनिया आगे की बात पहले सोच लेता है, जाट को बुद्धि बाद में आती है, मुसलमान बात को तुरन्त ताड लेता है किन्तु बुद्धि के नाम ब्राह्मण सफाचट होता है। बनिया बातो से, राजपूत राग से, ब्राह्मण लड्डुओ से तथा भूत सिझे हुए अथवा अध-सिझे हुए कोरे अन्न से प्रसन्न होता है। बनिया बनी हुई बात को बना लेता है और जाट उसे बिगाड देता है। बीजावर्गीय बनिया, गूजर गौड और दायमा, अगर ये तीनो मिल जायँ तो घर चौपट कर देते हैं। जगल मे जाट को और दूकान पर बनिये को नही छेडना चाहिए, राजपूत को कभी नही छेडना चाहिए, उससे चाहे जब बिगाड हो सकता है। चौधरी को राम राम किया जाता है, मियाँ से सलाम करते है, पडित को 'पालागूं' (पैर पडता हूँ) कहते है, और बाबाजी से दंडवत् की जाती है। खाती, माली, कुम्हार और नाई, इन्हे हे गुरुवर्य ! अपना शिष्य नही बनाना चाहिए, ये किसी काम मे नही आते। ब्राह्मण, नाई, कुक्कर अपनी जातिवालो को देखकर गुर्राते है, कायस्थ, कौआ और मुर्गा सजातियो से हर्षित होते है। 'अबे तबे' वालों की कीमत एक रुपया है, अठे-कठे (राजस्थानी) का बारह आना, इकडम-तिकडम (मराठी) की कीमत आठा आने से ज्यादा नही, पर 'शूँ-शां' बोलने वाले गुजराती की कीमत चार आने ही है। कवित्त भाट को शोभा देते है और खेती जाट को शोभा देती है। तेलिन से मोचिन कम नही है, उसके पास मोगरी है तो उसके पास लाठ है।

तुलनात्मक कहावतो मे भी बनिये से सम्बन्ध रखने वाली कहावतों का प्राचुर्य है।

५. **निष्कर्ष**—अपनी त्रुटियो की ओर सामान्यतः किसी व्यक्ति का ध्यान नही जाता अथवा यदि जाता भी है तो वह दुर्लक्ष्य कर जाता है किन्तु दूसरे लोगो का ध्यान हमारी त्रुटियो की ओर तुरन्त चला जाता है। इस प्रवृत्ति को स्पष्ट करने के लिए टेच ने स्पेन वालो की एक कहावत[1] का उल्लेख किया है जिसका आशय यह है कि स्पेन की तरफ से यदि मदद मिलती है तो बडी देर से, अन्यथा वह कतई नही मिलती। स्पेन वाले सहायता करने का वादा भी करते है तो उसको पूरा नही करते। यदि करते भी है तो उस समय करते हैं जब करना न करना बराबर होता है। इसी-लिए इटली वालो के यहाँ स्पेन वालो की दीर्घसूत्रता के सम्बन्ध में एक उपहासात्मक कहावत[2] प्रचलित है जिसका अर्थ यह है कि मेरी मृत्यु जब कभी भी आवे तो वह

1. So crros de Espana, o'trade, o'nunca.
2. Mi vengalia morte da Spagna.

स्पेन की तरफ से आवे क्योकि स्पेन वालो की आदत के अनुसार यदि मृत्यु स्पेन की तरफ से आयेगी तो या तो वह आयेगी ही नही और यदि आयेगी तो भी बडी देर से।[1]

ऊपर जो जाति अथवा पेशो से सम्बन्ध रखने वाली कहावते दी गई हैं, उनमे एक जाति-विशेष के अवगुणो को प्रकट करने वाली कहावते बहुतकर दूसरी जाति-विशेष के व्यक्तियो द्वारा पहले-पहल उच्चरित हुई होगी। जहाँ तक तुलनात्मक कहावतो का सम्बन्ध है, बहुत सम्भव है, वे तटस्थ व्यक्तियो की उक्तियाँ हो।

कुछ लोगो का ख्याल है कि जातियो से सम्बन्धित कहावते अन्तर्जातीय सद्-भावना को प्रोत्साहन नही देती और समाज मे जाति-प्रथा की जडों को और भी दृढ बनाती हैं। जो भी हो, इतना निश्चित है कि किसी भी प्रदेश की सभ्यता और संस्कृति के अध्ययन के लिए इस प्रकार की कहावते अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, और फिर दूसरी बात यह है कि जाति-सम्बन्धी कहावते भारतवर्ष के प्राय: सभी प्रदेशो मे मिलती हैं। जाति-प्रथा के राष्ट्रव्यापी प्रभाव के कारण विभिन्न प्रदेशो की जाति-सम्बन्धी कहावतों में भी बहुत कुछ समानता मिलती है। भिन्न-भिन्न प्रदेशो की जाति-सम्बन्धी कहावतो के तुलनात्मक अध्ययन से भी मनोरजक परिणाम निकलेगे। भीलो-जैसी आदिवासी जातियो का अध्ययन आज कुछ नृतत्ववेत्ता कर रहे हैं। इस प्रकार के अध्यनन में भी जाति-सम्बन्धी ये कहावते उपयोगी सिद्ध होगी।

(ख) राजस्थानी कहावतों में नारी

(१) **कन्या-जन्म**—उन सभी वस्तुओ मे से जिससे नारी की सामाजिक स्थिति का पता चलता है, कन्या-जन्म के प्रति उस समाज की प्रतिक्रिया सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। ऋग्वेद की ऋचाओं मे इसके सम्बन्ध मे कुछ आभास नही मिलता यद्यपि पुत्र-जन्म के लिए देवताओं से प्रार्थनाएँ अवश्य की गई है किन्तु ऐसा भी उल्लेख नही है जहाँ लडकी के जन्म पर दु:ख प्रकट किया गया हो, अथवा उसे गर्हित दृष्टि से देखा गया हो। ऋग्वेद के जमाने में लडके और लड़की की समान स्थिति थी, यह भी नही कहा जा सकता। किन्तु अथर्ववेद तक आते-आते लडकी के जन्म को हेय समझा जाने लगा और इस प्रकार की प्रार्थनाएँ की जाने लगी—**"वह लड़की को अन्यत्र रखे, यहाँ वह पुत्र दे।"**[2]—अथर्व ६-२-३

ब्राह्मण-ग्रन्थों में यज्ञों के महत्त्व के कारण पुत्र को **"मुक्ति का जहाज"** कहा जाने लगा।[3] नारद ने कहा—पत्नी सहयोगिनी है, पुत्री एक प्रकार का कष्ट है और पुत्र सर्वोच्च स्वर्ग का आलोक है।[4] यज्ञो के कारण इस युग में पुत्र को असाधारण महत्त्व

---

१. केहवते विषे निबन्ध केहवत माला, पेहलो भाग (जमशेदजी नशरवानजी पीतीत); पृष्ठ ५८।

2. Women in Vedic Age by Shakuntala Rao Shastri, p. 41.

३. मिलाइये—

राजस्थानी कहावत "बेटो घर री जाझ है" अर्थात् पुत्र घर का जहाज है। राजस्थानी कहावतां, भाग दूसरो (स्वामी नरोत्तमदास और पं० मुरलीधर व्यास)।

4. Women in Vedic Age by Shakuntala Rao Shastri, p. 41.

दिया जाने लगा जिससे नारी-जीवन का क्षेत्र अपेक्षाकृत संकुचित हो गया।

पुत्र के कारण वंश-परम्परा चलती है और श्रद्धालु भारतीयो की दृष्टि में वह अपने मृत पूर्वजो की सुख-शान्ति मे भी सहायक होता है। यही कारण है कि पुरा काल से ही भारतीय समाज में पुत्री की अपेक्षा पुत्र को अधिक महत्त्व दिया जाता रहा है। **"एक मात्रा लाघव से वैयाकरणों को उतना ही आनन्द मिलता है जितना पुत्र-जन्म से"** यह कहावती उक्ति भी इसी तथ्य की ओर संकेत करती है।

राजस्थान में भी कन्या-जन्म के सम्बन्ध मे जो कहावते प्रचलित है, उनसे भी इसी धारणा की पुष्टि होती है। उदाहरण के लिए कुछ कहावते लीजिये—

(१) बेटी जायी रे जगनाथ ! ज्या रो हेठै आयो हाथ।

अर्थात् हे जगन्नाथ ! जिसने बेटी को जन्म दिया, उसका हाथ नीचे आ गया। कहने का तात्पर्य यह है कि बेटी के बाप को वर-पक्ष वालो से सदा दबकर ही चलना पड़ता है।

(२) बेटी जाम जमारो हार्‌यो।

अर्थात् पुत्री को जन्म देकर जीवन व्यर्थ ही खो दिया।

(३) **"बेटी भली न एक"** यह कहावती अश तो केवल राजस्थान मे ही नही, प्रायः उत्तरी भारतवर्ष में भी सर्वत्र प्रचलित है।

राजस्थान मे **"बेटी का बाप"** तो एक ऐसा कहावती पदाश ही बन गया है जिसका प्रयोग किसी व्यक्ति के हीन भाव को प्रकट करने के लिए होता है। सस्कृत सुभाषितकार के शब्दो में **"कन्यापितृत्वं खलु नाम कष्टम्"** अर्थात् कन्या का पिता होना एक अत्यन्त कष्टदायक वस्तु है। राजस्थान की एक कहावत मे कहा गया है **"कै जागै जैके घर में सांप, कै जागै बेटी को बाप"** अर्थात् या तो वह जगता है जिसके घर मे साँप रहता है या वह जगता है जो लडकी का पिता है। लड़की के पिता को सर्वदा चिन्तित रहना पडता है।

घर में जब पुत्र का जन्म होता है तो थाल बजाकर उसका स्वागत किया जाता है किन्तु लडकी के जन्म पर घर मे उदासी का वातावरण छा जाता है। लडके-लड़की के साथ व्यवहार करने में भी माता-पिता का प्रायः पक्षपात देखा जाता है जिसका अवश्यम्भावी परिणाम यह होता है कि लडकी भी तुच्छ भावना से आक्रान्त होकर अपने को नगण्य समझने लगती है।

इतिहास-प्रसिद्ध बात है कि राजपूतो के यहाँ जब लडकी पैदा होती थी तो उनमें से बहुत से निर्धन राजपूत पैदा होते ही उस लडकी को एक हँडिया मे रखकर उसके मुँह को भली प्रकार बन्द कर देते थे जिसमें दम घुट जाने के कारण लडकी की मृत्यु हो जाती थी। उस हँडिया को वे जगल में ले जाकर गाड़ दिया करते थे। इस प्रथा की ओर सकेत करने वाली निम्नलिखित राजस्थानी लोकोक्ति बड़ा गहरा प्रहार करती है—

"बाई जी पेट में सं तो नीकल्या पण हांडी में सं कोनी नीकल्या।"

अर्थात् माता के गर्भ से तो लड़की बाहर निकल आई किन्तु जब उसे हँडिया

में डाल दिया गया तो वह बाहर नही निकल सकी।

श्री युधिष्ठिर मीमांसक ने ब्राह्मण-ग्रन्थों से पता चलाया है कि कन्या को उत्पन्न होते ही उसे छोड देने की प्रथा का प्रारम्भ उस काल मे हो गया था।

"तस्मात् स्त्रियं जातां परास्यन्ति न पुमांसम् ॥" मै० सं० ४-६-४

उन्ही के शब्दो में इस प्रथा का अवशेष राजपूताने में अभी तक मिलता है। कई राजपूत कन्या को उत्पन्न होते ही गला घोटकर मार देते है।[1]

परिवार मे भी उस नारी का विशेष आदर होता है, जो पुत्र-प्रसविनी होती है, अथवा जिसकी संतति से वश चलने की सम्भावना रहती है। धर्मशास्त्र मे पौत्र और दौहित्र मे कुछ विशेष भेद नही माना गया है। पौत्र के समान दौहित्र भी पिण्ड-दान आदि द्वारा उद्धार करता है किन्तु फिर भी पौत्र की वधू दौहित्र की वधू से अच्छी लगती है। एक कहावत मे कहा गया है कि पौत्र-वधू की **'राबड़ी'**[2] भी मीठी और दौहित्र-वधू की खीर भी खट्टी लगती है।

"पोता भू की राबड़ी, दोयता भू की खीर।
मीठी लागै राबड़ी, खाटी लागै खीर॥"

पौत्र-वधू के प्रियतर होने का कारण यह है कि उससे अपना वंश चलता है, दौहित्र के लडके से अपना वश नही चलता।

(२) **पराधीनता**—भारतीय इतिहास मे कोई युग ऐसा था, जब नारी को अपना पति स्वयं वरण करने की स्वतन्त्रता थी, जब पुरुषो के समान ही उसे उपनयन, वेदाध्ययन आदि का अधिकार था; इतना ही नही, ऋग्वेद मे तो ऐसी बहुत-सी ऋचाएँ है जो स्त्रियो द्वारा निर्मित हैं। उपनिषद्-युग की गार्गी और मैत्रेयी जैसी स्त्रियाँ आध्यात्मिक वाद-विवाद मे सक्रिय भाग लिया करती थी और समाज में वे बड़े आदर और सम्मान की दृष्टि से देखी जाती थी किन्तु धीरे-धीरे समय ने पलटा खाया, नारी की स्थिति मे परिवर्तन होने लगा, क्रमशः वह पराधीनता की बेडियो में जकड दी गई। स्मृतियो के युग मे रजोदर्शन से पूर्व ही विवाह कर देने के सम्बन्ध मे कडे नियम बना दिये गये, धीरे-धीरे स्वयवर की प्रथा भी उठ चली, बाल-विवाह के कारण अध्ययन भी अत्यन्त सीमित हो गया, वेद-पाठ स्त्री के लिए निषिद्ध ठहरा दिया गया। घर ही अब उसका प्रमुख क्षेत्र रह गया, बाह्य संसार से उसका सम्बन्ध विच्छिन्न होने लगा। पुरुष का सामाजिक स्तर ऊँचा हो गया, स्त्री की स्वतन्त्रता जाती रही, जन्म से मरण पर्यन्त उसे **'रक्षणीया'** ठहरा दिया गया—

पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने।
पुत्रो रक्षति वार्धक्ये, न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति॥

अर्थात् कुमारावस्था मे पिता, यौवन में पति तथा वृद्धावस्था मे पुत्र स्त्री की रक्षा करता है; स्त्री स्वतत्र रहने के योग्य नही।

---

१. "सम्मेलन पत्रिका" भाग ३९ संख्या ४ में प्रकाशित "भारतीय संस्कृति में नारी" शीर्षक लेख; पृष्ठ ५१।

२. मोठ बाजरे के चून में छाछ डालकर जो एक पेय पदार्थ राजस्थान में तैयार किया जाता है, उसे "राबडी" कहते हैं।

किन्तु इतना होते हुए भी मनुस्मृति में **"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:"** जैसी उक्तियाँ हैं जिनसे पता चलता है कि उस युग में नारी के प्रति सम्मान की भावना का अभाव नही था।

जहाँ तक राजस्थानी कहावतों का सम्बन्ध है, उनमे राजस्थानी नारी की पराधीनता के चित्र ही विशेष अकित हुए है। इस प्रकार की कुछ कहावतें उदाहरण के लिए लीजिये—

(१) बेटी अर बलद जूड़ो कोनी गेर्‌यो।

अर्थात् बेटी और बैल हमेशा बन्धन में रहते है।

(२) दुनिया में दो गरीब है, कै बेटी, कै बैल।

अर्थात् दुनिया मे दो ही गरीब हैं, या तो बेटी या बैल जो हमेशा परतंत्र रहते है।

(३) गाय अर कन्या नै जिन्नै हाँक दे उन्नै ही चाल पड़ै।

अर्थात् गाय और कन्या को जिधर हाँक दिया जाय, उधर ही चल पडते हैं। गाय को उसका मालिक जिधर हाँक देता है, उधर ही उसको चलना पडता है। इसी प्रकार माता-पिता लडकी के सम्बन्ध मे जो निर्णय कर देते हैं, वही अन्तिम होता है। इस कहावत से तो ऐसा जान पड़ता है कि लडकी का दर्जा पशु से कुछ ऊपर नही समझा गया। विवाह जैसे महत्त्वपूर्ण मामले मे भी लडकी से कोई बात नही पूछी जाती। जिसके साथ लडकी को जीवन भर बिताना पडता है, उसके सम्बन्ध मे लडकी की पहले कोई जानकारी आवश्यक नही समझी जाती।

नारी की स्वतन्त्रता को कहावती दुनिया मे प्रशस्य नही ठहराया गया है। **"जिमि स्वतन्त्र होइ बिगरइ नारी"** की भावना ही निम्नलिखित राजस्थानी कहावतों में व्यक्त हुई है—

(१) मेरो मीयूँ घर नहीं, मनै किसी को डर नहीं।

अर्थात् मेरा पति घर नही, मुझे किसी का डर नही।

(२) मेरो साजन घर कोनी, मनै कोई को डर कोनी।

अर्थात् मेरा प्रिय घर नही, मुझे किसी का भय नही।

(३) जमी, जोरू जोर की, जोर हट्यां और की।

अर्थात् जमीन और स्त्री बलवान के ही वश में रहती है, बल हटने पर वे पराई हो जाती हैं।

(४) मूँ आगै नार, पीठ पीछै पराई।

अर्थात् मुँह के सामने स्त्री और पीठ पीछे पराई।

उक्त कहावतो को पढ़कर एक प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या नियंत्रण में रखे जाने पर ही नारी के शील और चारित्र्य की रक्षा सम्भव है? क्या यह सम्भव नहीं कि अत्यधिक नियंत्रण की प्रतिक्रिया स्वरूप ही नारी के मन में शृंखलाओं को तोड़ डालने की इच्छा होने लगती है?

एक राजस्थानी कहावत मे तो यहाँ तक कह दिया गया है—

"बेटी रहै आप सै नई तो रहै न सागी बाप सै" अर्थात् बेटी या तो स्वतः ही मर्यादा का पालन करती है, नही तो वह उच्छृंखल हो जाती है, अपने पिता के भी वश में वह नही रहती।

'मनुसंहिता' में भी एक इसी आशय की उक्ति उपलब्ध होती है—

"न कश्चिद्योषितः शक्तः प्रसह्य परिरक्षितुम्।
एतैरुपाययोगैस्तु शक्यास्ताः परिरक्षितुम्॥
अर्थस्य संग्रहे चैनां व्यये चैव नियोजयेत्।
शौचे धर्मेऽन्नपक्त्यां च पारिणाह्यस्य वेक्षणे॥"

—अध्याय ९, श्लोक १०-११

अर्थात् बल-प्रयोग द्वारा कोई भी स्त्री को वश में नही कर सकता। स्त्री सुरक्षित तभी रह सकती है जब उसे द्रव्य के सग्रह और व्यय मे, प्रत्येक वस्तु को स्वच्छ बनाये रखने में, धार्मिक कृत्यों के पालन करने, भोजन बनाने और घर के बर्तनो की देख-भाल मे लगा दिया जाय।

मनुस्मृति मे यथार्थ ही कहा गया है कि यदि स्त्री को निरन्तर गृह-कार्य आदि में संलग्न रखा जाय तो वह वशवर्तिनी रह सकेगी क्योकि उस हालत मे वह सभी प्रकार के प्रलोभनो से बच जायगी किन्तु चाहे जिस स्त्री को निरन्तर गृह-कार्यो में लगाये रखना भी सामान्यतः सम्भव नही होता। वस्तुत. जिस स्त्री के सस्कार अच्छे होंगे, वही घर मे भी सुव्यवस्था रख सकेगी तथा स्वय भी सब प्रकार की मर्यादाओं का पालन कर सकेगी। इसलिए राजस्थानी कहावतो मे इस बात पर जोर दिया गया है कि बहू अच्छे घराने की होनी चाहिए। निम्नलिखित राजस्थानी कहावत को लीजिये—

"भू घरियाणे की अर गाय न्याणे की" अर्थात् वधू अच्छे घराने की होनी चाहिए और गाय **'न्याणे'** वाली होनी चाहिए। दुहने के समय गाय के पिछले पैरों को जिस रस्सी से बाँधा जाता है, उस रस्सी को **'न्याणा'** कहते हैं। जिस प्रकार न्याणे के बिना गाय द्वारा लात-प्रहार का भय बना रहता है, उसी प्रकार यदि स्त्री कुलीन न हो तो उसके विपथगामिनी होने की आशंका बनी रहती है। वैसे एक कहावत में यह भी कहा गया है कि **"भू बछेरां डीकरां नीमटिया परवाण"** अर्थात् बहू, घोड़ों के बच्चों और बालकों के भले-बुरे का प्रमाण उनके वयस्क होने पर ही मिलता है किन्तु फिर भी सामान्यत: यह आशा की जा सकती है कि जो कुलीन होगा, वह अवस्था प्राप्त कर लेने पर भी जीवन में अच्छी तरह व्यवहार करेगा, और वधू के सुसंस्कार-सम्पन्न होने का तो यह और भी अच्छा परिणाम निकलेगा कि उसकी सतति के भी अच्छे संस्कार होगे।

कभी-कभी दहेज के लोभ में निकम्मी बहू को जब घर ले आते हैं तो कहा जाता है—

"दान दायजा बहगा, छाती फूटा रहगा।"

अर्थात् विवाह होने पर जब पुत्र-वधू घर मे आती है तो वही प्रशसनीय समझी जाती है जो अपने पति के अधीन तथा सास-ससुर की आज्ञाकारिणी हो। घर को छोड़कर भाग जाने वाली स्त्री को **"ऊदलती का किसा दायजा"** अर्थात् उच्छृखल का कैसा दहेज ? जैसी कहावतो में हेय ठहराया जाता गया है।

(३) **फूहड़ स्त्री**—फूहड स्त्री के सम्बन्ध में भी राजस्थान मे अनेक कहावतें कही गई हैं। उदाहरणार्थ कुछ कहावतें लीजिये—

(१) **फूड़ चाल्यां, नौ घर हाल्यां।**

अर्थात् फूहड जब चलती है तो नौ घरों तक उसका फूहडपन प्रकट हो जाता है।

(२) **फूड़ को मैल फागण में उतरै।**

अर्थात् फूहड का मैल फाल्गुन मे उतरता है, जाडे भर वह स्नान ही नही करती।

(३) **आयो चैत निवायो, फूड़ां मैल गँवायो।**

अर्थात् गरम चैत्र मास आया तो फूहड ने भी स्नान करके अपना मैल धोया। फूहड़ नहाये तो समझिये, गर्मी की ऋतु आ गई।

(४) **फूड की फेरां तांई उछल।**

अर्थात् भाँवर फिरने के समय भी फूहड भाँवर फिरने के लिए इन्कार तक कर सकती है।

(५) **राबड़ी में राख रांधै चून चाटै पीसती।**
देखो रै या फूड़ नार, चालै पल्ला घीसती॥

अर्थात् फूहड स्त्री राबडी के साथ-साथ राख उबाल लेती है, आटा पीसते समय चून चाटती रहती है और चलते समय पल्ला घसीटते हुए चलती है।

(६) **फूड करै सिणगार माँग ईंटां सूं फोडै।**

अर्थात् फूहड जब शृगार करती है तो माँग को ईंटो से फोडती है।

वर-पक्ष वाले विवाह के पहले जब लडकी को देखते है तो अन्य बातो के साथ-साथ इस बात की भी परीक्षा करते है कि लडकी सलीके वाली है या नही, व्यवहार-बर्ताव मे वह कैसी है, गृह-कार्य मे वह दक्ष है अथवा नही। और वधू जब घर में प्रवेश करती है तो अनुभवी सास तुरन्त जान लेती है कि यह चतुर है या फूहड। **"भू आई सासू हरखी, पगां लागी अर परखी"** अर्थात् यदि बहू चतुर हुई तो वह कायदे से पैर पडती है, फूहड की तरह नही। फूहड़ समाज में सभी द्वारा निन्दनीय समझी जाती है।

(४) **विधवा**—राजस्थानी समाज में विधवा एक प्रकार का सामाजिक अभिशाप मानी गई है। यात्रा के समय **"खुल्लै केसां नार"** अर्थात् विधवा का दर्शन अपशकुन में परिगणित किया गया है। विवाहादि मागलिक अवसरो पर हिन्दू-समाज में विधवा के लिए

कोई स्थान नहीं। वह यदि साज-शृंगार करे तो लोग उस पर अँगुलि उठाने लगते हैं, वह सन्देह की दृष्टि से देखी जाने लगती है। एक कहावत में तो स्पष्ट ही कहा गया है कि यदि विधवा अपने नेत्रों मे कज्जल की रेख देने लगे तो वह निश्चय ही अपने लिए नया पति ढूँढ लेगी, इसमे तनिक भी सन्देह नहीं।[1]

विधवा का जीवन त्याग और तपस्या का जीवन होना चाहिए, स्वादिष्ट और पुष्टिकर व्यजनो से उसे बचना चाहिए, अन्यथा कुपथ की ओर उसके पाँव बढ़ सकते है। इसीलिए राजस्थान की एक कहावत मे कहा गया है—

बैल, बैरागी, बोकड़ो, चौथी विधवा नार।
एता तो भूखा भला, धाया करे बगाड़॥[2]

अर्थात् बैल, बैरागी साधु, बकरा और विधवा स्त्री, ये चारो तो भूखे ही अच्छे हैं, तृप्त होने पर ये नुकसान पहुँचाते हैं।

किन्तु अब राजस्थान में भी शिक्षा की वृद्धि के साथ-साथ विधवा के प्रति लोगो की सहानुभूति बढ रही है।

(५) **लाडी**—विधवा का समाज मे जितना निरादर होता है, उतना ही आदर होता है उस स्त्री (लाडी) का जो दूज वर की पत्नी बनती है, जो पहली स्त्री की मृत्यु होने पर गृहिणी के पद को सुशोभित करती है। तत्सम्बन्धी कुछ कहावतें लीजिये—

(१) **दूजवर की गोरड़ी, हाथां परली मोरड़ी।**
दगड़ दगड़ खाऊँगी, बोलेगो तो मर ज्याऊँगी॥

अर्थात् दूजवर की स्त्री हाथ पर की मोरनी के समान है। उसकी इच्छा-पूर्ति में यदि बाधा डाली जाय तो वह आत्म-हत्या तक की धमकी देने लगती है।

(२) **दूजवर की गोरड़ी र मोत्यां बचली मोरड़ी।**

अर्थात् अधिक अवस्था वाले पुरुष के दूसरा विवाह करने पर वह उस स्त्री का विशेष आदर करता है।

नारी-सम्बन्धी कुछ कहावतो मे वृद्ध-विवाह पर यत्र-तत्र व्यग्योक्तियाँ मिलती हैं। वृद्ध पुरुष जब किसी बाला से विवाह करता है और जब वृद्ध के बच्चे उस बाला को 'मां' कहकर सम्बोधित करते हैं तो इस सम्बोधन से वह बाला भी सकोच में पड़ जाती है और कहने-सुनने वालों को भी वह सम्बोधन अखरता है। इसीलिए व्यंग्योक्ति के रूप मे एक कहावत प्रसिद्ध है—

"माजी ई माजी पण है तो पूणी ई तेरा बरस की।"

अर्थात् नाम को तो माता जी ही माता जी हैं पर अवस्था तो पौने तेरह वर्ष की ही है न!

---

१. तीतरपखी बादली, विधवा काजल रेख।
वा बरसै वा घर करै, ई में मीन न मेख॥

२. मेवाड़ की कहावतें, भाग १ (प० लक्ष्मीलाल जोशी); पृष्ठ १९७।

"होय रोकड़ा तो बींद परणै डोकरा" अर्थात् पास मे धन हो तो वृद्ध का भी विवाह हो जाता है, आदि उक्तियों से स्पष्ट है कि वृद्ध अपने धन के बल पर निर्धन कन्या को एक प्रकार से खरीद लेता है। जब किसी निर्धन की लड़की का धनी वृद्ध के साथ विवाह हो जाता है तो उस निर्धन की बडी आवभगत होने लगती है, दाल-भात उसे खाने को मिलने लगते हैं। इसीलिए एक कहावत मे कहा गया है—

"दाल भात लम्बा जीकारा।
ए बाई! परताप तुम्हारा॥

(६) **बड़ी बहू**—राजस्थान मे बाल-विवाह की प्रथा के कारण अनेक बार ऐसा भी होता है कि वर की अपेक्षा वधू बडी अवस्था वाली आ जाती है। इस सम्बन्ध में एक प्रसिद्ध कथावत कही जाती है—

"बड्डी भू का बडडा भाग, छोटो बनड़ो घणा सुहाग।"

अर्थात् वर यदि छोटा हो और बहू बडी हो तो बहू के वृद्ध होने पर भी वह युवा ही बना रहेगा, इसलिए वर की ओर से स्त्री को अपनी मृत्यु तक सौभाग्य प्राप्त होता रहेगा। यह उक्ति राजस्थान के बाल-विवाह के प्रेमियो पर चरितार्थ होती है।

किन्तु अब धीरे-धीरे वृद्ध-विवाह और बाल-विवाह बहुत कम हो रहे हैं।

(७) **सास-बहू**—सामान्यत. सास-बहू मे अच्छी तरह नही निभती। सास बहू पर अपना प्रभुत्व जमाये रखना चाहती है, बहू को यह सदा सह्य नही होता, इसलिए परस्पर अनबन के अनेक अवसर आ ही जाते हैं। राजस्थान मे एक सास के सम्बन्ध मे प्रसिद्ध है कि वह एक बार कुछ समय के लिए घर से बाहर गई हुई थी। घर मे बहू अकेली थी। एक भिखारिन द्वार पर आ खडी हुई। बहू ने उसे एक रोटी का टुकडा दे दिया। जब सास बाहर से चलकर अपने घर की ओर आ रही थी तो उसने भिखारिन को अपने घर से निकलते हुए देख लिया। पूछने पर मालूम हुआ कि बहू ने उसे रोटी का टुकडा दिया है। सास भिखारिन को घर के अन्दर ले आई और कहा—रोटी का टुकडा रख दे। फिर बहू के देखते अपने हाथ से सास ने वही रोटी का टुकडा भिखारिन को दे दिया और कहा कि अब तुम जा सकती हो। इस कथा में अतिरंजना का अश भले हो और अपवादस्वरूप ही चाहे इस प्रकार की घटना कभी घटित हुई हो किन्तु इस कहानी में बहू पर सास की प्रभुत्व-भावना साकार हो उठी है।

यही कारण है कि जब तक सास जीती है, बहू अपने आपको बन्धन में समझती है। सास की मृत्यु पर भी उसे वास्तविक दुःख नही होता, लोगो को दिखाने के लिए वह कृत्रिम दुःख भले ही प्रकट करे। निम्नलिखित कहावतों में यही भाव व्यक्त हुआ है—

१. सासू मरगी कटगी बेड़ी।
भू चढ़गी हर की पैड़ी॥

अर्थात् सास मर गई तो बहू के बन्धन कट गये। वह 'हर की पैडी' पर चढ़ गई।

२. आज मरी सासू, काल आया आँसू।

अर्थात् सासू आज मरी और आँसू कल आये!

किसी-किसी सास के अत्याचार जब चरम सीमा पर पहुँच जाते हैं तो बहू घर छोडकर निकल जाती है। इसीलिए एक कहावत में तो कहा गया है—

"बहू करे सो करवादो ने बेटा रो घर मंडवावो।"[1]

अर्थात् सास को चाहिए कि वह बहू से अधिक लडे-झगडे नही, बहू यदि घर छोडकर निकल जायेगी तो पुत्र का घर बिखर जायगा।

यद्यपि यह सत्य है कि सास भी सब इकसार नही हुआ करती किन्तु वधू के प्रति सास के अत्याचारो ने कहावती ख्याति प्राप्त करली है। राजस्थान मे तो इस सम्बन्ध में एक कहावत ही बन गई—

"सासरी ने बऊ बिचारी।"[2]

अर्थात् सास-बहू को तकलीफ दे या न दे सास हमेशा बदनाम होती है और बहू सदा गरीब समझी जाती है।

गृह-स्वामिनी के अधिकार को सास छोडना नही चाहती और बहू उस अधिकार को प्राप्त करना चाहती है। अपने वधू-काल में सास जिन अधिकारो से वंचित रही थी, उस काल का स्मरण करके भी वह अधिकारो से चिपटे रहना चाहती है। प्रभुत्व प्राप्त करने से व्यक्ति के अहं की तृप्ति होती है। यह प्रभुत्व-भावना ही सास-बहू के सघर्ष का मुख्य कारण जान पडती है।

(८) नारी-सम्बन्धी धारणाएँ—राजस्थान में नारी के सम्बन्ध में जो कहावतें प्रचलित हैं, उनसे नारी के प्रति किसी ऊँची भावना का पता नही चलता। उदाहरणार्थ कुछ कहावतें लीजिये—

१. लुगाई री अकल खुडी में हुया करै।

अर्थात् स्त्री की बुद्धि एडी मे हुआ करती है। वह कम अक्लवाली होती है।

२. लुगाई तो पगरखी की नई है।

तात्पर्य यह है कि पहली स्त्री की मृत्यु के बाद दूसरी से उसी आसानी से शादी करली जाती है जिस प्रकार एक जूतो की जोडी टूट जाने पर उसके बदले दूसरी खरीद ली जाती है।

३. गाडा को फाचरो 'र लगाई को चाचरो कूट्योड़ो ही चोखो।

अर्थात् गाडी के फाचर और स्त्री के सिर को जितना कूटा जाय, उतना ही अच्छा। फाचर से तात्पर्य उस काठ की कील से है जो पहिये में ठोकी जाती है।

---

१. मेवाड़ की कहावतें, पहला भाग (पंडित लक्ष्मीलाल जोशी); पृष्ठ ६१

२. वही, पृष्ठ ६५।

'ढोल गँवार शूद्र पशु नारी' मे जो भावना व्यक्त हुई है, वह उक्त लोकोक्ति मे भी देखी जा सकती है।

४. **घर मे बेटी नीकली चाहे जम ल्यो चाहे जवाई ल्यो ।**

अर्थात् बेटी जब घर से निकल गई तो चाहे वह यम के घर जाय, चाहे जामाता के यहाँ रहे !!

५. **छोटी मोटी कामणी सगली बिस की बेल ।**

अर्थात् छोटी-मोटी कामिनी, सभी विष की बेल है।

६. **तिरियाँ, तुरकाँ, वाणियाँ भील भला मत जाण ।**
देख गरीब न भूल जे, निपट कपट की खाण ॥[1]

नारी सम्बन्धी इस प्रकार की धारणाएँ केवल राजस्थान मे ही नही, अन्य राज्यो में भी मिलती हैं।

(६) **आदर्श नारी**—राजस्थान में नारी के सम्बन्ध में जो उक्तियाँ प्रचलित हैं उन्हे हम दो भागो में बाँट सकते हैं—(१) कुछ उक्तियाँ तो ऐसी हैं जो सामान्य लोगो में प्रचलित है और जिनमे नारी के सम्बन्ध मे परम्परा-भुक्त प्रतिक्रियावादी विचार-धारा ही प्रतिबिम्बित हुई है। (२) दूसरे प्रकार की उक्तियाँ वे हैं जो साहित्यिक व्यक्तियो मे अधिक प्रचलित है तथा वीररसात्मक साहित्य से जिनका घनिष्ठ सम्बन्ध है। ऐसी उक्तियो में हमे राजस्थानी वीरागना के भव्य दर्शन होते है। "बीरबानी" शब्द राजस्थान में स्त्री के पर्याय के रूप में प्रचलित है। सम्भव है वीर-प्रसविनी अथवा वीर को वरण करने वाली होने के कारण ही यह शब्द राजस्थान मे प्रचलित हुआ हो।

वैदिक साहित्य मे भी एक शब्द मिलता है "वीरिणी" जो वीरबानी के समकक्ष रखा जा सकता है। "**वीरिणी**" शब्द का अर्थ है वीरो को जन्म देने वाली। वीर-प्रसविनी नारी के आदर्श का उल्लेख वेदो में भी हुआ है। इन्द्राणी अपने आपको '**वीरिणी**' कहने में गौरव का अनुभव करती है।[2]

आदर्श की दृष्टि से राजस्थान मे '**कूख बंकी गोरिया**' कहकर उस नारी की प्रशंसा की गई है जो वीर-प्रसविनी हो। इस प्रदेश मे अनेक ऐसी वीरांगनाओं के उदाहरण मिलते है जिन्होने अपने निर्मल चरित्र द्वारा पीहर और ससुराल दोनों पक्षो को उज्ज्वल कर अक्षय कीर्ति प्राप्त की थी। यद्यपि राजस्थान की कहावतो में नारी को विष की बेल बतलाया गया है किन्तु एक कहावत में उसी नारी को '**नर की खान**' कहा गया है। नारी यदि पुत्र प्रसव करे तो वह या तो शूरवीर को जन्म दे अथवा दानी को; अन्यथा उसे अपना नूर नही गँवाना चाहिए, उसका वन्ध्या रहना ही अच्छा है। निम्नलिखित कहावती दोहा राजस्थान में सर्वत्र प्रसिद्ध है—

"जननी जणे तो दोय जण, के दाता के सूर ।
नीतर रहजे बांझड़ी, मती गंवावे नूर ॥

---

१. अर्थ स्पष्ट है।

1. Women in the Vedas by Dr. A. C. Bose (Prabudha Bharata, Holy mother, Birth Centenary Number, 1945); p. 161.

राजस्थान की वीर बालाओ ने जो शौर्य दिखलाया है, उससे इतिहास के पृष्ठ भरे पड़े है। किस प्रकार वीर माता अपने पुत्र को पलने में ही मृत्यु का गौरव सिखलाया करती थी, इसके सम्बन्ध में राजस्थान के अमर कवि श्री सूर्यमल्ल मिश्रण का निम्नलिखित दोहा लोकोक्ति की भाँति प्रचलित है—

इला न देणी आपणी, हालरिये हुलराय।
पूत सिखावै पालणै, मरण बड़ाई माय॥

'अपनी पृथ्वी किसी को नही देनी चाहिए' इस भाव के झूले के गीतों के साथ झुलाती हुई पलने मे ही माता पुत्र को रणागण मे मृत्यु की महत्ता सिखा देती है।

पति की मृत्यु होने पर किस प्रकार क्षत्रिय-बालाओं ने अपने आपको अग्नि-देव के समर्पित कर दिया था, इसे इतिहास के पाठक भली भाँति जानते हैं। ये क्षत्रिय-बालाएँ एक प्रकार से अग्नि-बालाएँ हुआ करती थी जो अग्नि-देवता की गोद मे उसी प्रकार आश्वस्त होकर चली जाया करती थी जिस प्रकार लड़की अपनी माता की गोद में चली जाती है।

अमर सुहाग लेकर क्षत्रिय-बाला इस धरा-धाम पर अवतीर्ण होती थी। वह कभी वैधव्य का दु.ख नही भोगती थी क्योकि उसे विश्वास था कि सती होने पर वह स्वर्ग-लोक मे अपने पति के साथ अनन्त काल तक आनन्द का उपभोग करती रहेगी। इसीलिए कहा गया है **"रावत जायी डीकरी सदा सुहागण होय"** अर्थात् क्षत्रिय-बाला सदा सुहागिन रहती है।

रात्रि-जागरण के अवसर पर जो गीत राजस्थान मे गाये जाते हैं, उनमे जैतलदे जैसी नारी को आदर्श के रूप में ग्रहण किया गया है—

"जायो जायो रै जैतलदे सी धीव,
नाम निकाल्यो आपकै बाप को जी।"

अर्थात् जैतलदे-जैसी दुहिता उत्पन्न करना जिसने अपने पिता के नाम को उज्ज्वल किया।

लोकगीतों में प्रसिद्ध सजना जैसी नारियो ने वही काम कर दिखलाया था जो कोई भी वीर पुत्र कर सकता है। इसीलिए राजस्थान में तो एक कहावत ही प्रचलित हो गई—

कांइज न्याऊ डीकरी, कांइज आछो पूत।
कूख सिलायां पूत है, नहीं मूंत को मूंत॥

अर्थात् पुत्री का होना क्या बुरा और पुत्र का होना क्या अच्छा? जिस पुत्र को जन्म देकर माता अपने को धन्य समझे, जो उसकी कोख को शीतल करे, वही पुत्र कहलाने का अधिकारी है अन्यथा ऐसे पुत्र का न होना ही अच्छा।

राजस्थानी साहित्य में नारी के जिस आदर्श की प्रतिष्ठा हुई है, वह चित्त को मुग्ध कर लेता है। मारवणी की महिमा के सम्बन्ध में कही हुई नीचे की उक्ति अनुपम है—

गति गंगा, मति सरसुती, सीता सील सुभाइ।
महिलां सरहर मारुवी, कलि में अवर न काइ॥

अर्थात् गति में गगा के समान, मति में सरस्वती के समान और शील स्वभाव में सीता के समान मरुदेश की महिला की बराबरी करने वाली इस कलि काल मे कोई नही।

(ग) अन्य सामाजिक कहावतें

राजस्थान की नारी तथा जाति-सम्बन्धी कहावतो पर पहले विचार किया जा चुका है। सामाजिक जीवन के अध्ययन के लिए ये कहावते अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है किन्तु इनके अतिरिक्त भी अन्य अनेक कहावते राजस्थानी भाषा मे प्रचलित है जिनसे यहाँ के सामाजिक जीवन पर अच्छा प्रकाश पडता है।

१. **त्यौहार**—वैसे तो समस्त भारतवर्ष मे ही बहुत से त्यौहार मनाये जाते है किन्तु राजस्थान में त्यौहारो की सख्या अपेक्षाकृत और भी अधिक है जैसा कि यहाँ की प्रचलित लोकोक्ति "**सात बार नौ त्योहार**" से जान पड़ता है। सप्ताह मे जहाँ दिनो की संख्या सात है, वहाँ त्यौहारो की सख्या यहाँ नौ है। इस उक्ति मे किंचित् अतिरजना का तत्त्व भले ही हो, किन्तु फिर भी त्यौहारो की अधिकता पर इसके द्वारा अच्छा प्रकाश पडता है।

राजस्थान से सम्बन्ध रखने वाली कुछ लोकोक्तियाँ लीजिये—

(१) **गणगोर्यां नै ही घोड़ा न दौड़ै तो कद दौड़ै।**

गणगौर के दिन ही यदि घोडे न दौडेगे तो कब दौडेगे ?

गणगौर राजस्थान का एक महत्त्वपूर्ण त्यौहार है। उपयुक्त पति की प्राप्ति के लिए यह त्यौहार विशेषत: कन्याओ द्वारा मनाया जाता है। होली जलने के दूसरे दिन से ही वे गौरी की पूजा करने लगती है और यह गोरी-पूजन चैत्र शुक्ला चतुर्थी तक चलता है। चैत्र शुक्ला तृतीया और चतुर्थी को मेले भरते है जिनमे 'गवर' की सवारी किसी जलाशय पर ले जायी जाती है। प्राय: राजा-महाराजा तथा सरदार लोग भी इन सवारियो मे सम्मिलित होते है।

(२) **तीज त्युहारां बावड़ी, ले डूबी गणगोर।**

श्रावणी तीज के बाद त्यौहार जल्दी-जल्दी आते हैं, गणगौर के बाद चार महीनों तक त्यौहार नही आते।

(३) **कसी कवाड़ा वच रे बाबा ! धम्मोली धसकाय दे।**

हे बाबा ! कसी, कवाड़ा बेचकर भी मेरे लिए '**धम्मोली**' का प्रबन्ध कर ही दे।

तीजों के त्यौहारों का राजस्थान में बड़ा महत्त्व है। यह इस प्रदेश का सबसे प्यारा त्यौहार है। तीज को स्त्रियाँ व्रत रखती हैं और चन्द्र-दर्शन के बाद फल, सत्तू आदि खाती हैं। दूज की रात को अनिवार्य रूप से गृहस्थ बहिन-बेटियों के लिए मिठाई मँगवाकर उन्हे देते है। उक्त कहावत में बेटी बाप से जिद करके कह रही है कि

पिताजी ! चाहे आपको औजार बेचना पडे तब भी मेरे लिए मिठाई तो मँगवानी ही पड़ेगी ।[1]

(४) तीजां पाछै तीजड़ी, होली पाछै ढूँढ ।
फेरां पाछै चूनड़ी, मार कसम कै मूँड ॥

तीज के त्यौहार के बाद यदि कोई वस्त्रादि भेजे, होली बीत चुकने पर यदि होली के उपलक्ष्य मे कोई चीज भेजी जाय, भाँवर फिर लेने के बाद यदि चुनरी भेजी जाय तो सब व्यर्थ है ।

(५) आडै दिन सै बास्योड़ो ही चोखो ।

सामान्य दिन की अपेक्षा शीतला-पूजन का दिन ही श्रेष्ठ है जिससे मीठा तो खाने को मिले । शीतलाष्टमी के दिन यद्यपि ठण्डा भोजन किया जाता है किन्तु फिर भी पहले दिन तैयार किए हुए अनेक प्रकार के भोज्य-पदार्थ खाने को मिलते है ।

इस प्रकार की कहावतो से राजस्थान के सामाजिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाली अनेक उपयोगी सूचनाएँ प्राप्त होती हे ।

२. **विवाह**—**"तिरिया तेरा, मरद अठारा"** यहाँ की एक कहावत है जिसके अनुसार स्त्री तेरह वर्ष तथा पुरुष अठारह वर्ष की अवस्था मे विवाह-योग्य होते है ।

जैसा पहले कहा जा चुका है, कुछ वर्षों पहले राजस्थान में बाल-विवाह की प्रथा जोरो पर थी और **'छोटे बनड़े'** की प्रशसा के गीत गाते हुए यहाँ की स्त्रियाँ अघाती नही थी किन्तु अब शिक्षा के प्रभाव से उच्च जातियों मे बाल-विवाह के विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई है और विवाह अपेक्षाकृत बडी अवस्था में होने लगे है ।

राजस्थानी भाषा में अनेक कहावते ऐसी है जो वृद्ध विवाह पर व्यंग्योक्तियों का काम देती है । एक कहावत में कहा गया है **'बाबोजी घोर जोगा, बीबीजी सेज जोगा'** अर्थात् नव वधू जब सेज के योग्य है तो बाबाजी (वृद्ध पुरुष) कब्र के योग्य हैं । इस प्रकार के अनमेल विवाह मे स्त्री के लिए किसी भी क्षण विधवा हो जाने की आशंका बनी रहती है ।

राजस्थानी कहावतों में बहुपत्नीत्व को भी हेय ठहराया गया है । उदाहरणार्थ एक कहावत लीजिए—

"दो ववां रो वर चूल्हो फूँकै ।"

अर्थात् दो स्त्रियों का पति चूल्हा फूँकता है ।

विवाह-सम्बन्धी कुछ रीति-रिवाजो को लेकर भी राजस्थान में कहावतें प्रचलित हुई है । 'मारवाड़ मे बीद के सिर पर दही लगाने का आम दस्तूर है और जो कोई जमाई नालायक निकल जाता है तो सास उसको यह ताना देती है कि **'तूने भला मेरा दही लजाया'** । 'दही लजाना' भी एक मुहावरा है ।'

जैसे वर की माता उसे दूध पिलाती है, वैसे ही विवाह के अवसर पर सास जमाई के माथे पर हथेली से दही चिपका देती है अर्थात् उसे अपनी कन्या का वर मान लेती है । यही तथ्य **"दही री बात सही"** इस लोकोक्ति द्वारा प्रकट हुआ है ।

---

१. राजस्थानी कहावतां (स्वामी नरोत्तमदास और पंडित मुरलीधर व्यास), भाग पहला; पृष्ठ ६७

'राजपूतो में दही कनात की आड़ से लगाया जाता है क्योकि सास जमाई से परदा करती है और कभी उसके सामने नही होती, और जो कदाचित् 'रात-बिरात' सामने होती भी है तो अपने को जाहिर नही करती। सालियो और सहेलियो में छुप कर आती और बैठती है। इसलिए **"रात काली ने सासू साली"** का ओखाणा है।

बीदणी के तेल चढ़ाने का दस्तूर बीद के आ जाने पर किया जाता है क्योकि तेल चढ़ी हुई लड़की बैठी नही रहती। जो तेल चढ़े पीछे सावे पर बीद नही आवे या कोई हरज मरज हो जाये तो उस वक्त बड़ी मुश्किल पड़ती है और लाचारी क साथ उसका विवाह किसी दूसरे आदमी के साथ करना पडता है। **"तिरिया तेल हमीर हठ चढ़े न दूजी बार"** की मसल मशहूर ही है

"चौथे फेरे धी हुई पराई" स्त्रियो द्वारा विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों का एक टुकड़ा है जिसका तात्पर्य यह है कि चौथे फेरे मे बेटी पराई हो जाती है।

राजपूतों के यहाँ विवाह मे जब 'त्याग' दिया जाता है तो ढोल बजता है और इधर-उधर से बहुत आदमी जमा हो जाते है। उस वक्त चारण लोग बारबार निम्न-लिखित कहावती दोहा पढते है।

"कंकण बंधण रण चढण, पुत्र बधाई चाव।
तीन दिवस ये त्याग रा, कूण रंक कुण राव॥[1]

अर्थात् विवाह के अवसर पर ककन बँधते समय, युद्धार्थ चढते समय और पुत्र-जन्म की बधाई के चाव के समय तो सभी द्रव्य लुटाते है, चाहे कोई राजा हो अथवा रक हो।

३. **सयुक्त कुटुम्ब**—सयुक्त कुटुम्ब की पद्धति इस प्रदेश की विशेषता रही है। निम्नलिखित कहावत सयुक्त कुटुम्ब को लक्ष्य मे रखकर ही कही गई जान पडती है।

"बंधी भारी लाख की, खुल्ली बीखर ज्याय।"

अभिप्राय यह है कि संयुक्त परिवार मे रहने से प्रतिष्ठा बनी रहती है, भाइयों के अलग-अलग हो जाने से इज्जत जाती रहती है।

किन्तु शहरो में प्रायः देखा जाता है कि संयुक्त कुटुम्ब में रहकर निर्वाह करना कठिन हो जाता है। इसीलिए एक अन्य राजस्थानी कहावत में कहा गया है—

"कलकत्तै रो धारो, बाप सूं बेटो न्यारो।"

अर्थात् कलकत्ते की यही प्रथा है कि पिता से पुत्र अलग हो जाता है।

वाल गीता का एक टुकड़ा ह जिसका तात्पय यह ह कि चाथ फर म बटा पराइ हा जाती है।

र माणसियो दो होय हैं" अर्थात् एक तो होता है मिनख अथवा मनुष्य, और दूसरा होता है **"माणसिया"**। इन दोनों में बडा अन्तर है, दोनों को एक ही समझने की भूल नही करनी चाहिए। **"माणसिया"** तथाकथित मनुष्य के लिए एक तुच्छता-व्यजक शब्द है। जो शूरवीर नही, वह मनुष्य वस्तुतः अधूरा है। उसे पूरा मनुष्य कैसे कहा जा सकता है ?

जो वीर पुरुष होते है, वे हाय-हाय नही करते, देश और धर्म की रक्षा के लिए अपने प्राणों का बलिदान कर देते है।

ईसरदासजी की निम्नलिखित पक्तियाँ राजस्थान मे कहावत की भाँति प्रयुक्त होती है—

"मरदां मरणो हक्क है, उबरसी गल्लांह।
सापुरसां रा जीवणा थोड़ा ही भल्लाह ॥"[1]

जो वीर पुरुष किसी सन्निमित्त के लिए अपना प्राणोत्सर्ग कर देते है, उसके कारण ससार मे उनका नाम अमर हो जाता है। सत्पुरुषो का थोडा ही जीना अच्छा है।

५. **प्रतिज्ञा-पालन**—प्रतिज्ञा-पालन अथवा वचन-रक्षा राजस्थानी संस्कृति का प्राण है। जो अपनी प्रतिज्ञा से टल गया, उसका जीवन ही व्यर्थ गया।[2] **"वचन और बाप** एक होते है।" राजस्थान की एक प्रसिद्ध लोकोक्ति है जिसका प्रयोग पाबूजी तथा निहालदे सुलतान के पवाडो में भी अनेक बार हुआ है। कुछ उदाहरण लीजिए।

"बाप वचन तो होवै छै मरदां रा जुग में एक।
कोइ सीस तो कटवावै रै पिण वाचा जुग में ना तजै ॥"[3]

मर्दो के बाप और वचन तो ससार मे एक ही होते है, वे अपना सिर दे देते है, किन्तु दिये हुए वचन का उल्लघन कभी नही करते। वाल्मीकि के राम ने भी वचनबद्धता के गौरव को प्रकट करते हुए कहा था, **"रामो द्विर्नाभिभाषते"** अर्थात् राम दो बार नही कहता। एक बार जो कह दिया, वह कह दिया, उसे वह बदलता नही, उससे वह हटता नही।

राजस्थान मे प्रतिज्ञा करने वाला कहा करता है कि यदि मैं अपने वचन से चूक जाऊँ तो मुझे पापी ठहराया जाय, मैं खडा-खडा सूख जाऊँ और धोबी के कुण्ड में ककड होकर गिरूँ। नानडिये ने गोरखनाथजी के समक्ष प्रतिज्ञा करते समय यही कहा था—

"वाचा चूकूं उबो सूकूं लागै हत्या पाप।
कोई धोबी की कूंड में रै कंकरिये होकी मैं पड़ूं ॥"[4]

---

१. पाठान्तर : "सापुरसां रा जीवणा थोडा ही फरमाया।"

२. जबान हारी जिकै जिलम हार्‌यो।

३. चौपड को पवाड़ो, पृष्ठ ७। श्री गणपति स्वामी द्वारा संगृहीत और बिड़ला सेंट्रल लाइब्रेरी के सौजन्य से प्राप्त।

४. नानड़ियो को पवाड़ो; पृष्ठ ३१।

"**वचन और बाप**" एक होते हैं, इस लोकोक्ति का निहालदे सुलतान के पवाड़ों में भी अनेक बार प्रयोग हुआ है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित गीत लीजिये—

"जद बी यो मघपत जिस दिन कह रह्या।
म्हारी एक बी सुणो ना बी बेटी मेरो जाब॥
केला बी गढ़ को हे बेटी गढ़पती।
जाणें छोटो मैं कोन्या कोटड़ियो सिरदार॥
करी पे सगाई हे बेटी कमधजराव कैं।
बो बी करें भाजणा मेरा खार॥
वचन बाप भी हे बेटी दुनिया में एक है।
कय्यां नट ज्याऊँबी मुसकल मनें मंड ज्याय॥"[1]

निहालदे का पिता मघपत उसे कह रहा है कि हे पुत्री! मेरी बात सुनो। मैं कोई छोटे सरदारों मे नहीं, केलागढ का गढाधीश हूँ। मैंने कमधजराव से तेरी सगाई करदी है, मैं अपने वचन से अब कैसे फिर जाऊँ? वह भी मुझे बुरी तरह आड़े हाथो लेगा और फिर हे पुत्री! वचन और बाप तो दुनिया मे एक होते है। जो अपने दिये हुए वचन का पालन नही करता, वह असली पिता का पुत्र नही। मैं कैसे इन्कार कर दूँ? सोच तो सही, मुझे कितनी बड़ी कठिनाइयो का सामना करना पडेगा?

६. **अतिथि-सत्कार**—एक प्रसिद्ध नीति-वचन के अनुसार अतिथि जिसके घर से निराश होकर लौट जाता है, वह गृह-स्वामी को दुष्कृत का भागी बनाकर स्वय पुण्य लेकर चला जाता है इसलिए भारतीयो ने अतिथि-सत्कार को न केवल आदर की दृष्टि से देखा है बल्कि अतिथि के प्रति भारतीय गृहस्थो के मन मे एक प्रकार की धर्म-बुद्धि भी देखी जाती है। आर्थिक सघर्ष की जटिलता तथा सकुलता के कारण यद्यपि इस युग में पहले जैसी बात तो नही रही किन्तु फिर भी राजस्थान में और विशेषतः यहाँ के गाँवो मे अतिथि-सत्कार का अच्छा रूप दृष्टिगोचर होता है।

अतिथि-सत्कार राजस्थानी संस्कृति की एक प्रमुख विशेषता रही है। घर पर आये हुए शत्रु का भी सम्मान करना यहाँ प्रशस्य ठहराया गया है। "**घर आयो बैरी ई पांमणो**" यहाँ की एक प्रसिद्ध कहावत है जिसका तात्पर्य यह है कि घर पर आया हुआ शत्रु भी मेहमान होता है।

७. **सम्बन्ध**—पारिवारिक जीवन में सम्बन्धी परस्पर किस प्रकार व्यवहार करते है अथवा कौनसा व्यवहार आदर्श समझा जाता है आदि के विषय मे अनेक उपयोगी सकेत राजस्थानी कहावतों मे उपलब्ध होते है जिनका यहाँ दिग्दर्शन मात्र कराया जा रहा है।

विवाहादि द्वारा समर्थ को अपना समबन्धी बनाना चाहिए जिससे समय-समय पर वह हमारे लिए उपयोगी सिद्ध हो सके।

---

१. बिड़ला सेंटूल लाइब्रेरी की पांडुलिपि से साभार उद्धृत।

सगो समरथ कीजिये, जद तद आवे काज ।

ससुराल को सुख का निवास-स्थान कहा गया है पर वहाँ बहुत दिनो तक रहने से अनादर होने लगता है। जामाता यदि दूर रहे तो वह फूल सदृश समझा जाता है। उसका बडा लाड-चाव होता है और वह भारस्वरूप नही जान पडता। यदि वह उसी गाँव मे रहने वाला हो तो उसका आदर घट जाता है और यदि जँवाई घर में ही रहने लग जाय तो वह गधे जैसा समझा जाता है और उससे चाहे जितना काम लिया जा सकता है।

दूर जवाई फूल बरोबर, गाँव जवाई आदो ।
घर जंवाई गधे बरोबर, चाये जितणो लादो ॥[1]

एक व्यक्ति ससुराल गया और वहाँ उसने दो महीने रहने की इच्छा प्रकट की। साले ने कहा कि यहाँ तो दो-चार दिन की आवभगत होगी। उसके बाद आपको भी दाव हाथ मे लेकर घास काटना होगा।

सासरो सुख वातरो, पण च्यार दिनां रो आसरो ।
रैसां मास दो मास, देसां दाती वढ़ासां घास ।

एक कहावत मे कहा गया है कि साले के बिना ससुराल किसी काम का नही[2] इसका मुख्य कारण सम्भवतः यही है कि साले से ससुराल मे वश-वृद्धि की आशा बनी रहती है।

अब अपने घर के कुछ सम्बन्धियो को लीजिये। बडा भाई पिता के समान माना गया है।[3] भाइयों के सम्बन्ध में कहा गया है कि उन जैसे प्रिय भी नही और उन जैसे दुश्मन भी नही।

भायां सरीसा सेंण नहीं ने भांया सरीसा दुश्मण नहीं ।[4]

जिस प्रकार ससुराल में रहने वाले जामाता की प्रतिष्ठा नही होती, उसी प्रकार यदि बहन के घर भाई रहने लग जाय तो उसका भी वहाँ अनादर होने लगता है।[5] भाई से तो बहिन को हमेशा कुछ प्राप्ति की ही आशा रहती है जैसा कि नीचे की कहावत से प्रकट होता है—

होत की भाण अणहोत को भाई ।

अर्थात् यदि किसी के पास धन होता है तब तो वह किसी को बहिन बनाता है और यदि स्त्री के पास कुछ नही होता तो दूसरे को अपना भाई बनाती है।

ज्येष्ठ पुत्र के सम्बन्ध मे कहा गया है कि वह भाग्य से ही मिलता है—

---

१. मिलाइये :

गढ बैरी अर केहरी, सगो जंवाई धी ।
इतणा तो अलगा भला, जद सुख पावै जी ॥

२. साले बिना बयां को सासरो ?

३. जेठो भ्राता पिता समो ।

४. मारवाडा रा ओखाणा, पृष्ठ ५७ ।

५. भाण कै घर भाई अर सासरै जंवाई ।

जेठा बेटा र जेठा बाजरा राम दे तो पावै ।

पहले-पहल का लडका और ज्येष्ठ मास में बढ़ा हुआ बाजरा ईश्वर के अनुग्रह से ही प्राप्त होता है ।

एक अन्य कहावत मे बड़े लड़के को भाई के बराबर भी कहा गया है ।[1]

बेटे से पोता अधिक प्रिय होता है, यह तथ्य "मूल से ब्याज प्यारो" द्वारा प्रकट किया गया है ।

ब्रूआ को सामान्यतः प्राप्ति ही होती है किन्तु उसे लेने के साथ-साथ किसी को कुछ देना भी चाहिए, केवल लेना ही ठीक नही । इसलिए एक कहावत मे कहा गया है कि ब्रूआ के बहाने से लेना चाहिए और यह मेरी भतीजी है, यह समझकर देना भी चाहिए ।[2]

एक कहावत के अनुसार ननद से भी अधिक माहात्म्य जेठ की लड़की का माना जाता है । ननद के भोजन कराने मे जितना पुण्य है, उतना जेठ की लड़की के आंगन में पैर रखने पर हो जाता है ।[3]

सपत्नी तो यदि कच्चे चून की भी हो तो भी उसे बुरा बतलाया गया है ।[4] सौत को सौत किसी भी हालत मे नही सुहाती ।

माता की मृत्यु होने पर पिता यदि दूसरी स्त्री ले आये तो सौतेली माता के आने पर पिता का पुत्र पर स्नेह बहुत कम हो जाता है ।[5]

८. **भोज्य और पेय पदार्थ**—भोज्य पदार्थों मे खीर हलुए का भोजन अच्छा माना जाता है ।[6] श्राद्ध-पक्ष के बाद नवरात्र करने वाले ब्राह्मण आनन्द से खीर जलेबी उड़ाते है ।[7] जहाँ मूसल से चूरमा कूटा जा रहा हो, वहाँ कुशल-क्षेम का राज्य समझना चाहिए ।[8] एक साहूकार भगवान से प्रार्थना करते हुए कह रहा है—**"घी सक्कर अर दूध के ऊपर पप्पड़ा"** अर्थात् हे परमेश्वर ! मुझे घी व शक्कर और मलाई से परिपूर्ण दूध खाने को मिले । निर्धन व्यक्ति के मन मे भी गुलगुले खाने की इच्छा होती है किन्तु गुड तेल आदि वह जुटा नही पाता । निम्नलिखित कहावत में एक साधनहीन स्त्री इस प्रकार अपना दुखड़ा रो रही है—

---

१. जेठा बेटा भाई बराबर ।

२. भुवा मिस लिए अर भतीजी मिस दिये ।

३. "नणद जिमाई, जेठौती आंगण आई । राजस्थानी रनिवास (श्री राहुल साकृत्यायन) पृ० १०५ ।

४. सोक तो काचै चून की भी बुरी ।

५. बाप गयो मांई सूं, मांचो गयो बांई सूं ।

६. खाबो खीर को र बाबो तीर को ।
खाबो सीर को र मिलबो वीरा को ॥

७. गया कनागत आई देवी ।
बामण जीमै खीर जलेवी ॥

८. जठे पड़ै मूसल, उठे ही खेम कूसल ।

'गुड़ कोनी गुलगुला करती, ल्याती तेल उधारो।
परींडे में पाणी कोनी, बल्तो कोनी न्यारो।
कड़ायो तो माँग कर ल्याती पण आटा को दुख न्यारो।'

गुड़ नहीं है, अन्यथा गुलगुला बनाती। तेल तो किसी से उधार ही माँग लाती। घर के जलागार मे पानी नही है, ईधन भी मै कही से जुटा नही पाई हूँ। कडाह तो माँगकर ही ले आती किन्तु आटे का रोना अलग ही है। जब पास में कुछ भी नही है तो वह गुलगुले बनायेगी क्या खाक !

गेहूँ के चून मे सिर्फ गुड या चीनी मिलाकर बिना घृत के जो लड्डू बनाये जाते है, वे बूर के लड्डू कहलाते है। उनको खाने वाला भी पछताता है क्योकि उनमें घृतादि के अभाव के कारण स्वाद नही होता। न खाने वाला इसलिए पछताता है कि न जाने वे कितने स्वादिष्ट होगे। कही-कही बुरादा भी इन लड्डुओ मे मिला दिया जाता है। इसीलिए एक कहावत मे कहा गया है।

बूर का लाडू खाय सो बी पिस्तावै, न खाय सो बी पिस्तावै।[२]

बलि के लिए तो लड्डू तैयार किये जाते है, स्वाद के लिए उनमे इलायची नही डाली जाती।[३]

चावल को पुष्टिकर अन्न नही माना जाता। चावल खाने वाले केवल दरवाजे तक चल सकते है, और अधिक चलने मे वे असमर्थ रहते है।[३] **"धान पुराना"** कह कर पुराने चावल की प्रशसा की गई है। अनुभवी व्यक्ति के अर्थ में **'पुराना चावल'** राजस्थानी भाषा का एक कहावती पद्याश भी है।

इसी प्रकार की कुछ कहावते और लीजिये—

(१) गेहूँ कहियो कै म्हारे ऊपर चीरो।
म्हारी खबर कद पड़ै कै आवै बहन रो बीरो॥

(२) गुज्जी कहियो कै म्हारें ऊपर भालो।
म्हनै खावै जको उठै, बेहके बैठोड़ो टालो।

(३) मत बायजो कांगणी घर-घर घट्टी मांगणी।

(४) सासू बहू रो कांई रीसणो, नै मडवा रो कांई पींसणो।

गेहूँ कहता है कि मेरे ऊपर चीरा है। जब स्त्री का भाई अपनी बहन को लिवाने आता है तब मेरा पता पडता है क्योकि तब भाई को गेहूँ की रोटी बनाकर खिलाई जाती है।

गुज्जी नामक अनाज कहता है कि मेरे ऊपर भाला है। अगर मुझे दुबला बैल खा लेता है तो वह फिर से स्वास्थ्य-लाभ कर सकता है।

एक ग्रामीण महिला अपने पति से सानुरोध प्रार्थना करती है कि हे पतिदेव !

---

१. पाठान्तर—
काठ का लाड़ खाय सो बी पिस्तावै, न खाय सो बी पिस्तावै।

२. भूतां कै लाडुआं में इलायची को के स्वाद ?

३. चावलां को खाणो, फलमै तांई जाणो।

कांगणी नामक अनाज को खेत में पैदा न करो क्योंकि उसको पीसने में बड़ी कठिनाई होती है, घर-घर की चक्कियो पर जाना पड़ता है।

सास और पुत्र-वधू का 'रीसाणा' जिस प्रकार साधारण बात है, उसी प्रकार मडवा का पीसना भी सरल है। मडवा नामक अनाज मारवाड़ के बीलाड़ा नामक नगर मे विशेष होता है। यह अनाज देखने में काला होता है। अतएव इस विषय मे यह कहावत भी सर्वत्र प्रचलित है—

मंडवो माल घर में घाल।
पावणो पही आवै तो परो छिपाव॥[1]

एक कहावत में कहा गया है कि भूखा रह जाना मंजूर है किन्तु जौ का दलिया खाना नही।[2] कुछ कहावतों में पाक-विद्या-सम्बन्धी उपयोगी संकेत भी मिल जाते हैं। जैसे, खीर और खिचड़ी मन्द आँच में ही अच्छी तरह सीझती है।[3]

पेय-पदार्थों मे छाछ और राबड़ी का अनेक कहावतो में उल्लेख हुआ है। श्रावण महीने की छाछ हानिकर और कार्तिक की छाछ हितकर होती है।[4] एक वृद्ध के मुख से राबड़ी की प्रशसा में कहलवाया गया है।

"म्हानै इमरत लागै राबड़ो, जा में दांत लागै न जाबड़ो।"

अर्थात् हमे राबड़ी अमृत-तुल्य लगती है जिसमे न दाँत का प्रयोग करना पड़ता है और न जबड़े का।

राबडी वस्तुतः गरीबों का पेय पदार्थ है। इसलिए एक कहावत में कहा गया है 'राबडी मे गुण होता तो ब्या में ना राधता' अर्थात् राबड़ी मे यदि गुण होते तो उसे विवाह मे ही क्यों न राँधते ?

मादक-पदार्थों के सम्बन्ध में निम्नलिखित कहावती पद्य प्रसिद्ध है—

"भांग मांगै भूगड़ा, सुलफो मांगै घी।
दारू मांगै जूतिया, खुसी हो तो पी॥"

भाँग पर भुने हुए चने और सुलफे पर घी से बने हुए व्यजन चाहिएँ। शराबी पर तो जूते पड़ने से ही उसकी अक्ल ठिकाने आती है।

आज मरां काल मरां, मर्‌या-मर्‌या फिरां।
घाल कटोरे दलमलां जणां बनड़ा हुआ फिरां॥

यह किसी पोस्ती की उक्ति है जो बिना पोस्त के प्याले पिये निर्जीव-सा रहता है और पोस्त का प्याला मिलते ही मस्त होकर अपने को वर-सदृश समझने लगता है।

कुछ ऐसी कहावते भी है जिनमे भोजन-सम्बन्धी आदतों पर प्रकाश पड़ता है। जैसे—

---

१. राजस्थानी कहावतें, श्री शिवसिंह चोयल, राजस्थान भारती, भाग २, अंक २, मार्च सन् १९४९।

२. भूखो रह ज्याणो पण जौ को दलियो नहीं खाणो।

३. खीर खीचड़ी मंदी आँच।

४. सावण की छा भूतां नै, कातिक की छा पूतां नै।

"लालाजी करी ग्यारस अर बा बारस की दादी।"

अर्थात् द्वादशी के दिन लालाजी जितना भोजन करते है, उससे कही अधिक उन्होंने फलाहार के रूप में एकादशी के दिन भर-पेट उडाया।

९. **स्वास्थ्य**—भोजन, पानी, निद्रा, हवा, स्नान आदि के सम्बन्ध में जो अनुभव समाज को प्राप्त हुए, वे ही स्वास्थ्य-सम्बन्धी कहावतो के रूप मे संगृहीत हैं। राजस्थानी भाषा में प्रचलित कुछ स्वास्थ्य-सम्बन्धी कहावते यहाँ उद्धृत की जा रही है—

भोजन (सामान्य)

१. थोड़े कवे घणो खावणो जोईजै।

छोटे-छोटे कौर लेकर भरपेट भोजन करना चाहिए।

२. घणो खावे, घणो मरै।

अधिक भोजन हानिप्रद होता है।

३. पेट कूई सो मूंडो सूई सो।

अत्यधिक भोजन करने के कारण जिसका पेट कुएँ जैसा हो जाता है, उसका मुँह सुई जैसा रूप धारण कर लेता है अर्थात् उसके मुख की कान्ति जाती रहती है।

४. ऊपर भरै नीचे झरै, जिके रो गुरू गोरखनाथ कांइ करै।

अच्छे पौष्टिक पदार्थ खाते रहने पर भी जो व्यक्ति घोर असयमी होता है, वह शीघ्र यमपुर पहुँच जाता है।

५. अन्न मुकता, घी जुगता।

अन्न पेट भरकर, किन्तु घी पचे उतना ही खाना चाहिए।

६. जीम जूठ र सू जाणो।

भोजन के बाद कुछ देर सो जाना चाहिए।

७. मांस खायां मांस वधे, घी खायां खोपड़ी।
दूध खायां जोर वधे, नर हरावे गोरड़ी॥

मास से मास, घी से बुद्धि और दूध से बल बढता है।

८. जीम र दौड़े जिके रे लारे मौत दौड़े॥

जो भोजनोपरान्त दौडता है, उसके पीछे मौत दौड़ती है।

९. लूखो भोजन, भूत भोजन।

अर्थात् रूखा-सूखा भोजन अच्छा नही समझा जाता। वह प्रेत-भोजन है।

१०. चोखो खाणो, खरो कमाणों।

मेहनत करके अच्छी कमाई करने वाले को पौष्टिक भोजन करना चाहिए।

११. ठंडो न्हावे ऊनो खावे जिण घर वैद कदे नहिं जावे।

जो ठडे पानी से नहाता है और ताजा भोजन करता है, उसके घर वैद्य कभी नही जाता।

१२. अन्नदेव मोटो है, माथे चढ़ार खावणो जोईजै।

अन्न बडा देव है, भोजन आदरपूर्वक और प्रसन्न-चित्त होकर करना चाहिए।

१३. **अन्न छूट्या जिकां रा घर छूट्या ।**

अन्न खाना छूट जाने से कमज़ोरी आ जाती है और मनुष्य मौत के मुँह में चला जाता है ।

विशेष

१. **रोटी कहे हूँ हालूँ चालूँ, बाटी कहे बहूं मजल पुगाऊं ।**
चावल् कह मेरा हलका खाणा, मेरे भरोसे कहीं न जाणा ॥[1]

रोटी कहती है कि मेरे बल पर केवल चलना-फिरना हो सकता है, बाटी कहती है कि मैं लम्बी यात्रा करवा सकती हूँ, चावल कहता है कि मैं हल्का भोजन हूँ मेरे भरोसे कही न जाना ।

२. **चूरे सूं बाटी मिलै अर उड़दां री दाल् ।]**
ऊपर सूं नींबू पड़ै, बरफी कांई माल ॥

चूरमा बाटी हो तथा साथ में हो उडद की दाल, और ऊपर से नीबू का रस निचोड़ दिया जाय तो फिर बरफी क्या चीज़ है ?

३. **(अ) लूण बिना पूण रसोई ।**
(आ) खांड बिना मोडी रांड रसोई ।
(इ) दाल् बिना बाल् रसोई ।

नमक, चीनी और दाल के बिना भोजन का आनन्द नही आता ।

फल-दूध आदि

१. **अमरूद कहे म्हें में बीज नहीं होंवता तो हूँ जहर हौं ।**

अर्थात् अमरूद कहता है कि मुझ मे बीज नही होते तो मैं जहर था ।

२. **नींबू कहे म्हें में बीज नहीं होंवता तो हूँ इमरत हौं ।**

अर्थात् नीबू कहता है कि मुझ मे बीज नही होते तो मै अमृत था ।

३. **दिनगूं मूल्ी, रात ने सूल्ी ।**

अर्थात् मूली सवेरे लाभप्रद और रात को हानिकारक होती है ।

४. **हड्ड वहेडा आंवला, घी सक्कर में खाय ।**
हाथी दाबे काख में, साठ कोस ले जाय ।

५. **दूध इमरत है ।**

६. **गाय माता गोतरी, डूडियो गणेश ।**
भैंस रांड भूतणी पाडियो पलीट ॥

गाय का दूध सात्विक और भैंस का तामसिक होता है, इसलिए प्रथम की देव-कोटि में तथा दूसरे की राक्षस-कोटि में गणना की गई है ।

---

१. रूपान्तर :

रोटी कै हूं आऊँ जाऊँ, खीच कै हूं ठेठ पुगाऊँ ।
घाट कै म्हारो फुसकर नांव, म्हारे भरोसे मत जाये गाँव ॥

पानी

१. **पाणी पीणों छाणियो 'र करणों मण रो जाणियो ।**

२. **(अ) दूध पी 'र पाणी नहीं पीवै ।**

अर्थात् दूध पीकर पानी नही पीना चाहिए ।

(आ) चीकणो खा 'र पाणी नहीं पीवै ।

अर्थात् चिकना खाकर पानी नही पीना चाहिए ।

(इ) खीर खा 'र पाणी नहीं पीवै ।

अर्थात् खीर खाकर पानी नही पीना चाहिए ।

(ई) निरणे काल्जे पाणी नहीं पीवै ।

अर्थात् खाली पेट पानी नही पीना चाहिए ।

(उ) पसीने में पाणी नहीं पीणो जोईजे ।

अर्थात् पसीने में पानी नही पीना चाहिए ।

३. **जिसो पीवे पाणी, उसी ऊपजे वाणी ।**

अर्थात् जैसा पानी पिया जाता है, वैसी ही वाणी उपजती है ।

निद्रा

"सूवे जद डावो पसवाड़ो दाब 'र सूवे ।[1]

सोने के समय बाई करवट सोना चाहिए ।

वायु-सेवन

"सो दवा, एक हवा ।"

शुद्ध वायु-सेवन औषधि से सौ गुना लाभप्रद है ।

मास-चर्या

१. **चैते गुल वैशाखे तेल जेठे पंथ अषाढ़े बेल,**
सावण साग भादवों दही, क्वार करेला काती मही ।
अगहन जीरा पूसे धाणा, माहे मिसरी फागण चिणा ।।

चैत्र में गुड़, वैशाख मे तेल, ज्येष्ठ में पैदल-यात्रा, आषाढ मे बेल-फल, श्रावण में हरे शाक, भाद्र में दही, क्वार में करेला, कार्तिक में छाछ, मार्गशीर्ष में जीरा, पौष में धनिया, माघ में मिश्री और फाल्गुन में चना वर्ज्य हैं ।

२. **सावण हरडै भादू चीत ।**
आसोजां गुड़ खावो मीत ।
काती मूला मंगसर तेल ।
पोंह में करो दूध सूं मेल ।
माघ मास घिव खिचड़ी खाय ।
फागण बिनूगे उठ न्हाय ।।[2]

---

१. खायै 'र मूते सूवे डावें ।
क्यों फेर वैद बसाये गांवे ।

२. पंडित मुरलीधर जी व्यास के सौजन्य से प्राप्त ।

सावण में हरड़, भाद्र में चिरायता, आश्विन में गुड़, कार्तिक में मूली, मार्गशीर्ष में तेल, माघ में घी और खिचड़ी तथा फाल्गुन में प्रातःकाल का स्नान लाभप्रद है।

ऊपर नमूने के लिए कुछ स्वास्थ्य-सम्बन्धी कहावतें दी गई है। इस प्रकार की और भी अनेक कहावतें राजस्थानी भाषा मे प्रचलित है।

इन स्वास्थ्य-सम्बन्धी कहावतो की उपयोगिता में सन्देह नही किया जा सकता। श्री रामनरेश त्रिपाठी के शब्दो में "गाँव के लोगो ने हजारों वर्षों के पुराने स्वास्थ्य सम्बन्धी अनुभवो को कहावतो की छोटी-छोटी डिबियो में भर रक्खा है, जो गाँव के गले-गले में लटकती मिलेगी। उनके अनुभव बडे सच्चे और लाभदायक साबित हुए हैं।

एक कहावत के अनुसार मे लगातार लगभग बत्तीस वर्षों से प्रातःकाल उठते ही, दातुन करके पानी पी लेता हूँ। इसका परिणाम यह हुआ है कि सन् १९१६ के इन्फ्लुएन्जा के बाद आज तक मुझे बुखार नही आया और न जुकाम ही हुआ। मेरा विश्वास है कि यह प्रातःकाल पानी पीने का ही फल है।[1]

१०. व्यवसाय—राजस्थान में खेती और व्यापार का गुण-गान किया गया है तथा नौकरी को हेय ठहराया गया है जैसा कि निम्नलिखित कहावतो से स्पष्ट है—

१. धन खेती, धिक चाकरी, धन-धन वणिज व्योहार।

२. नौकरी ना करी।

३. नौकरी की जड़ धरती सैं सवा हाथ ऊँची।

४. नौकरी नौ करो र एक नहीं करो।

५. नौकरी रे नकारें रो बैर है।

नौकरी न करना ही अच्छा। मालिक जब चाहे नौकर को हटा सकता है, नौकरी की कोई जड नही होती। नौकर नौ काम करता है किन्तु एक काम नही करे तो मालिक उससे रुष्ट हो जाता है। वह मालिक को किसी चीज के लिए इन्कार नही कर सकता। मालिक यदि पाँच वर्ष का और नौकर पचास वर्ष का भी हो तो भी नौकर को दबकर चलना पड़ता है।

कुछ लोग हैं जो ब्याज पर रुपये उठाते रहते है और ब्याज भी इतनी तेजी से बढ़ता है कि उसे घोडे भी नही पहुँच सकते।[2] किन्तु फिर भी ब्याज की अपेक्षा व्यापार करना अधिक लाभदायक माना गया है। ब्याज को व्यापार का दास कहा गया है।[3]

खेती और व्यापार यद्यपि दोनों को प्रशस्य ठहराया गया है, तथापि इन दोनों में से एक को ही अंगीकार करना चाहिए। जो दोनो ओर मन लगाता है, उसके

---

१. हमारा ग्राम साहित्य, पृष्ठ २४९।
२. ब्याज नै घोडा ही को पूगै नी।
३. ब्याज व्यापार को गोलो है।

लिए न खेती लाभदायक होती है और न व्यापार।[1]

एक कहावत में कहा गया है कि "**गम्योड़ी खेती अर कमायोड़ी चाकरी बराबर**" अर्थात् बिगड़ी हुई खेती और सुधरी हुई नौकरी दोनो बराबर हैं। नौकरी कितनी ही अच्छी तरह क्यों न की जाय, लाभकारिणी सिद्ध नहीं होती। किन्तु वर्तमान युग में लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ है। खेती को छोड़कर अब बहुत से लोग नौकरियों की तरफ झुक रहे हैं। खेती मे और विद्योपार्जन मे बहुत परिश्रम करना पड़ता है,[2] इसलिए अनेक लोग अब गाँवो को छोड़कर फैक्ट्री और मिलों में काम करने के लिए शहरों की ओर जाने लगे हैं।

एक कहावत में विद्वान् के लिए कहा गया है कि वह न तो खेती करता है और न व्यापार के लिए कही जाता है। अपनी विद्या के बल पर बैठा मौज करता है।

"**खेती करै न बिणजी जाय, विद्या कै बल बैठ्यो खाय।**"

किन्तु आजकल शिक्षितों की बेकारी को देखते हुए उक्त कथन को स्वीकार नहीं किया जा सकता। आर्थिक संघर्ष के इस युग मे आज विद्वानों को भी बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड रहा है।

इसलिए राजस्थान की एक अन्य लोकोक्ति में यथार्थ ही कहा गया है कि विद्या अर्थकरी होनी चाहिए। यदि विद्या पढकर भी कोई जीविकोपार्जन न कर सके तो उस विद्या से क्या लाभ ?

"**भाई भिणज्यो सोई, ज्यां में हंडिया खदबद होई।**"

अर्थात् वही विद्या पढनी चाहिए जिससे हँडिया खुदबुद करे अर्थात् भोजन मिल सके।

वैसे भी किसी प्रकार की मजदूरी करना बुरा नही है, यदि बुरा है तो चोरी-जारी करना। "**मजूरी रो मेणो कोनी, चोरी जारी रो मेणो है।**" मजदूरी करने वाले पर व्यग्य नही कसा जा सकता, व्यग्य कसा जाना चाहिए चोरी-जारी करने वाले पर।

११. **आभूषण प्रेम**—राजस्थानी स्त्रियो का आभूषण-प्रेम प्रसिद्ध है किन्तु आभूषण केवल आभूषण के लिए ही नही होता। लोगो के पास बचत होती है तो गहने बनवा लिये जाते है, फिर ये ही आभूषण विपत्ति पडने पर जीवन-निर्वाह के आधार बन जाते है। श्रीमती ऐनी बेसेंट ने भी आभूषणो को किसानो का परम्परागत सेविंग्स बैंक (Traditional peasants' Savings Bank) कहा था। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित कहावतें उल्लेखनीय हैं—

१. **गहणो ने गनायत अवखी पुल में काम आवे हैं।**
आभूषण और सम्बन्धी दु ख मे सहायक होते हैं।

२. **गहणा धांया रा सिणगार, भूखां रा आधार।**

---

१. खेती करै बिणज नै ध्यावै दो मां आडी एक ना आवे।

२. भूखत विद्या, पचत खेती।

आभूषण जहाँ धनियों के शृंगार हैं, वहाँ वे निर्धनों के लिए आधार भी हैं।

१२. **राजनैतिक चेतना**—राजस्थान की जनता राज्य के डर से बहुत त्रस्त और आशंकित रहा करती थी। राजा की बात सुनने वाले को राजा के शब्दोच्चारण के पूर्व ही कम्पन हो आता था। राजा न जाने क्या हुक्म दे दे, इसका डर हमेशा बना रहता था। कचहरी से कोई बुलावा आ जाता था तो वह यम के बुलावे से भी बदतर समझा जाता था। इसलिए एक कहावत मे कहा गया है—

"जम रो बुलावो आइजो पण राज रो बुलावो मत आइजो।"

अर्थात् यम का बुलावा भले ही आ जाय, राज्य का बुलावा न आवे। अगर घर के किसी व्यक्ति को कोई जागीरदार बुलाता तो सारे घर में उदासी का वातावरण छा जाता था।

"जमींदार के बावन हात हुवै" यह भी एक राजस्थानी कहावत है जिसका तात्पर्य यह है कि जमीदार एक विविध साधन-सम्पन्न व्यक्ति होता है। उसकी साधन-सम्पन्नता के कारण भी लोग जमीदार से भयभीत रहा करते थे।

किन्तु अब देश के स्वतन्त्र हो जाने के बाद राजस्थान में जागीरदारी प्रथा समाप्त हो गई है और आशा की जाती है कि राजस्थानी प्रजा के दिन फिरेंगे और सुख-शातिपूर्वक वह अपना जीवन बसर कर सकेगी।

४. शिक्षा, ज्ञान और साहित्य

(क) शिक्षा-सम्बन्धी कहावतें

पातंजल महाभाष्य मे कहा गया है—

सामृतैः पाणिभिघ्नंन्ति गुरवो न विषोक्षितैः
लालनाश्रयिणो दोषास्ताडनाश्रयिणो गुणाः॥

अर्थात् अमृत भरे हाथो से गुरु शिष्यो को पीटते है, विष-सिक्त हाथों से नही। शिष्य लाड़-चाव से बिगड़ जाते है, ताड़ना से उनका सुधार होता है। राजस्थानी भाषा की निम्नलिखित कहावतो मे भी इसी प्रकार की बात कही गई है—

गुरु की चोट, विद्या की पोंट।

अर्थात् गुरु की चोट से विद्या प्राप्त होती है।

सोटी बाजै चमचम, विद्या आवै धमधम।

अर्थात् सोटी चमचम बजती है, तभी विद्या धमधम करती हुई आती है।

किसी अश में तो यह सच है कि ताडना के डर से विद्यार्थी कुछ पढ जाते हैं किन्तु आजकल के मनोवैज्ञानिकों और शिक्षण-शास्त्रियो के मतानुसार विद्या के प्रति सच्चा अनुराग तो प्रेम द्वारा ही जागृत किया जा सकता है। कुछ पुराने गुरु तो अपने शिष्यों को यहाँ तक पीटते थे कि जिसे देखकर जी दहल जाय। एक छात्र के लिए कहा जाता है कि जब वह चटशाला नही गया तो गुरुजी ने कुछ विद्यार्थियों को उसे लाने के लिए भेजा किन्तु विद्यार्थी जब इसमे कृतकार्य न हो सके तो गुरुजी स्वयं उसके घर पहुँचे। छात्र उस समय भोजन कर रहा था। गुरुजी को देखते ही डर के

मारे छत पर जा चढ़ा। गुरुजी भी उसके पीछे-पीछे छत पर जा पहुँचे। विद्यार्थी गुरु के डर से छत पर से कूद पड़ा जिससे उसका प्राणान्त हो गया !

पातंजल महाभाष्य के श्लोकों में जिन गुरुओं का उल्लेख किया गया है, निश्चय ही वे इतने अमानुषिक कदापि नही रहे होगे और जैसा कि कबीर ने कहा है—

"गुर कुम्हार सिष कुम्भ है, गढि गढि काढै खोट।
भीतर हाथ सहार दे, बाहर बाहर चोट॥"

सच्चे गुरु की चोट के मूल में भी शिष्य का हित ही निहित रहता है किन्तु इस प्रकार की कहावतों का कभी-कभी दुरुपयोग भी देखा जाता है। शिक्षा-मनोविज्ञान के साथ-साथ आज हमारी धारणाओं में भी परिवर्तन हो रहा है किन्तु कहावतें अशिक्षितों के मानस-पट पर कभी-कभी इस प्रकार अंकित हो जाती हैं कि उनसे पिण्ड छुड़ाना मुश्किल हो जाता है। गाँवो मे शिक्षा का प्रकाश या तो पहुँचता ही नहीं, या देर से पहुँचता है, इसलिए विकसित होते हुए शिक्षा-मनोविज्ञान के अनुकूल कहावतों का निर्माण नही हो पाता।

कुछ कहावतें राजस्थान मे ऐसी भी है जिनसे यहाँ की प्राचीन शिक्षा-पद्धति पर प्रकाश पडता है। इस सम्बन्ध मे दो कहावतें लीजिये—

१. **ओनामासी धम, बाप पढ्या न हम।**

इस कहावत का "**ओनामासी धम**" "ॐ नम. सिद्धम्" का अपभ्रष्ट रूप है। प्राचीन शिक्षा-पद्धति द्वारा जिन्होने शिक्षा प्राप्त की है, वे भली भाँति जानते हैं कि राजस्थान मे "**सिद्धो**" द्वारा किस प्रकार वर्णों का अभ्यास कराया जाता था। जो छात्र इस प्रणाली द्वारा वर्ण-ज्ञान प्राप्त करते थे, वे पंक्तियो को केवल रटते थे, वे यह नही समझते थे कि इन पंक्तियो का तात्पर्य क्या है। गुरुजी एक पंक्ति को गाकर बोलते और छात्र उनके पीछे गाते हुए-से आवृत्ति करते जाते थे। '**सिद्धो**' की पद्धति जब पहले-पहल चली होगी तब संस्कृत-पंक्तियो का अर्थ भी छात्रों को हृदयगम कराया जाता होगा, कालान्तर में संस्कृत-ज्ञान के अभाव से लोग शुद्ध रूप को भूल गये और केवल पुरानी लकीर को पीटना रह गया।

२. "**ढलग्यो नामीनोरैं तो क्यूं हलियो टेरैं।**"

इस कहावत का "**नामीनोरैं**" सारस्वत व्याकरण के सूत्र "**नामिनोर:**" का अपभ्रंश रूप है। इससे पता चलता है कि इस प्रान्त मे कभी सारस्वत व्याकरण पढ़ने का अच्छा प्रचार था।

आज तो "**सिद्धो-पद्धति**" लुप्तप्राय है और सारस्वत व्याकरण के स्थान में भी "लघुसिद्धान्त कौमुदी" का ही सर्वत्र जयजयकार हो रहा है।

कई वर्षों पहले प्राचीन प्रणाली के अनुसार शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों के मुख से सुनाई पड़ता था "**पडवा पाटी फोड़ बतरणो**" अर्थात् प्रतिपदा को पट्टी, बतरना, स्लेट और पेंसिल फोड़ दो। इस प्रकार की पाठशालाओं में रविवार को छुट्टी न होकर प्रतिपदा को छुट्टी हुआ करती थी क्योंकि "**पड़वा पाठ विवर्जिता**" के अनुसार प्रतिपदा के दिन पढ़ना अनिष्टकारक समझा जाता था। इसी प्रकार एक दूसरी उक्ति

है—"पड़वा पाटी भांगणी, बीज पाटी सांभणी" अर्थात् प्रतिपदा को स्लेट फोड़ देनी चाहिए और द्वितीया को सम्हाल लेनी चाहिए।

शिक्षा-सम्बन्धी अनेक कहावतो मे रटने अथवा वस्तु को कण्ठाग्र कर लेने का गुणगान किया गया है, जैसे—

(१) घोखत विद्या नं खोदत पाणी।

अर्थात् रटने से विद्या प्राप्त होती है और खोदने से पानी मिलता है।

(२) माया अंट की, विद्या कंठ की।

अर्थात् गाँठ का पैसा और कठस्थ की हुई विद्या काम आती है।

एक कहावत मे कहा गया है कि पूछते-पूछते मनुष्य पण्डित हो जाता है।[1] इसी प्रकार एक अन्य कहावत द्वारा पठन के साथ-साथ सासारिक अनुभव को भी अत्यन्त आवश्यक बतलाया गया है।[2] मनुस्मृति मे भी कहा है कि छात्र चतुर्थांश शिक्षक से, चतुर्थांश स्वाध्याय से, चतुर्थांश सहपाठियो से और चतुर्थांश अनुभव से सीखता है।[3]

शिक्षा की दृष्टि से राजस्थान अन्य प्रदेशो की अपेक्षा बहुत पिछड़ा हुआ है। प्रतिशत साक्षर व्यक्तियो की सख्या यहाँ बहुत कम है। एक कहावती पद्य के अनुसार यहाँ की निरक्षरता दूर करने में बडी कठिनाइयो का सामना करना पडेगा।[4] शिक्षा-सम्बन्धी कहावते भी यहाँ अपेक्षाकृत कम ही सख्या में मिलती है।

(ख) मनोवैज्ञानिक कहावते

कभी-कभी देखा जाता है कि हम किसी कारणवश गाडी चूक जाते है और घर आकर सारा गुस्सा स्त्री पर उतारते हैं। सौदागर सट्टे में हार जाता है तो मुनीम-गुमाश्तो पर अकारण उबल पडता है। आफिस में काम करनेवाले क्लर्क पर बड़े साहब की ओर से फटकार पड़ती है, क्लर्क घर आकर बात की बात मे बच्चो पर चपत झाड़ देता है। इस प्रकार असली वस्तु या व्यक्ति को छोडकर किसी के भाव-प्रवाह का दूसरी ओर प्रवर्तित हो जाना मनोविज्ञान की भाषा मे स्थानान्तरीकरण (Projection) कहलाता है। "कुम्हार को कुम्हारी पर बस चाले कोनी, गधेड़ का कान इठै" जैसी राजस्थानी कहावतो में स्थानान्तरीकरण के अच्छे उदाहरण मिल जाते है।

कहावतो का सम्बन्ध मुख्यतः जीवन के क्रिया-कलापो से रहता है। दर्शन-शास्त्र की तरह उनमें तात्त्विक विश्लेषण तो नही मिलता किन्तु फिर भी बहुत-सी लोकोक्तियो में जीवन की व्यावहारिक सचाई इस प्रकार अभिव्यक्त होती है कि वह बरबस हमारा ध्यान आकृष्ट कर लेती है। मनुष्य की चेष्टाओ और उसकी क्रियाओ से उसके अन्तःकरण का, उसके अचेतन मन का, बहुत कुछ आभास मिल जाता है।

---

१. पूछता नर पडित।
२. पढ्यो तो है पण गुण्यो कोनी।
३. देखिये—
प्राचीन भारत में शिक्षा की व्यवस्था, वीणा, अक्टूबर १९४४, पृष्ठ ५३४।
४. मारवाड़ री मूढता मिटसी दोरी मित।

शेक्सपियर के सुप्रसिद्ध नाटक हैमलेट में जहाँ नाटक के भीतर नाटक दिखलाया जाता है, वहाँ अभिनेत्री रानी राजा की मृत्यु होने की हालत में कभी भी दूसरा विवाह न करने पर ज़ोर देती है। इस प्रकार की अकल्पित शादी यदि कभी चरितार्थ हो जाय तो वह सब अभिशापों को अगीकार करने के लिए अपनी तत्परता दिखलाती है। हैमलेट ने जब क्लाडियस की स्त्री से पूछा कि आपको नाटक कैसा लगा, उसने उत्तर दिया—"The lady protests too much, methinks." किसी बात को सिद्ध करने के लिए उस पर आवश्यकता से अधिक ज़ोर देना उस वस्तु की सदोषता ही सिद्ध करता है।[1] झूठे आदमी के अचेतन मन में यह बात समायी रहती है कि उसकी बात पर लोग विश्वास नही करेगे, इसलिए वह आदमी अपनी झूठ को छिपाने के लिए अनेक प्रकार की सौगन्ध खाया करता है, किन्तु अधिक सौगन्ध खाने से उसकी असत्यता ही प्रमाणित होती है। **"झूठा की के पिछाण ?"** कह—**"वो सोगन खाय"। सोगन और सीरणी तो खाणे की ही होय है,** अर्थात् झूठे की क्या पहचान ? उत्तर—वह सौगन्ध खाता है। सौगन्ध और मिठाई तो खाने ही के लिए हैं, जैसी लोकोक्तियो में मनोवृत्तियों के अध्ययन के लिए अच्छी सामग्री मिल जाती है। इसीलिए सौगन्ध खाने वाले नीम के नीचे सौगन्ध खाते हैं और पीपल के नीचे इन्कार कर देते है।[2]

प्राय: देखा जाता है कि जब मनुष्य एक बार बुराई की ओर प्रवृत्त हो जाता है तो उसका शतमुख पतन होने लगता है। वह सोचता है कि जब एक बार झूठ बोलना ही है तो उसमे कमी क्यों की जाय ? एक बार जब उससे मर्यादा का अतिक्रमण हो जाता है तो उसके मन में यह विचार घर करने लगता है कि लोगो की दृष्टि में तो अब मैं बुरा बन ही चुका, अब यदि मैं बुरे काम करूँ तो मुझे ऐसा करने से कौन रोक सकता है ? वस्तुत: बुराई से रोकनेवाली तो मर्यादा है जिसे वह हाथ से खो बैठा है। **"झूठ बोलणियो 'र धरती पर सोवणियो सकड़ेलो क्यूँ भुगतै ?"** अर्थात् झूठ बोलनेवाला और धरती पर सोनेवाला तंगी क्यो भोगे ? **"उतार दी लोई, के करैगो कोई ?"** जब मान-मर्यादा सब छोडदी तो अब किसकी क्या परवाह ? **"नकटा, नांक कटी ?"** कह—**"मेरी तो सवा गज बधी।"** अर्थात् जब नकटे से कहा गया कि तुम्हारी तो नाक कट गई तब उसने उत्तर दिया कि मेरी तो सवा गज बढ़ गई है। इस कहावत मे भी इसी मनोवृत्ति के दर्शन होते हैं।

जो आदत पड़ जाती है, वह बडी मुश्किल से छूटती है। मनोवैज्ञानिकों का मत है कि आदत हमारी बुद्धि पर भी हावी हो जाती है, बुद्धि आदत का अनुसरण करने लगती है, आदत बुद्धि का अनुसरण नही करती। इसीलिए बड़े-बड़े विद्वान् और बुद्धिमान् भी जब बुरी आदत के चंगुल में फँस जाते हैं तो उससे उनका भी छुटकारा नहा हो पाता। निम्नलिखित कहावतो में इसी तथ्य को प्रकट किया गया है।

१ **"चोर चोरी सं गयो जूती बदलण सं थोड़ोई गयो।"**

---

१. अति भक्ति चोर के लच्छन।

२. नीम तलै सोगन खाय, पीपल तलै नट ज्याय।

किसी के उपदेश से चोर ने चोरी करना छोड़ दिया। एक बार जब उसने दूसरे के जूते बदल लिए तो किसी के पूछने पर उसने उत्तर दिया—चोर चोरी करने से गया तो क्या जूते बदलने से भी गया ? कहने का तात्पर्य यह है कि प्रयत्न करने पर आदत थोड़ी-बहुत छूटती है किन्तु वह सर्वांशतः नही छूटती।

२. **कुत्तं की पूंछ बारा बरस दबी रही पण जद निकली जद ही टेढ़ी।**

अर्थात् कुत्ते की पूँछ बारह वर्षों तक दबी रही किन्तु जब निकली तभी टेढ़ी निकली अर्थात् स्वभाव का छोड़ना सम्भव नहीं।

"बकरी दूध तो दे पण दे मींगणी करकै।"

अर्थात् बकरी दूध तो देती है पर देती है मेगनी करके !

आदत से लाचार होने के कारण जो मजा किरकिरा करके काम करता है, उसके लिए उक्त लोकोक्ति का प्रयोग होता है।

दुराग्रही के आग्रह की अच्छी अभिव्यक्ति निम्नलिखित कहावत में हुई है :

"पंचां की बात सिर माथे पण म्हारलो नालो अठी कर ई भवैगो।"

अर्थात् पंचों की बात को तो मै शिरोधार्य करता हूँ किन्तु मेरा नाला इधर होकर ही बहेगा।

जब लोगो के समझाने-बुझाने पर भी कोई दुराग्रही अपना हठ नही छोडता और मनमानी करने पर तुल जाता है, तब इस उक्ति का प्रयोग होता है।

अमेरिका के मनोवैज्ञानिक ऐडलर ने हीन-भाव की मनोवृत्ति का अच्छा विवेचन किया है। जिस व्यक्ति मे कमी होती है, वह उस कमी को ढकने के लिए अपनी प्रशंसा करता है, जिसमे ज्ञान नही होता वह बढ-बढ कर बातें बनाता है, जो ज्यादा धमकी देता है, वह धमकी के अनुसार काम नही कर पाता। ज्ञान की कमी, चातुर्य का अभाव, अंग-विकार आदि अनेक कारणो से मनुष्य अपने में हीन-भाव का अनुभव करने लगता है। कहावतो मे हीन-भाव का कोई सैद्धान्तिक विश्लेषण नही मिलता किन्तु वह हीन-भाव किस प्रकार अपने आपको अभिव्यक्त करता है, इसके अच्छे उदाहरण मिल जाते है। इस दृष्टि से कहावते एक प्रकार से प्रयोगात्मक मनोविज्ञान का रूप प्रस्तुत करती है। निम्नलिखित राजस्थानी कहावते हीन-भाव की व्यावहारिक अभिव्यक्तियाँ हैं :

१. **"गरजै जिको बरसै कोनी।"**

अर्थात् जो गरजता है, वह बरसता नही।

अभिमानी कोरी डीग मारता रहता है, उससे कुछ करते-धरते नही बनता। वास्तव में उसमें करने की शक्ति ही नही होती है, जिसमे शक्ति होती है, वह काम को करके दिखला देता है। उसके गरजने का अर्थ केवल यह है कि वह अपनी शक्ति के अभाव को केवल डीग मारकर छिपाना चाहता है।

२. **चणा चाब कर कहै, म्हे चावल् खाया।**
नहीं छान कर फूस, म्हे हेली सं आया

अर्थात् चने चबाते हैं और कहते हैं कि हम चावल खाने वाले हैं। छप्पर पर

फूस तक नही है और कहते है हम हवेली से आये हैं !

मनुष्य की यह मनोवृत्ति है कि दूसरो की दृष्टि में अपने आपको नगण्य समझा जाना वह पसन्द नही करता। इसीलिए कुछ न होने पर भी वह आडम्बर का आश्रय लेता है।

३. "थोथो चणो बाजै घणो।"

अर्थात् जिनमें गुण नही होते, वे ही बढ-चढ कर बाते बनाते हैं।

४. "थोथा पिछोड़ै उड़ उड़ जायँ।"

अर्थात् थोथा अनाज फटकने से उड जाता है।

मूर्ख व झूठो की जब जाँच की जाती है, तब वे जाँच के सामने नही ठहर पाते। कबीर ने कहा है—

"यह तन सांचा सूप है, लीजे जगत पछोर।
हलकन को उड़ जान दे, गरुए राख बटोर॥

"अधजल गगरी छलकत जाय" के भाव को संस्कृत सुभाषितकार ने निम्न-लिखित शब्दो मे व्यक्त किया है—

"संपूर्णकुम्भो न करोति शब्दम्, अर्द्धो घटो घोषमुपैति नूनम्।
विद्वान्कुलीनो न करोति गर्वं, गुणैर्विहीना बहु जल्पयन्ति॥"

कमजोर आदमी को गुस्सा अधिक आता है, यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। गुस्सा वस्तुतः शक्ति की क्षति-पूर्ति का प्रयास मात्र है। "कमजोर गुस्सा ज्यादा" में यही बात कही गई है।

कोई मनुष्य दोषी होते हुए भी अपने को दोषी मानना नही चाहता क्योकि उसके मन में यह डर बना रहता है कि उसका दोष सिद्ध हो जाने पर वह समाज की दृष्टि में गिर जायगा। "पाखी हालो पहली करकै" अर्थात् जच्चा में पहले दर्द होता है, दोषी अपने दोष की बात सुनता है तो उसे चुभती है। "सांच कह्यां भाल उठै" अर्थात् सच कहने से सुनने वाला क्रुद्ध हो उठता है। इस कहावत मे भी यही बात कही गई है।

अपने से जिन व्यक्तियो का साहचर्य अथवा सम्बन्ध है, उनको भी वह बुरा नही बतलाता क्योकि उनको बुरा बताने से वह भी संपर्क अथवा सम्बन्ध-जन्य दोष का भागी बन जाता है। "आपकी मा नै डाकण कुण बतावै?" अर्थात् अपनी माँ को डाकिनी कौन कहे? जैसी कहावतों मे यही सत्य दरसाया गया है।

राजस्थानी भाषा में अनेक कहावतें सहज ही उपलब्ध हैं जिनसे मानव-मन की विभिन्न वृत्तियों के अध्ययन के लिए अच्छी सामग्री मिल जाती है।

(ग) राजस्थानी साहित्य में कहावतें

शिष्ट-साहित्य—विवेचन की सुविधा के लिए हम राजस्थानी साहित्य को शिष्ट-साहित्य और लोक-साहित्य दो भागो में बाँट लेते हैं। काल-क्रम की दृष्टि से शिष्ट-साहित्य निम्नलिखित तीन युगों में विभाजित किया जा सकता है :

(क) प्राचीन राजस्थानी (सवत् १२००-१६००)
(ख) माध्यमिक राजस्थानी (संवत् १६००-१९५०)
(ग) आधुनिक राजस्थानी (संवत् १९५० से अब तक)

(क) प्राचीन राजस्थानी

ग्रियर्सन के शब्दों मे "गुजरात मध्य युग मे राजपूताने का अंश मात्र था। यही कारण है कि गुजराती का राजस्थानी से इतना अधिक साम्य है।"[1] स्व० श्री-नरसिंहराव दीवेटिया के मतानुसार भाषा के रूप में 'गुजराती" शब्द का सबसे पहला उल्लेख सन् १७३१ ई० में मिलता है किन्तु इससे भी पहले महाकवि प्रेमानन्द ने "नागदमण" मे "गुजराती" शब्द का प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ—

"रुदे उपनी माहारे अभिलाषा,
वांधुं नागदमण गुजराती भाषा।"

इससे पूर्व भाषा के रूप मे "गुजराती" शब्द नही मिलता।[2]

सन् १४५५-५६ (वि० स० १५१२) मे जालोर मारवाड के कवि पद्मनाभ ने **"कान्हड़दे प्रबन्ध"** की रचना की थी। सन् १९१२ मे एक सजीव वाद-विवाद गुजरात मे इस विषय को लेकर चला था कि उक्त प्रबन्ध गुजराती मे लिखा गया था अथवा प्राचीन राजस्थानी मे। वस्तुत: देखा जाय तो यह ग्रन्थ उस युग मे लिखा गया जब राजस्थानी और गुजराती का परस्पर विभेद नही हो पाया था, इसलिए इस कृति की भाषा वही रही होगी जो उस जमाने में जालोर मे बोली जाती होगी।[3] डा० दशरथ शर्मा ने कुछ समय पूर्व प्रकाशित अपने एक लेख में **"कान्हड़दे प्रबन्ध"** को प्राचीन राजस्थानी का ग्रन्थ माना है।[4] कवि ने स्वय **"प्राकृतबंध कवि मति करी"** कहकर प्रबन्ध की भाषा को सामान्यत: प्राकृत नाम से अभिहित किया है, किन्तु यह प्राकृत वैयाकरणों की प्राकृत नही है, उस जमाने की लोक-भाषा को ही कवि ने प्राकृत का नाम दिया होगा।

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि वि० स० १५१२ मे भाषा के रूप में **'गुजराती'** अथवा **'राजस्थानी'** शब्द का प्रयोग नही होता था। गुजरात के विद्वान् जिसे जूनी गुजराती तथा राजस्थान के विद्वान् जिसे प्राचीन राजस्थानी कहते है, उस भाषा को इटली के प्रसिद्ध भाषावित् स्व० डा० टैसीटोरी ने **"प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी"** का नाम दिया था तथा ईसवी सन् १३वी शती से लेकर १६वी शती के अन्त तक के युग को उन्होने **"प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी काल"** की संज्ञा दी थी।[5] इस प्राचीन राजस्थानी से

1. Linguistic Survey of India, Vol. IV, part II, p. 328.
२. आपणा कवियो (केशवराम का. शास्त्री); पृष्ठ ४।
3. Linguistic Survey of India, Vol. 1, part I, p. 176.
४. शोध पत्रिका, भाग ३, अंक १; पृष्ठ ५१।
५. वचनिका राठौड रतनसिंघजी री अंग्रेजी भूमिका; पृष्ठ ४।

ही जो गुजरात से लेकर प्रयाग मंडल तक फैली हुई थी, आधुनिक गुजराती तथा आधुनिक राजस्थानी का विकास हुआ और विकसित होते-होते वे दो स्वतन्त्र भाषाओं के रूप में परिवर्तित हो गईं जिनमें परस्पर समानताएँ होते हुए भी व्यावर्तक विशेषताएँ स्पष्ट परिलक्षित होने लगी।

प्राचीन राजस्थानी साहित्य से कहावतों-सम्बन्धी जो उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं, उनमे से प्राय: सभी समान रूप से "जूनी गुजराती" के भी उदाहरण माने जा सकते है। किन्तु इस विषय में किसी भी प्रकार की भ्रान्त धारणा न हो, इसलिए ऊपर का स्पष्टीकरण आवश्यक समझा गया।

कवीश्वर शालिभद्रसूरि कृत "भरत बाहुबलि रास" रचना-काल सं० १२४१।

(१) **विण बधव सवि सपइ ऊणी।**
जिम "विण लवण रसोइ अलूणी" ॥८३॥

अर्थात् बाधवों के बिना सपत्ति उसी प्रकार न्यून समझी जाती है जिस प्रकार नमक के बिना रसोई अलोनी रहती है।

(२) **ज विहि लिहीउं भालयलि।**
त जि लोइ इह लोइ पामइ ॥९३॥

अर्थात् विधाता ने जो ललाट मे लिख रखा है, उसे ही इस लोक में लोग प्राप्त करते है।

(३) **हीउं अनइ हाथ हथियार।**
एह जि वीर तणउ परिवार ॥१०४॥[1]

अर्थात् हृदय और हाथ का हथियार, यही वीर का परिवार है।

—प्रबोध चिन्तामणि जयशेखर सूरि स० १४६२ के लगभग।

(१) **वानरडउ नइ बीछोह खाधु।**
दाह जरिउ दावानलि दाधु॥

अर्थात् बदर जिसे बिच्छू ने डस लिया हो, दाह से तो पहले ही जला हुआ था, दावानल से और दग्ध हो गया।

(२) **घेवर मांहि ए घृत ढलिऊ।**

अर्थात् घेवर मे घी गिरा।

(३) **चोर माइ जिम छानउ रूअइ।**

अर्थात् चोर की माता जिस प्रकार छिपकर रोती है।

(४) **केतू कुसल विमासीइ वसतां नई नइ कूलि।**

अर्थात् नदी के किनारे रहनेवालो का क्या कुशल ?

—पृथ्वीचन्द्र चरित्र श्री माणिक्यचन्द्र सूरि वि० सं० १७४८।

(१) **छासिइं केरउ आफरु, दासिइ केरउ नेह।**
कँवल केरउ मोलीउं, विसत न लागइ षेव॥[2]

---

१. मिलाइये—
कंता फिरज्यो एकला, किसा विराणां साथ।
थारा साथी तीन जण, हियो कटारी हाथ॥
—राजस्थान के सांस्कृतिक उपाख्यान, पृष्ठ १७।

२. प्राचीन गुजराती गद्य संदर्भ : सं० श्री जिनविजयजी; पृष्ठ १४१।

(२) **तीणइं सोनइं किसिउं कीजइं जीणइ त्रूटइं कान ।**

अर्थात् उस सोने का क्या किया जाय जिससे कान टूटते हों ?

आधुनिक राजस्थानी मे यही कहावत **"बाल सोनो, कान तोड़ै"** के रूप मे प्रचलित है ।

—श्री वीर कथा लखमसेन पदमावती कवि दाम-कृत, वि० स० १५१६ ।

(१) **बालस्य माय मरण, भार्या मरण च यौवनकाले ।**
वृद्धस्य पुत्र मरण, तिन दुखाइं गिरुआंइ ॥[२]

अर्थात् बालक की माता का मरण, यौवन-काल मे भार्या का मरण और वृद्ध के पुत्र का मरण, ये तीन भारी दु ख है ।

(२) **पर दुखइ जे दुखीयां, पर सुख हरख करन्त ।**
पर कज्जइ सूरा सुहड़, ते बिरला नर हुन्त ॥

अर्थात् पर-दुःख मे जो दुखी और पराये सुख से सुखी होते है और परोपकार के लिए जो कमर कसे रहते है, ऐसे मनुष्य बिरले ही होते है ।

(३) **पर दुखइ सुख ऊपजइ, पर सुख दुक्ख धरन्त ।**
पर कज्जइ कायर पुरुष, धरि धरि वार फिरन्त ॥

अर्थात् पराये दुःख से जिनको सुख मिलता है, दूसरे के सुख से जो दुखी होते हैं और पराये कार्य मे जो कायरता दिखलाते है, ऐसे मनुष्य घर-घर के दरवाजों पर फिरते है ।

(४) **सीह सिवाणो सापुरिस, पड़ि पड़ि पुनि ऊठन्ति ।**
गय गड्डर कुच कापुरिस, पड़े न वलि ऊठन्ति ॥[३]

—सीताहरण कर्मण रचित, वि० सं० १५२६ ।

(१) **देव घातक दूवलानइ मेहलिउ विश्वास ।**

अर्थात् दैव भी दुर्बल के लिए घातक होता है ।

(२) **गई तिथि नवि वांचइ ब्राह्मण, एह बोल वीसारु ।**

अर्थात् गई तिथि को ब्राह्मण भी नही **'पढ़ता'** ।

(३) **कीधां कर्म न छूटीइ, बोलइ वेद पुराण ।**

अर्थात् किये हुए कर्मों से छुटकारा नही ।

—ढोला मारू रा दूहा, कल्लोल वि० सं० १५३० ।

डा० मोतीलाल जी मेनारिया के अनुसार **"ढोला मारू रा दूहा"** का निर्माण काल वि० सं० १५३० है ।[४] इस काव्य का मालवणी-मारवणी सवाद अत्यन्त लोक-

---

१. प्राचीन गुजराती गद्य संदर्भ : सं० जिनविजय जी, पृष्ठ १५८ ।

२. मिलाइये—
"मत मारियो बालक की माय, मत मारियो वृद्धे की जोय ।"

३. श्री अगरचंदजी नाहटा के सौजन्य से प्राप्त हस्तलिखित प्रति से उद्धृत ।

४. देखिये : राजस्थानी भाषा और साहित्य; पृष्ठ १०१ ।

प्रिय हुआ है। इसमें स्थान-स्थान पर सूक्तियाँ भी मिलती हैं। उदाहरण के लिए एक सूक्ति लीजिये—

डूंगर केरा वाहला, ओछां केरा नेह।
वहता वहै उतावला, झटक दिखावै छेह॥

पहाडी नाले और ओछे पुरुषों का प्रेम बहते समय तो बड़ी तेजी से बहते हैं, पर तुरन्त ही अन्त दिखा देते हैं।

इस काव्य में कहीं-कहीं ऐसी पंक्तियाँ भी मिल जाती हैं जिनको पढकर किसी सूक्ति अथवा कहावत का स्मरण हो जाता है। उदाहरण के लिए एक ऐसी ही पंक्ति लीजिये—

"उत्तर आज स उत्तरउ सही पड़ेसी सीह।"

अर्थात् आज उत्तर दिशा का पवन उत्तर आया है, अवश्य ही शीत पड़ेगा।

यह पंक्ति "उत्तरस्यां यदा वायुः तदा शीतं प्रवर्तते" का स्मरण दिलाये बिना नहीं रहती।

इस काव्य की साहित्यिक विशेषताओं के कारण मैंने इसे शिष्ट साहित्य के अन्तर्गत ही रखा है। लोक-प्रचलित कहावतों का इस ग्रन्थ में अभाव है, भले ही इसकी अनेक पंक्तियों को कहावतों की-सी प्रसिद्धि मिल गई हो।

—विमल प्रबन्ध (लावण्य समय) वि० स० १५६८. (गुजराती प्रधान)

(१) घर घरणिइ नवि बलणिइ होइ।
एह वात जांणइ सहु कोइ॥[1]

(२) पण घर सूनूं विण सन्तान।

(३) बरस सोलमह पंधिह रहिउ।
बेटउ मित्र समाणउ कहिउ॥[2]

प्राचीन राजस्थानी के जिन ग्रन्थों से ऊपर उद्धरण दिये गये हैं, उनमें कहावतों का प्रयोग विरल है, ढूँढने से ही कहावतें उपलब्ध होती हैं।

(ख) माध्यमिक राजस्थानी

समयसुन्दर और राजस्थानी कहावतें—अपने ग्रन्थों में कहावतों के प्रचुर प्रयोग की दृष्टि से इस युग के कवियों में कविवर समयसुन्दर का नाम सबसे पहले लिया जाना चाहिए। कवि की मातृभूमि होने का गौरव मारवाड़ प्रान्त के साचौर स्थान को प्राप्त है। पोरवाड वंश में इसका जन्म हुआ। पिता का नाम रूपसी और माता का लीलादे या धर्मश्री था। जन्म-काल वि० सं० १६२० होने की सम्भावना की जाती है। वि० सं० १६४८ में सम्राट् अकबर के आमंत्रण पर लाहौर यात्रा भी आपने की थी। अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सीताराम चौपई" की ढाल इन्होंने अपनी जन्मभूमि साँचौर में ही बनाई। सं० १७०२ में इनका अहमदाबाद में स्वर्गवास हुआ। साठ वर्ष तक

---

१. मिलाइये—
"न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते।"

२. मिलाइये—
"प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रे मित्रवदाचरेत्।"

निरन्तर साहित्य-रचना करते हुए इन्होंने भारतीय वाङ्मय को समृद्ध बनाया। स्तवन-गीत आदि इनकी लघु कृतियाँ सैकडों की सख्या में हैं जो खोज करने पर मिलती ही रहती हैं। इसी से लोकोक्ति है कि **"समयसुन्दर रा गीतड़ा, कुंभे राणे रा भीतड़ा"** अथवा "भीतो का चीतडा"। अर्थात् कविवर की रचनाएँ अपरिमित हैं। इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ "सीताराम चौपई" की रचना सं० १६७७ के आस-पास हुई।[1] यह ग्रन्थ सरल सुबोध भाषा में लिखा गया है जिसमे लोक-प्रचलित ढालों का प्रयोग हुआ है। सम्पूर्ण ग्रन्थ ९ खण्डो मे समाप्त हुआ है और प्रत्येक खण्ड में सात-सात ढाल है। लोकोक्तियो के प्रयोग की दृष्टि से इस ग्रन्थ का विशेष महत्त्व है। इसमें प्रयुक्त बहुत-सी कहावते यहाँ उद्घृत की जा रही है।

१. उंघतणइ बिछाणउ, लाधउ, आहींणइ दूकांणउ बे।
मु गनइ चाउल मांहि घी घणउ प्रीसाणउ बे।
—प्रथम खण्ड, ढाल ६, छन्द ५

२. छट्ठी रात लिख्यउ ते न मिटइ। —प्रथम खण्ड, छन्द ११

३. करम तणी गति कहिय न जाय। —दूसरा खण्ड, छन्द २४

४. तिमिरहरण सूरिज थकां, कुण दीवानउ लाग।
—दूसरा खण्ड, ढाल ३, छन्द १२

५. रतन चिन्तामणि लाभतां, कुंण ग्रहइ कहउ काच।
दूध थकां कुण छासिनइ, पीयइ सहु कहइं साच॥
—खण्ड २, ढाल ३, छन्द १३.

६. भरतनइ तात किसी एक करणी, आपणी करणी पार उतरणी।
—खण्ड ३, ढाल ४, छन्द ६

७. बालक वृद्ध नइ रोगियउ, साध बामण नइ गाइ।
अबला एह न मारिया, मार्यां महापाप थाइ॥
—खण्ड ३, ढाल ७, छन्द ३

८. महिधर राय सुखी थयो, मुंग मांहि ढल्यो घीय।
विछावण लह्यो ऊंघतां, धान पछउ त्रे सीय॥
—खण्ड ४, ढाल ४, छन्द ४

९. पांचां मांइ कहीजियइं, परमेसर परसाद। —खण्ड ५, ढाल १, छन्द १

१०. साधु विचारयो रे सूत्र कहेइ, समरथ सच्चा देह। —खण्ड ५, पृष्ठ ७३

११. लिख्या मिटइ नहिं लेख। —खण्ड ५, ढाल ३, छन्द १

१२. मूर्छागत थइ मावड़ी, दोहिलो पुत्र वियोगि। —खण्ड ५, ढाल ३, छन्द ११

१३. पाछा नावइ जे मुआ। —खण्ड ५, ढाल ६, छन्द २०

---

१. कविवर समयसुन्दर (श्री अगरचन्द नाहटा) नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५७, अंक १, सं० २००१।

१४. मइ मतिहीण न जाण्यो, त्रूटइं अति घणो ताण्यो ।
—खण्ड ५, ढाल ७, छन्द ४५

१५. कीड़ी ऊपर केही कटकी । —खण्ड ६, ढाल २, छन्द ४६

१६. ए तत्त्व परमारथ कह्यो मइं, त्रूटिस्सइ अति ताणियो ।
—खण्ड ६, ढाल १२ छन्द १२

१७. ऊषाणउ कहउ लोक, पेटइ को घालइ नहीं अति बाल्ही छुरी रे लो ।
—खण्ड ७, ढाल १, छन्द ६७

१८. षत ऊपरि जिम षार, दुख मोहे दुख लागो राम नइ अति घणा रे लो ।
—खण्ड ८, ढाल १, छन्द २२, पृष्ठ १६२

१६. छट्ठी राति लिख्या जे अक्षर, कूण मिटावइ सोइ ।

२०. आभइं बीजलि उपमा हो । —पृष्ठ ११६

२१. थूकि गिलइ नहिं कोइ । —खण्ड ६, ढाल ३, छन्द ११

ऊपर दी हुई कहावतो का क्रमशः अर्थ है—ऊँघती हुई को बिछौना मिल गया। मूँग-चावल में घी परोसा गया। छठी की रात जो लिख दिया गया, वह अमिट है। कर्म की गति कही नही जा सकती। सूर्य के होते दीपक को कौन पूछे? चिन्तामणि मिलते काँच कौन ग्रहण करे? दूध मिलते छाछ कौन पिए? अपनी करनी से सब पार उतरते है। बालक, वृद्ध, रोगी, साधु, ब्राह्मण, गाय और अबला इन्हे नहीं मारना चाहिए, क्योंकि इन्हे मारने से महा पातक हो जाता है। घी बिखरा तो मूँगों में। ऊँघते को बिछौना मिल गया। पचो को परमेश्वर का प्रसाद कहा जाता है। समर्थ देता है। लिखे लेख नही मिटते। पुत्र वियोग दुःसह है। मरे हुए वापिस नही आते अधिक तानने से टूट जाता है। कीडी (चीटी) पर कैसी फौज? ताना हुआ टूट जाता है। प्यारी सोने की छुरी को भी कोई पेट में नही रखता। घाव पर नमक, इसी प्रकार राम को दुःख मे दुःख अधिक लगा। छठी रात को जो अक्षर लिख दिये गये, उनको कौन मिटा सकता है? बादल की बिजली। थूककर कोई नही चाटता।

ऊपर दी हुई कहावतो के राजस्थानी रूपान्तर आज भी उपलब्ध है। इससे कम से कम इतना स्पष्ट है कि कवि समयसुन्दर के जमाने मे उक्त कहावते प्रचलित थी। कवि ने कहावतो के साथ-साथ सूक्तियो और मुहावरो का भी प्रयोग किया है। कही-कही संस्कृत-सूक्तियो का अनुवाद भी कर दिया है। उदाहरणार्थ—

"**जीवतो जीव कल्याण देखई**" पृष्ठ १०४ वाल्मीकि रामायण के 'जीवन्भद्राणि पश्यति' का अनुवाद-मात्र है। 'सीताराम चौपई' मे यह उक्ति राम की हनुमान के प्रति है। राम हनुमान से कहते हैं कि ऐसा प्रयत्न करना जिससे सीता जीवित रहे। वाल्मीकि रामायण मे आत्म-हत्या न करने का निश्चय करते हुए स्वयं हनुमान कहते हैं कि यदि मनुष्य जीता है तो कभी न कभी अवश्य कल्याण के दर्शन करता है। इसी प्रकार **बीसर्‌यो अंगीकार नहि उन्नमनइ आचार** "**अंगीकृत सुकृतिन. परिपालयन्ति**" का स्मरण दिलाता है। कहावत के लिए कवि ने "आहीण" और 'ऊषाणउ' का प्रयोग किया है। एक स्थान पर सूत्र शब्द का प्रयोग हुआ है। कहावत भी वस्तुतः एक प्रकार का वाक्-सूत्र ही है।

"सीताराम चौपई" के अतिरिक्त कवि की अन्य कृतियो में भी यत्र-तत्र कहावतें बिखरी मिलती हैं।

"आप मुयां बिन सरग न जाइयइ।"

अर्थात् अपने मरे बिना स्वर्ग जाना नही होता।

"वाते पापड़ किमही न थाइ।"

अर्थात् बातों से पापड़ नही होते।

"आपणी करणी पार उतरणी।"

अर्थात् अपनी करनी से ही पार उतरा जा सकता है।

"सूता तेह विगूता सही जागंता काऊ डर भय नहीं।"

(सूता जगावण गीत)

अर्थात् सोये हुए को डर रहता है, जगने वाले को नही।

"सूतां री पाडा जिणं एह बात जग जाणं रे।"

अर्थात् सोये हुए की (भैंस) पाडा जनती है।

"आप डूबे सारी डूब गई दुनिया।" (नेमिफाग)

अर्थात् आप डूब गये तो सब दुनिया डूब गई।

माल कवि कृत पुरन्दर चउपई और कहावतें—माल कवि की यद्यपि निश्चित तिथि ज्ञात नहीं है तथापि कहावतो के सिलसिले मे उनका नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कवि द्वारा रचित 'पुरन्दर चउपई' मे से कुछ कहावते यहाँ दी जा रही है।

१. **जां संपइ तां पाहुणा, जां सांवण तां मेह।**
जां सासू तां सासरउ, जां यौवन तां नेह॥

जहाँ सम्पत्ति है, वही अतिथि है, जहाँ श्रावण है, वही वर्षा है; जहाँ सास है, वहीं ससुराल है; जहाँ यौवन है, वही स्नेह है।

२. **पर भव कहि किण दीठा**

अर्थात् यह तो बताओ कि परलोक देखा किसने है?

३. **अणमिलतइ जे संयमी।**

अर्थात् न मिलने पर जो संयमी रहते है।

आज भी कहा जाता है **"अणमिले का सं जती हैं"** अर्थात् विषय-भोग सुलभ न होने पर सभी अपने को संन्यासी कह सकते हैं।

४. **छांनऊ कस्तूरी गुण न रहइ।**

अर्थात् कस्तूरी का गुण छिपा नही रहता। **"न हि कस्तूरिकामोदः शपथेन विभाव्यते।"** इसी आशय को व्यक्त करने वाली संस्कृत कहावत है।

५. **मन मांहि भावइ मूंड हलावइ।**

अर्थात् मन को अच्छा लगता है किन्तु मस्तक हिलाकर निषेध करता है।

६. **बिल्ली भागइ छीकउ त्रुटउ, घीय ढल्यो तउ मूंगां मांहै।**

अर्थात् बिल्ली के भाग्य से छीका टूट गया, घी बिखरा तो भी मूँगो में ही।

७. कह कडि बइसइ ऊंट ।

अर्थात् न जाने ऊँट किस करवट बैठे ? यह एक बड़ी व्यापक कहावत है जो भारतवर्ष की अनेक प्रादेशिक भाषाओं में भी पाई जाती है ।

८. **मूआं का क्या मारिये । 'मृतस्य मरण नासित'**, ऐसी ही एक संस्कृत लोकोक्ति है ।

९. दूज वूठ अलखामणउ मरई न मांचउ छंडहरे ।

अर्थात् न मरता है, न चारपाई छोडता है ।

"पुरन्दर चउपई" कोई कहावतो का सग्रह-ग्रन्थ नही है । इसमे जम्बू द्वीप के विलासपुर नामक नगर मे राज्य करने वाले सिह रघुराय के पुत्र पुरन्दर की कथा कही गई है और बीच-बीच मे अनेक लोकोक्तियो और सूक्तियो का प्रयोग हुआ है ।

इस युग के अन्य कवियो और लेखको मे ईसरदास, पृथ्वीराज, कुशललाभ, जगाजी, कृपाराम, बाँकीदास तथा महाकवि सूर्यमल्ल आदि के नाम प्रसिद्ध हैं । ईसरदास की **"हांलां झालां रा कुंडलियां"** के निम्नलिखित पद्य कहावतो की ही भाँति प्रचलित हैं—

१. मरदां मरणो हक्क है ऊबरसी ल्लांह ।
सादुरसां रा जीवणा थोड़ा ही भल्लांह ॥

अर्थात् मृत्यु वीरो का अधिकार है, उनकी बाते रह जायेगी । सत्पुरुषो का थोड़ा जीना ही अच्छा है ।

२. केहर केस भगम मण, सरणाई सुहड़ांह ।
सती पयोहर कृपण धन, पड़सी हाथ मुवांह ॥

अर्थात् सिंह के केश, सर्प की मणि, योद्धा का शरणागत, सती के स्तन और कृपण का धन, मरने पर ही दूसरो के हाथ पडेगे ।

दूसरा दोहा अपभ्रंश के ग्रन्थो में भी मिलता है । इससे स्पष्ट है कि कवि ने इसे परम्परा-प्राप्त साहित्य से ही ग्रहण किया है ।

राठौड़ राज पृथ्वीराज की प्रसिद्ध कृति **"वेलि क्रिसन रुकमणी री"** में कहावतो का प्रायः अभाव है । राजस्थानी में **"भला भली प्रिथमी छै"** एक कहावत है जिसका अर्थ यह है कि इस पृथ्वी पर एक से एक बढकर महापुरुष है । केवल इस एक कहावत का सकेत 'वेलि' के निम्नलिखित दोहले में मिलता है—

सरिखां सूं बलभद्र लोह साहियै, वड़फरि उछजतै विरुधि ।
भलाभली सति तोई भंजिया, जरासेन सिसुपाल जुधि ॥

कुशललाभ की **"ढोला मारू री चौपई"** और **"माधवानल कामकदला"** बहुत लोकप्रिय रचनाएँ है । इन दोनो मे से कहावती पद्यों के कुछ उदाहरण लीजिए—

ढोला मारूरी चौपई

१. असत्री पीहर नर सासरै, संजमीयां सहवास ।
एता होआ अलखामणा, जो मांडै घरवास ॥

अर्थात् स्त्री पीहर और पुरुष ससुराल रहने लगे, संयमी सहवास करने लगें तो ये अप्रिय हो जाते हैं।

माधवानल कामकंदला

२. दुर्बल नइ बल राय नू, मूरख नइं बल मौन्य।
बालक बल रोवा तणूं, तस्कर बल नइं शौन्य॥[1]

अर्थात् दुर्बल को राजा का, मूर्ख को मौन का, बालक को रुदन का और चोर को शून्यता का बल रहता है।

३. रुदया भींतरि रही रडउं, चोर तणी जिम माय।

अर्थात् चोर की माँ हृदय के भीतर ही रोती है।

कही-कही ऐसी उक्तियाँ भी मिलती हैं जिन्हे सस्कृत-सूक्तियो की छाया कहा जा सकता है। जैसे—

जू कइरइ नहू पानडूं फूल नहीं वट वृक्ष।
तु सिउ दोस वसंतनउ, सरयु तेह समक्ष॥
आदित्य आंखि जु विश्वनी, ऊधाडण अे आंक।
थासिइ अन्ध उलूक तु, सूरिजनु स्यु वांक॥[2]

अर्थात् करील मे यदि पत्ते न हो, वट-वृक्ष मे फूल न हो तो इसमे वसन्त का कोई दोष नही। इसी प्रकार उल्लू को यदि दिन में नही दिखाई पडे तो इसमे विश्व के लिए चक्षु स्वरूप सूर्य का क्या दोष है?

जगाजी द्वारा रचित वचनिका तथा उनके कवित्तो मे कहावतो का प्रयोग नहीं मिलता। कवित्तो मे कही-कही "**मिटै न लेख करम्म रो**" जैसी पक्तियाँ मिल जाती है।

राजिया के सोरठे और कहावतें—कहावतो के प्रयोग की दृष्टि से कृपाराम का नाम सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इनका रचना काल स० १८६५ के आस-पास है। ये जोधपुर राज के गाँव खराडी के निवासी खिडिया शाखा के चारण थे। बडे होने पर ये सीकर के रावराजा लक्ष्मणसिह के पास चले गये और अन्त समय तक वही रहे। राजिया के नाम से जो सोरठे राजस्थान मे प्रचलित है, वे कृपाराम के बनाये हुए है। राजिया इनका नौकर था। उसी को सम्बोधित करके ये सोरठे कहे गये है।[3] इन सोरठो के कारण कवि की अपेक्षा भी रजिया का नाम अधिक विख्यात हो गया है।

---

१. मिलाइये :
क. विभूषण मौनमपण्डितानाम्।
ख. बालाना रोदनं बलम्॥

२. मिलाइये :
पत्रं नैव यदा करीरविटपे दोषो वसन्तस्य कि
नोलूकोऽप्यबलोक्यते यदि दिवा सूर्यस्य कि दूषणम्।
धारा नैव पतति चातकमुखे मेघस्य कि दूषणम्
यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितु कः क्षमः॥

३. राजस्थानी भाषा और साहित्य (डा० मोतीलाल मेनारिया); पृ० १९५।

इन सोरठों की भाषा सरल, रोचक और उपदेशप्रद होने के कारण राजपूताने के निवासी प्रायः इन सोरठो को बोलते देखे जाते हैं। शायद ही कोई ऐसा मनुष्य हो जिसे राजिया के दो-चार सोरठे याद न हो। राजाओ और सरदारो की सभा में राजिया मे सोरठे मौके ब मौके सुने जाते है। साधारण लोग इन्हे सासारिक व्यवहार में अच्छी तरह नित्य प्रयोग करते है। वेस्टर्न राजपूताना स्टेट्स के भूतपूर्व ब्रिटिश रेज़िडेण्ट कर्नल पाउलट साहब इन सोरठो पर इतने मुग्ध थे कि उन्होने बड़ी मेहनत से जितने भी सोरठे मिल सके, उनका सग्रह कर अँग्रेजी भाषा मे अनुवाद किया था। उक्त रेजिडेण्ट साहब इन सोरठो की तारीफ मे कहा करते थे कि **"मारवाड़ी भाषा के साहित्य में राजिया के सोरठे अमूल्य वस्तु हैं।"**[1]

राजिया के सोरठो मे अनेक सोरठे तो ऐसे हैं जिनमे लोक-प्रचलित कहावतों के प्रयोग से सोरठो मे चमत्कार आ गया है, अनेक सोरठे ऐसे भी है जो अपने चमत्कार के कारण राजस्थान मे कहावतो की भाँति प्रयुक्त होने लगे है। पहले प्रकार के सोरठों के कुछ उदाहरण लीजिये—

कहणी जाय निकाम, आछोणी आंणी उकत।
दांमा लोभी दांम, रजे न वातां राजिया ॥५७॥

अर्थात् हे राजिया! पैसे के लोभी के सामने अच्छी-अच्छी उक्तियाँ पेश करके भी कहा हुआ व्यर्थ होता है, क्योकि वह बातों से प्रसन्न नही होता, पैसे से होता है। **"दमड़ां को लोभी बातां सूं कोनी रीझै"** राजस्थान की एक प्रसिद्ध कहावत है जिस का उक्त पद्य के उत्तरार्द्ध मे प्रयोग हुआ है।

डूगर जलती लाय, जोवै सारो ही जगत।
प्राजलती निज पाय, रती न सूझै राजिया ॥६६॥

"डूगर बलती दीखै, पगां बलती कोनी दीखै" इस कहावत ने ही उक्त सोरठे का रूप धारण कर लिया है। इसी प्रकार निम्नलिखित सोरठे का पूर्वार्द्ध राजस्थान की एक कहावत ही है—

एक जणे को भार, सात पांच की लाकड़ी।
तैसे ही उपकार, राम मिलण ने राजिया ॥१२६॥

निम्नलिखित सोरठे अपनी सरल एव चमत्कारमयी अभिव्यक्ति के कारण राजस्थान में लोकोक्तियो की भाँति ही व्यवहृत होते हैं—

नहचै रहो निसक, मत कीजे चल विचल मन।
ऐ विधना रा अक, राई घटे न राजिया ॥८२॥

इस सोरठे का उत्तरार्द्ध एक कहावत ही समझिये जिसका अभिप्राय यह है कि विधाता के अंक राई भर भी नही घटते। नीचे लिखे सोरठे भी लोगों द्वारा बहुधा सुने जाते हैं—

मतलब सूं मनवार, नौत जिमावै चूरमा।
बिन मतलब मनवार, राब न पावै राजिया ॥६०॥

---

१. राजिया के सोरठे (श्री जगदीशसिंह गहलोत) भूमिका; पृष्ठ १।

अर्थात् मतलब होने पर संसार 'चूरमा' जिमाता है, बिना मतलब 'राब' भी नही मिलती।

समझणहार सुजाण, नर औसर चूके नहीं।
औसर रो अवसाण, रहे घणा दिन राजिया ॥१॥

अर्थात् समझने वाला अवसर को नही चूकता, अवसर का अहसान बहुत दिनों तक रहता है।

राजिया के सोरठो की भाँति नाथिया आदि के सोरठो मे भी स्थान-स्थान पर कहावतों का प्रयोग हुआ है। उदाहरणार्थ—

१. **बिकतां लगै न बार, बोलै जिण रा बूबला।**
अणबोलां री ज्वार, निरखै कोय न नाथिया ॥

अर्थात् बोलने वालों के बूबले बिकते भी देर नही लगती और न बोलने वालों की ज्वार की तरफ़ भी कोई नही देखता।

२. **अवघट करै अवाज, नहिं कर भरियां नाथिया।**

अर्थात् आधा खाली घडा आवाज़ करता है, भरा हुआ नही।

३. **तातो लीजै तोड़, बांण्यो अर बीजो बड़ो।**

अर्थात् बड़ा जब गरम हो, तभी उसे काम में ले लेना चाहिए, इसी प्रकार बनिये से भी अवसर पर फायदा उठा लेना चाहिए।

सवत् १८५८ की सबोध अष्ठोत्तरी से यहाँ जैन कवि ज्ञानसार (सं० १८००-१८९८) के भी कुछ कहावती सोरठे उद्धृत किये जा रहे है—

१. **पहरीजें पर प्रीत, खाईजे अपनी खुसी।**

अर्थात् जैसा दूसरो को अच्छा लगे, वैसा पहनना चाहिए और जैसा अपने को अच्छा लगे, वैसा खाना चाहिए।

२. **अब फाटो आकाश, कह कारी कैसी करें।**

अर्थात् अब आकाश फट गया, पैबन्द कैसे लगे ?

३. **करिवर केरो कान, तरल पूंछ तुरियां तणी।**
पीपल केरो पान, निचला रहै न नारणा ॥

अर्थात् हाथी का कान, घोडे की तरल पूँछ और पीपल का पत्ता, ये निश्चल नही रहते।

४. **ताता चढ़ण तुरग, भांत भांत भोजन भला।**
सुथरा चीर सुरग, नहीं पुण्य बिन नारणा ॥[1]

अर्थात् तीखे घोडो की सवारी, भाँति-भाँति के अच्छे भोजन, साफ़-सुथरे सुरंगे वस्त्र, ये बिना पुण्य नही मिलते।

नारणा के उक्त सोरठों में वैण सगाई के रक्षार्थ ही **"अब फाटो आकाश, कह कारी कैसी लागै"** के स्थान मे **"अब फाटो आकाश कह कारी कैसी करें"** का प्रयोग हुआ है।

---

१. बिडला सैंट्रल लाइब्रेरी, पिलानी की एक हस्तलिखित प्रति से साभार उद्धृत।

राजस्थानी साहित्य में कविराजा बांकीदास का नाम बड़े आदर और सम्मान के साथ लिया जाता है। आपकी लिखी हुई "**बांकीदास री ख्यात**" राजस्थान में अत्यन्त प्रसिद्ध है जिसमें स्थान-स्थान पर "**ओखाणों**" और कहावती पद्यो का प्रयोग हुआ है। बिड़ला सेंट्रल लाइब्रेरी की हस्तलिखित प्रति से कुछ उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं—

१. रायमल वेद मुहतो सोजत हुवो वीरमदेवजी रे कांम आयो सिर पडिया जूझियो कबन्ध हुय बेटा नूं मारियो उण दिण रो उखांणो।

मुहतां माटी मार कां। घर रा गिणे न पार का। —वात संख्या २२४८

२. "**वारै बेटा राम रा, काज रा न कांम रा।**
जो नहीं होती रणछोड़, सारा बाजता हांडी फोड़॥ —वात संख्या २२८४

३. **आधी धरती भीम, आधी लोदरवे धणी।**
काक नदी छै सीम, राठौड़ां ने भाटियां॥ —वात संख्या ७८४

४. पाच बकार सूं पडित पूज्य होय वपु करि, वित्त करि, वाणी करि, विद्या करि, विनय करि। —वात संख्या २०१६

५. बीरबल की मृत्यु पर अकबर की उक्ति—

"**हूँ बीरबल री लोथ कांधे लं बालतो तो उणरी चाकरी सूं उऋण होतो हू।**"
—वात सख्या २४४६

"**खुदा ताला री कृपा सू बीरबल मोनूं मिलियो हो म्हांरा दिल मांहली बात बाहर आणतो दारू ज्यू।**" —वात संख्या २४४७

६. ऋषि कपाट जडि गुफा मे बैठो हुतो। राजा जाय कह्यो—किवाड खोलो। जद ऋषि कह्यो—कुण है? राजा कह्यो—हूँ राजा हूँ। जद ऋषि कह्यो—राजा तो इन्द्र है। जद भोज कह्यो—किवाड खोलो, हूं दाता हूँ। जत ऋषि कह्यो—दाता तो करण हुवो। जद भोज कह्यो—किवाड खोलो, हूँ क्षत्रिय हूँ। जद ऋषि कह्यो—क्षत्रिय तो अर्जुन हुवो। जद भोज कह्यो—खोलो किवाड। ऋषि कह्यो कुण है? भोज कह्यो—मनुष्य है। ऋषि कह्यो—**मनुष्य तो धारापति भोज है।**[1] तो हाथ लगा बिनां खोलियो किवाड़ खुल जासी। यूँ हिज हुवो।

महाकवि सूर्यमल्ल की भी अनेक पक्तियाँ लोकोक्तियो की भाँति प्रचलित हुई है। यहाँ "**वीर सतसई**" से केवल दो उदाहरण दिये जा रहे हैं—

१. इला न देणी आपणी। —दोहा २३४
अपनी ज़मीन किसी को न देनी चाहिए।

२. रण खेती रजपूत री। —दो० ११८
युद्ध ही राजपूत की खेती है।

राजस्थान की ख्यातो और बातो में जो कहावती दोहे मिलते हैं, उनका

---

१. मिलाइये—नैव देवा अतिक्रामन्ति, न पितरो न पशवो, मनुष्या एवैके अतिक्रामन्ति।
—शतपथ ब्राह्मण। २-४-२-६

विवेचन मैंने "राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद" तथा "राजस्थान के सांस्कृतिक उपाख्यान" में विस्तारपूर्वक किया है।

(ग) आधुनिक राजस्थानी

आधुनिक राजस्थानी साहित्य में कहावतो के विशेष प्रयोग की दृष्टि से दो पुस्तको के नाम उल्लेखनीय है। "एक है श्री भौमराज द्वारा रचित "मू घा मोती" और दूसरी है पंडित मागेलालजी चतुर्वेदी द्वारा लिखित "मरु भारती"। दोनों में से कहावतों के उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं—

(अ) मूंघा मोती

१. पाड़ोसी रो पूत, भलो तपाणो तावड़ं। —सोरठा १०३
पड़ौसी के लडके को धूप में तपाना ही अच्छा।

२. भली राड़ स्यूं बाड़, मगल नाकै रैवणो। —सोरठा १०७
झगडे से बाड अच्छी है।

३. मिलतारू रो काम, बातां मांग्रों नीसरं। —सोरठा ११८
मिलने-जुलने वाले का काम बातो ही बातो में निकल जाता है।

४. मंगल बीनें जाय, जीनें झुकतो पालड़ो। —सोरठा १३२
जिधर पलडा झुकता है, उधर ही लोग जाते है

५. जलमें जद जा दीख, पूतां रा पग पालणे। —सोरठा १४६
पूत के पैर पलने में ही दिखलाई पड जाते है।

६. मंगल मिटै न भूख, मन रा लाडू खाण स्यूं। —सो० १६०
मन के लड्डुओं से भूख नहीं मिटती।

७. होय अंधेरी रात, न घी घाल्यो छानो रहवं। —सो० १६२
अंधेरी रात मे भी घी डाला हुआ छिपा नही रहता

८. तपं तावडो लोक, मंगल बरखा भी जद्दी।[1] —सो० २०२
जब ससार धूप मे तप लेता है, तभी वर्षा होती है।

९. मंगल बालक जीत, खेलण में राजी रवं। —सो० २०८
बालक खेलने से ही प्रसन्न रहते हैं।

१०. दुबले नं दो साढ़, जाट बिचारं खेत में। —सो० २१२
दुबली और दो आषाढ।

११. गधो न घोड़ो होय, ठम ठम कर भाऊं चलो। —सो० २३ हास्य व्यंग्य
ठम-ठम कर चलने से गधा घोडा नही हो सकता।

१२. छाज निजी बंधेज, बोल्यो सो तो बोलियै।
मंगल सोऊ वेज, बोलण लागी छालणी॥ —सो० २४ हास्य व्यंग्य
छाज तो बोले सो बोले लेकिन चलनी भी जिसमे सौ छिद्र होते है, बोलने लगी।

---

१. पाठान्तर—
"आडंग कर गरमी करै, जद बरसण री आस।"

इस पुस्तक मे स्थान-स्थान पर कहावती लोक-विश्वासों का भी उल्लेख हुआ है।

उदाहरणार्थ—

१. तड़कै तडकै आय कांव कांव कागो करे।
मगल यू के ज्याय, पत्तर मिनखर आयसी॥ —सो० ६ फुटकर

कौऐ का बोलना प्रिय के आगमन की सूचना देता है।

२. पग में चालै खाज, जूती पर जूती पड़ै।
मंगल कैंग्रो काज, करणी पड़ै मुसाफिरी॥

पग में खाज चलने और जूती पर जूती पड़ने से यात्रा करनी पड़ती है।

३. हाथ हथेली खाज, मंगल चालै मिनख रे।
कठे सेय ही र भाज, रिपिया आसी तावला॥

हथेली मे खुजलाहट इस बात की द्योतक है कि शीघ्र ही कही से रुपया आयेगा।

४. हिचकी बारूंबार, आय र हलकारै जियां।
बे ज्यावै समचार, मगल केरी याद रो॥

बारबार आने वाली हिचकी यह समाचार दे जाती है कि कोई स्मरण कर रहा है।

ऊपर दिये हुए सोरठे राजिया, भैरिया, किसनिया आदि की परम्परा को आगे बढाते है।

(आ) मरु-भारती

१. "दाँत ! न वीज्यो काट थे, बसी बीच में आय।"
"निचली रीजे जीभडी, देगी तुं तुडवाय॥" —पृ० २२

२. पानी तो बहतो भलो, नदी हो कि नहर।
भोजन मा के हाथ को, होय भलां ही जहर॥ पृ० ४३।

३. "करसी छोरी काणती ! कुण तेरै सं ब्याह ?"
"घरां खिलास्यूं बीर नें, दे दूल्हे के डाह॥" —पृ० ४८

४. नीवो नर किंचित् पढ्यो, कह "मैं कीं सै घाट।"
हुयो पसारी ऊनरो, लै हलदी की गांठ॥ —पृ० ५१

५. तुलसी सूर सुकाव्य की, दोय ऊजली आंख।
"मूँग मोठ में कुण बडो ?" करै कौन यह आंक ? —पृ० ५३

६. फाड़ै सो मण दूध न, काचर को एक बीज। —पृ० ५५

७ जासी करणी आपकी, के बेटो के बाप। —पृ० ७१

अर्थात् जीभ ने दाँतो से कहा—'तुम्हारे बीच मे आ बसी हूँ, कही काट न देना।' दाँतो ने उत्तर दिया—'तू चुपचाप रहना, ऐसा न हो कि अपनी चंचलता से हमें तुडवा दे।' पानी बहता हुआ ही अच्छा है, चाहे नदी हो, चाहे नहर। भले ही विष हो, भोजन तो माँ के हाथ का ही अच्छा है। किसी कानी लडकी को यह पूछने पर कि तुम्हारे साथ कौन शादी करेगा, उसने उत्तर दिया—'अपने भाई को मैं घर में खिलाऊँगी।'

छोटा मनुष्य जब कुछ पढ़ जाता है तो कहने लगता है कि अब मैं किससे कम हूँ ? चूहा हल्दी की गाँठ लेकर पंसारी बन गया। तुलसी और सूर काव्य की ये दो आँखे हैं। मूँग और मोठ में कौन बडा है ? यह मूल्याङ्कन कौन करे ? काचर के एक बीज से सौ मन दूध भी फट जाता है। चाहे पुत्र हो, चाहे पिता, सब को अपने-अपने कर्मों का फल मिलता है।

"**मूँघा मोती**" तथा "**मरु भारती**" दोनो में राजस्थानी लोकोक्तियों की भरमार है। कही से पृष्ठ खोलिए, कोई न कोई कहावत हाथ लग ही जाती है। "**मूँघां मोती**" की रचना जहाँ ठेठ राजस्थान मे हुई है, वहाँ "**मरु भारती**'; की भाषा हिन्दी के अधिक निकट है जैसा कि "**करें कौन यह आँक**" जैसे प्रयोगो द्वारा स्पष्ट है।

(२) **लोक-साहित्य**—"सुण गूजर का डावड़ा, यो पोथी को ज्ञान" कह कर जब पण्डित ज्योतिषी ने लोक-ज्ञान की अवहेलना की तो गूजर के लडके ने उत्तर दिया था।

"दृष्टीगोचर ज्ञान सब, लोक तणो उनमान,
कह गूजर को डावड़ो, पोथी लिखो निकाम।
लोक तणो उनमान ले, दियो ग्रन्थ में मेल।"

अर्थात् जितना ज्ञान दृष्टिगोचर होता है, वह लौकिक अनुमान मात्र है। जो पुस्तकों में लिखा है, उसका महत्त्व क्या है ? वह तो बेकार है। सच तो यह है कि जो लोक-ज्ञान है, उसे ही तो पुस्तको में रख दिया गया है।

आज जब कि लोक-साहित्य का वैज्ञानिक अध्ययन होने लगा है, उसके महत्त्व के सम्बन्ध मे दो मत नही हो सकते। लोक-साहित्य के विभिन्न अंगों के अन्तर्गत कहावतो का भी अपना विशिष्ट स्थान है। विद्वानो द्वारा रचित साहित्य में कहावतो का उतना प्रयोग नही देखा जाता जितनी प्रचुरता के साथ उनका प्रयोग लोक-साहित्य में देखने को मिलता है और यह स्वाभाविक भी है, क्योकि कहावते वस्तुत. लोकोक्तियाँ हैं, सच्चे अर्थ में लोक की उक्तियाँ है।

लोकोक्तियाँ पवाड़ो, लोक-गीतों, वार्ताओं तथा ख्यालों आदि में विशेषत: उपलब्ध होती हैं।

पवाड़े और कहावते—राजस्थानी लोक-साहित्य मे पाबूजी तथा निहालदे सुलतान के पवाडे अत्यन्त प्रसिद्ध है। पाबूजी के पवाडो में प्रयुक्त कुछ कहावते लीजिए—

१. **कोइ बिना तो बजाई रै हाथां री ताली ना बजै।**
बिना बजाई हाथो की ताली नही बजती।
२. **छोटै तो मुखड़ा ह रै थे मोटी वातां मत करो।**
छोटे मुँह बड़ी बात मत करो।
३. **सूरां तो नारां का रै बै वार कर्योड़ा ना फिरै।**
शूरवीरो और सिंहों के वार वापिस नही जाते।
४. **बींन बिना सूनी लागै जुग में जिण बिद जांन।**
जिस प्रकार दूल्हे के बिना बरात सूनी लगती है।

५. **मूल हूँ तो प्यारो थांनै लागै ब्याज ।**
कोइ प्यारी तो बेटा हू लागै थानै पेमा डोकरी ।
मूल से व्याज आपको प्रिय लगता है, पेमा लडकी बेटे से भी प्रिय लगती है ।
६. **कोइ बेटी केरो दुखड़ो रै माता की छाती दलमले ।**
लडकी के दु.ख से माता का हृदय विदीर्ण हो जाता है ।
७. **कोनी ओ गरूजी म्हारै माय र बाप ।**
अम्बर तो पटक्योजी गुरूजी धरती झेलियो ।[1]
अर्थात् मेरे माता-पिता कोई नही; अम्बर ने मुझे डाल दिया और धरती ने झेल लिया ।

बिडला एज्यूकेशन ट्रस्ट के राजस्थानी शोध विभाग द्वारा निहालदे सुलतान के पवाड़ों का भी सग्रह किया गया है । निहालदे सुलतान के ५२ पवाड़े प्रसिद्ध है जो अभी प्रकाश मे नही आये है । पवाडो की हस्तलिखित प्रति से कुछ कहावते यहाँ उद्धृत की जा रही है ।

१. **अब घर आज्या होणी वरण ना टलै ।**
अर्थात् अब घर आ जाओ, होनहार नही टलती ।

२. कमधजराव ने जब सुलतान से पूछा कि तुम्हारे माता-पिता कौन हैं और तुम कहाँ के रहने वाले हो ? तो उसने उत्तर दिया ।

"अम्बर भी पटक्या या झेल्या माता धरतरी"
कोन्या कहिये मायी बाप ।
भिखा किसी में हो राजा, मत पड़ो ।
मुश्कल कटता दिन और रात ।
इतनी भी कह के मणधारी रोवण लाग्या ।
उझल्यां समदर जी डटता नांय ॥

अर्थात् मैं अनाथ हूँ, आसमान ने मुझे नीचे डाल दिया और धरती माता ने सँभाल लिया । हे राजन् ! विपत्ति किसी पर न पडे, विपत्ति के दिन-रात मुश्किल से कटते है । इतना कहकर वह रोने लगा । सच है, समुद्र जब मर्यादा का उल्लघन करके बहने लगता है, तब वह किसी के रोके नही रुकता ।

ऊपर के प्रसग की पक्तियाँ राजस्थान की प्रचलित लोकोक्तियाँ हैं ।

३. **"पूत विराणा हे राणी दोरा राखणा ।"**
अर्थात् हे रानी ! पराये पूत का रखना बड़ा दुश्कर है । कमधजराव की रानी के प्रति यह सुलतान की उक्ति है ।

लोक-गीत और कहावतें—राजस्थान के लोक-गीतो में भी स्थान-स्थान पर कहावतों का प्रयोग दृष्टिगत होता है किन्तु उनमें भी जहाँ कथा का निबन्धन होता है, कहावतें अधिकता से काम में लाई जाती हैं । यही कारण है कि लम्बे ऐतिहासिक गीतों

१. ये उद्धरण श्री गणपति स्वामी द्वारा सगृहीत पवाड़ों में से लिये गये हैं जिनकी हस्तलिखित प्रति बिडला सैंट्रल लाइब्रेरी पिलानी के सौजन्य से प्राप्त हुई है ।

में लोकोक्तियों की दृष्टि से अध्ययन की विशेष सामग्री मिल जाती है। कुछ उदाहरण लीजिये—

१. हरसा बीर मेरा रे
सेलां रा भर ज्यां गैरा घाव
जामण का रे जाया
बोलां रा घाव ज जुग में ना भरे।

अर्थात् भालो के घाव भर जाते है, बोली के घाव नही भरते।

२. पाप्यां रो रे जुग में सीरी को नहीं।[1]

अर्थात् संसार में कोई भी पापियो का पाप बँटाने वाला नही।

३. नांय भरोसो के करे स कोइ या रांगड़ की जात।

अर्थात् यह राँगड की जाति है, इसका कोई भरोसा नही, यह क्या करे ?

४. नहीं मरे की बूटी।[2]

अर्थात् मरे की कोई औषधि नही।

५. सुण्योड़ी हो ज्या झूठ तुम्हारी नणदूली ये।
कांन सुण्योड़ी होज्या बा झूठ ये॥
कोइ आंख्यां तो देख्योड़ी ये नणदल झूठी ना हुवै जी।[3]

अर्थात् कानो से सुनी हुई बात झूठी हो सकती है, किन्तु आँखो देखी बात झूठी नही होती।

ऐतिहासिक गीतो के अलावा, राजस्थान के अन्य लोक-गीतों से भी कुछ कहावती उक्तियो के उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं—

१. ऊजड़ खेड़ा भंवरजी, फेर वसै जी।
हांजी ढोला, निरधण रै धन होय।
जोवन गयां पाछो कोन्या वावड़ै जी।
ओजी थां ने लिखूँ बारम्बार।
प्यारा घर आवजो, क थांरी धण एकली जी। —पृष्ठ ३२५

२. कागद हो तो वांचू लूं, करम न वांच्यो जाय। —पृष्ठ ३६६

३. बैंगण तो काचा भला, पाकी भली अनार।
प्रीतम तो पतला भला, मोटा जाट गिंवार॥ —पृष्ठ ३६७

४. घर घोड़ी पिव अचपलो, वैरीवाड़े वास।
नित उठ खड़कै ढोलड़ा, कद चुड़ले री आस॥ —पृष्ठ ३६८

५. कै कोओ जागै राजा बादस्या,
कै कोओ बालक की ओ जी ओ माय।

---

१. जीण माता रो गीत।
२. डूंगजी जवारजी रो गीत।
३. तेजाजी रो गीत।

ये गीत श्री गणपति स्वामी द्वारा सगृहीत है और बिड़ला सैंटूल लाइब्रेरी के सौजन्य से प्राप्त हुए हैं।

कै कोश्री जागै तिरिया श्रेकली जी ॥ —पृष्ठ ३७४

६. श्रागे बाबोजी फूटरा घणा फेरूं टाट घड़ायली। —पृष्ठ ४२६

७. बिणजारो श्रे लोभण, गुड़ डलिया में जाय।
चिमठ्यां तो चिमठ्यां जावै खांडड़ी, बिणजारी श्रे॥ —पृष्ठ ५०८

८. गहणो धायां रो सिणगार श्रर भूखां रो श्राधार। —पृष्ठ ५०६

६. सिंघ होसी सिंहणी को रै जाये। —पृष्ठ ५४१

१०. नार मुइ या बुरी हुई, टाबर बारा जी बाट। —पृष्ठ १४४

११. जलाजी मारू, पुरसां मांयलो पुरस भलो राठोड़ो हो।
जलाजी मारू, राण्यां मांयली रणी भली भटियाणी हो।
जलाजी मारू, छींटां मांयलो छींटा भली मुलतानी हो।
जलाजी मारू, रुपियां मायलो, रुपयो भलो गंगासाही हो।
जलाजी मारू, सहरां मांयलो सहर भलो बीकाणै हो।—पृ० १५८-६६

१२. स्यालू सांगानेर का, जो बना म्हारा, श्रंगियां कोर जड़ाय॥ —पृष्ठ १७१

कभी-कभी लोक-गीतों में ऐसी पंक्तियाँ भी आती है जिन्हे कहावतमूलक कहा जा सकता है। उदाहरणार्थ—

१. तीज तिव्हारां मा बावड़ी जै। —पृष्ठ ६४

२. पोह महीने पालो पड़सी, खालड़ो रो खोह।[1] —पृष्ठ ५११

लोक-कथाएँ और कहावतें—कहावतो के अध्ययन की दृष्टि से सबसे महत्त्व-पूर्ण है लोक-कथाएँ। कथा कहने वाला बीच-बीच में कहावतो का प्रयोग करता चलता है जिससे कथा का आकर्षण कई गुना बढ जाता है और श्रोताओ पर प्रभाव भी बहुत पडता है। राजस्थानी की दो प्रसिद्ध वार्ताओं से कहावतो के उदाहरण यहाँ दिये जा रहे है—

"रतना हमीर री वारता"

१. कपूर नूं घणो ही छिपावै तो पिण सुगन्ध आवै ही आवै। —पृष्ठ ३१

कपूर को चाहे जितना छिपाओ, उसमे से सुगन्ध आती ही है।

२. कपटी पर त्रिय संग करै, पर हर निज त्रिय प्रीत।
घर रा जिके न घाट रा, रजक स्वान री रीत॥ —पृष्ठ ७१

अपनी स्त्री से प्रीति छोडकर जो कपटी पर-स्त्री के साथ प्रीति करता है, वह धोबी के कुत्ते की तरह न घर का रहता है, न घाट का।

३. कूप भेक जाणै किसूं, बारधरो बिस्तार। —पृष्ठ ७०

कूप-मण्डूक समुद्र के विस्तार को नही जानता।

४. जीहों चाषी दाष जिन न रुचै नीमोलीह। —पृष्ठ ६१

जिन्होने द्राक्षा का आस्वादन किया है, उन्हे 'निबौरी' नही रुचती।

---

१. लोक-गीतों के उद्धरण 'राजस्थान के लोक-गीत' से लिये गये हैं जिनका सम्पादन श्री रामसिंह, श्री सूर्यकरण पारीक तथा श्री नरोत्तमदास स्वामी ने कई वर्ष हुए किया था। उद्धृत पंक्तियों के अर्थ के लिए भी यही संस्करण द्रष्टव्य है।

"पन्ना वीरम दे री वारता"

१. उडगन ऊगै नवलखां, छिप्यो न रहसी चन्द। —पृष्ठ ३४
२. तीजां पुगल देस री गवरल उदिया दीप।
दिली वसेरो देखिये, मोती समदां सीप॥ —पृष्ठ २१
३. नेह की रीत तो काचो तागो छै। —पृष्ठ ६६
४. भोलो अति भूंडो भलौ, प्यारो घर को पीव।
देख पराई चौपडी, क्यू तरसावै जीव॥ —पृष्ठ ६७
५. शिव बिनां इस्यो कुंण जको जहर री घूंट जारै। —पृष्ठ ८०

अर्थात् नौ लाख तारो के उदित होने पर भी चन्द्रमा छिपा नही रहता। पूंगल की तीज, उदयपुर की गणगौर, दिल्ली का दशहरा और समुद्री सीप के मोती प्रशस्य होते है। प्रीति की रीति तो कच्चे धागे के समान है। अपने घर का प्रिय यदि भोला और अत्यन्त भौडा भी हो तो भी वह अच्छा है। परायी चुपडी हुई रोटी को देखकर जी मत ललचाओ। शिव के बिना ऐसा कौन है जो विष को पचा सके?

ऊपर की वार्ताएँ साहित्यिक शैली मे लिखी हुई वार्ताएँ है, इसलिए उनमें यदि कहावतो की प्रचुरता न भी मिले तो कोई अचम्भे की बात नही किन्तु राजस्थान में जो असंख्य लोक-कथाएँ प्रचलित है, उनमे किसी भी लोक-कथा को पढिये-सुनिये, कहावते अनायास हाथ लग जायेगी।

राजस्थान के लोक-काव्य और कहावते— नरसी को माहेरो' तथा पदम भक्त का बनाया हुआ 'रुक्मिणी' मगल ये दो राजस्थानी भाषा के प्रसिद्ध लोक-काव्य है। **'माहेरो'** मे कही-कही कहावती उक्तियाँ मिल जाती है। जैसे—

१. मायडली बिना तो कांइ बाप को हेज। —पृष्ठ ५४
२. पहले केश खचाय कै, पछै बढ़ायो चीर।
आवत लाज गमाय कै, आखर जात अहीर॥

किन्तु कहावतो के प्रयोग की दृष्टि से रुक्मिणी मंगल का विशेष महत्त्व है। महाराज पृथ्वीराज की बनाई हुई **'क्रिसन रुकमणी री'** का भी विषय यही है जो **'रुक्मिणी मंगल'** का है किन्तु साहित्यिक शैली अथवा डिगल मे लिखी जाने के कारण वेलि मे कहावतों का प्रायः अभाव है जबकि **'रुक्मिणी मंगल'** में कहावतों की प्रचुरता है जैसा कि नीचे के दिये हुए उदाहरणो से स्पष्ट प्रतीत होगा—

१. सबलां सेती सगपण कीजे, पाणीं पहलो पाजै। —पृष्ठ १०
२. येकज घर में दो मता, भली काय से होय।
पुरुष जु पूजै देवता, भूत जु पूजै जोय॥ —पृष्ठ १३
३. समंदरां सूं सीर पड्यो जद नाडूल्यां कुण न्हावै। —पृष्ठ ३८
४. मानसरोवर हंसा देख्यां काग निजर नहिं आवै। —पृष्ठ ३८
५. मन मोती धन नैन को जाणो येक सुभाय।
फाटें पीछे नां मिले, कोट ज करो उपाय॥ —पृष्ठ ४०
६. डूंगरिया को वाहलो, ओछां तणो सनेह।
बहतां वहै उतावला, तुरतहि आवै छेह॥ —पृष्ठ ४१

७. व्याव वैर घर प्रीत सायक बराबर सूं कीजिए। —पृष्ठ १२
८. साठी बुद्ध गई अब थांकी। —पृष्ठ १५
९ झालर बाज्यां हरि भगत, रिण बाज्यां रजपूत।
इतनी सुण नहिं उठ चलै, आठूं गांठ कपूत॥ —पृष्ठ ९२
१०. घरै हांण हांसी जगमांही। —पृष्ठ १०४
११. छठी रात का लेख टलै नां दाणा पाणीं ल्याया। —पृष्ठ १०४

अर्थात् सबलो से सम्बन्ध करना चाहिए, पानी आने के पहले पाल बाँधनी चाहिए। एक ही घर मे जहाँ दो मत हो, पुरुष देवता को पूजता हो और स्त्री भूत को पूजती हो, वहाँ कुशल कहाँ से हो ? समुद्रों मे जहाँ हमारा हिस्सा हो, वहाँ नालों में कौन स्नान करे ? मानसरोवर के हस देख लेने पर कौवो पर दृष्टि नही जाती। मन, मोती और नेत्रो का एक ही स्वभाव होता है। करोडो उपाय चाहे करलो, फटने पर ये नही मिलते। पर्वत का नाला और तुच्छ मनुष्यो का स्नेह प्रवाहित होते समय तो वेग से बहते हैं किन्तु शीघ्र ही उनका अन्त हो जाता है। विवाह, वैर और प्रीति बराबर वालो से करना चाहिए। साठ वर्ष की अवस्था मे बुद्धि नष्ट हो जाती है। झालर बजने पर हरि-भक्त और युद्ध का डका बजने पर यदि राजपूत उठकर नही चलें तो वे दोनों ही पूर्णतः कुपुत्र हैं। घर मे हानि हो और संसार हँसे। छठी रात के लिखे लेख नही टलते।

राजस्थान के ख्याल और कहावतें—ख्याल एक प्रकार के लोक-नाटक है जिनका अभिनय खुले मैदान में होता है। राजस्थान के लोक-कवियों द्वारा रचित ख्याल सैकडो की सख्या में उपलब्ध है। ख्यालो के रचयिताओ मे चिडावा निवासी नानूलाल ने सर्वाधिक ख्याति प्राप्त की। उसके बनाये हुए लगभग ४०-५० ख्याल मिलते है। ये ख्याल लोक-प्रचलित राजस्थानी भाषा मे लिखे गये है जिनमे कही-कही खडी बोली का पुट भी आ गया है। डिंगल की रचनाओ और इस प्रकार की लोक-कृतियो मे आसानी से भेद किया जा सकता है। कुछ ख्यालों से यहाँ कहावतें उद्धृत की जा रही हैं जिनसे इस बात का सहज ही अनुमान हो सकेगा कि कहावतो के प्रयोग की दृष्टि से ये ख्याल कितने महत्त्वपूर्ण है।

शाहजादा को ख्याल

१. कांच कटोरो फूट्यो मोती जुड नहीं सकता कोय। —पृष्ठ १२
२. कुत्तो पूत कपूत बाईजी बुचकार्यो स्मामै आवै। —पृष्ठ २८
३. कहर केश भुजग मणि बिन मूया हाथ न आवै। —पृष्ठ १२
४. खर कू आप खुवावो मिसरी जाणे वीष समान। —पृष्ठ २७
५. गुड़ देणै सै मरज्या जिसकूं विष काहे कूं देना। —पृष्ठ २७
६. ग्रह बिन धात भेद बिन चोरी शाहजादा ना होय। —पृष्ट १०
७. चात्रक हो सो बंच कर निकलै मूरख पाँव फँसाव। —पृष्ठ १२
८. ठंडो लो तातै लो नै सुण सूलतान खा ज्याय। —पृष्ठ २७

---

१. ऊपर के उद्धरण खेमराज श्री कृष्ण द्वारा प्रकाशित "नरसी मेहेता का बडा मामेरा" तथा "बड़ा रुक्मिणी मंगल" से दिये गये हैं।

९. पिसता दाख बदाम छोड़कर सूरख गाजर खाय। —पृष्ठ २०
१०. तीन ठोड मरणा चाये सुण सहजादा सुलतान।
जोरू धरा धरम जातां के मरणा मोटै ठान। —पृष्ठ ४५
११. बदर अड़ियल घोड़ो बाईजी ठोक्यां हुकम उठावै। —पृष्ठ २८
१२. भूखां मरतो पड़्यो रहै पण सिंघ घास नहिं खाय। —पृष्ठ १६

ख्याल नल राजा को

१. अनदोषी कै दोष लगायां लागै बडो सराफ। —पृष्ठ ४६
२. असल और कमसल की सुरता सायर देख पिछाणै। —पृष्ठ ३९
३. बणी बणी का सब कोइ सगी, बिगडी का कोइ नाय। —पृष्ठ ३८
४. सो-सो खोटा रचै मानवी पेट भरण कै काज। —पृष्ठ २६

षीवै आभल को ख्याल

१. काग होय कर तकै हंसणी या अणजुगती चाल। —पृष्ठ १४
२. गरज पड़्यां सब घोटा बिणजै पुन देखै नहिं पाप। —पृष्ठ २६
३. नहीं इस्क कै जात। —पृष्ठ १४
४. बिन आदर को पावणं स जी जम स्यूं बुरो लषावै। —पृष्ठ ३०
५. मुत हीणी होय नार की डिगती करै न ढील। —पृष्ठ १८
६. रती-रती को हिसाब देणं धरमराय के आगे। —पृष्ठ २७
७. लाख बरस को बैर चितारै सूरवीर को जायो। —पृष्ठ ४१
८. सात पदारथ बडा जगत में निसचै लो ना जाण।
राजभोग और चढण तुरी का सुरगा तणा विवाण।
धन सतान भुजा बल भाई ये छ काड्या छाण॥
सुन्दर सुघर नार सग रमणं सातूं दिया बखाण —पृष्ठ ४
९. सापुरसां की चलै वारता दुनियां कै दरम्यान। —पृष्ठ ४
१०. हिम्मत रोप्यां मदद की स जी मदत चढै भगवान। —पृष्ठ ८

ख्याल छोटे कथ को

१. इश्क रोग और खांसी मद यो छिपता नाहीं कोय। —पृष्ठ २७
२. जोडी बिना चलै नहिं गाडी, कांटो पग नै खाय।
जोडी बिना एकलो मोती, ससतै मोल बिकाय। —पृष्ठ ४
३. पाके बिना आम सुण प्यारी, चूसण में नहिं आवै। —पृष्ठ ५
४. बल बिन बुध बापड़ी। —पृष्ठ ६
५. बैम की दारू नहीं। —पृष्ठ २४

ख्याल जगदेव कंकाली को

१. छोटो हो सो छोटै मुख सै छोटी इ बात बखाणै। —पृष्ठ १७
२. जग में बड़ो जीणूं है। —पृष्ठ २४
३. दातारां की बातड़ी वातारां भावन्त। —पृष्ठ २०
४. नाडी समद न होइ। —पृष्ठ १७

(५) बडा बडाई नां करें जी, बडा न बोलें बोल।
हीरा मुख सें कब कहै स है, लाख हमारा मोल ॥ —पृष्ठ १७

(६) बैरी मंगल पावणां अणकोक्या आवन्त। —पृष्ठ २०

सुलतान मरवण का भात का ख्याल

(१) औसर का चूका नै पिता मोसर कभी न पावता। —पृष्ठ ६९

(२) घुसण कुत्ता न खाय। —पृष्ठ ४४

चन्द्रभान का ख्याल

(१) काम पड्यां कर देवां जग में एक चणूं दो दाल। —पृष्ठ ३

ढोल सुलतान न्हालदे का ख्याल

(१) मालक को मालक कुण ? —पृष्ठ ८

(२) भाग पुरस का तेज छिपाया ना छिपै। —पृष्ठ १४

(३) घर ज्वांई और भ्रात भैण घर ये दो स्वान समान। —पृष्ठ ३०

(४) गोली जात गुलाम काग की ठोक्यां रहै ठिकाणै।
ठोक्यां रहै ठिकाणै चले बे तौर सै।
गोलो मू ज बल खाय परायै जोर सै। पृष्ठ ५२।

काच, कटोरा और फूटा मोती, जुड नही सकते। कुत्ता और कुपुत्र पुचकारने से सामना करने लगते है। गधे को मिश्री खिलाओ तो भी वह उसे विष समझने लगता है। जो गुड देने से मर जाता हो, उसे विष क्यो दिया जाय ? बिना ग्रह के घात और बिना भेद के चोरी नही होती। चतुर बचकर निकल जाता है, मूर्ख अपने पाँव फँसा लेता है। ठडा लोहा गरम लोहे को खा जाता है। पिस्ते, दाख और बादाम को छोड़ कर मूर्ख गाजर खाता है। स्त्री, पृथ्वी और धर्म पर जब सकट पडा हो तो प्राणो का बलिदान कर देना चाहिए। बदर और अड़ियल घोड़ा पिटने पर ही वश मे आते है। सिंह चाहे भूखा रह जाय, घास नही खाता।

जो निरपराध को दोषी ठहराता है, उसे शाप लगता है। चतुर व्यक्ति से असली और नकली का भेद छिपा नही रहता। जब बात बन जाती है तो सभी साथ देते हैं, बिगडने पर कोई साथ नही देता। पेट भरने के लिए मनुष्य सौ-सौ पाखण्ड रचता है। कौआ होकर हसिनी की ओर तके, यह अनुपयुक्त है। आवश्यकता पड़ने पर पुण्य और पाप की परवाह न कर सब बुरा व्यापार करने लगते हैं। इश्क के जाति नही होती। अनादरणीय मेहमान यम से भी बुरा लगता है। स्त्री हीनबुद्धि होती है, उसे डिगते देर नही लगती। धर्मराज के सामने रत्ती-रत्ती का हिसाब देना होगा। शूरवीर का पुत्र लाख वर्ष के वैर को भी नही भूलता। ससार मे सात पदार्थ बड़े है—राज्य का भोग, घुडसवारी, धन, संतान, भुजबल, भाई और सुन्दर—सुघड स्त्री। दुनिया में सत्पुरुषो की गाथाएँ हमेशा चलती हैं। जो हिम्मत करता है, उसकी भगवान सहायता करते है। इश्क, रोग, खाँसी और मद, ये छिपाये नही छिपते। बैलों की जोड़ी के बिना गाडी नही चलती, जूतियों की जोडी के बिना काँटा पैर में चुभता है। जोड़ी के बिना अकेला मोती सस्ते मोल बिकता है। बिना पके आम चूसने में नही आता।

बिना बल के बुद्धि बेचारी समझी जाती है। वहम का कोई इलाज नही। छोटा छोटे मुख से छोटी ही बात करता है। जग मे जीना सबसे बडा है। दातारो की बाते दातार ही समझते है। नाला समुद्र नही हो सकता। बडे स्वय अपनी प्रशसा नही करते। हीरा कब कहता है कि मेरा मूल्य एक लाख है ? वैरी और मेहमान बिना बुलाये आ जाते हैं। एक बार अवसर चूक जाने पर दुबारा हाथ नही लगता। भौंकने वाला कुत्ता काटता नही। काम पडने पर ससार मे **'एक चना दो दाल'** कर देंगे। मालिक का मालिक कौन ? सौभाग्यशाली पुरुष का तेज छिपाये नही छिपता। ससुराल मे जामाता का घर बनाकर रहना और बहिन के घर भाई का रहना श्वान के समान है। गुलाम और कौवा पिटने पर ही ठीक होते है। गुलाम और मूँज (रस्सी) पराये बल पर जोर खाते है।

ऊपर के पृष्ठो में राजस्थान के शिष्ट साहित्य और लोक-साहित्य में प्रयुक्त कहावतो पर एक विहंगम दृष्टि डाली गई है। अनेक बार शिष्ट साहित्य के सुप्रसिद्ध ग्रन्थो में ढूँढने पर भी कहावते नही मिलती जब कि लोक-साहित्य के सामान्य ग्रन्थों में अनायास कहावते हाथ लग जाती है। कहावतो की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण न होने के कारण ही शिष्ट साहित्य के बहुत से प्रसिद्ध ग्रन्थो को भी छोड़ना पडा है जब कि कहावतो के लिए उपयोगी होने के कारण शिष्ट तथा लोक-साहित्य से सम्बद्ध सामान्य ग्रन्थों को भी यहाँ विचारार्थ ले लिया गया है।

५. धर्म और जीवन-दर्शन

इस शीर्षक के अन्तर्गत ईश्वर, धर्म-भावना, शकुन, लोक-विश्वास तथा भाग्य आदि से सम्बन्ध रखनेवाली सभी प्रकार की कहावतों का समावेश किया जा सकता है। सबसे पहले ईश्वर-सम्बन्धी कहावतों को ही लीजिये—

(क) ईश्वर-सम्बन्धी कहावतें

प्राय. दुनिया की सभी भाषाओं में ईश्वर-विषयक कहावते मिलती है। आज तो जीवन की जटिलता तथा विचार-स्वातन्त्र्य की भावना के कारण यहाँ तक कहा जाने लगा है कि ईश्वर का कोई अस्तित्व नही, ईश्वर ने मनुष्य को नही बनाया, मनुष्य ने ही अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ईश्वर का निर्माण कर लिया है किन्तु राजस्थान में ऐसी कोई कहावत शाहद ही मिले जिसमें ईश्वर के अस्तित्व पर सन्देह प्रकट किया गया हो। हाँ, ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने वाली कहावते यहाँ सहज ही मिल जायँगी। उदाहरण के लिए ऐसी दो कहावतें लीजिये—

(१) कण कण भीतर रामजी, ज्यूं चकमक में आग।

जिस प्रकार चकमक पत्थर मे आग रहती है, उसी प्रकार कण-कण के भीतर ईश्वर का निवास है।

(२) राम जी ऊपर चढ्यो देखै है।

भगवान ऊपर से सभी के भले-बुरे कर्मो को देख रहा है। इसलिए मनुष्य को यह समझकर कि मुझे कोई नही देखता, कुकर्म नही करना चाहिए।

बहुत-सी कहावतो द्वारा ईश्वर की उदारता, दयालुता और न्याय-बुद्धि का पता चलता है। यथा,

(१) कीड़ी नैं कण, हाथी नैं मण।

ईश्वर चींटी को उदर-पूर्ति के लिए जहाँ कण भर देता है, वहाँ हाथी को मन भर दे देता है अर्थात् वह छोटे-से-छोटे प्राणी से लेकर बड़े-से-बडे जीव की आवश्यकताएँ पूरी करता है।

(२) आंधा की माखी राम उड़ावै।

अन्धे की मक्खी भगवान् उडाता है अर्थात् वह निर्बल का सहायक है।

(३) आखर रामजी कै घर न्याव है।[1]

अन्त में भगवान के यहाँ न्याय अवश्य है।

(४) बदी राम बैर।

बुराई से भगवान की शत्रुता है।

एक कहावत में राम-नाम की महिमा का इस प्रकार बखान किया गया है—

"रामजी को नांव सदा मिसरी, जद चाखें जद गूंदगिरी।"

---

१. मिलाइये—
'देर है, अन्धेर कोनी।'

भगवान् का नाम लेने से मेवे-मिसरी मिलते रहते हैं अर्थात् मनुष्य हमेशा आनन्दपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करता है।

किन्तु भगवान् का स्मरण करने वालों में कुछ लोग तो श्रद्धा से ऐसा कहते हैं और कुछ लोगों को विवश होकर ऐसा करना पडता है। एक कहावत लीजिये—

"हर-हर गंगा गोदावरी किमंक सरदा अर किमंक जोरावरी।"

स्नान करते समय जाड़े के दिनों में जो भगवान् का नाम लिया जाता है, उसमें कुछ तो श्रद्धा और कुछ शीत का भय, दोनों का सम्मिश्रण रहता है।

निम्नलिखित कहावतों में ईश्वर को सर्वशक्तिशाली ठहराया गया है—

(१) **राम सूं जोर नही।**

भगवान् के आगे किसी का वश नही चलता।

(२) **राम को अर राजा को सिर ऊपर कर गैलो है।**

भगवान् और राजा जो चाहे कर सकते है, उनके मार्ग मे कोई बाधक नही हो सकता।

भगवान् यदि देना चाहे तो वह किसी भी मार्ग से दे सकता है।

"राम दे तो बाड़ में ही दे दे।"

देव-विषयक कुछ कहावते ऐसी भी मिलती है जिनमे विचार का स्तर अपेक्षया उच्च मालूम पड़ता है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित कहावत पर विचार कीजिये—

"मानै तो देव, नहीं भींत को लेव।"

अर्थात् मूर्ति में देवत्व के आरोप का मूल कारण भावना ही है जिसकी पुष्टि संस्कृत के निम्नलिखित श्लोक द्वारा भी हो जाती है—

न काष्ठे विद्यते देवो, न शिलायां न मृण्मये।
भावे हि विद्यते देवस्तस्माद् भावो हि कारणम्॥[1]

(ख) नैतिकता और धर्म-सम्बन्धी कहावतें—

एक सामान्य परिवार मे ही हम देखते है कि कुछ सदस्य भले होते हैं, कुछ बुरे। राजस्थान की कहावतो का परिवार तो बहुत बडा है। फिर यदि इस विशाल परिवार में अच्छी और बुरी दोनो ही प्रकार की कहावतें उपलब्ध हों तो इसमे आश्चर्य की क्या बात है? जब दुनिया मे स्वार्थपरता तथा असत्य आदि अवगुण है तो उनसे सम्बन्ध रखने वाली कहावतें ही क्योंकर नही मिलेंगी? कहावतो मे तो जीवन की अभिव्यक्ति होती है, उस जीवन की जिसमे धूप और छाया दोनो हैं। जीवन का यदि एक शुक्ल पक्ष है तो दूसरा कृष्ण पक्ष भी है। उदाहरण के लिए नैतिक और अनैतिक दोनो प्रकार की कुछ राजस्थानी कहावतें लीजिये—

नैतिक

(१) **सांच नै आंच कोन्या।**

अर्थात् साँच को आँच नही।

---

१. मिलाइये—
"मानला तर देव, नाही तर दगड।" (मराठी कहावत)

(२) **साचे रा बोलबाला, झूठे रा मुँह काला ।**
सच्चे का बोलबाला और झूठे का मुँह काला ।
(३) **ऐंठवाड़ो खाणो पण ऐंठवाडी बात नहीं करणी ।**
झूठा खा भले ही लिया जाय किन्तु झूठी बात नही करनी चाहिए ।
(४) **धरम कियां सू धन वधै ।**
अर्थात् धर्म करने से धन बढता है ।
(५) **नीत गैल बरकत है ।** (नीयत के अनुसार बरकतहोती है ।)

अनैतिक

(१) **करो पाप तो खावो धाप ।**
अर्थात् पाप करो और धाप कर खाओ ।
(२) **करो धरम तो फूटै करम ।**
अर्थात् धर्म करो और दुर्भाग्य का आश्रय लो ।
(३) **साची कही, भाठा की दई ।**
अर्थात् सत्य कहने से दूसरे को ऐसा लगता है जैसे पत्थर से प्रहार किया हो ।

ऊपर दी हुई नैतिक कहावतो मे सत्य और धर्म का जयजयकार हुआ है जब कि अनैतिक कहावतो मे पाप को फलता-फूलता हुआ तथा सत्य को कटु बतलाया गया है।

उक्त अनैतिक कहावतो को पढकर, यह भ्रान्त धारणा नही बना लेनी चाहिए कि इस प्रकार की उक्तियाँ अनैतिकता के प्रचारार्थ जीवन-सूत्रो का काम देने लगती है। वस्तु-स्थिति यह है कि जब हम ससार में अन्याय और अत्याचार करने वालो को अमन-चैन से जीवन व्यतीत करते हुए देखते है तथा धर्मात्मा व्यक्ति हमारे ही सामने दु.ख भोगते है तो हमारे मुख से थोड़े समय के लिए इस प्रकार के उद्‌गार निकल पडते है जिनसे नैतिकता और धार्मिक भावना के प्रति हमारी आस्था हिलती हुई-सी मालूम पडती है किन्तु स्थायी रूप से हमारा ध्यान उन्ही कहावतो की ओर जाता है जो नैतिकता और धार्मिक भावना का समर्थन करती है । अनैतिकता के प्रचार की बात तो दूर, पूर्वी देशो मे तो नीति-साहित्य के अन्तर्गत ही कहावतो की गणना की गई है । राजस्थानी कहावतो में अनैतिक कहावतो की अपेक्षा नैतिक कहावतें ही संख्या मे भी अधिक हैं। अनैतिक कहावतें अनेक बार तथ्य-कथन के रूप मे प्रयुक्त न होकर व्यग्य के रूप में भी उच्चरित होती हैं ।

(ग) लोक-विश्वास-सम्बन्धी कहावतें—

अन्धविश्वास के स्थान मे मैं जानबूझकर ही 'लोक-विश्वास' शब्द का प्रयोग कर रहा हूँ। लोक-विश्वास क्या असत्य-विश्वास का नामान्तर है अथवा उस विश्वास का नाम है जो सहेतुक न हो, युक्तियुक्त न हो ? उदाहरण के लिए एक लोक-विश्वास को लीजिए। शीशा यदि किसी के हाथ से फूट जाय तो दुर्भाग्य का सूचक समझा जाता है ।[1] जिस अशिक्षित आदिम समाज में इस प्रकार

1. To break a looking glass betokens that the owner will lose his, or her best friend. (Yorkshire)

To break a looking glass means seven years' bad luck but not want. (General)

का लोक-विश्वास प्रचलित हुआ होगा, उस समय उस समाज-विशेष में इस प्रकार का लोक-विश्वास अहेतुक अथवा युक्ति-हीन नही समझा गया होगा। शीशा एक ऐसी वस्तु है जिसमें व्यक्ति का प्रतिबिम्ब दिखाई पडता है। जिस पदार्थ में व्यक्ति को प्रतिबिम्बित करने की शक्ति है, उस पदार्थ के किसी व्यक्ति द्वारा टूट जाने से उस व्यक्ति-विशेष को हानि हो सकती है, ऐसी कुछ चिंतन-पद्धति अथवा धारणा तत्कालीन समाज की रही होगी। उस युग का मनुष्य जिन आधारों को लेकर अपने सीमित बुद्धि-बल से जिन निष्कर्षों पर पहुँचा, वे निष्कर्ष गलत हो सकते है किन्तु युक्ति की प्रक्रिया उसके मन मे भी चलती रही होगी, इसमें कोई सन्देह नही।

एक दूसरे लोक-विश्वास को लीजिए। ग्रीस के निवासियो का यह विश्वास था कि पैदा होने के आठ दिन तक बच्चे को अकेला नही छोडना चाहिए। बहुत से देशों में अब भी यह विश्वास प्रचलित है कि पैदा होने के आठ दिन तक बच्चे को अँधेरे में नही रहने देना चाहिए क्योकि कही ऐसा न हो कि बुरी आत्माएँ उसे हानि पहुँचा दें। कहने का तात्पर्य यह है कि इस प्रकार के लोक-विश्वासों के पीछे भी कुछ न कुछ युक्तियाँ अवश्य चल रही थी चाहे वे किसी स्तर की क्यों न हों। इसलिए लोक-विश्वासों को अन्ध-विश्वास नही कहा जा सकता। जो समाज इस प्रकार के लोक-विश्वासों को सच्चा करके मानता है, उसकी दृष्टि मे तो ऐसे विश्वास अन्ध-विश्वास हैं ही नही। अन्ध-विश्वास का प्रश्न तो तब खडा होता है जब किसी व्यक्ति अथवा समाज के बौद्धिक विकास के साथ इस प्रकार के लोक-विश्वासों का सामंजस्य न बैठता हो।

लोक-विश्वासो से सम्बन्ध रखने वाली दो राजस्थानी कहावतें लीजिये—

(१) थावर की थावर ही किसा गांव बलै हैं ?

पुत्र-कामना करने वाली कुछ स्त्रियाँ समझती है कि शनिवार के दिन दूसरों के घर आग लगा देने से पुत्र उत्पन्न होता है। इस लोक-विश्वास का सकेत उक्त कहावत में मिलता है।

बीघै-बीघै भूत और बिसवै बिसवै साँप।

राजस्थान मे बीघै-बीघै की दूरी पर भूत और बिस्वे बिस्वे की दूरी पर साँप रहते हैं।

राजस्थान के सम्बन्ध मे कही हुई इस कहावत का पूर्वार्द्ध तो बडा अद्‌भुत मालूम पडता है किन्तु इतिहास के आलोक मे यदि हम इस लोक-विश्वास की छान-बीन करे तो सब रहस्य खुलने लगता है।

"जातको के समय से ही मरुकान्तर (रेगिस्तानी भूमि) भूतों के लिए बहुत प्रसिद्ध है। उस समय भी हजारो की सख्या मे चलने वाले वाणिज्य-सार्थ कितनी ही बार भूतो के फेर मे पड जाते थे। एक बार कोई सार्थवाह अपने कारवाँ के साथ मरु-कान्तर मे जा रहा था। आगे वह भूमि आने वाली थी, जहाँ दिनो चलते रहने पर भी पानी का कही पता नही चलता था, चारो ओर केवल बालू ही बालू दिखती। सार्थ को उधर से एक दूसरा कारवाँ आता मिला। उसकी गाड़ियो के चक्को में कीचड़ लिपटी हुई थी। लोग कमल के फूल अपने गलों में लटकाये हुए थे, कमल के पत्ते भी

उनके पास थे। जलाशय के बारे में पूछने पर कहा—"पानी के बारे में क्या पूछते हो ? आगे तो महासरोवर लहरें मार रहा है।" सार्थवाह ने सोचा—"फिर गाड़ियों पर मुशकों में पानी भरके ढोने से क्या फायदा ?" पानी वहाँ गिरवाकर वह आगे बढ़ा। वहाँ सरोवर का कहाँ पता था ? सार्थ निर्जल मरुभूमि में बढ़ता चला गया और उसके सभी आदमी और पशु वहाँ प्यास के मारे मर गये। कुछ दिनों बाद आने वाले दूसरे सार्थों को देखने के लिए उनकी केवल सफ़ेद हड्डियाँ रह गईं।

ढाई हज़ार वर्ष पहले भी भूत इस तरह धोखा देकर सारे सार्थ को मार डालते थे। आज भी वहाँ ऐसे भूतो की कमी नही। दुर्गा खवास और उपला चोबदार दोनों मंगलपुर से मखनपुर जा रहे थे। पास मे घड़ी तो थी नही। उनको चलना चाहिए था तीन-चार बजे रात को, ठण्डे-ठण्डे रेगिस्तान मे यात्रा तै करना अच्छा होता है, लेकिन वह आधी रात को ही चल पड़े। मंगलपुर से दो मील चलने पर मीलरास का गाँव आता है जहाँ एक जोहडी (पोखरी) सूखी पड़ी थी। वहाँ पर आग जलती दिखाई पडी। दुर्गा ने कहा—"चलो, वहाँ चलकर चिलम पी ले। फिर चलेंगे।" उपला ने 'हाँ' कहा। किन्तु ऊँट को उधर ले जाने लगे तो वह एक डग भी आगे रखने के लिए तैयार नही था। ऊँट अगमजानी होते है। बहुत मारा-पीटा लेकिन ऊँट अपनी जगह से नही डिगा। उपला कुछ सयाना आदमी था। उसने कहा—"हो, कोई बात है, जभी तो ऊँट नही चल रहा है।" लेकिन दुर्गा को विश्वास नही आया। वह चिलम पीने पर तुला हुआ था। ऊँट से उतर पैदल ही दोनों आगे की ओर बढ़े, लेकिन वह जितना ही आगे जाते, आग उतनी ही दूर हटती जा रही थी। भूत अपने पुर्खा जातक वाले भूत की तरह चाहता था कि दोनो को रस्ते से भटकाकर घोर कातार मे ले जाये। दुर्गा को चिलम पीने का ख्याल छूट गया, और उसने उपला को पकडकर कहा, "मुझे तो डर लग रहा है" खैर दोनो की हड्डियाँ रेगिस्तान मे सफेद होने से बच गई, वह समय पर सम्हल गये।"[1]

इसी प्रकार एक अन्य कहावत में कहा गया है "**भूत रो ठिकाणों आमली में।**"[2] इमली के पेड के लिए जनश्रुति है कि उसके नीचे प्राय. भूत-प्रेत का निवास होता है।

शरीर के अगों सम्बन्धी लोक-विश्वास—राजस्थान की अनेक कहावतो में शरीर के अँगो से सम्बन्ध रखने वाले लोक-विश्वासो की अभिव्यक्ति हुई है। कुछ उदाहरण लीजिये—

(१) **माथो मोटो सिरदार को अर पग मोटो गवार को।**[3]

अर्थात् बडा मस्तक सरदार का होता है और बडा पैर गँवार का होता है।

(२) **छाती पर केश नहीं जकै सूं बात नहीं करणी।**

अर्थात् जिसकी छाती पर बाल नही हो, उससे बात नही करनी चाहिए।

---

१. देखिये :
'राजस्थानी रनिवास'—श्री राहुल सांकृत्यायन; पृष्ठ ७१-७२।

२. मालवी कहावतें, भाग १ (श्री रतनलाल महता); पृष्ठ ६४।

३. सिर भारी सिरदार का, पग भारी मुरदार का।"

छाती पर बालों का होना पुरुषत्व का चिन्ह समझा जाता है। जिस पुरुष के छाती पर बाल नही होते, उससे बातचीत तक करना बुरा समझा गया है।

(३) **काणूं खोड़ो खायरो, ऐंचांताणू होय।**
इण नै जव ही छेड़िये, हाथ घेसलो होय॥

काना, खोडा, विडालाक्ष और ऐचाताना (जिसकी पुतली ताकने में दूसरी ओर को खिचती हो), ये दुष्ट समझे जाते है।

तिथि, वार आदि सम्बन्धी लोक-विश्वास—एक राजस्थानी कहावत **'अरण-पूछ्यो मुहरत भलो कै तेरस कै तीज'** के अनुसार तेरस या तीज, ये दो शुभ मुहूर्त के दिन माने जाते है।

स्थापना करने के लिए शनिवार तथा व्यापार के लिए बुधवार अच्छे दिन समझे गये हैं—

"थावर कीजै थरपना, बुध कीजै व्योपार।"

कहा जाता है कि शुक्रवार के दिन जिस काम के लिए संकल्प किया जाता है, वह कभी पूरा नही पडता। नये कपडे पहनने के लिए बुध, बृहस्पति तथा शुक्र, ये तीन दिन शुभ माने गये है—

"बुध बृहस्पत शुक्करवार, कपडा पहरै तीन बार।"

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि **'मांज्या थाल, उतर्‌या बार'** के अनुसार दुपहर का भोजन होने पर वार उतर जाता है अर्थात् उस समय से आगामी वार का प्रारम्भ मान लिया जाता है।

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने दिखाया है कि **'पुण्याह** और **'पुण्य रात्र'** का विचार पाणिनि के जमाने मे भी प्रचलित था।[1]

किन्तु अथर्ववेद मे तिथि, नक्षत्र, ग्रह, चन्द्रमा इन सब की अपेक्षा अधिक महत्त्व मन्त्र की शक्ति को दिया गया है—

न तिथर्न च नक्षत्र न ग्रहो न च चन्द्रमाः।
अथर्वमत्रसप्राप्त्या सर्वसिद्धिर्भविष्यति॥

—अथर्व० परिशिष्ट २५

राजस्थानी की एक कहावत में कहा गया है कि शुभाशुभ का विचार तो धनवानो के लिए है, निर्धनो के लिए उसका कोई अर्थ नही—

"भदरा जां घर लागसी, जां घर रिध और सिद्ध।"

तिथि, नक्षत्र, वार आदि से सम्बद्ध लोक-विश्वासो के अतिरिक्त भी बहुत से लोक-विश्वास राजस्थान मे प्रचलित है। उदाहरणार्थ दो कहावतें लीजिये—

(१) **गहण को दान, गगा को असनान।**

1. The idea that certain days (Punyaha, V. 4. 90.) and nights are auspicious (Punyaratra, V. 4. 87.) was also prevalent.
—India as known to Panini, p. 387.

गंगा-स्नान करने से जैसे पुण्य होता है, उसी प्रकार ग्रहण के अवसर पर दान देने से भी ।

(२) **निनांवेरो नांव कुण लेवे ।**

निर्वंशी का नाम कौन ले ? जिस पुरुष के सन्तान नही होती, उसका नाम लेना भी अशुभ समझा जाता है ।

लोक-देवताओ से सम्बन्ध रखने वाली भी कुछ राजस्थानी कहावतें उपलब्ध है । यथा—

(१) **आधा में दई देवता, आधा में खेतरपाल ।**

आधे मे कुल देवी-देवता और आधे मे अकेला क्षेत्रपाल । इससे क्षेत्रपाल की महत्ता प्रकट होती है ।

(२) **तेल बाकला भैरू पूजा ।**

तेल और सिझाये हुए मोठ से भैरव नामक देवता की पूजा होती है ।

(घ) शकुन-सम्बन्धी कहावतें

१. शकुन और जातीय चेतना—जिस जाति में किसी व्यक्ति का जन्म हुआ है, वह उस जाति के विश्वासों, भावनाओ, अभिरुचियों आदि को उत्तराधिकार के रूप मे प्राप्त करता है। मनुष्य जो कुछ दूसरो के मुख से निरन्तर सुनता रहता है, उससे प्रभावित हुए बिना नही रहता, चाहे वह उसके व्यक्तिगत अनुभव के विरुद्ध ही क्यों न पडता हो। जातीय चेतना व्यक्तिगत चेतना को आक्रान्त कर लेती है। ऐसी स्थिति में आत्म-स्वीकृति ही प्रायः देखी जाती है, सत्यासत्य के तात्त्विक निर्णय का प्रयत्न नहीं किया जाता।

आज भी हम देखते है कि रास्ते मे बिल्ली आ जाती है, शृगाल अथवा खर दाये बोलने लगता है, गाय बाँई तरफ़ आ जाती है, कोई विधवा स्त्री मिल जाती है, बूँदे पड़ने लगती है अथवा खाली घडा मिल जाता है तो बहुत से मनुष्य अपनी यात्रा स्थगित कर देते है। ये सब वस्तुएँ उनके व्यक्तित्व का अग बन गई है, क्योकि बचपन से ही उनको इस तरह की बातो मे विश्वास करना सिखलाया गया है। इस तरह के विश्वास व्यक्तिगत घटित घटनाओ के आधार पर ही बने हैं, ऐसा नही कहा जा सकता; ये तो इस तरह के विश्वास है जिनको स्वत. स्वीकार कर लिया गया है। इस प्रकार के विश्वास सामाजिक संस्कारों का रूप धारण कर लेते है, उस हालत मे व्यक्ति-विशेष का कोई महत्त्व नही रह जाता। ऐसे समाज का प्रतिक्रियावादी व्यक्ति तो प्रायः सोचा करता है—"मै कौन होता हूँ जो अपने विद्वान् एव अनुभवी पूर्वजो की मान्यताओं के विरुद्ध आचरण करूँ ? पूर्वजो ने जिन उपयोगी परम्पराओ का निर्माण किया है, मेरा कर्तव्य है कि उनको बनाये रखने मे पूर्णतः योग दूँ।"

सगुन-असगुन का सम्बन्ध केवल व्यक्ति से नही किन्तु, जैसा ऊपर कहा गया है, सामाजिक संस्कारो से उनका विशेष सम्बन्ध है। शकुन-मनोविज्ञान का रहस्य तभी हृदयंगम किया जा सकता है जब व्यक्ति का विचार न कर वर्ग अथवा समूह पर हम अपनी दृष्टि रखे। जहाँ मस्तिष्क का बहुत अधिक विकास न हुआ हो, जहाँ विचारों की दृष्टि से मानसिक शैशव की अवस्था हो, वहाँ अत्यन्त उच्च बौद्धिक और धार्मिक स्थिति की कल्पना नही की जा सकती। पीढी दर पीढी चली आती हुई परंपराएँ शकुनों को चिरस्थायी बनाये रखने मे बडा योग देती हैं। कभी-कभी तो यहाँ तक देखा जाता है कि आधुनिक युग का अत्यन्त उच्च शिक्षा-प्राप्त व्यक्ति भी शकुनो के प्रभाव से बुरी तरह आक्रान्त है। केवल उस व्यक्ति की दृष्टि से विचार करने पर यह बात हमें बड़ी अजीब-सी लगती है, किन्तु जिन जातिगत-सस्कारो मे उस व्यक्ति का पालन-पोषण हुआ है और जिस प्रकार के घर तथा समाज के वातावरण मे वह अब भी अपना जीवन व्यतीत कर रहा है, उन सब बातों को दृष्टि में रखते हुए यदि हम उस शिक्षित व्यक्ति के व्यवहार पर विचार करे तो सारा रहस्य खुलने लगता है। डा० जानसन तक के लिए प्रसिद्ध है कि वह शकुनों आदि में बडा विश्वास किया करता था।[1]

---

1. Dr. Johnson was a scrupulous observer of signs, omens and particular days. (Select Proverbs of All Nations by Thomas Fielding, p. 219.)

(२) **शकुन का महत्त्व**—हमारे यहाँ तो इस विषय का एक अलग शास्त्र ही बन गया है जो शकुन-विद्या अथवा शकुन-शास्त्र के नाम से विख्यात है। पद्म पुराण, अग्नि पुराण तथा मुहूर्त चिन्तामणि आदि ग्रन्थों में शकुन-विद्या का सविस्तर वर्णन हुआ है। यह शकुन-शास्त्र भी बहुत प्राचीन है। कुमार गोतम के जन्म के समय भी ज्योतिषी बुलाये गये थे और शकुन देखने वाले लोग भी उस समय विद्यमान थे।"[1]

राजस्थानी भाषा मे भी शकुन से सम्बन्ध रखने वाली अनेक कहावतें मिलती हैं। एक कहावत मे कहा गया है—**"मिनख सूण की वई रोटी खाय है"** जिसका आशय यह है कि मनुष्य शकुन की दी हुई रोटी खाता है। शुभ शकुन होने पर ही मनुष्य को यात्रा मे यथेच्छ धन-धान्य आदि की प्राप्ति होती है, अन्यथा वह इधर-उधर भटक कर खाली हाथ लौट आता है। शकुन की प्रशसा मे ही यह उक्ति कही गई है।

(३) **शकुन के विविध रूप**—अकाल, बीमारी, मृत्यु आदि जीवन के विषादात्मक प्रसंगों तथा जन्म, विवाह, उत्सव आदि शुभ अवसरों से शकुनो का विशेष सम्बन्ध प्रायः सभी देशों में देखा जाता है। राजस्थानी भाषा की कहावतों मे अनेक रूपों में शकुनों की अभिव्यक्ति हुई है।

(क) शरीर के अंगों द्वारा शकुन-निर्धारण

पुरुषों की दाहिनी आँख का फडकना शुभ तथा बाँई आँख का फड़कना अशुभ समझा जाता है। इसके विपरीत स्त्री की दाँई आँख का फड़कना अशुभ और बाँई आँख का फडकना शुभ समझा जाता है—

आँख फड़कै बाँई, कै बीर मिलै कै साँई।
आँख फड़कै दहणी, लात घसूका सहणी॥

अर्थात् यदि स्त्री की बाँई आँख फडके तो भाई मिले या पति मिले। यदि दाहिनी आँख फड़के तो उसे लात-घूँसा सहना पडे।

अपने आप बिना किसी प्रयत्न के जब मनुष्य का कोई अग फडकने लगता है तो मानव का शिशु-मन उसके साथ शुभाशुभ परिणाम की नियोजना कर लेता है। सामान्यतः मनुष्य अपनी इच्छा से अंगो का सचालन करता है किन्तु जहाँ उसकी इच्छा के बिना अपने आप उसका कोई अंग फडकने लगता है तो मानव की आदिम मनोवृत्ति उसमें एक प्रकार की असाधारणता के दर्शन करने लगती है और अहेतुक-से प्रतीत होते हुए इस कार्य मे वह शुभ अथवा अशुभ की कल्पना कर लेती है।

यह तो आँख जैसे अग के यत्किंचित् फडकने के सम्बन्ध में हुआ किन्तु नाक और मुँह से वेग के साथ सहसा छींक के रूप मे जो प्रबल वायु-स्फोट होता है, उसके सम्बन्ध मे विश्व के सभी देशो में यदि शकुन-अपशकुन का विचार किया गया हो तो कोई आश्चर्य की बात नही। चीनियों का विश्वास है कि यदि कोई साल की अन्तिम संध्या को छींके तो नव वर्ष उसके लिए अशुभ समझा जायगा। जापानियों का कहना है कि यदि कोई एक बार छींके तो समझना चाहिए, कोई उसकी प्रशंसा कर रहा है,

---

१. बुद्धकालीन लोक-जीवन : (भरतसिंह उपाध्याय) सम्मेलन पत्रिका—लोक-संस्कृति अंक, पृष्ठ १३८।

दो बार छीके तो जानना चाहिए, कोई उसकी निंदा कर रहा है, तीन बार छीकना अस्वास्थ्य का द्योतक है। श्याम देश के लोगो का विश्वास है कि देवता हमेशा मनुष्य के पाप और पुण्य के हिसाब की किताब के पन्ने पलटते रहते है और जब जिसका पन्ना उनके सामने होता है तब वह मनुष्य छीकता है। इसी कारण श्याम देश में छीकने पर कहा जाता है। **"निर्णय आपके अनुकूल हो।"** हमारे देश के हिन्दुओं में भी एक प्राचीन रीति है कि जब कोई छीकता है, तब कहते हैं **"शतं जीव"** या **'चिरं जीव"**। बुद्ध के जमाने मे भी यह प्रथा प्रचलित थी। गग्ग जातक में बुद्ध ने छींक के बाद **"चिरंजीव"** कहने वाले अपने शिष्यो को आड़े हाथों लिया था। हिन्दुओं में ही नही, यह प्रथा यूनानियों, रोमनो और यहूदियो में भी थी। अंग्रेजों मे भी जब कोई छीकता है तो पुरानी परिपाटी के लोग कहते है, **"ईश्वर कल्याण करे।"**[1]

राजस्थान मे प्रचलित निम्नलिखित कहावती दोहे के अनुसार यह माना जाता है कि भोजन करने, पानी पीने तथा सोने के समय छीक शुभ है किन्तु दूसरे के घर पर जाते समय छीक एक प्रकार का अपशकुन है—

छींकत खाये छींकत पीये, छींकत रहिये सोय।
छींकत पर घर कदे न जाये, आछा कदे न होय।।

भोजन के लिए बैठते समय यदि किसी ने छीक दिया तो वह शुभ है क्योकि वह किसी दूसरे के यहाँ भोजन-निमंत्रण की पूर्व-सूचना समझी जाती है किन्तु पराये घर जाने के समय यदि किसी ने छीक दिया तो इससे दूसरों से लडाई होने की सम्भावना रहती है, इसलिए वह अशुभ है।

(ख) जाति-विशेष द्वारा शकुन-निर्धारण

माथे पर बिना तिलक किये हुए यदि ब्राह्मण मिल जाय तो वह अपशकुन समझा जाता है। राजस्थानी भाषा की एक कहावत मे कहा गया है **"सूनै मांथै बामण आछयो कोन्या।"** किन्तु वही यदि तिलक किये हुए मिले तो सब आशाएँ पूर्ण हो जाती है—

बामण जो तिलकां कियां सामो आय मिलत।
सुकन विचारे पथिया आसा सकल फलत।।

दर्पण हाथ मे लिए हुए नाई का सामने मिलना भी अत्यन्त शुभ समझा जाता है।

नाई सामो आवतो दरपण लीधां हाथ।
सुकन विचारे पंथिया आसा सह पूजन्त।।

धुले कपड़े लिए हुए यदि धोबी सामने आ रहा हो तो वह रोज़गार के लिए शुभ समझा जाता है।

धोबी धोया कापड़ा, सामो आय मिलन्त।
सुकन विचारे पंथिया, पग पग लाभ करन्त।।

---

1. Vide Sneezing Salutations Appendix. (The Ocean of Story Vol. III edited by N. M. Penzer.)

सुनार के लिए कहा गया है कि वह चाहे दाहिनी ओर मिले चाहे बाँई ओर, वह किसी भी अवस्था में शुभ नहीं है।[1]

(ग) पशु-पक्षियों द्वारा शकुन-निर्धारण

खर, शृगाल, गाय, तीतर, शकुन चिड़िया, नीलटाँस आदि पशु पक्षियों को दाये-बाये देखकर भी शकुन-निर्धारण किया जाता है। उदाहरणार्थ कुछ राजस्थानी कहावतें लीजिये—

(अ) बांऊँ तीतर बांऊँ स्याल, बांऊँ खर बोलै असराल।
बांऊँ घूघू घमका करै तो लंका को राज विभीषण करै॥

अर्थात् तीतर, सियार, खर तथा उल्लू यदि निरन्तर बाये बोलें तो उतनी ही समृद्धि प्राप्त हो जितनी समृद्धि लंका का राज्य मिलने पर विभीषण को मिली थी। ध्वनि यह है कि विभीषण को भी लंका का राज्य मिलते समय यही शकुन हुए थे।

(आ) सदा भवानी दाहणी, सन्मुख होय गणेश।
पांच देव रिच्छा करें, ब्रह्मा विष्णु महेश॥

"**भवानी**" से तात्पर्य यहाँ "**सोन चिड़ी**" अथवा "**शकुन चिरैया**" से है जो दाहिनी ओर आने पर शुभ समझी जाती है।

(इ) सींगालो दस जीमणी ज्यो जोवतो जाय।
आं सुकनां सू पथिया, पग पग लाभ कराय॥

दाहिनी तरफ आया हुआ बैल पद-पद पर लाभप्रद होता है।

(ई) गऊ सवच्छी आवती कबहुक सांमी होय।
सकुन विचारै पथिया लषमी लाहो होय॥

अर्थात् बछड़े सहित गाय सामने मिलने पर लक्ष्मी प्राप्त होती है।

(उ) हस्ती सुंदर माँडियो, साहमो जो आवंत।
सुकन विचारे पथिया, दिन दिन अत दीपन्त॥

अर्थात् सुसज्जित हाथी यदि सामने मिले तो शुभ समझा जाता है।

(ऊ) कहा जाता है कि यात्रा के समय यदि हरिन आ जा जायँ तो मृत्यु होती है।[2] एक प्रचलित लोक-विश्वास के अनुसार प्रवास के लिए जाते समय हरिणों का दाये तथा लौटते समय बाये आना शुभ समझा जाता है।

किन्तु जहाँ भगवान का बल हो, वहाँ शकुन कोई चीज नहीं समझी जाती। राजस्थान के एक कहावती दोहे में कहा गया है—

हर बडा क हिरणा बड़ा, सुगणा बड़ा क श्याम।

---

१. आटो कांटो धी घडो खुल्लै केसा नार।
बावों भलो न दाहिणो, ल्याली जरख सुनार॥

२. द्रष्टव्य "कल्पना" वर्ष ३ अंक २ में प्रकाशित श्री मन्मथराय का "पुराणों में वर्णित कुछ विधाएँ" शीर्षक लेख; पृष्ठ १३५।

अरजन रथ नैं हांक दे, भली करैं भगवान ॥[२]

प्रसिद्ध है कि एक बार हरिणों को बांई ओर देखकर रथ हाँकने मे अर्जुन को हिचकिचाहट होने लगी। इस पर किसी ने कहा—जब भगवान् अनुकूल हो, तब शकुनों का क्या विचार ? हरि बड़े या हरिण बडे ? शकुन बड़े या श्याम ? अर्थात् हरि अथवा श्याम ही बड़े है, हरिण और शकुन नही।

राजस्थान के वे योद्धा भी, जो प्राणों को हथेली पर रखकर युद्ध के लिए प्रयाण करते थे, सगुन-असगुन का कोई विचार नही करते थे। राजस्थान के प्रसिद्ध कवि बाकीदास जी कह गये है—

सूर न पूछै टीपणो, सुकन न देखै सूर।
मरणां नू मगल गिणै, समर चढ़ै मुख नूर ॥

अर्थात् शूरवीर ज्योतिषी के पास जाकर मुहूर्त नही पूछता, न वह शकुन को ही देखता है। वह तो मृत्यु को मगलस्वरूप समझता है और युद्ध मे उसके नूर चढता है। राजस्थान के जिन वीरो ने धर्म और मान-मर्यादा की रक्षा के लिए "**मरण महोत्सव**" मनाया, उनके लिए शकुन-अपशकुन का विचार कैसा ?

(४) **शकुनों का मनोविज्ञान**—तो क्या इसका अर्थ यह है कि कायर मनुष्य ही शकुन-अपशकुन के विचार से भयभीत होता है ? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमे शकुनो के मनोविज्ञान पर विचार करना होगा। श्री लालजीराम शुक्ल के मतानुसार "असगुन पर विचार करने वाले व्यक्ति के मन मे कोई मानसिक ग्रन्थि रहती है। इस ग्रन्थि के कारण उसका ध्यान असगुन पर ही आकर्षित होता है। बुद्ध भगवान का कथन है कि छिपा हुआ पाप ही मनुष्य को लगता है, खुला पाप नही लगता। जो व्यक्ति अपने खुले पाप को प्रकट कर देता है, उसका पाप नष्ट हो जाता है। आधुनिक मनोविश्लेषण-विज्ञान द्वारा मानसिक चिकित्सा का रहस्य भगवान् बुद्ध के उक्त कथन मे निहित है। जब मनोविश्लेषण द्वारा रोगी अपने पुराने कुकृत्य को जानकर उसे स्वीकार कर लेता है तो उसका रोग नष्ट हो जाता है। जो व्यक्ति सदा स्वच्छ धारणाएँ अपने मन मे रखता है, जो दूसरे के अहित की बात मन में नही लाता, जो परोपकार में ही अपना समय व्यतीत करता है, उसका असगुनों की ओर ध्यान आकर्षित नही होता। यदि उसका ध्यान आकर्षित भी किया जाए तो वह उसमें भी कल्याणकारी भावना ही पाता है। जिसका मन जितना ही अधिक दूषित होता है, वह उतना ही अधिक कायर होता है। ऐसे व्यक्ति को अनेक प्रकार के दुःख होना अनिवार्य है। जब उसको वास्तविक दुःख नहीं रहता तब वह कल्पना से ही दुःख की सृष्टि कर लेता है। असगुन के विचार उनको ध्यान में लाने वाले व्यक्ति को जितना त्रास देते है, उतना त्रास वास्तविक घटना में भी उनकी परवाह न करने वाले व्यक्ति को नही होता।"

---

२. मिलाइये—
शकुन भलां के शामलां, सारा माठां काम।
रथिड़ा रथ हंकारजे, लइ नारायण नाम ॥
—राम कथा, पृष्ठ ७७; शारदा, मई, १९५४

शुक्ल जी ने जो कहा वह ठीक हो सकता है किन्तु ऐसा लगता है कि रहस्य-मय अनागत के अज्ञान के कारण मनुष्य शकुन-अपशकुनों की ओर उन्मुख होता है। ऐसा करके वह चिर सुख और चिर जीवन की अपनी अभिलाषाओं को तृप्त करना चाहता है। तो फिर प्रश्न यह है कि अनागत घटनाएँ क्या शकुनों के रूप में अपना पूर्वाभास दे जाती हैं? आश्चर्य की बात तो यह है कि एक तरफ तो भाग्य की अमिटता जैसे विश्वास हैं और दूसरी ओर शकुनों से लाभ उठा कर उस भाग्य को अपने अनुकूल बनाने का प्रयास है। शकुन-शास्त्रियों की मान्यता है कि शकुन चाहे भविष्य-वाणी के रूप में न हों किन्तु इस प्रकार की चेतावनी वे अवश्य है जिनसे लाभ उठाने पर हम अनागत विपत्तियों से बच सकते है।

(५) **निष्कर्ष**— विज्ञान की उन्नति होने से शकुन-अपशकुन पर लोग अपेक्षाकृत कम ध्यान देने लगते है किन्तु फिर भी कभी-कभी ऐसा जान पडता है कि अत्युच्च बौद्धिक तथा वैज्ञानिक विकास होने पर भी मनुष्य जाति शकुन-जाल से अपने आपको मुक्त नही कर सकेगी। जब तक ससीम मानव अपनी सीमाओं में बँधा है, तब तक भौतिक, सामा-जिक और आध्यात्मिक वातावरण-विषयक उसका ज्ञान तथा प्रकृति और मन की शक्तियो पर उसका नियत्रण कभी भी सम्पूर्णता को प्राप्त नही कर सकेगा। अज्ञात और अज्ञेय की भावना उसे सर्वदा दिग्भ्रान्त करती रहेगी, प्रकृति और मन की शक्तियों पर विजय प्राप्त करने के लिए वह छटपटाता रहेगा। एक क्षेत्र पर विजय प्राप्त कर लेने पर नित्य नये-नये क्षेत्र उसकी कल्पना के सामने आते रहेंगे। यदि अना-गत का आवरण हट जाय, विश्व का रहस्य ज्ञात हो जाय तो शकुन-अपशकुन का प्रश्न ही न रहे। जीवन का अज्ञात अनन्त रहस्य शकुन-भावना को प्रोत्साहन देता है— इतना प्रोत्साहन जिसे देखकर हमारी बुद्धि हैरान हो जाती है। मनुष्य का जन्म ही छटपटाने के लिए हुए हुआ है, उस अज्ञात अनन्त का पता लगाने के लिए। आधुनिक युग की सुप्रसिद्ध कवयित्री भी इसका साक्ष्य भर रही है—

"तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देख लूँ उस ओर क्या है?"

जहाँ तक राजस्थानी जनता का सम्बन्ध है, उसकी अधिकांश संख्या शकुन-अपशकुन की भावना से आक्रान्त है। बहुत सम्भव है, ज्यों-ज्यो शिक्षा का प्रचार बढेगा, यह भावना मन्द पड़ती जायगी किन्तु सर्वांश में इसका उन्मूलन हो सकेगा, ऐसा नही कहा जा सकता।

(ङ) जीवन-दर्शन-सम्बन्धी कहावतें

(क) भाग्यवाद और कर्म-सिद्धान्त—

"ईसवी सन् के आरम्भ में कर्मवाद का विचार भारतीय समाज में निश्चित रूप से स्वीकार कर लिया गया था। जो कुछ इस जगत में हो रहा है, उसका एक अदृष्ट कारण है, यह बात निःसंदिग्ध मान ली गई थी। जन्मान्तर-व्यवस्था तथा कर्मफल-वाद के सिद्धान्त ने ऐसी ज़बरदस्त जड़ जमाली थी कि परवर्ती युग के कवियो और मनीषियों के चित्त में इस भौतिक व्यवस्था के प्रति भूल से भी असन्तोष का आभास नही मिलता। जन्मान्तरवाद के निश्चित रूप से स्वीकृत हो जाने के कारण प्रचलित रूढियों के विरुद्ध तीव्र सन्देह एक दम असम्भव था। कवि कठिन से कठिन दुःखों का वर्णन पूरी तटस्थता के साथ करते थे और ऐसा शायद ही कभी होता था जब कोई कवि विद्रोह के साथ कह उठे कि यह अन्याय है, हम इसका विरोध करते है।[1]

कर्मवाद के सम्बन्ध में जो भावना भारतीय साहित्य मे देखी जाती है, वही इस देश की कहावतों में भी मिलती है और राजस्थानी कहावतें भी इसका अपवाद नही हैं। भवितव्यता होकर ही रहती है इसके सम्बन्ध में कुछ कहावते लीजिए—

(१) **लाख जतन कोई करै, कोटि करै किन कोय।**
अनहोणी होणी नहीं, होणी होय सो होय ॥[2]

(२) **करम में घोड़ी लिखी, खोल कुण ले ज्याय।**[3]
जब भाग्य में घोडी लिखी है तो उसे खोलकर कौन ले जा सकता है ?

(३) **करम में लिख्या कंकर तो के करै सिवसंकर ?**
भाग्य में यदि कंकड़ लिखे हो तो शिवशंकर क्या करे ?

(४) **जलम घड़ी 'र मरण घड़ी टाली कोनी टलै।**
जन्म-घड़ी व मरण-घडी किसी के टाले नही टलती।

(५) **बेमाता का घाल्योड़ा अंक टलै कोन्या।**
विधाता के लिखे हुए अंक नही टलते।

(६) **हूणी नै निमस्कार।**
भवितव्यता को नमस्कार।

(७) **भागां का बलिया, रांधी खीर, होगा दलिया।**
भाग्य की बलिहारी है, पकाई थी खीर और होगया दलिया।

(८) **करमहीण खेती करै, के काल पड़ै के बलद मरै।**

भाग्यहीन जब खेती करता है तब या तो अकाल पडता है या बैल मर जाते हैं। भाग्यहीन के लिए परिस्थितियाँ प्रतिकूल हो जाया करती हैं।

---

१. 'हिमालय' सख्या २ में श्री दिनकर का लेख 'हिन्दी कविता में व्यक्तिवाद का उत्थान', पृष्ठ संख्या २२।

२. "यदभावि न तद्भावि भावी चेन्न तदन्यथा।"

३. यदस्मदीयं न हि तत्परेषाम्। (पंचतंत्र)

(९) **सगलं करमां की बाजं है ।**

सभी जगह भाग्य का ही जयजयकार हो रहा है । कर्महीन को सभी जगह विपत्तियाँ घेरे रहती हैं ।

(१०) **रूप की रोवै, करम की खाय ।**

भाग्य की प्रतिकूलता के कारण रूपवती स्त्री दुःख उठाती देखी जाती है और विधि की अनुकुलता के कारण कुरूप स्त्री भी सुखमय जीवन व्यतीत करती है ।

ऊपर की कहावतो को पढकर यह प्रश्न उठता है कि यदि भवितव्यता इतनी प्रबल है तो फिर मनुष्य के कर्त्तव्य और उसकी स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति का क्या मूल्य रह जाता है ? सम्भवतः इसीलिए भाग्य की प्रबलता घोषित करने वाली कहावतो के साथ-साथ ऐसी अनेक कहावतें भी मिलती है जिनमे पद-पद पर भाग्य को दोषी ठहराने वाले व्यक्तियो को आडे हाथों लिया गया है। उदाहरण के लिए इस प्रकार की कुछ कहावतें यहाँ दी जा रही है ।

(१) **चालणी मैं दूद दूवै करमां नै दोस दे ।**

अर्थात् चलनी मे दूध दुहता है और कर्मों को दोष देता है, स्वय मूर्खतापूर्ण कार्य करता है और व्यर्थ मे भाग्य पर दोषारोपण करता है ।

(२) **बैरी न्यूत बुलाइया, कर भायां सूं रोस ।**
आप कमाया कामड़ा, दई न दीजे दोस ॥

अर्थात् अपने किये हुए कर्मों के लिए दैव को दोषी नही ठहराना चाहिए । भाइयो से क्रोध करके जो शत्रुओं को निमन्त्रित करता है, उसे किसी अच्छे फल की आशा नही करनी चाहिए ।

यद्यपि राजस्थानी कहावतो मे भाग्य से सम्बन्ध रखने वाली बहुत सी कहावतें हैं किन्तु ऐसी कहावते भी कम नही है जिनमे इस बात पर जोर दिया गया है कि जो मनुष्य जैसा करता है, उसको वैसा ही फल मिलता है । कर्म के फल से कोई बच नही सकता । कुछ कहावते लीजिए—

(१) **करणी भोगै आपकी, के बेटो को बाप ।**

अर्थात् क्या पिता और क्या पुत्र, सब अपनी-अपनी करनी का फल भोगते हैं ।

(२) **करन्ता सो भोगन्ता, खोदन्ता सो पड़न्ता ।**

अर्थात् अपनी करनी का फल भोगना पडता है । जो दूसरो के लिए खड्डा खोदता है, वह स्वयं उसमे गिरता है । "**खाड खनै जो और को ताको कूप तयार ।**"

(३) "**करणी जिसी भरणी, करणी पार उतरणी, बाही जो लणही**" आदि इसी आशय की कहावते हैं ।

कहावतो का सम्बन्ध जीवन के क्रिया-कलापों से है । जीवन मे ऐसे अनेक अवसर आते हैं जब पूर्ण प्रयत्न करने पर भी मनुष्य को सफलता नही मिलती अथवा कभी-कभी सफलता प्रायः शत-प्रतिशत निश्चित होते हुए भी असफलता के रूप में परिवर्तित हो जाती है । ऐसे अवसरों पर भाग्य की प्रबलता व उसकी अपरिहार्यता

स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगती है। इसलिए ऐसी कहावतों का स्वभावतः ही निर्माण हो जाता है।

बुरे आदमी भी जब सुखी देखे जाते हैं तो "भाग्य की बलिहारी" कहकर समाधान कर लिया जाता है किन्तु जीवन मे ऐसे अवसर भी अनेक बार आते है जब किसी का बुरा करने पर मनुष्य पर अचानक ही कोई विपत्ति आ पड़ती है। तब **"खोदन्ता सो पडन्ता"** जैसी कहावतें प्रचलित हो जाती हैं जो मनुष्य को बुराई के मार्ग से पराङ्मुख कर सत्पथ की ओर उन्मुख करती हैं।

केवल राजस्थान की कहावतों मे ही नही, प्रायः सभी पौरस्त्य देशों की कहावतों में भाग्य और कर्म सम्बन्धी यही दृष्टिकोण दिखाई पडता है। ऑम्ब्लम्स ईस्टर्न (Eastern Emblems) में एतद्विषयक तुलनात्मक उदाहरण सगृहीत हुए है।

(ख) जन्मान्तरवाद—

भाग्यवाद की तरह जन्मातरवाद की भावना ने भी न केवल राजस्थानी जीवन को ही, बल्कि सम्पूर्ण भारतीय जीवन को प्रभावित किया है। जन्मान्तरवाद सम्बन्धी एक कहावत लीजिये—

"आगलै भौ रा बदला किसा छूटै है ?"

पूर्व-जन्म मे जिसके साथ जैसा बर्ताव किया गया है, उसका प्रतिफल इस जन्म मे अवश्य भोगना पडता है।

किन्तु एक-आध कहावत ऐसी भी मिल जाती है जिनमे जन्मान्तरवाद को सन्देह की दृष्टि से देखा गया है। उदाहरणार्थ—

"ओ भव मीठो, पर भव किण दीठो ?"

अर्थात् दूसरा लोक किसने देखा है, परलोक का किसे पता ? हमारे लिए तो यही लोक मधुर है।

(ग) साहसिकता और कष्ट-सहिष्णुता—

भाग्यवाद और जन्मान्तरवाद से सम्बन्ध रखने वाली कहावतो को पढकर कोई यह निष्कर्ष न निकाले कि राजस्थान के निवासी निष्क्रिय होते है तथा हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते है। रेगिस्तान मे रहने वालो को वास्तव में कठिन परिश्रम करके अपनी जीविका बसर करनी पडती है। इसलिए एक कहावत मे यथार्थ ही कहा गया है—

"फिरै सो चरै, बैठ्यो भूखां मरै।"

किसी आलसी कायर पति की निम्नलिखित भर्त्सना भी इस सम्बन्ध मे पठनीय है—

खाणो पीणो खेलणो, सोणो खूंटी ताण।
आछी डोबी कंथड़ा, नामर्दी कै पाण॥

हे कंत ! खाना-पीना, खेलना और निश्चिन्त होकर घोर निद्रा में शयन करना, तुम्हारा केवल यही एक काम रह गया है, नामर्दी के कारण तुमने सब चौपट कर दिया।

राजस्थान के लोग यदि अकर्मण्य होते तो यहाँ की स्थिति बड़ी शोचनीय हो जाती। किन्तु जहाँ तक व्यापार-व्यवसाय का सम्बन्ध है, राजस्थान के एक वर्ग ने कलकत्ता आदि शहरो में व्यापार कर अपनी साहसिक वृत्ति का विलक्षण परिचय दिया है। जो लोग दाने-दाने को मोहताज थे, वे ही अपनी इस वृत्ति के कारण लाखों करोड़ों के स्वामी बन गये। राजस्थान की एक लोकोक्ति मे कहा गया है, **"देह में न लत्ता, लूटैला कलकत्ता"**। इस उक्ति का सम्बन्ध उन मारवाड़ी व्यापारियो से है जो फटी हालत मे कलकत्ता, बम्बई आदि की ओर जाते है तथा अतुल द्रव्योपार्जन करने मे समर्थ होते है। 'कलकत्ते का बडा बाज़ार तो मारवाडियों की अधिक बस्ती के कारण राजस्थान के लोगों का ही बाज़ार-सा लगता है।' साहसिकता के साथ-साथ कष्ट-सहिष्णुता भी इन व्यापारियो का एक विशिष्ट गुण है।

(घ) दार्शनिक उक्तियों का अभाव—

कहावतो में सामान्यतः दार्शनिक उक्तियो का अभाव भी पाया जाता है किन्तु कभी-कभी इस प्रकार की लोकोक्तियाँ भी सुनने मे आती हैं जो महाकवियो की उक्तियो से टकरा जाती हैं। कौनसी वस्तु उचित है और कौनसी अनुचित, इसका निर्णय करने में विद्वानो को भी हैरान हो जाना पडता है। राजस्थानी भाषा की एक कहावत में इस चिरन्तन प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा गया है—

"आप रो बिरम कैवं जी में फरक नहीं पड़ै।"

अर्थात् अपना ब्रह्म या अन्त:करण जो कहता है, उसकी सत्यता में कभी कोई अन्तर नही पड़ता। बहुत वर्षों पहले अभिज्ञानशाकुन्तल के दुष्यन्त ने भी यही बात कही थी—

"सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकाणप्रवृत्तयः।"

६. राजस्थान की कृषि-सम्बन्धी कहावतें

भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है। यहाँ के धर्मशास्त्रो तक मे कृषि की महिमा का वर्णन हुआ है। पराशर-स्मृति मे कहा गया है—

कृषेरन्यतमो धर्मो न लभेत् कृषितोऽन्यतः।
न सुखं कृषितोऽन्यत्र यदि धर्मेण कर्षति॥ ५. १८५

अर्थात् कृषि के तुल्य दूसरा कोई धर्म नही, कृषि के समान कोई व्यवसाय इतना लाभदायक नही। यदि धर्मानुकूल खेती की जाय तो उससे बडा कोई सुख नही।

भारत की लगभग ८० प्रतिशत जनता खेती पर अपना जीवन बसर करती है। राजस्थान मे भी आजीविका का मुख्य आधार खेती ही है। जैसे भारतवर्ष के अन्य प्रदेशों मे खेती-सम्बन्धी कहावते प्रचलित है, उसी प्रकार राजस्थान में भी कृषि-विषयक अनेक कहावते सुनने में आती हैं। खेती-सम्बन्धी जो अनुभव लोगों को हुए, वे उनकी कहावतो में सुरक्षित रह गये हैं। यही कारण है कि कृषि-शास्त्र और ज्योतिष का बिना ज्ञान प्राप्त किये भी कहावतो द्वारा किसानों को खेती-सम्बन्धी बहुत सी उपयोगी बातो का पता चल जाता है। जो किसान शिक्षा के नाम एक फूटा

अक्षर भी नहीं जानते, उनके भी खेती की कहावतें कंठस्थ रहती है। साधारण बोल-चाल की भाषा और छोटे-छोटे छन्दों मे गुम्फित होने के कारण इस प्रकार की कहावतों को याद रखना सरल होता है।

राजस्थान में खेती-सम्बन्धी कहावतें विविध रूपो में प्रचलित है। उनमें से कुछ कहावतें यहाँ विभिन्न विषयों मे विभक्त कर अलग-अलग दी जा रही है।

वायु—

(१) सावण पहली पंचमी, जो बाजे बहु बाय।
काल पड़ै सहु देस में, मिनख मिनख नै खाय॥

सावन बदी पचमी को यदि गहरी हवा चले तो देश भर में ऐसा अकाल पड़े कि आदमी आदमी को खाने लगे।

(२) सावण में तो सूर्यो चालै, भादूड़ै परवाई।
आसोजां में पिछवा चालै, भर भर गाडा ल्याई॥[1]

यदि श्रावण मे उत्तर-पश्चिम की हवा, भादों मे पूर्व की हवा और आश्विन में पश्चिम की हवा चले तो फसल बहुत अच्छी हो।

'जो बाजै सूरियो, घड़ी पलक में पूरियो' इस लोकोक्ति द्वारा भी श्रावण में उत्तर-पश्चिम की हवा चलने से घड़ी-पलक में भारी वर्षा होने की बात कही गई है।

(३) नाडा टांकण बलद-बिकावण ! तू मत चालै आधै सावण।

एक बार आषाढ मे वर्षा होकर फिर बीस-पचीस दिन तक जोर की हवा चलती है जिससे खेती को बहुत नुकसान पहुँचता है। ऐसी हवा राजस्थान मे **'झांझली'** (झझावात) के नाम से प्रसिद्ध है। उसी हवा को सम्बोधित करके किसी किसान की उक्ति है कि हे बैलो को बिका देने वाली नाडा टाकण वायु ! तू आधे सावन तक मत चलती रहना।

(४) चाली पिरवा पून मतीरी पिल गई।[2]

पूर्व की हवा चलने से मतीरी पीली पडकर गल जाती है।

---

१. पाठान्तर :

१. सावण मास सूरियो बाजै, भादरवै परवाई।
आसोजां में समदरी बाजै, काती साख सवाई॥
२. सावण में तो सूरयो बाजै, भादरवै परवाई।
आसोजा आथूणी चालै, ज्यूं ज्यू साख सवाई॥

मिलाइये :

श्रावणे यदि वायव्यो, भाद्रे वहति पूर्वतः।
आश्विने पश्चिमो वाति, कार्तिके सस्यसिद्धयः॥
कादम्बिनी (प० मधुसूदनजी ओझा), पृष्ठ १४२

२. पूरा पद्य इस प्रकार है :

चाली पिरवा पून मतीरी पिल गई।
पलियां पलियां ढोल सगीजी वा पुल तो गई॥

नक्षत्र—भारत के प्राचीन विज्ञान-वेत्ताओं ने जहाँ एक ओर यज्ञ के द्वारा ऋतुओं पर विजय पाने का प्रयत्न किया, वहाँ दूसरी ओर उन्होंने ऋतुओं में होने वाले परिवर्तनों का पूर्व-ज्ञान प्राप्त करने में भी सफलता प्राप्त की। इसके लिए उन्होने खगोल का सहारा लिया। ऋतुओं पर नक्षत्रों का प्रभाव पड़ता है। अतएव ऋतु-परिवर्तनों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए नक्षत्रों का आश्रय लिया गया। उन्होने नक्षत्र-विचार से कृषि के विभिन्न कार्यो के लिए ऐसी तिथियाँ निर्धारित की जिनमें कार्य करने से ऋतु-प्रकोपों से कृषि की सुरक्षा हो सके। आज का वैज्ञानिक विभिन्न कार्यों के लिए समय का निर्धारण तापमान के अनुसार करता है जैसे गेहूँ की बोनी के लिए ठड की ऋतु में वह समय उपयुक्त ठहराया गया है जब हवा के अधिक से अधिक और कम से कम तापमान में २०° फेरन-हाइट का अन्तर हो। यह सब दफ्तरों मे बैठकर काम करने वालो के लिए ठीक है, किसान के लिए यह सब सुलभ नही। भारतीय किसान के लिए तो **'आद्रा धान, चित्रा गेहूँ'** ही सबसे बड़ा थर्मामीटर है।[1]

राजस्थानी भाषा मे कृषि के सम्बन्ध में प्रचलित कुछ नक्षत्र-विषयक कहावतें लीजिये :

(१) बीवा बीती पंचमी, सोम शुकर गुरु मूल।
डक कहे है भाडली, निपजे सातूं तूल॥

कार्तिक शुक्ला पचमी को यदि मूल नक्षत्र में सोमवार, बृहस्पतिवार या शुक्रवार हो तो सातों किस्म का अनाज खूब उपजे।

(२) चित्रा दीपक चैतवे, स्वाते गोवरधन्न।
डंक कहे हे भड्डली, अथग नीपजै अन्न॥

यदि चित्रा नक्षत्र मे दिवाली हो और गोवर्धन पूजने के समय स्वाति नक्षत्र हो तो खूब अन्न पैदा हो।

(३) पोही मावस मूल बिन, रोहिण (बिन) आखातीज।
श्रवण बिना सलूणियू, क्यू बावै है बीज?

अगर पौष की अमावस्या के दिन मूल नक्षत्र न हो, अक्षय तृतीया को रोहिणी नक्षत्र न हो, रक्षा बन्धन के दिन श्रवण-नक्षत्र न हो, तो खेत मे व्यर्थ बीज क्यो बोते हो? निश्चय ही अकाल पडेगा।

प्रसंगवश यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उत्तर प्रदेश की सरकार ने एक योजना बनाई है जिसके अतर्गत ऋतु तथा कृषि-कर्म के सम्बन्ध में प्रचलित लोकोक्तियों की सत्यता की परीक्षा की जायगी। इसके लिए आवश्यक व्यय की व्यवस्था करदी गई है। यह स्मरणीय है कि प्रचलित अगणित लोकोक्तियो मे घाघ और भड्डरी के दोहे और कुछ छंद ज्योतिष के आधार पर प्रचलित बताये जाते हैं और जन साधारण के विश्वास के अनुसार अधिकाशतः सत्य हैं। इस परीक्षा के पश्चात् यदि घाघ और

---

१. देखिये 'वीणा' फर्वरी, १९५१ ई० में प्रकाशित श्री बाकेबिहारी श्रीवास्तव का 'कृषि-और ऋतु विज्ञान' शीर्षक लेख; पृष्ठ २०९।

भड्डरी उत्तीर्ण हो गये तो उनकी प्रामाणिक लोकोक्तियों को संगृहीत कर कृषि-शिक्षा के पाठ्यक्रम में रखा जायगा।[1]

भारतीय कृषि-विज्ञान में खगोल और भूगोल का जो सम्मिश्रण है, वह अनुपम और अद्वितीय है। किन्तु यहाँ यह अवश्य कहा जायगा कि हमारी भौगोलिक और खगोलिक अवस्था में भी तो थोड़ा-बहुत परिवर्तन हुआ है, इसलिए तिथि-नक्षत्रों आदि के आधार पर बनी घाघ और भड्डरी की सब कहावतें सम्भवतः कसौटी पर पूरी न उतरें पर इसी कारण उनका महत्त्व कम नहीं हो जाता। आज की वैज्ञानिक पद्धति से प्राप्त किया हुआ ऋतु-ज्ञान भी तो सोलहो आना सही नहीं होता। ऋतु-विज्ञान-विभाग से प्रकाशित होने वाली विज्ञप्तियाँ भी कभी-कभी असत्य सिद्ध होती हैं। इसका कारण यह है कि ऋतुओं मे क्षण-क्षण में परिवर्तन होता रहता है। अभी जो मौसम है, वह दूसरे ही क्षण वायुमण्डल की परिस्थितियो के अनुसार बदल सकता है, और उससे किसी दूसरी ही घटना के लक्षण प्रकट हो सकते हैं। २४ से ४८ घण्टे तक के मौसम पर एक विज्ञप्ति निकलती है। इतनी अवधि मे न जाने कितने ही सूक्ष्म परिवर्तन हो जाते है और प्रकाशित की हुई विज्ञप्ति में अन्तर आ सकता है। कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि वायुमण्डल में होने वाले परिवर्तन जो बहुत ही सूक्ष्म होते है, उपलब्ध उपकरणो से पढे नही जा सकते। वैज्ञानिक इस बात के प्रयत्न मे है कि मौसमी विज्ञप्तियाँ अधिक से अधिक सही बनाई जा सकें। घाघ और भड्डरी के बाद किसी का नाम नही सुनाई पडता जिसने बदली हुई परिस्थितियो के अनुसार ऋतु-विज्ञान का पुनः परीक्षण किया हो। इसलिए वाछनीय है कि घाघ और भड्डरी की कहावतो का परीक्षण किया जाय और उसके परिणाम प्रकाशित किये जायँ।

खेती के उपकरण—बैल, हल, खेत, खाद आदि खेती के उपकरण कहे जाते हैं। कृषि के लिए उपयोगी होने के कारण धर्म-ग्रन्थो मे भी वृषभ के पूजन और उसके माहात्म्य का वर्णन हुआ है। पराशर स्मृति में कहा गया है कि बैलो के द्वारा उत्पादित सस्य से सारे ससार का पालन-पोषण होता है। इसलिए बैल इस संसार मे धर्म का साक्षात् रूप ही है।

उक्षाणो वेधसा सृष्टाः सस्यस्योत्पादनाय च।
तैरुत्पादितसस्येन सर्वमेतद्विधार्यते॥ ५, ४४.
वृष एव ततो रक्ष्यः पालनीयश्च सर्वदा।
धर्मोऽयं भूतले साक्षाद् ब्रह्मणा ह्यवतारितः॥ ५, ४८.

अपभ्रंश और राजस्थानी साहित्य में वृषभ के सम्बन्ध में सुन्दर पद्यो की रचना हुई है। कविराज बाँकीदास की 'धवल पचीसी' इस सम्बन्ध मे अत्यन्त प्रसिद्ध है। उसमें कई किस्म के बैलो का उल्लेख हुआ है। 'किलोहडा' औ 'बौहलिया' छोटी उम्र के बैल होते हैं। बडे सीधे सीगो वाला 'बेगडा' उत्कृष्ट जाति का बैल बतलाया गया है।

"बेचै मत तूं बेगड़ो, चित नांणा री चाह।
बलै न मिलसी बेगड़ो, नांणा वीधाँ नाह॥ धवल पचीसी, दोहा २८

---

१. देखिये हिन्दुस्तान, ता० २२ जनवरी, सन् १९५४।

हे स्वामिन् ! धन के लोभ से 'बेगड़े' को न बेच देना, फिर द्रव्य व्यय करने पर भी ऐसा अच्छा बैल हाथ नही लगेगा ।

जिस बैल के सात अथवा पाँच दाँत हों तथा पूँछ के ऊपर-नीचे के काले बालों के बीच मे सफेद बालो का वर्तुलाकार गुच्छा हो, ऐसा काले रग का बैल निकृष्ट और अशुभ माना गया है जैसा कि निम्नलिखित राजस्थानी लोकोक्ति से प्रकट होता है—

"सातड़ पांचड़ पूँछ पोलालो, मतना लाये कंथा ! कालो ।"[1]

जिस बैल का एक सीग टूटा हुआ हो, वह भी किसी काम का नहीं माना जाता । इस प्रकार के बैल को '**डूँडिया**' कहते है ।[2]

खेती करने वालो को बैल खरीदते समय बडी सावधानी से काम लेना पड़ता है क्योकि बिना अच्छे बैलो के, खेती में सफलता नही मिल सकती । कहा भी है—

"खेती बलदां अर राज घोड़ां का ।"

जिस प्रकार बिना घुडसवार सेना के राज्य कायम नही रहते, उसी प्रकार बिना बैलों के खेती नही हो सकती ।

जो किसान बैल रखते हैं, उन्हे बैलों की जोडी के साथ-साथ गाडा (शकट) भी रखना होता है क्योकि बिना शकट के खेती का काम नही चल सकता जैसा कि नीचे की कहावत से प्रकट होता है—

राड़ करै सो बोलै आडो ।
खेती करै सो राखै गाडो ॥

किसानो की माली हालत उनके हलों से आँकी जाती है। करीब चार-पाँच बीघे जमीन की खेती एक हल की खेती कहलाती है । एक हल की खेती में तो हैरान ही होना पड़ता है, दो हल की खेती कामचलाऊ मानी जाती है, तीन हल की खेती नाम को सार्थक करती है, चार हल की खेती हो तो फिर कहना ही क्या, वह तो राज्य-सुख भोगने के समान है ।

"एक हल हत्या, बो हल काज ।
तीन हल खेती, च्यार हल राज ।"

कीकर की लकडी का हल अच्छा समझा जाता है और पीपल की लकड़ी का निकृष्ट ।[3] हल में यदि हाल अच्छी हो तो खेत में बाह अच्छी लगती है ।

"हल हालां खेत फड़ालां ।"

---

१. पाठान्तर—
सातड़ पांचड़ गडरवाला, मोल काट मत लाये कालो ।
'गडरवालो' से तात्पर्य उस बैल से है जिसके गले में गाँठ-सी निकली होती है ।

२. डू डियो बैल, मुकन्दो हालै ।
वाले पूत उगाले डाली ॥

३. कीकर काटी हल घड्या, रस कस की रांधी खीर ,
न्यूत जिमावै भाणजो, कदे न निरफल जाय ॥
सीव काट खेती करै, खर्च करन्या घर खाय ।
पीपलकाट 'र हल घड़ै, वो जडामूल सैं जाय ॥

खेत के सम्बन्ध में निम्नलिखित राजस्थानी कहावते उल्लेखनीय हैं—

(१) खेत बड़ा, घर सांकड़ा ।

खेत बड़े हो तभी किसान के लिए खेती लाभदायक होती है । घर भी बहुत आबाद हो तो वे तंग हो जाते है और जन-वृद्धि के कारण मागलिक समझे जाते हैं । इसलिए किसानों की यह अभिलाषा रहती है कि उनके खेत बड़े और घर तंग हो ।

(२) खेत खोवै गैली ।

खेत के बीच होकर अगर रास्ता जाता हो तो वह खेत के लिए हानिकर होता है ।

(३) ऊँचा ज्यांरा बैठणा, ज्यां रा खेत निवाण ।[1]
ज्यांरा दोखी के करै, ज्यांरा मित दिवाण ॥

उच्च पदाधिकारियो से जिनका सम्पर्क है, ताल में जिनके खेत है और दीवान जिनके मित्र हैं, उनका शत्रु क्या बिगाड़ सकते है ?

(४) खेत हुवै तो गांव सै आथूणू ही हुवै ।

खेत हो तो गाँव से पश्चिम में होना चाहिए जिससे प्रातःकाल खेत में जाते समय तथा सायँकाल लौटते समय सूर्य पीठ पीछे रहे ।

खाद के बिना भी खेती पनप नही सकती । जो किसान खाद के महत्त्व को समझता है, उसी के लिए खेती फलदायिनी होती है । खाद के सम्बन्ध मे निम्नलिखित कहावतें लीजिये—

(१) खात अर पाणी, के करै बिनाणी ?

खेत में खाद और पानी देना चाहिए, खेती अवश्य अच्छी होगी, इसमें भगवान क्या करेगा अथवा किसी की चतुराई क्या काम आयेगी ?

(२) खात पड़ै तो खेत, नहीं तो कूड़ो रेत ।

खाद डालने से ही खेती हो सकती है, नही तो खेत मे कूडा-करकट और रेत के सिवा कुछ नही होगा ।

जोताई और बोआई—

(१) साह नांटज्या, पण बाह नां नांटै ।

साहूकार भी रुपये देने से इन्कार कर सकता है किन्तु खेत में जो जोताई की जाती है, वह कभी निष्फल नही जाती ।

(२) साढ़ की साढ़ ही याद आवै ।

आषाढ़ के महीने मे खेत जोतते समय यदि कोई कृषि-सम्बन्धी भूल हो गई हो तो आगामी आषाढ़ मे दुबारा खेत जोतते समय ही वह याद आती है ।

(३) चणो न मांनी बाह ।

चणा जोताई नही मानता । चने के लिए जमीन मे नमी होनी चाहिए ।

---

१. 'बावणो डहरी को होवै भांवै सेर ही ।'

(४) जेठ सरीखा बाजरा कोनी, कातक बराबर जो कोनी ।

ज्येष्ठ मास मे बाजरा और कार्तिक में जौ का बोना सर्वश्रेष्ठ है ।

इसी प्रकार एक दूसरी कहावत में कहा गया है—

"जेठ बायो बाजरो, सावण घाल्या बूट ।
भर भादू में भर देसी, बो बाजरी का ऊट ॥

(५) गाजर बावै भादवा, गोबी आसोजां ।

गाजर भादो मे तथा गोभी आश्विन मे लगानी चाहिए ।

(६) रास पुराणी बाजरो, मींडक फाल जुंवार ।
इक्कड़-दुक्कड़ मोठिया, कीड़ीनाल गुंवार ॥

बाजरा बोते समय उतना ही अन्तर रहना चाहिए जितना 'रास' और 'पुराणी' में रहता है । बैलो के बँधी हुई उस रस्सी को जिसे हल चलाने वाला थामे रहता है 'रास' कहते हैं तथा हाथ डेढ हाथ की बैल हाँकने की लकडी को 'पुराणी' कहते हैं । एक मण्डूक-प्लुति और दूसरी में जितनी दूरी होती है, उतनी दूरी पर ज्वार बोना चाहिए । मोठ एक-एक दो-दो करके बोना चाहिए और ग्वार को चीटियो की पद्धति पर बिल्कुल पास-पास बोना चाहिए ।

(७) बुद्ध बावणी, सुक्कर लावणी ।

बुधवार को बोना चाहिए और शुक्रवार को काटना ।

(८) स्यावड़ माता सत करिये ।
बीज म्होड़ो मत करिये ॥

स्यावड माता कृषि की देवी मानी जाती है । उससे प्रार्थना की गई है कि जितना बीज जमीन में डाला गया है, उतनी ही पैदावार न देना, उससे कही अधिक देना ।

फसल—

(१) कन्या फूले, तुल फले वृश्चिक ल्यावै लाण ।

कन्या राशि (आश्विन) मे फूल उत्पन्न हों, तुला राशि (कार्तिक) में फल लगें तो वृश्चिक (मार्गशीर्ष) में फसल काटो ।

(२) काती सब साथी ।

फसले चाहे जब बोई गई हो, कार्तिक में सब साथ ही पकती हैं ।

(३) तीसां रातां टींडसी, सिट्टा साठी जोग ।
ग्वार फली चालीस सूं पकै भलेरा भोग ॥[1]

टीडसी ३० दिन से, सिट्टे ६० दिन से तथा ग्वार की फलियाँ चालीस दिन से पकती है ।

(४) सांगर गेहूँ कैरां तिल, आकां घणो कपास ।
फोगज फूटया भाडली, बँधी समय की आस ॥

---

१. कलायण (श्री नानूराम संस्कर्ता); पृष्ठ ३६ ।

यदि सांगर अच्छे हो तो गेहूँ की फसल अच्छी होती है, कैर अच्छे हों तो तिलों की फसल अच्छी होती है, आक फले-फूले तो कपास की फसल अच्छी होती है, फोग के फूटने से समय अच्छा होता है।

(५) माह उबारे ने फागण बाले।[1]

ऐसा कहा जाता है कि माघ मास की ठण्ड से तो फसले पाला लगने से बच जाया करती हैं किन्तु फाल्गुन की सर्दी कभी-कभी दाह लगा जाती है।

दुर्भिक्ष—

निम्नलिखित कहावती पद्य मे अकाल अपना परिचय देता हुआ कहता है—

पग पूंगल सिर मेड़ता, उदर ज बीकानेर।
फिरतो घिरतो बीकपुर, ठावो जैसलमेर॥

मेरे पैर पूंगल मे रहते है, सिर मेडता और उदर बीकानेर मे स्थित है, चलता-फिरता बीकानेर पहुँच जाता हूँ और जैसलमेर तो मेरा स्थायी हेडक्वार्टर है।

जिस प्रान्त मे दुर्भिक्ष इतना व्यापक हो, उसमे दुर्भिक्ष-सम्बन्धी कहावतो का प्राचुर्य अत्यन्त स्वाभाविक है। कुछ उदाहरण लीजिये—

(१) न भैवै काकड़ो तो क्यूं टेरै हाली लाकड़ो।

हे किसान! अगर कर्क-सक्रान्ति के दिन वर्षा न हो तो तुम क्यो व्यर्थ में हल जोतते हो? कर्क-सक्रान्ति के दिन वर्षा न होने से अकाल पड़ता है।

(२) **दो सावण, दो भादवा, दो काती, दो माह।**
ढाँढा धोरी बेचकर, नाज विसावण जाह॥

यदि दो सावन, दो भाद्रपद, दो कार्तिक अथवा दो माघ हो तो चौपायो को बेचकर अनाज खरीदने के लिए चले जाओ क्योंकि अकाल का पडना निश्चित है।

(३) **परभाते मेह डबरा, सांजे सीला बाव।**
डंक कहै हे भड्डली, काला तणा सुभाव॥

डक भड्डली से कहता है कि यदि प्रात काल मेघ भागे जा रहे हो और शाम को ठंडी हवा चले तो समझना चाहिए कि अकाल पडेगा।

(४) चैत मास उजियाले पाख, नो दिन बीज लुकोई राख।
आठै, नौम निरख कर जोय, ज्यां बरसै ज्यां दुरभख होय॥

चैत्र के शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा से नवमी तक बिजली को छिपाये रखो, अष्टमी और नवमी को जहाँ-जहाँ बिजली चमकती दिखाई दे, वहाँ-वहाँ दुर्भिक्ष होगा।

(५) निबां अधर निबोली सूखे, काल पड़े कबहूँ नहिं चूके।

नीम के फल पककर यदि नीम पर ही सूख जायँ और जमीन पर न गिरें तो अवश्य अकाल पड़ेगा।

(६) दिन में स्याल शब्द जो करे, निश्चय ही काल हलाहल पड़े।

दिन मे शृगाल शब्द करें तो भयंकर दुर्भिक्ष पड़ेगा।

---

१. मालवी कहावतें (श्री रतनलाल महता); पृष्ठ १०६।

फुटकर कहावतें—

(१) **धन खेती, धिक चाकरी।**

खेती धन्य है, नौकरी को धिक्कार है।

(२) **खेती धणियां सेती।**[1]

खेती मालिक की निगरानी से ही फलदायिनी होती है।

(३) **खेती धनी हेती, आधी खेती बेटा हेती।**
हारी हेती ने हींटा हेती ॥[2]

घर के मालिक की देख-रेख मे खेती पूरी, और पुत्र की देख-रेख में आधी फलदायक होती है पर इन दोनो की देख-रेख से हटकर खेती यदि नौकर की देख-रेख में हो तो कुछ भी प्राप्त नही होता।[3]

(४) **सावण साध्या गैतरा, कातक ल्हासो जाय।**
काली पीली बाल में, के हाड बाप का खाय॥

श्रावण में तो फिरता रहा, कार्तिक मे दूसरो के यहाँ काम पर जाता रहा, ऐसा व्यक्ति काली-पीली आँधी चलने पर क्या अपने पिता की हड्डियाँ चबायेगा? समय पर खेती करने और उसकी पूरी सम्हाल रखने पर ही वैशाख की गर्मी में खाने के लिए अन्न सुलभ हो सकता है।

(५) **आये गये नै पूछै बात, खेती में क्यूँ आथ न साथ।**

जो अपनी खेती को स्वय नही सँभालता और आने-जाने वाले से उसके बारे में पूछताछ करता रहता है, उस खेती मे कोई लाभ नही होता।

(६) **खेती बादल में है।**

खेती वर्षा पर निर्भर रहती है।

---

१. पाठान्तर :

खेती खून सेती।
खेती बलदा सेती।
खेती खेचल सेती।
खेती खात सेती।
खेती जमी सेती।
खेती नींदण सेती।
बाट खेती हाट खेती।

२. मालवी कहावतें (श्री रतनलाल महता); पृष्ठ २६।

३. मिलाइये :

१. खेती पाती बीनती, मोरां तणी खुजाल।
जै सुख चावै आपणो, हाथा हाथ संभाल॥

२. पर हथ दिणज, सदेसा खेती,
बिन देखे वर ब्याबै बेटी।
दवार पराये मैले थाती,
ये च्यारूँ मिल करै हाती॥

(७) **खेती गोरी मोठ की ।**[1]

गोरी मोठ की खेती उत्कृष्ट होती है ।

(८) **के धन खेत खलां ।**[2]

खलिहानों का अन्न से भरा रहना ही वास्तव में सच्चा धन है ।

उत्तर प्रदेश जैसे उपजाऊ प्रदेशों में कृषि-विषयक जितनी कहावते मिलती हैं, सम्भवतः राजस्थान में उतनी नही मिलती; फिर भी खेती-सम्बन्धी कहावते यहाँ अच्छी संख्या मे उपलब्ध होती है, क्योकि जैसा पहले कहा जा चुका है, राजस्थान की अधिकांश जनता खेती पर अपना जीवन बसर करती है ।

तुलनात्मक कहावतें—राजस्थान मे डक और भड्डली की खेती-सम्बन्धी बहुत सी कहावते प्रसिद्ध है । ऊपर स्थान-स्थान पर इस प्रकार के उदाहरण दिये गये है । घाघ और भड्डरी की ऐसी ही कहावते, उत्तर प्रदेश और बिहार आदि प्रान्तो में भी प्रचलित हैं और इस विषय की पुस्तके भी प० रामनरेश त्रिपाठी ने प्रकाशित करवाई हैं । इस प्रकार की कहावते बंगाल मे भी 'खनार वचन' के नाम से प्रसिद्ध है । एक उदाहरण लीजिये—

"भादूरे मेघे पूर्वे वाय, से दिन वृष्टि के धोचाय ।"

अर्थात् भाद्र मे जिस दिन पूर्व की हवा चले, उस दिन बडी वर्षा होगी ।

भाद्र में यदि पूर्व की हवा चले तो सवाई फसल होती है, इस आशय की एक राजस्थानी कहावत पहले उद्धृत की जा चुकी है ।

इसी प्रकार एक दूसरा **'वचन'** लीजिये—

"श्रावने वय पूवे वाय, हाल छेड़े चाषा वाणिज्ये याय ।[3]

श्रावण में पूर्व की हवा चलने से अकाल पडता है । यही बात उत्तर प्रदेश मे प्रचलित लोकोक्ति में कही गई है—

सावन पुरवाई बहै, भादों में पछियावं ।
कत डगरवा बेचिके, लरिका भागि जिआव ॥[4]

अर्थात् सावन में पूर्व की हवा चले और भादो में पश्चिम की, तो हे स्वामी ! बैलो को बेच डालो और कही भागकर बच्चो को जिलाओ ।

---

१. पूरा पद्य इस प्रकार है :

खेती गोरी गोठ की, धीणो धोली गाय ।
बोरो करणो बाणियो, होयो धन ले ज्याय ॥

२. पूरी कहावत इस तरह है :

के धन धमकला, के धन खेत खला ।
के धन सपूत जाया, के धन पड्यो पाया ॥

३. देखिये :

बाङ्ला प्रवाद (श्री सुशीलकुमार दे), प्रथम परिशिष्ट, खनार वचन ।

४. ग्राम साहित्य, तीसरा भाग (रामनरेश त्रिपाठी); पृष्ठ ५८ ।

राजस्थान, बिहार, बंगाल, उत्तर-प्रदेश आदि में प्रचलित इस प्रकार की कहावतो के तुलनात्मक अध्ययन से बडे मनोरंजक परिणाम निकलते हैं। घाघ और भड्डरी चाहे किसी प्रदेश के रहे हों किन्तु घाघ और भड्डरी की कहावतें उक्त सभी प्रदेश वालो की अपनी हो गई हैं।

७. राजस्थान की वर्षा-सम्बन्धी कहावतें

(१) वर्षा-विज्ञान की प्राचीनता

भारतवर्ष में वर्षा-विज्ञान बहुत प्राचीन है। तैत्तिरीय संहिता में कहा गया है कि अग्नि देव वृष्टि को ऊपर भेजता है और मरुत् उत्पन्न हुई वृष्टि को लाता है। जब यह आदित्य किरणो द्वारा नीचे को पर्यावृत्ति करता है, तब वृष्टि होती है।[1] वाल्मीकि के मतानुसार आकाश सूर्य की किरणों द्वारा आठ महीने (कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा से आषाढ शुक्ला प्रतिपदा) तक गर्भ-रूप मे धारण किये हुए समस्त समुद्रों के रसायन रूप जल को जन्म देता है अर्थात् वृष्टि करता है।[2] वराहमिहिर (५०५ ई० के लगभग) वृहत्संहिता से पता चलता है कि पूर्वकाल में गर्ग, पराशर, काश्यप और वात्स्य आदि मुनियो को वर्षा के बारे मे काफी जानकारी थी, और उनके लिखे हुए ग्रन्थ भी थे।[3]

(२) वर्षा के निमित्त और उनके प्रकार

जिस प्रकार आने वाली घटनाएँ अनेक बार अपना पूर्वाभास दे जाती हैं, उसी प्रकार आकाश मे छा जाने वाली घटाओ के भी पूर्व निमित्त होते है। उन निमित्तो का ज्ञान यदि हमे पहले से हो जाय तो हम बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। वृष्टि के निमित्तो का बोध कराने वाला एक वृष्टिविद्या-बोधक निमित्त-शास्त्र भी है। जैसा ऊपर कहा गया है, सूर्य अपनी किरणो द्वारा पृथ्वी के जल को ऊपर खीचता है और मरुत् की सहायता से पृथ्वी पर जल बरसा देता है किन्तु सूर्य का खीचा हुआ जल कितने समय के पीछे, कितने दिन तक, कितना, किस समय, कहाँ-कहाँ बरसेगा, इन सब बातो का ज्ञान कराने वाला यह उक्त वृष्टिविद्या-बोधक निमित्त-शास्त्र है। इस शास्त्र मे वर्षा के निमित्त भौम, आन्तरिक्ष, दिव्य और मिश्र, इन चार भागों मे विभक्त हैं—

(क) मनुष्य, पशु-पक्षी, कीट-पतग, आदि भौतिक वस्तुओं के द्वारा वर्षा के ज्ञान होने को भौम निमित्त कहते हैं।

(ख) वायु, बादल, आकाश, विद्युत्, इन्द्र-धनुप, आँधी आदि से वर्षा के ज्ञान होने को आन्तरिक्ष निमित्त कहते है।

(ग) सूर्य-चन्द्र तथा ग्रहो के उदयास्त आदि द्वारा वृष्टि के ज्ञान प्राप्त करने को दिव्य निमित्त कहते है।

---

१. अग्नि इतो वृष्टिमुदीरयति। मरुतः सृष्टा नयन्ति।
यदा खलु वा सावादित्यो न्यङ्रश्मिभिः पर्यावर्तते, अथ वर्षति। तै० स० २-४-१०।

२. अष्टमासधृत गर्भं भास्करस्य गभस्तिभिः।
रस सर्वसमुद्राणां द्यौः प्रसूते रसायनम्॥ —वाल्मीकि

३. ग्राम साहित्य, तीसरा भाग (रामनरेश त्रिपाठी), पृष्ठ १।

(घ) कार्तिक से आश्विन तक के बारह महीनों तथा विशेषतः अक्षय तृतीया, आषाढ़ी पूर्णिमा आदि के शकुनों तथा उपर्युक्त चिह्नों से वर्षा के ज्ञान प्राप्त करने को मिश्र निमित्त कहते है।[1]

उक्त चारों प्रकार के निमित्तो से सम्बन्ध रखने वाली वर्षा-विषयक कहावतें राजस्थानी भाषा मे उपलब्ध है जिनके उदाहरण यहाँ क्रमशः दिये जा रहे है—

(क) भौम निमित्त

(अ) मनुष्यों की चेष्टाएँ—

अत पित वालो आदमी, सोवै निद्रा घोर।
अणपढ़िया आतम थकी, कहै मेघ अति जोर ॥१॥
वात पित्त युत देह ज्यां, होय रहे घाम घूम।
अणभणिया आगम कथै, रहे मेह की धूम ॥२॥

पित्त-प्रकृति वाला मनुष्य अगर घोर-निद्रा में शयन करे अथवा वात-प्रकृति वाले मनुष्य का गर्मी से सिर दुखने लगे तो वर्षा बहुत जोर से हो।

(आ) विभिन्न पेशे वालों के अनुभव—

जब जडाव पर कुन्दन नही लगे, सलाइयो पर कीट जम जाय, धोबी के कपड़े खूम मे देने के माट में खभीर उठे व कोरे कपड़े वाली खूम के माट मे गर्मी अधिक हो अथवा छोटे-छोटे कीडे पड जायँ, बुनकर के कपडे पर लगाई हुई "पान" शीघ्र न सूखे, जूते बनाते समय चमड़े पर लेही न चिपके, ढोल, दमामा, ताशा आदि चमडे से मढे हुए बाजे यदि ठीक न बजे तथा दही मथने पर यदि मक्खन न निकले तो बहुत जोर से वर्षा हो जैसा कि निम्नलिखित दोहो से स्पष्ट है—

कुन्दन जमे न जड़ाव पर, जमे सलायन कीट।
कहे जड़िया सुणजो जगत, उड़े मेह की रीठ ॥१॥
धोब्यां धोखो मिट गयो, मन में हुवो हुलास।
देख सूदणी बजबजी, मेह आवण की आस ॥२॥
कोरा कपड़ा सूदणी, जद अत गरमी होय।
सूछम कीड़ा सूदणी, मेहा मुकता जोय ॥३॥
बणकर केरी पांजनी, सूखे नहीं सताब।
आवादानी मेह की, लाल रग व्है आब ॥४॥
देख खुरड़ कहे ढेढ की, कथा टूटे नेह।
लेहेई चढ़े न चामड़ै, मुकता बरसे मेह ॥५॥
ढोल दमामा दुड़बड़ी, बोरे सादर बाज।
कहे डोम दिन तीन में, इन्द्र करे आवाज ॥६॥

---

१. देखिये—
स्व० प० मधुसूदन जी ओझाकृत कादम्बिनी की भूमिका; पृष्ठ ८-९।

बिगड़े घिरत बिलोवणो, नारी होय उदास।
जद असवारी मेह की, रहे छास की छास ॥७॥[1]

(इ) पशुओं की चेष्टाएँ—

आगम सूजै सांढणी, दौड़ै थलां अपार।
पग पटकै बैसे नहीं, जद मेह आवणहार ॥१॥
साबण काछा झाग सुण, गाडर हवा हुंत।
दौड़ै सनमुख पवन दिस, जल थल डेल भरन्त ॥२॥
मांडे राड सांप री मासी।
तो जाणो चोकस मेह आसी ॥३॥[2]

अर्थात् ऊँटनी इधर-उधर दौड़ै, पैर पटके किन्तु बैठे नहीं, भेड के साबुन जैसे झाग आ जायें और वायु के सामने दौडे तथा बिल्लियाँ लडे तो जोर से वर्षा होगी।

(ई) पक्षियों की चेष्टाएँ—

चडी ज न्हावे धूल में, मेहा आवणहार।
जल में न्हावै चड़कली, मेह विदा तिण वार ॥१॥
बग पखां फैलाय, उभकि चोंच पवनां भखे।
तीतर गुंगा थाय, इन्द्र धड़के माथजी ॥२॥
टोलै मिलकी कॉवली, आय थलाँ बैठन्त।
दिन चौथै के पांचवै जल थल ठैल भरन्त ॥३॥
पपैयो पिउ पिउ करे, मोरां घणी अजग्ग।
छत्र करै मोर्‌यो सिरै, रुवियां बहै अथग्ग ॥४॥
अत तरणावै तीतरी, लक्खारी कुरलेह।
सारसरे शृंगन भ्रमें, जद अत जोरे मेह ॥५॥

अर्थात् जब चिडिया धूल मे नहाने लगे, बगुले पंख फैलाकर बैठे तथा चोंच से वायु का भक्षण करे, तीतर शब्द न करे, बहुत-सी चीले भूमि पर आ बैठे, पपीहा "पिउ पिउ" करने लगे, और मोर बारबार बोलने लगे और पखो का छत्र बनावे, तीतरी जोर-जोर से चिल्लाने लगे, लखारी दुखी होकर बोलने लगे और सारस पर्वतों के शिखर पर भ्रमण करने लगे तो जोर की वर्षा हो।

(उ) कीट-पतंगों की चेष्टाएँ—

साप गोयरा डेडरा, कीड़ी मकोड़ी जाय।
दर छाडे बाहर भमे, नहीं मेह की हाण ॥१॥
गिरगिट रग बिरंग हो मक्खी चटके देह।
माकड़िया चहचह करें, जद अत जोरे मेह ॥२॥

---

१. बिड़ला सैंट्रल लाइब्रेरी की एक हस्तलिखित प्रति से साभार उद्धृत।
२. राजस्थानी कृषि-कहावतें (श्री जगदीशसिंह गहलोत); पृष्ठ १५।

कीड़ी मुख में अड लें, बर तज भूमि भमन्त।
बरखा ऋतु विशेष यो जल थल ठेल भरन्त ॥३॥[1]

अर्थात् साँप, गोहरे, मेंढ़क, चीटी, मकोड़े, अपने दरों से निकलकर भूमि पर इधर-उधर फिरने लगें, गिरगिट बार-बार रंग बदले, मक्खी मनुष्यों की देह पर चिपक जाय तथा तिवरी लगातार शब्द करने लगे, वर्षा ऋतु में चीटी बिना किसी कारण अपने अंडों को मुख में लेकर इधर-उधर चलने लगे तो बहुत वर्षा होगी।

(ख) आन्तरिक्ष निमित्त

(अ) हवा—

१. बिजनस पवन सूरियो बाजे।
घड़ी पलक मांहे मेह गाजे ॥

यदि उत्तर-पश्चिम से हवा चले तो घड़ी दो घड़ी मे वर्षा होती है।

२. पवन गिरी छूटै परवाई।
घर गिर छोलां इन्द्र धपाई ॥

यदि पूर्व से हवा चले तो भूमि और पर्वत को वर्षा तृप्त करे।

(आ) बादल—

१. सवार रो गाजियो, ऐलो नहीं जाय।

प्रातःकाल बादल का गरजना वृथा नही जाता।[2]

२. बादल रहै रात रा बासी।
तो जाणों चोकस मेह आसी ॥

यदि पिछली रात के बादल सुबह तक रह जायँ तो वर्षा अवश्य होगी।

३. सुकरवार री बादरी, रही सनीचर छाय।
डक कहे हे भड्डली, बरस्या बिना न जाय ॥

शुक्रवार की बदली यदि शनिवार तक छाई रहे तो बरसे बिना नही जाती।

(इ) आकाश—

१. अम्मर राच्यो, मे माच्यो।

लाल आसमान वर्षा का सूचक होता है।

२. तारा अत तगतग करे, अम्बर नीला हून्त।
पड़े परल पाणी तणी, जद सज्या फूलन्त ॥

---

१. वर्षा विज्ञान (श्री नरोत्तम व्यास); पृष्ठ २८-३०।

२. मिलाइये—

आप्तभाषितवत् सत्यं प्रभाते देवगर्जितम्।
यामद्वयेन वर्षा वा वातो वा जायते ध्रुवम् ॥

कादम्बिनी, पृष्ठ १४७

अर्थात् प्रातःकाल के समय की गर्जना आप्त-वाक्य की भाँति सत्य होती है। इससे दोपहर के भीतर-भीतर अवश्य वर्षा होती है या वायु चलती है।

यदि आसमान नीला हो तो घनघोर वर्षा हो।

३. अम्मर पीलो, मे सीलो।

आसमान यदि पीला हो तो वर्षा मन्द पड़ जाती है।

(ई) बिजली—

चैत महीने बीज लुकोवे।
धुर बैसाखां केसू धोवे॥

यदि चैत्र भर बिजली न दिखाई दे तो वैशाख के प्रारम्भ मे ही वर्षा होगी।

(उ) इन्द्रधनुष—

ऊगंतेरो माछलो, आंथवतेरो मोख।
डंक कहै हे भड्डली, नदियां चढ़सी गोख॥

यदि प्रातःकाल के समय इन्द्रधनुष और सूर्यास्त के समय किरणें दिखाई दें तो नदियों में अवश्य बाढ आयेगी।

(ऊ) आँधी—

१. आंधी साथै मेह आया ही करै।

आँधी के साथ वर्षा हुआ ही करती है।

२. आंधी रांड मेहां री पाली दबै।

राजस्थान मे आँधी बडे जोर से चलती है। वह मेह के आने पर ही दबती है।

(ग) दिव्य-निमित्त

(अ) चन्द्र और सूर्य

१. सांमां सुकरां सुरगुरां, जे चदो ऊगन्त।
डक कहै हे भड्डली, जल थल एक करन्त॥

२. सावण तो सूती भलो, ऊभो भलो असाढ।

३. मंगल रथ आगे हुवे, लारे हुवे जो भान।
आरंभिया यूं ही रहै, ठाली रैवै निवाण॥

४. सूरज कुंड अर चांद जलेरी।
टूटा टीबा भरगी डेरी॥[1]

यदि आषाढ में चन्द्रमा सोमवार, वृहस्पतिवार या शुक्रवार को उदय हो तो डंक भड्डली से कहता है कि बडे जोर की वर्षा होगी।

श्रावण मास में द्वितीया का चन्द्रमा सोया हुआ और आषाढ़ में खड़ा हुआ अच्छा है।

---

१. मिलाइये—
रवि सिस रे दोली कुंडारी।
एरापत मघवा असवारी॥

यदि सूर्य के आगे मंगल हो तो सारी आशाओं पर पानी फिर जायगा और तालाब सूखे पड़े रहेंगे।

यदि सूर्य के चारों ओर कुण्ड हो और वैसे ही चन्द्रमा के चारों ओर जलेरी हो तो इतने जोर से वर्षा होती है कि टीले टूटकर पानी के साथ बह जाते है और सरोवर जल से परिपूर्ण हो जाते है।

(आ) नक्षत्र और तारे

१. आदरा भरै खाबड़ा, पुनरबसु भरै तलाब।
न बरस्यो पुषै तो बरसही घणा दुखं॥
२. पहली आद टपूकड़े, मासां पक्खा मेह।
३. असलेखा बूठां, बैदां घरे बधावणा।
४. मघा मावन्त मेहा, नहीं तो उड़न्त खेहा।
५. अगस्त ऊगा, मेहा पूगा।[1]
६. अगस्त ऊगा मेह न मंडे।
जो मंडे तो धार न खडे॥

आर्द्रा मे वर्षा हो तो खड्डे पानी से भर जायेंगे, पुनर्वसु मे बरसे तो तालाब भर जायँ और पुष्य नक्षत्र में बरसे तो फिर मुश्किल से वर्षा होगी।

आर्द्रा के शुरू में यदि बूँदे पड जायँ तो महीने पन्द्रह दिन मे वर्षा होगी। यदि अश्लेषा नक्षत्र मे वर्षा हो तो डाक्टर-हकीमो के घर बधाई बँटे अर्थात् रोग खूब फैले।

मघा नक्षत्र मे यदि वर्षा हो तब तो अच्छा है, नही तो धूल उडेगी।

अगस्त्य के उदय होने पर वर्षा का अन्त समझना चाहिए। इस तारे के उदय होने पर प्रथम तो वर्षा ही न हो और यदि हो तो मूसलाधार वर्षा हो।

(घ) मिश्र-निमित्त

संस्कृत भाषा के वृष्टिविद्या-बोधक शास्त्रो मे कार्तिक से आश्विन तक के बारह महीनो के प्रत्येक दिन का वर्षा की दृष्टि से फल निर्धारित किया गया है। राजस्थानी भाषा मे भी वर्ष के प्रत्येक महीने और उस महीने की अनेक तिथियों से सम्बद्ध वर्षा-विषयक कहावती पद्य प्रचलित है जिनमें से कुछ यहाँ दिये जा रहे हैं—

कार्तिक

काती सुद पूनो दिवस, जे क्रितिका रुख हुन्त।
जे बादल बीजू खिवै, मास चार बरसन्त॥

मार्गशीर्ष

मगसर तणी ज अस्टमी, बादल बीजां होय।
सावण बरसै भड्डली, साख सवाई जोय॥

---

१. मिलाइये—
उदित अगस्त्य पंथ जल सोखा।
—रामचरितमानस

पौष

पोस अंधारी दस्समी, चमकै बादल बीज।
तो भर बरसै भादवो, सायधण खेलै तीज ॥[1]

माघ

माह ज पड़वा ऊजली, बादल वाव ज होय।
तेल पीय अर दूध सब, दिन दिन मूंघा जोय ॥

फाल्गुन

फागण वद दुतिया दिवस, बादल होय स बीज।
बरसै सावण भादवो, चगी होवै तीज ॥

चैत्र

नव दिन कहिजै नौरता, सुकल चैत के मास।
जल धूठै बिजली हुवै, जाणो गरभ विनास ॥

वैसाख

वद बसाख अमावसी, रेवति होय सुगाल।
मध्यम होवै अस्विनी, भरणी करै दुकाल ॥

ज्येष्ठ

जेठ बदी दसमी दिवस, जे सनि वासर होय।
पाणी होय न धरण में, विरला जीवै कोय ॥

आषाढ़

पैली पड़वा गाजै तो दिन बहोत्तर वाजै।

श्रावण

सावण पैली पंचमी, जो धाडूकै मेव।
च्यार मास बरसै सही, सत भाखै सहदेव ॥

भाद्रपद

भाद्रव छठ छूट्यो नहीं, बिजली रो झणकार।
तूं पिव ! जायै मालवै, हू जाऊं मौसाल ॥

आश्विन

धुर आसोज अमावसां, जे आवै सनिवार।
समयो होसी करवरो, पिंडत कहै विचार ॥

पुनः कार्तिक

भूल्या फिरै गँवार, काती भालै मेहड़ा।

---

१. बिड़ला केन्द्रीय पुस्तकालय पिलानी की एक हस्तलिखित प्रति से साभार उद्धृत।

मिश्र महीने

माघ मसक्कां जेठ सी, सावण ठंडी वाव ।
भीम कहै सुण भड्डली, नहिं वरसण रो दाव ॥[1]

अर्थात् कार्तिक सुदी पूर्णमासी को यदि कृत्तिका नक्षत्र हो तथा बादलों में बिजली चमके तो अगले चार महीनों तक लगातार वर्षा होगी। मार्गशीर्ष बदी अष्टमी को यदि बादल और बिजली दोनों हो तो श्रावण में वर्षा हो तथा सवाई उपज हो। पौष बद्दी दसमी को यदि बादलो में बिजली चमकती हो तो पूरे भाद्र में वर्षा हो और स्त्रियाँ तीज का त्यौहार अच्छी तरह मनायें। माह सुदी प्रतिपदा को यदि बादल और पवन हों तो तेल, घी और दूध, ये सब दिनो-दिन मँहगे होगे। फाल्गुन बदी द्वितीया के दिन यदि बिजली के साथ बादल हो तो सावन और भादों दोनों बरसेगे और तीज का त्यौहार खूब मनाया जायगा। चैत शुक्ल पक्ष नवरात्रो में यदि पानी बरसे तो समझ लो कि वर्षा के गर्भ का नाश हो गया, आगे वर्षा नही होगी। बैसाख बदी अमावस को यदि रेवती नक्षत्र हो तो सुकाल हो, अश्विनी हो तो मध्यम हो और भरणी हो तो दुर्भिक्ष करे। जेष्ठ बदी दसमी को यदि शनिवार हो तो पृथ्वी पर पानी नही बरसेगा और कोई बिरले ही जीवित रहेगे। यदि अषाढ बदी प्रतिपदा के दिन बादल गरजे तो ७२ दिनो तक हवा चले, वर्षा न हो। सावन बदी पंचमी को यदि बादल गडगडावे तो चार महीने अवश्य बरसे, सहदेव सत्य कहता है। भाद्रपद की छठ को यदि बिजली की चमक नही छूटी (बिजली नही चमकी) तो हे प्रिय ! तुम मालवे जाना, और मैं पीहर जाऊँगी। आसोज बदी अमावस्या को यदि शनिवार आये तो पडित विचार कर कहता है कि जमाना साधारण होगा। वे गँवार भूले हुए फिरते हैं जो कार्तिक मे मेह खोजते हैं। माघ मे गर्मी, जेठ में शीत और सावन में ठण्डी हवा चले तो भीम कहता है कि हे भड्डली ! सुन, ये बरसने के आसार नही।

वर्षा का गर्भ—ऊपर दिये हुए पद्यो मे एक स्थान पर वर्षा के गर्भ-नाश का उल्लेख हुआ है। यहाँ पर प्रसंगवश हम यह कह देना चाहते है कि संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों में वर्षा के गर्भ के उपक्रम, प्रसव, उपघात, दोहद आदि सभी का विस्तार से वर्णन हुआ है। प्रसिद्ध है कि गर्भ-धारण के साढे छः महीने अथवा १९५ दिन बाद वर्षा के गर्भ का प्रसव होता है। इस सम्बन्ध में राजस्थानी भाषा का निम्नलिखित दोहा उल्लेखनीय है—

जिण दिन होवै गरभड़ो, तिण थक्की छै मास ।
ऊपर पनरा दीहड़ै, बरसै मेह सुगाज ॥

इस प्रकार के पद्यो का मूल आधार बृहत्संहिता आदि ग्रन्थों में मिल जाता है। वराहमिहिर कहते हैं—

यन्नक्षत्रमुपगते गर्भश्चन्द्रे भवेत् स चन्द्रवशात् ।

---

१. देखिये—
राजस्थानी भाग २ में प्रकाशित वर्षा-सम्बन्धी कहावतें। (श्री नरोत्तमदास स्वामी)

पंचनवते दिनशते तत्रैव प्रसवमायाति ॥[1]

अर्थात् चन्द्रमा के जिस नक्षत्र में प्रवेश करने से मेघ को गर्भ होता है, चन्द्रमा के वश से १९५ दिन में उस गर्भ का प्रसव होता है।

अक्षय तृतीया और आषाढी पूर्णिमा—शकुन-परीक्षा के लिए ये बड़ी महत्त्व-पूर्ण तिथियाँ हैं। कुछ उदाहरण लीजिये—

अक्षय तृतीया

आखातीज दूज की रैण, जाय अचानक जांचै सैण।
कछक बीच मांगी नट जाय तो जाणीजै काल सुभाय॥
हँस कर देय, नटै नहिं कोय, माधा सही जमानो होय॥

अक्षय तृतीया के अवसर पर द्वितीया की रात अचानक जाकर किसी स्वजन मित्र से कोई चीज मांगे। यदि माँगने पर वह इन्कार कर जाय तो अकाल के लक्षण समझो। पर यदि हँसकर चीज दे, इन्कार न करे तो हे माधजी, अवश्य सुकाल हो।

कादम्बिनी के निम्नलिखित श्लोकों मे भी यही बात कही गई है—

राधे शुक्ले द्वितीयायां, तृतीयासभवे निशि।
याचेतान्यगृह गत्वा कतुं वर्षपरीक्षणम्॥ २१९॥
तस्मै प्रसन्नो दद्याच्चेच्छभं प्रीतं च भाषते।
तदा वर्षशुभं विद्यादन्यथा त्वन्यथा भवेत्॥ २२०॥

अब एक कहावती पद्य आषाढी पूर्णिमा के सम्बन्ध मे लीजिए—

आषाढ़ी पूनम दिनां, निरमल ऊगै चन्द।
कोइ सिध कोइ मालवै, जायां कटसी फन्द॥

आषाढ की पूर्णिमा के दिन यदि चन्द्रमा निर्मल उदय हो तो किसी के कष्ट सिध जाने से और किसी के मालवा जाने से मिटेंगे अर्थात् अकाल पडेगा।

आषाढी परीक्षा के प्रकरण में विद्यावाचस्पति पं० मधुसूदनजी ओझा अपने वृष्टिविषयक प्रसिद्ध ग्रन्थ कादम्बिनी मे लिखते है—

दृष्टो यदोन्दुर्नाषाढ्यां वर्षतुं बंहु वर्षति।
यदि तत्रामलश्चन्द्रो नावृष्टिर्दारुणा भवेत्॥ ४२०॥

आषाढी पूर्णिमा को यदि बादलो के कारण चन्द्रमा दिखाई न दे तो वर्षा

---

१. मिलाइये—
यस्मिन् पक्षे भवेद्ग स्ततः पक्षे चतुर्दशे।
स गर्भदिवसान् साद्धं षण्मासान्ये न्हि वर्षति॥—कादम्बिनी, पृष्ठ ८

जिस पक्ष में गर्भ-स्थिति हो उससे १४वें पक्ष में अर्थात् गर्भ-स्थिति से साढे छः महीनों के अन्त के दिन वर्षा होती है।

मिलाइये—
आसाढी पूनो दिना, बादर झीनो चन्द।
तो भड्डर जोती कहें, सगला नरा अनद॥
ग्राम साहित्य, तीसरा भाग। (रामनरेश त्रिपाठी) पृष्ठ ३१।

ऋतु में खूब वर्षा होगी और यदि चन्द्रमा स्वच्छ दृष्टिगत हो तो भयंकर अनावृष्टि समझनी चाहिए।

(३) कहावतों के निर्माता और उनके अनुभव—

वर्षा-विषयक निमित्तों के विश्लेषण के पश्चात् दो प्रश्न हमारे सामने विचारार्थ उपस्थित है।

(१) वर्षा-सम्बन्धी इन कहावती पद्यो का निर्माता कौन है और किस प्रदेश का निवासी है ?

(२) वर्षा-विषयक पद्य परम्परा-प्राप्त सस्कृत के वृष्टि-विद्या बोधक ग्रन्थों से प्रादेशिक भाषाओं में आये है अथवा स्वतन्त्र रूप से निर्मित है ?

वर्षा-द्योतक कहावती पद्यो में घाघ, भड्डरी और डाक या डक—ये तीन नाम प्रमुख रूप से आते है। पं० रामनरेश त्रिपाठी के मतानुसार "घाघ पहले-पहल हुमायू के राजकाल मे गंगा पार के रहने वाले थे। अकबर की भी उन पर बडी कृपा थी। उन्होने 'सराय घाघ' नामक गाँव बसाया और फिर उसी में रहने लगे।"[1]

भड्डरी के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि "कोई एक पण्डित काशी से ऐसा मुहूर्त शोध कर घर को चले, जिसमें गर्भाधान होने से बडा विद्वान् पुत्र उत्पन्न होता। पर घर तक पहुँच न पाये और रास्ते ही मे शाम हो गई। विवश होकर वे एक अहीर के दरवाजे पर टिक गये। यह भी प्रवाद है कि वे किसी गडरिये के घर पर टिके थे भोजन बनवाते समय उनको उदास देखकर अहीरिन ने उनकी उदासी का कारण पूछा और उनके मन का भेद जानकर स्वय उनसे पुत्र की कामना की। उसी के फलस्वरूप भड्डरी का जन्म हुआ। अतएव ब्राह्मण पिता और अहीरिन माता से भड्डरी की उत्पत्ति मानी जाती है। किन्तु स्वामी नरोत्तमदासजी के मतानुसार अहीरिन माता से भड्डरी की नही, डाक की उत्पत्ति हुई। वे भड्डरी को पुरुष नही मानते, स्त्री मानते हैं।[2]

एक दूसरी कहानी में भड्डरी सुप्रसिद्ध ज्योतिषी वराहमिहिर के पुत्र कहे गये हैं किन्तु वराहमिहिर का समय सन् ५०५ ई० के लगभग पडता है और भड्डरी के पद्यो की भाषा किसी भी हालत मे इतनी पुरानी हो नही सकती। इसलिए इस कहानी मे कोई तथ्य नही जान पडता।[3]

राजपूताने में भड्डली नामक एक स्त्री प्रसिद्ध है जो भगिन थी। उसके पति का नाम डक ऋषि बताया जाता है जो ब्राह्मण था। "कहते हैं कि भड्डली को शगुन का इल्म खूब आता था और डंक ज्योतिष विद्या अच्छी तरह जानता था। इस सबब से दोनों मे बहुत वाद-विवाद हुआ करते थे जो एक पुस्तक मे इकट्ठे किये गये हैं

---

१. घाघ और भड्डरी (रामनरेश त्रिपाठी), भूमिका, पृष्ठ १७-१८।
२. राजस्थान भारती, भाग १, अक १, पृष्ठ ६०।
३. ग्राम साहित्य, तीसरा भाग (रामनरेश त्रिपाठी), पृष्ठ १२।

जिसका नाम 'भडली पुराण' है।[1]

भड्डरी की भाषा में मारवाडी शब्दों के प्रयोग बहुत मिलते हैं, इससे पं० रामनरेश त्रिपाठी अनुमान लगाते हैं कि या तो दो भड्डरी या भड्डली हुए होंगे, या एक ही भड्डरी युक्त प्रान्त से मारवाड़ में जा बसे होगे और उन्होने यहाँ और वहाँ दोनों प्रान्तो की बोलियो में अपने छन्द रचे होगे।[2]

त्रिपाठीजी का अनुमान ठीक नहीं जान पडता। वस्तुतः मौलिक रूप में प्रचलित जो लोकोक्तियाँ अथवा कहावती छन्द एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त की यात्रा करते रहते है, उनकी भाषा भी प्रान्त-भेद से बदलती रहती हैं। ऐसा नही होता कि छन्दों का निर्माता विभिन्न प्रान्तो मे बसकर उन प्रान्तो की भाषाओं मे छन्दों का निर्माण करता है।

त्रिपाठी जी के सामने एक दूसरी उलझन यह है कि राजपूताना और युक्त प्रान्त के भड्डरी मे स्त्री-पुरुष का अन्तर है। ऐसी दशा में उनके विचारानुसार यह कहना दुःसाहस की बात होगी कि दोनो प्रान्तो के भड्डली एक ही व्यक्ति है।

किन्तु स्वामी नरोत्तदास जी त्रिपाठी जी के मत से सहमत नही। वे दो भड्डरी स्वीकार नही करते। उनके मतानुसार डाक की उक्तियाँ भड्डरी को सम्बोधित करके लिखी गई हैं। राजस्थान में पद्यो के अन्दर वक्ता की जगह सम्बोधित व्यक्ति का नाम देने की प्रथा है। इन पद्यों के अन्दर केवल भड्डरी का नाम देखकर कुछ लोगों ने भूल से भड्डली को ही रचयिता समझ लिया और इन कहावतों को भड्डली की कहावत कहने लगे, यहाँ तक कि सुदूर युक्त प्रान्त में जाकर भड्डली स्त्री से पुरुष भी बन गई।

'कह भड्डरी' जैसे पद्य जहाँ मिलते हैं, वहाँ यह भी सम्भव है कि डाक जैसे प्रतिभाशाली व्यक्ति के सम्पर्क से भड्डली मे प्रतिभा का उन्मेष हुआ हो और उसने भी कुछ कहावते बना डाली हो।[3]

जहाँ तक मैं समझता हूँ, भड्डरी द्वारा कहावतो के रचे जाने के सम्बन्ध मे किसी प्रकार का आश्चर्य नही होना चाहिए। हो सकता है, डाक के सम्पर्क से भी भड्डली को कहावतो के निर्माण-कार्य मे प्रेरणा मिली हो किन्तु वैसे यह स्वयं भी प्रतिभाशालिनी स्त्री थी। राजस्थान में प्रचलित एक प्रवाद के अनुसार तो डंक ने भड्डली की प्रतिभा को देखकर ही उसे अपने घर में रखना स्वीकार किया था। कहा जाता है कि किसी वर्ष जब डक ऋषि तपस्या करते थे तो मेह नही बरसा। लोग आ-आ कर वर्षा के बारे में उनसे पूछते थे। डक ने एक दिन भड्डली से पूछा कि तुझे भी कुछ मेह बरसने की खबर है? उसने कहा—मैं तभी बतलाऊँगी जब आप

---

१. रिपोर्ट मरदुमशुमारी, राज मारवाड़ बाबत सन् १८९१ ई०, तीसरा हिस्सा, पृष्ठ २१२-२१३।
२. घाघ और भड्डरी (भूमिका), पृष्ठ २७।
३. देखिये :
'राजस्थान भारती' भाग १ में प्रकाशित स्वामी नरोत्तमदासजी का 'राजस्थान' की वर्षा-सम्बन्धी कहावतें' शीर्षक लेख, पृष्ठ ६०-६१।

मुझसे 'घरवासा' (नाता) करना स्वीकार कर ले। डंक ने कहा—तुम्हारी बात सच्ची निकलने पर मैं तुम्हें स्वीकार कर लूँगा। तब भड्डली ने कहा कि आज ही जब आप गाँव से लौटेंगे तो इतनी वर्षा होगी कि वृक्ष की डालियों तक पानी पहुँच जायगा। ऐसा ही हुआ और डक ने अपने दिये हुए वचन के अनुसार भड्डली से 'घरवासा' कर लिया।[1]

घाघ तथा डाक दोनो के साथ भड्डरी का नाम आता है। इसलिए स्वभावतः ही यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि घाघ और डाक दो व्यक्ति हैं या एक ही व्यक्ति के ये दो नाम है? प० रामनरेश त्रिपाठी के मतानुसार "घाघ के अन्य कई नाम भी बिहार मे प्रचलित है जैसे डाक, खोना, भाड आदि। मारवाड में 'डक कहै सुनु भड्डली' का प्रचार है। सम्भवतः मारवाड का डक ही बिहार का 'डाक' है।[2] डाक्टर उमेश मिश्र भी डाक और घाघ को एक ही व्यक्ति मानने के पक्ष में हैं।[3]

यदि घाघ और डाक दोनो एक ही हैं तो फिर घाघ को गंगापुर का निवासी मानना मुश्किल है। राजस्थान के विद्वानों की मान्यता है कि डाक राजस्थान के ही किसी प्रान्त का निवासी था। स्वामी नरोत्तमदासजी ने इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित दलीले उपस्थित की है—

(१) राजस्थान मे डाकोत नाम की एक याचक जाति है। डाकोत लोग अपने को डाक की सन्तान कहते है। डाकोत शब्द डाक-पुत्र शब्द का अपभ्रंश है जिसका अर्थ है डाक के वंशज डाकपुत्र-डाकपुत्त-डाक उत्त-डाक उत-डाकौत-डाकौत। पुत्र का अपभ्रंश 'उत' राजस्थानी भाषा मे सतानवाचक प्रत्यय बन गया है।[4]

(२) जहाँ तक मालूम हो सका है, डाकोत लोग राजस्थान के बाहर नही पाये जाते।[5]

इतना तो प० रामनरेश त्रिपाठी भी स्वीकार करते है कि राजपूताने में डाकोतों की सख्या अधिक है। डाकोत लोग भी डाक और भड्डली को राजस्थान-निवासी बतलाते है।

इसलिए बहुत सम्भव शायद यही है कि डाक और भड्डली राजस्थान के ही निवासी हो और दोनो में स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध रहा हो। किन्तु अभी तक विद्वान् इस विषय मे एकमत नही है।

डाक भड्डरी अथवा डक और भड्डली के बनाये हुए जो वर्षा-सम्बन्धी पद्य

---

१ 'राजस्थान की जातिया, प्रकाशक श्री बंजरगलाल लोहिया, पृष्ठ ७५।

२. घाघ और भड्डरी (श्री रामनरेश त्रिपाठी), भूमिका, पृष्ठ २६।

३. देखिये :

'हिन्दुस्तानी' भाग ४, अंक ४ में प्रकाशित डाक्टर उमेश मिश्र का 'मैथिली साहित्य में डाक' शीर्षक निबन्ध।

४. मिलाइये :

नारणोत (नारायण की सन्तान), किसनसिंहोत (किसनसिंह की सन्तान) आदि।

५. राजस्थान भारती, भाग १, अंक १, पृष्ठ ५९-६०।

ई जाते हैं उनमें से बहुतो के संस्कृत रूपान्तर आज भी प्राप्त है। ऐसे कुछ उदाहरण पहले दे भी चुका हूँ। ब्यावर-निवासी श्री मीठालाल अटलदास व्यास के वृष्टिप्रबोध भारत का वायु शास्त्र नामक ग्रन्थ में वर्षा-सम्बन्धी पद्यो का विस्तृत संकलन किया ा है और साथ मे हिन्दी, गुजराती एव राजस्थान की वर्षा-सम्बन्धी कहावते भी दी ई हैं। इसी प्रकार साहित्यवाचस्पति पडित मधुसूदन जी ओझा द्वारा रचित ादम्बिनी" में वृष्टि-विद्या-सम्बन्धी अमूल्य सामग्री उपलब्ध होती है। पडित जी ने कृत के प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर ही उक्त ग्रन्थ का निर्माण किया था जिसमें से ना के लिए केवल दो उदाहरण मैं नीचे दे रहा हूँ—

१. **कातिक सुद एकादसी, बादल् बिजुली जोय।**
तो असाढ़ में भड्डरी, वर्षा चोखी होय॥ —राजस्थानी
एकादश्यां तु शुक्लायां द्वादश्यां वापि कार्तिके।
अभ्रच्छन्न यदि नभस्तदाषाढे ऽति वर्षति॥९॥—कादम्बिनी, पृ० १९

२. **माह सत्तमी ऊजली, बादल् मेह करन्त।**
तो आसाढां भड्डली, मेह घणो बरसन्त॥ —राजस्थानी

३. **माघ शुक्ले तु सप्तम्यां वृष्ट्याऽषाढेऽति वर्षति॥९६॥**—कादम्बिनी, पृ० ३४

इस प्रकार के अगणित उदाहरण दिये जा सकते है जिनके आधार पर हम ा निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि राजस्थान, बिहार और सयुक्त प्रान्त में प्रचलित बहुत-वर्षा-विषयक पद्य ऐसे हैं जो सस्कृत के प्राचीन ग्रन्थो से लोक-भाषा में आये हैं थवा यह भी सम्भव है कि बहुत प्राचीन काल के लौकिक अनुभवो को ही सस्कृत ो मे गु फित कर दिया गया हो। राजस्थान के एक कहावती दोहे मे गूजर के लडके पडितों की भर्त्सना करते हुए सहदेव से कहा है कि ये पडित तो चोर है जिन्होने ौकिक ज्ञान को चुराकर पुस्तको मे रख दिया है—

"लोक तणो उनमान ले, लियो ग्रन्थ में मेल।
चोरी कीधी पंडतां, सुण जोसी सहदेव॥"

जो भी हो, डाक, भड्डरी, सहदेव, माघा, माघसी, माघजी, फोगसी आदि नेक नाम ऐसे है जिन्होने वृष्टि-विषयक अनुभवो को कहावती पद्यों के रूप में जड़ र अतुल यश प्राप्त किया है। सस्कृत के पद्यो को इस प्रकार की लोक-प्रियता प्राप्त ी हो सकती थी। बहुत-से तथ्य उक्त कवियो द्वारा अनुभूत रहे होगे, बहुत-से तथ्य ो भी होगे जो इन कवियों को परम्परा से उत्तराधिकार के रूप मे प्राप्त हुए होगे।

?) ठेठ राजस्थानी कहावतें

अब तक वर्षा के सम्बन्ध में जो कहावते उद्धृत की गई है, उनमें से अधिकांश ी हैं जो केवल राजस्थान की कहावते नही कही जा सकती, ये कहावतें देश की र्व-सामान्य सम्पदा हैं, केवल प्रदेश-विशेष के अनुसार इनके परिधान में अन्तर दिख-ाई पडता है किन्तु राजस्थान मे ऐसी कहावते भी प्रचलित है जो स्थानीय रंगत लिये ए हैं। उदाहरणार्थ कुछ कहावते लीजिये—

(१) मेव ने पावणां कितांक दिनां रा।

अर्थात् मेह और अतिथि कितने दिनों के ? जिस प्रकार अतिथि बहुत दिनों तक नही ठहरता, उसी प्रकार वर्षा भी राजस्थान में बहुत दिनो तक नही ठहरती।

(२) **एक मेह एक मेह करता, बडेरा ही मर गया।**

एक मेह, एक मेह करते हुए पूर्वज ही चल बसे। राजस्थान मे वर्षा कहाँ !

(३) **राजा मान्या तो मानवी, मेवां मानी धरती।**

राजा जिनको मानते है, जिनका सम्मान करते हैं, वे ही मानव है और वर्षा की जिस पर कृपा है, वही वस्तुतः धरती है।

(४) **मोरिया तो मेहू मेहू करै, पण बरसणू तो इन्दर कै हाथ है।**

मयूर तो वर्षा की रट लगाये हुए है किन्तु मेह बरसाना तो इन्द्र के हाथ है।

(५) **मेहा तो त्यां बरससी, ज्यां राजी होसी राम।**

वर्षा तो वहाँ होगी, जहाँ भगवान् की कृपा होगी।

(६) **मेवां की माया, बिरखां की छाया।**

वृक्षो की छाया की भाँति सब वर्षा की ही माया है।

निम्नलिखित कहावत में तो उक्ति अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई है—

(७) **सौ सांढीया सौ करहलां, पूत निपूती होय।**
मेवड़ला बूठा भला, होणी होय सो होय॥

यदि वर्षा के कारण सौ ऊँट और ऊँटनियाँ नष्ट हो जायँ, माता के सब पुत्र भी चल बसे तब भी वर्षा का तो स्वागत ही करना चाहिए, जो होना हो वह हो।

इस प्रकार की कहावतें राजस्थान की ठेठ कहावते है। रेगिस्तान के अतिरिक्त अन्य किसी प्रदेश मे ऐसी कहावतो का जन्म नही हो सकता था।

राजस्थान मे जब वर्षा का आगमन होता है तो कितने हर्ष और उल्लास से उसका स्वागत किया जाता है, यह इस प्रदेश के निवासी ही जानते हे। यहाँ का लोक-साहित्य भी वर्षा की रगरलियो और उमगो से भरपूर है।

८. अन्य ऋतुओं-सम्बन्धी कहावते

वर्षा-ऋतु राजस्थान की सबसे पुरानी ऋतु है तथा यहाँ कृषि भी वर्षा पर ही निर्भर है। इसलिए इस प्रदेश मे वर्षा-सम्बन्धी कहावतो की प्रचुरता है किन्तु अन्य ऋतुओ से सम्बन्ध रखने वाली कहावते भी यहाँ उपलब्ध है। यथा,

१. **धान का का तेरा, मकर पचीस, जाड़ा दिन दो कम चालीस।**

अर्थात् १३ दिन धन सक्रान्ति के और २५ दिन मकर के, इस प्रकार दो कम चालीस अर्थात् ३८ दिन तक जाडा पडता है।

२ **गरमी गरीब की, र स्याल़ो साहूकारां को।**

अर्थात् ग्रीष्म ऋतु गरीबो की और और जाडा साहूकारो का होता है। निर्धन व्यक्ति वस्त्रो के अभाव मे भी गर्मी के दिन सुगमता से बिता देते हैं किन्तु जाड़े में उन्हें मुश्किल पडती है। जाड़े में धनी लोग ऊनी वस्त्रो के प्रचुर प्रयोग तथा पौष्टिक खान-पान द्वारा आनन्द मनाते हैं।

३. **पोस अर खालड़ी खोस।**

अर्थात् पौष मास में इतनी सर्दी पड़ती है कि उससे चमड़ा खिंच जाता है।

४. **आधे माह कांधे कामल् बाह।**

अर्थात् आधा माघ बीत जाने पर जाड़ा कम होने लगता है, अतः कम्बल कन्धे पर ही पडी रहती है।

५. **सावण सूतां साथरी, माह अखरोड़ी खाट।**
आपू ही मर जावसी, जेठ चलंतां बाट॥ [1]

अर्थात् श्रावण में कोरे आँगन पर तथा माघ मे बिना बिछौने की खाट पर सोने वाले और ज्येष्ठ की गर्मी मे चलने वाले अपने आप ही मर जाते है।

६. प्रकीर्ण कहावतें

(१) पशु-पक्षी सम्बन्धी

ऊँट

राजस्थानी भाषा की पशु-सम्बन्धी कहावतो में ऊँट के विषय में सबसे अधिक कहावतें मिलती हैं और यह स्वाभाविक भी है क्योंकि ऊँट रेगिस्तान के जहाज के रूप मे सर्वत्र प्रसिद्ध है। ऊँट धरती का करीत और घर की शोभा समझा जाता है। उसका मस्तक नगाड़े जैसा तथा उसके कान रस्सी की तरह छोटे होते है। वह जगल का सन्यासी होता है। सूखे डठल और कँटीली झाडियो को खाकर ही किसी तरह अपना गुजारा कर लेता है।[2]

ऊँट जब ६ वर्ष का होता है तो उसके दाँत निकल आते है जिन्हे "**नेस**" कहते हैं। दस वर्ष का होने पर उसकी पूँछ के बाल सफेद हो जाते हैं जैसा कि राजस्थान की एक कहावत "**नो नेसां, दस केसां**" से प्रकट है। दाँतो की सख्या से पशुओ की अवस्था का अनुमान पाणिनि के युग में भी लगाया जाता था।[3]

जिसकी टाँगे छोटी हो और जिसके "**नेस**" निकल आये हों, ऐसा ऊँट बड़ी लम्बी मजिले पार कर सकता है। इस प्रकार के ऊँट पर जो सवारी करता है, उसे प्रातःकाल से लेकर सायँकाल तक ऊँट की पीठ से उतरने की आवश्यकता नही। ऐसा ऊँट कभी धोखा नही देता, वह बराबर धरती को चीरता हुआ चला जाता है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित कहावती पद्य उल्लेखनीय है—

"ओछी गोडी, नेस कड, बहै उलालां बग्ग।
बो ओठी बो करहलो, आथण होय अलग्ग॥"

---

१. मेवाड़ की कहावतें, भाग १ (ले० पं० लक्ष्मीलाल जोशी, पृ० १८६)।

२. माथा टामक जेहड़ा, काम रतीक रतीह।
दे नादावत भीमडा, जंगल तणा जतीह॥
माथा टामक जेहड़ा, बाहू डंड प्रचण्ड।
दे नादावत भीमड़ा, धर करवत घर मण्ड॥
—राजस्थान के सांस्कृतिक उपाख्यान; पृष्ठ ७६-८०.

3. India as known to Panini by Dr. V. S. Agrawala, p. 222.

ऊँट की तेज चाल को "ढाण" कहते हैं। चढते ही ऊँट को बडी तेज़ी से नही दौड़ाना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से कुछ दूर तेज चलकर वह शिथिल पड़ जाता है।[1]

कंकेड़े (एक कँटीला वृक्ष-विशेष) को ऊँट बड़े चाव से खाता है।[2] फिटकरी देते समय भी ऊँट अर्राता है और गुड देते समय भी।[3] जब उस पर कोई सामान लादा जाता है अथवा कोई सवारी करता है तब भी वह अर्राकर अपना क्षोभ प्रकट करता है किन्तु उसके अर्राने पर कोई ध्यान नहीं देता।[4]

प्रसिद्ध है कि ऊँट जब मरता है तो अपनी जन्मभूमि को याद कर मारवाड़ की ओर देखता है। "ऊँट मरै जद मारवाड़ सामो जोवै।"[5]

राजस्थान में प्रवाद प्रचलित है कि पाबू जी ऊँटो को लका से लाये थे, इसलिए "ऊँट मरै जद लका कानी" यह उक्ति भी कभी-कभी सुनने में आती है।

राजस्थान के प्रसिद्ध लोक-काव्य "ढोला मारू रा दूहा" में ऊँट का बड़ा स्वाभाविक वर्णन हुआ है जिसमे से एक दोहा यहाँ दिया जा रहा है—

दूजा दोवड़ चोवड़ा, ऊटकटालउ खाण।
जिण मुखि नागरबेलियां, सो करहउ केकांण ॥३०६॥

अर्थात् दोहरे-चौहरे शरीरधारी, काँटेदार घास को चरने वाले ऊँट साधारणतः बहुत मिलते है परन्तु जो नागरबेलि के पत्तो को चरने वाला उत्तम जाति का ऊँट होता है, वही ऊँटो मे शिरोमणि गिना जाता है।[6]

घोड़ा

राजस्थान के एक कहावती दोहे मे कहा गया है कि जिसने तेज़ चलने वाले घोड़े की सवारी का आनन्द नही उठाया, उसका जन्म व्यर्थ ही गया। इसी प्रकार एक दूसरे दोहे मे घोड़े की पीठ को 'स्वर्ग की निशानी' बतलाया गया है।

१. **तीखा तुरी न माणिया, भड़ सिर खग्ग न भग्ग।**
जलम अकारथ ही गयो, गौरी गल न लग्ग॥

२. **चौथी पीठ तुरंग री, सुरग निशानी च्यार।**

---

१. ऊँट नै उठता ही ढाण नहीं घालणो।
२. काणो ऊँट कंकेडा कानी देखै।
मिलाइये—प्रवीक्षते केलिवनं प्रविष्टः क्रमेलकः कण्टकजालमेव।
३. ऊँट फिटकडी दियां ही अरलावै, गुड़ दियां ही अरलावै।
४. ऊँट तो अरड़ावता ही लादीजै।
५. मिलाइये—
ऊँट मरे त्यारे मारवाड सामुं जुए। (गुजराती कहावत)।
ऊँट बउराला तो पछिमे जाला। (भोजपुरी कहावत)।
पाठान्तर—
"ऊँट मरै जद पूंगल कानी।"
६. ढोला मारू रा दूहा (भूमिका), पृष्ठ ७८।

भारतीय इतिहास, भारतीय राजाओ और भारतीय परम्पराओं से परिचय रखने वाला प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि भारतीय सम्राटो के उत्थान व पतन में घोडो का कितना महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। श्रीकृष्ण ने कौरवों की सहायता के लिए जो अक्षौहिणी सेना दी थी, उसमें घोडों का प्रमुख स्थान था। ऐतिहासिक युग में घुडसवार-सेना का सर्वोत्तम सगठन मौर्य-साम्राज्य में हो सका था। राजा पुरु से सिकन्दर का जो युद्ध हुआ, उसमें सिकन्दर को अपनी घुडसवार-सेना से बडी सहायता मिली थी। हूणो की विजय का बहुत कुछ श्रेय भी उनकी अश्वारोही सेनाओ को था। राजपूत-युग में तो घोडों ने जो चमत्कार दिखलाया, उसकी गाथाएँ देश के बच्चे-बच्चे की जबान पर हैं। हल्दीघाटी का युद्ध और महाराणा प्रताप का चेतक देश के इतिहास में अमर हैं। घोडो के इस ऐतिहासिक महत्त्व के कारण ही 'घोडां राज' जैसी कहावत राजस्थान में प्रचलित हुई होगी, यद्यपि आज के वैज्ञानिक युग में युद्ध-पद्धति मे परिवर्तन हो जाने के कारण घोडो का वह महत्त्व नही रह गया।

किन्तु जिस प्रकार खिलाडी ही खेल खेलना जानता है, उसी प्रकार घोड़े का उचित उपयोग सवार ही कर सकता है।[1] घोड़े की पकड़ के सम्बन्ध मे भी निम्नलिखित कहावत प्रसिद्ध है—

"घोड़ो मर्द मकोड़ो, पकड्यां पाछै छोड़ै थोड़ो।"

आकृति-प्रकृति मे पुरुष मातृ-कुल का अनुसरण करता है और घोड़ा पितृकुल का, जैसा कि निम्नलिखित कहावतो से स्पष्ट है—

(१) **नर नानेरै, घोड़ो दावेरै।**

(२) **मा पर पूत पिता पर घोड़ो, घणो नहीं तो थोड़म थोड़ो।**

अन्य पशु

बैल जब खरीदा जाता है तो उसके दाँतो की संख्या से उसकी अवस्था की परीक्षा की जाती है।[2] बैल हमेशा बन्धन में रहता है।[3] आलसी बैल या तो चलता नही, अगर चलता है तो सात गाँवो तक को पार कर जाता है।[4] जो बैल नया-नया लाया जाता है, वह खूँटा तोड़ता है।[5] खेती तो वास्तव में बैलो से ही होती है।[6]

परवशता, आत्म-समर्पण तथा दया आदि के प्रतीक के रूप में 'गाय' शब्द का प्रयोग होता है। दूध न देने वाली गाय अपने बछड़े से अधिक प्रेम दिखलाती है किन्तु यह प्रेम गाय के मालिक को नही सुहाता।[7] इस प्रकार की गाय हमेशा दुःखद होती

---

१. खेल खिलाड्यां का, घोडां असवारां का।

२. देखिये—
मालवी कहावतें भाग १, (श्री रतनलाल महता), पृष्ठ ३६।

३. बलद जूडो कोनी गे यो।

४. कै तो पैल बलद चालै कोनी र चालै तो सात गावां की सीव फोडै।

५. नयो बलद खूंटो तोडै।

६. बलदां खेती।

७. काटर कै हेज घणो (ठांगर कै हेज घणो)

है।[1] दूध वाली गाय की तो लात भी अच्छी लगती है किन्तु बिना दूध वाली को कोई नही पूछता।[2] जिस गाय को हरे घास की चाट लग जाती है, वह चरती-चरती दूर निकल जाती है।[3]

दूध आदि के लिए तो भैंस ही रखनी चाहिए चाहे वह सेर दूध ही क्यों न दे।[4] भैंस अपना रग तो नही देखती किन्तु छाते को देखकर चौंकती है।[5] भैंस के आगे बाँसुरी बजाना व्यर्थ है।[6] जूते मे काँटा जिस प्रकार कष्टदायक होता है, उसी प्रकार प्रथम बार ब्याही हुई भैंस भी दुःखदायक होती है।[7]

भैंसे से अधिक काम लिया जाता है, इसलिए उसका भगवान ही मालिक है।[8]

बकरी दूध तो देती है लेकिन मेगनी करके।[9] प्रसिद्ध है कि गूगा जाटी अर्थात् भाद्र कृष्णा नवमी के बाद बकरियाँ दूध देना बन्द कर देती है—

"आयी गूगा जांटी, बकरी दूदां नाटी।"

बकरे की माँ कब तक कुसल मनावे ?[10] उसकी तो कभी-न-कभी बलि दे दी जायगी। शनिवार को पाडे, बकरे आदि की बलि दी जाती है। बकरे की माँ कितने शनिवार टाल सकेगी ?[11]

सिंहं नैव गज नैव, व्याघ्रं नैव च नैव च।
अजापुत्रं बलिं दत्ते दैवो दुर्बलघातकः॥

एक भेड़ जब कुएँ मे गिरती है तब सभी साथ जा पड़ती हैं।[12] यही भेड़िया-धसान है।

कुत्तो की लड़ाई प्रसिद्ध है। यदि उनमे मेल हो तो वे गंगा जी स्नान करके आ जायँ।[13] कुत्ते की पूँछ १२ वर्षों तक दबी रही किन्तु जब निकली तभी टेढ़ी।[14]

बिल्ली तो हमेशा चूहो को मारती रहती है, इसलिए उससे कभी कोई भलाई का काम नही होता।

---

१. कै मारै सीरी को काम, कै मारै काटर को जाम।
२. धीणोडी कै सागै हीणोडी मारी जाय।
३. चूंटी लागी गाय, बावडै तो बावडै नहि आधी नीकल जाय।
४. धीणूं भैंस को, हो भांवै सेर हीं।
५. भैंस आपको रंग तो देखै ना, छत्तै नै देख कर बिदकै।
पाठान्तर : भैंस बोरो देख 'र चमकै।
६. भैंस आगै बांसरी बजाई गोबर को इनाम।
७. भैंस्या में लाटी ने पगरखी में कांटी।
८. पाडै को अर पराई जाई को राम बेली।
९. बकरी दूद तो दे पण दे मीगणी करके।
१०. बकरे की मा कद तांई खैर मनावै।
११. बकरा की मा के थावर टालही।
१२. एक मेड कुवै में पडै तो सै जा पडै।
१३. कुत्तां रे संप होवै तो गंगा जी नहायि आवै।
१४. कुत्ते की पूँछ बारा बरस दबी रही पण जद निकली जद ही टेढी।

"बिल्ली नै मंगल गावतां देख्या कोनी।"

एक कहावत में बतलाया गया है कि काम करने के लिए जाते समय बिल्ली की भाँति चुपचाप तथा सावधानीपूर्वक जाना चाहिए और काम करके आते समय कुत्ते की भाँति जल्दी से आ जाना चाहिए।

"मिन्नी री चाल जावणों, कुत्ते री चाल आवणों।"

गधा मूर्खता का प्रतीक समझा जाता है। लाख साबुन से धोने पर भी वह घोड़ा नही बन सकता। कूड़े के ढेर पर लोटना उसको अच्छा लगता है। ज्येष्ठ के महीने में उसके मस्ती चढ़ती है।[1]

शृगाल की जब मौत आती है तब वह गाँव की तरफ़ भगता है।[2] गीदड़ और लोमड़ी के सम्बन्ध में निम्नलिखित कहावत राजस्थान में अत्यन्त प्रसिद्ध है—

गादड़ मारी पालखी, मे धड़ूक्यां हालसी।
लूगां चढ़गी बाँस, उतरै चोथै मास॥

अर्थात् पलत्थी मार कर गीदड बैठ गया है, बादल गरजने पर ही वह हिलेगा। लोमडी बाँस पर चढ गई है, वह चौथे महीने नीचे उतरेगी। इस कहावत के मूल में गीदड और लोमडी की प्रसिद्ध लोक-कथा है।

पक्षियों-सम्बन्धी

पक्षियों के सम्बन्ध में अपेक्षाकृत कम सख्या मे कहावते उपलब्ध होती है। कुछ कहावते नमूने के तौर पर यहाँ दी जा रही हैं—

१. काग पढ़ायो पींजरो, पढग्यो च्यारूं वेद।
समझायो समझै नहीं, रह्यो ढेढ को ढेढ॥

अर्थात् कौवा यदि चारों वेद पढ जाय तब भी उसमे समझ नही आती।

२. कागा किसका धन हड़े, कोयल किसकूं देय।
जीवड़ल्यां के कारणै, जग अपणो कर लेय॥

अर्थात् कौवा किसका धन हरण करता है और कोयल किसको देती है? मधुर वाणी के कारण ही कोयल सब का मन हर लेती है।

३. कबूतर नै कुवो ही दीखै।

कबूतर को कुआँ ही दिखाई देता है।

४. कमेड़ी बाज नै कोनी जीतै।

पंडुकी बाज को नही जीत सकती।

"पखेरुवां में काग" कहकर कौवे को सब पक्षियों में चालाक बतलाया गया है।

राजस्थानी भाषा में ऐसी भी अनेक कहावते हैं जिनमें पक्षियों की चेष्टाओं द्वारा वर्षा-विषयक तथ्यों को प्रकट किया गया है। ऐसी कहावतों का उल्लेख वर्षा-सम्बन्धी कहावतो के प्रसग मे किया गया है।

(२) क्षुद्र-जन्तु सम्बन्धी

क्षुद्र जन्तुओं मे पतंजलि ने नकुल, गोधा, सर्प, भ्रमर, चीटी आदि का समावेश

---

१. गधेड़ै कै जेठ में धूदी चढै।
२. गादड़ा की मौत आवै जणा गाँव कानी भाजै।

क्या है।[1] राजस्थान में जहां "बिस्वे बिस्वे पर सर्प" बतलाये जाते हैं, क्षुद्र-जन्तुओं से सर्प के सम्बन्ध में सबसे अधिक कहावते मिलती हैं। उदाहरणार्थ कुछ कहावते ोजिये—

(१) साँप चालती मौत है।
(२) सांप रै खायोड़ै नी अतीतवार कद आवै ?
(३) साँपां कै मांवसियां को के साख ?
(४) सांप को खायोड़ो बीछयां सै के डरै ?
(५) सांप सगलं टेढो मेढो चालै पण बिल में बड़ै जद सीधो हो ज्याय।
(६) सांप सलीट्या सदा ई देख्या इजगर बाबो अबकै।
(७) सांप कै चीखलै को के बडो अर के छोटो ?
(८) सांपां का ब्या में जीभां की लपालप।
(९) सांप रो सोवै, बिच्छू रो रोवै।
(१०) सांप की रांव झाड़ूलो काटै।
(११) बिरड़िये को गारड़ कोनी।

अर्थात् साँप चलती हुई मौत है। झाड-फूँक कर इलाज करने वाले रविवार ो दिन साँप के काटे का इलाज करते है किन्तु जिसे साँप काट खाय, उसका तो तुरत ुरत इलाज होना चाहिए। इतवार तक वह प्रतीक्षा कैसे करे ? साँपो मे मौसी का ोई सम्बन्ध नही होता। जिसे एक बार साँप ने काट लिया है, वह बिच्छुओं के ाटने से फिर नही डरता। साँप सब जगह टेढा-मेढा चलता है किन्तु अपने बिल मे ावेश करते समय सीधा हो जाता है। छोटे-मोटे साँप तो अब तक बहुत देखे थे किन्तु ाजगर बाबा तो अभी देखने को मिला। साँप के बच्चे का क्या छोटा और क्या बडा ? ाँपो के विवाह मे केवल जीभो की लपालप होती है। साँप का काटा हुआ सोता है ौर बिच्छू का काटा हुआ रोता है। गारुडी ही साँप का इलाज करता है किन्तु बिर डिये सर्प का उपचार उसके पास भी नही। बिरडिया एक छोटा बिलाद (स० वितस्ति) ा बराबर जहरीला सर्प होता है। यह "कुम्हारिया साँप" भी कहलाता है।

कुछ कहावतो मे गोह (गोधा), साँडा, छिपकली आदि का भी उल्लेख हुआ ै। जैसे,

(१) गोह की मौत आवै जरां ढेढ रा खालड़ा खड़बड़ावै।
गोह की मौत आती है तब वह चमार के चमडों को खडखडाती है।
(२) गोह चाली गूगै नै, सांडो बोल्यो मेरी भी जात है।

गोह गूगे की जात देने के लिए चली तो साँडे ने कहा कि मुझे भी "जात" देनी है।

साँडा छिपकली की जाति का, पर आकार में उससे कुछ बड़ा एक प्रकार का जंगली जन्तु होता है।

---

1. India as known to Panini by Dr. V. S. Agrawala. p. 221 222.

(३) सूधी छिपकली चुग चुग जिनावर खाय।

ऊपर से सीधी दिखलाई पडने वाली छिपकली चुन-चुनकर छोटे-छोटे कीड़ों को खा जाती है।

क्षुद्र कीटो से सम्बन्ध रखने वाली कहावतों के भी उदाहरण लीजिये—

(१) आसी चाँदा छठ, कातर मरसी पट।

भाद्र कृष्णा षष्ठी के बाद कातरे नष्ट हो जाते है।

(२) भेभल राणी चोरटी, रातों सिट्टा तोड़ती।

"भेभल" एक पखो वाला छोटा कीट होता है जो आश्विन के महीने में फसल को नुकसान पहुँचाता है।

(३) पेड़-पौधों-सम्बन्धी

राजस्थान में पेड़-पौधो-सम्बन्धी बहुत-सी कहावतों की आशा नही की जा सकती। फिर भी इस प्रकार की कहावतो का यहाँ अभाव नही है। यथा,

(१) कैर को ठूँठ टूट ज्यागो, लुलंगो नहीं।

करील की लकडी टूट भले ही जाय पर झुक नही सकती।

(२) गाँव गाँव खेजड़ी।

राजस्थान के गाँव-गाँव मे शमी का वृक्ष मिलता है।

(३) रूप का रूड़ा रोहीड़े का फूल।

रोहीडे के फूल देखने मे ही सुन्दर होते है।

(४) भाँखड़ी का काँटा को आगड़ा तांई जोर।

भाँखडी से तात्पर्य छोटे गोखरू (गोक्षुरक) से है। भाँखडी का काँटा अपने उद्गम-स्थान तक ही शरीर के अन्दर चुभ सकता है अर्थात् वह बहुत छोटा होता है।

(५) अंवल अंवल मेवाड़।
बंबूल बबूल मारवाड़॥

अर्थात् अवल द्वारा मेवाड़ तथा बबूल द्वारा मारवाड की सीमा निर्धारित होती है। अंवल एक पीले फूलो वाले झाड-विशेष का नाम है और बबूल एक सुपरिचित काँटेदार वृक्ष-विशेष है।

(४) आशीर्वादात्मक

कुछ कहावते आशीर्वादात्मक होती है। **"सौली हो, सपूती हो, सात पूत की मा हो, बूड सुहागण हो, दूदां न्हाओ, पूतां फलो"** जैसे कहावती वाक्य इसी वर्ग के अन्तर्गत समझिये। इस प्रकार की आशीर्वादात्मक लोकोक्तियाँ विश्व की प्रायः सभी भाषाओ में मिलती हैं। कश्मीर की एक इसी प्रकार की कहावत में कहा गया है कि अगर तुम जमीन खोदो तो वह तुम्हारे लिए सोना बन जाय।

(५) खेल-सम्बन्धी

राजस्थानी भाषा में ऐसी भी अनेक कहावतें हैं जिनका सम्बन्ध खेलों से है। खेल-सम्बन्धी कुछ लोकोक्तियाँ लीजिये—

(१) देखो राजा भोज नै, कूण जिनावर खाय।
सरण वरण की ठीकरी, सरणाटा करती जाय॥

ठेकरी (घड़े के खंडित टुकड़े) फेकने के खेल मे लड़के उमग में भरकर इन पंक्तियों को दोहराया करते हैं।

(२) अगड़ बुहार जीजी बगड़ बुहार, तूंबी पटकूं तेरे द्वार।
अगड़ बगड़ में पड़्या जजीर, कोइ ल्यो तुक्को, कोइ ल्यो तीर॥

(३) क—मे बाबो आयो सिट्टा फली ल्यायो।
ख—आयो बाबो परदेसी, घणा जमाना कर देसी।
ग—ढकणी में ढेकलो, मेह बरसै मोकलो।
घ—मेह मामो आयो, मंगल गीत गवायो।
ङ—डोकरिया कै डरूं डरूं, खाली कोठा भरूं भरूं।

वर्षा-ऋतु में अत्यन्त हर्षित होकर खेल खेलते हुए बच्चे इन उक्तियो का प्रयोग करते हुए देखे जाते है।

ऊपर की पंक्तियो में मेह को बाबा के रूप मे कल्पित कर लिया गया है। इस प्रकार के सम्बन्ध-स्थापन से एक प्रकार की आत्मीयता आ जाती है।

(६) वार्त्ता-सम्बन्धी

कुछ ऐसी उक्तियाँ भी राजस्थान मे कहावत की भाँति प्रचलित है जिनका प्रयोग लोग बातचीत अथवा कथा कहने में करते हैं। उदाहरणार्थ—

(१) बात केतां बार लागे, हुंकारे बात प्यारी लागे।
अर्थात् बात कहने में देर लगती है, 'हुँकारा' देने से बात प्रिय लगती है।

(२) बात में 'हुँकारो', फोज में नगारो।
फौज में जैसे नगारा, उसी तरह बात में 'हुँकारा' वाछनीय है।

(३) जियै बात को कैणहार, जियै हुंकारा को देवणहार।
बात का कहने वाला चिरजीवी हो और चिरजीवी हो 'हुँकारा' देने वाला।

(४) बात जसी झूठी नहीं अर साकर जसी मीठी नहीं।
अर्थात् बात जैसी कोई वस्तु झूठी नही और शक्कर जैसी मीठी नही।

(५) रामजी भला दिन दें।
भगवान् भले दिन दे।

वार्त्ता के प्रारम्भ में निम्नलिखित कहावती दोहे का प्रयोग किया जाता है—

सदा भवानी दाहणी, सनमुख होय गणेश।
पंच देव रिच्छा करे, ब्रह्मा विष्णु महेश॥

आशीर्वाद, खेल, वार्त्ता आदि के सम्बन्ध मे जो कहावतें ऊपर दी गई है, उनको बहुत से विद्वान् अर्थतः कहावते स्वीकार नही करते। इस प्रकार के वाक्य बहुप्रचलित होकर रूढ़ हो गये है किन्तु फिर भी इन्हे कहावत के महत्त्वपूर्ण पद पर आसीन नहीं

किया जा सकता।[1]

(७) हास्य और व्यंग्य-सम्बन्धी—

यथार्थ जगत् से सम्बद्ध होने के कारण प्रायः सभी भाषाओं की कहावतों में हास्य और व्यग्य की मात्रा किसी न किसी रूप मे अवश्य मिलती है। राजस्थानी भाषा की कहावतों में भी स्थान-स्थान पर हास्य और व्यग्य का प्रयोग हुआ है। कुछ उदाहरण लीजिये—

(क) हास्य

(१) ठाकराँ ठाडा किसाक ? कह—कमजोर का तो बैरी पड़्यां हाँ !

हे ठाकुर ! आप कितने पराक्रमी है ? उत्तर—कमजोर के तो पूरे शत्रु है।

(२) साधवाँ कै कसो सुवाद ? माई, अणबिलोयो ही आबा दे !

एक साधु किसी के घर छाछ माँगने गया। छाछ मथने वाली स्त्री ने कहा कि छाछ अभी मथी नही गई है। साधु ने कहा—बिना मथी हुई (मलाईयुक्त) ही आने दो, हम साधुओं को स्वाद से क्या मतलब ?

(३) सोनार थोड़ो सोनो दीजें। के सोनो माँग्यो थोड़ो ई मलै तो कै पड़ी जीभ कंइ करै !

किसी ने सुनार से थोडा सोना माँगा। सुनार ने उत्तर दिया कि सोना भी कही माँगे मिलता है ? तब उस माँगने वाले ने कहा—यह तो ठीक, किन्तु मेरी ठाली जीभ क्या करे ? इसे भी कुछ काम चाहिए।

(४) बाबाजी संख तो सुदियाँ बजायो कह—देव को ना देव का बाप को, टका नो काट्या है।

किसी ने कहा—बाबाजी ! आज तो शख सदा से जल्दी बजाया। बाबाजी ने उत्तर दिया—शख न तो देवता का है, न देवता के बाप का है, नौ टके देकर मैंने इसे खरीदा है, मैं जो चाहे सो करूँ !

राजस्थानी कहावतों में ठाकुर, चौधरी तथा बाबाजी को लेकर अनेक स्थानों पर हास्य की अच्छी सृष्टि की गई है।

(ख) व्यंग्य

हास्य की अपेक्षा भी इन कहावतों मे व्यग्य के अधिक उदाहरण मिलते है। यथा—

(१) कुराड़ा सूँ कपड़ा धोवै, र करतार मारी रक्षा करज्ये।

कुल्हाड़े से कपड़े धोता है और कहता है कि मैं करतार ! मेरा रक्षा करना।

(२) ऐरण की चोरी करै, करै सुई को दान।
चढ़ चौबारे देखसी, कद आवै वीमाण॥

निहाई जैसी बडी वस्तु की तो चोरी करता है और सुई जैसी तुच्छ वस्तु का

---

१. देखिये :
Introduction to Racial Proverbs by S. G. Champian. p. XIV.

दान करता है। तिस पर भी आप अपने को बड़ा भारी दानी समझते हैं और आशा करते है कि आप को लेने के लिए स्वर्ग से विमान आयेगा !

(३) **सारी रामायण सुणली पण यो बेरो कोन्या पड़्यो के राकस राम हो क रावण।**[1]

सारी रामायण सुन ली पर यह पता नही चला कि राक्षस राम था या रावण !

(४) **म्हारे सं आग ल्याई, नॉव धर्‌यो वैसुन्दर।**

हमारे यहाँ से आग माँग कर लाई और नाम रखा वैश्वानर !

(५) **आप गरूजी कातरा मारं चेलाँ नै परमोद सिखावं !**

स्वय गुरुजी तो कातरे मारते हैं और शिष्यो को उपदेश देते है। कातरा एक प्रकार का कीट होता है जो वर्षा-ऋतु मे पैदा होकर उसी ऋतु के अन्त में नष्ट हो जाता है।

प्रबन्ध मे स्थान-स्थान पर राजस्थानी कहावतो के हास्य और व्यग्य पर सकेत किया गया है। इसलिए अतिप्रसग के भय से यहाँ और उदाहरण नही दिये जा रहे हैं।

---

१. पाठान्तर—
"सगली रामायण सुण' र पूछी कै सीता कुण ही ?"

चतुर्थ अध्याय

उपसंहार

राजस्थानी कहावतों का भविष्य

यह अनुभव-सिद्ध बात है कि हमारे पूर्वज कहावतों का जितना प्रयोग करते थे, उतना हम नही करते। शहरों की अपेक्षा गाँवों में कहावतों का अधिक प्रचार है किन्तु अब गाँवों के भी बहुत से लोग शहरो की तरफ जाने लगे हैं। इसके अतिरिक्त गाँवों में भी अब क्रमशः बढ़ते हुए शिक्षा-प्रचार के कारण कहावतें अपेक्षाकृत कम सुनने में आ रही हैं।

ऐसी स्थिति मे नई कहावतो का बनना भी एक प्रकार से रुक-सा गया है। इसका अर्थ यह तो नही है कि इस जमाने में एक भी नई कहावत नही बनती, कुछ कहावतें तो नई बनती ही होंगी किन्तु वे प्रकाश मे उतनी नही आती। क्या हुआ, यदि कभी कोई नई कहावत सुनने को मिल गई किन्तु अधिकांश में पीढी-दर-पीढी हम लोग पुरानी कहावतों की ही आवृत्ति देखते आ रहे है।

नई कहावतें क्यों नहीं बनतीं ?

नई कहावतो का निर्माण आज क्यों नहीं होता ? इस प्रश्न पर विचार करना आवश्यक है। ऐसा जान पड़ता है कि आज शिक्षा के बहुविध प्रचार के कारण विचारों को अभिव्यक्त करने की भिन्न-भिन्न पद्धतियाँ हमारे सामने आ रही हैं और उन्हीं को लेकर शिक्षित व्यक्ति अपने विचार प्रकट कर रहे हैं। पुरानी कहावतो को याद रखने तथा नई कहावतो के निर्माण करने की उनको कोई आवश्यकता ही प्रतीत नही होती।

परिस्थितियों की भिन्नता के कारण हमारे जीवन के अनुभवो के मूल्य भी बदल रहे हैं। ऐसी स्थिति में कुछ कहावतें तो ऐसी हैं जो पुरानी पड रही है। उदाहरण के लिए कुछ राजस्थानी कहावतें लीजिये—

(१) **"ढलगो नामीनोरै तो क्यूँ हलियो टोरै"**—अर्थात् सारस्वत व्याकरण के **'नामिनोरः'** सूत्र तक जो अध्ययन कर चुका, उसे जीविकोपार्जन के लिए खेती करने की आवश्यकता नही होती किन्तु हम देखते है, सारस्वत व्याकरण तो दूर, सस्कृत के शास्त्री और व्याकरणाचार्यों को भी जीवन-सघर्ष के इस युग में जीविकोपार्जन के लिए बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा रहा है।

(२) **"हजारी बजारी"**—अर्थात् जो सहस्राधीश है, वह बाज़ार से चाहे जो चीज उधार खरीद सकता है, उसे कोई रोकने वाला नही। किन्तु आज हम देखते हैं कि जिसके पास केवल एक हजार रुपया है, उसकी इतनी साख कहाँ ? यह तो उस जमाने की बात है जब रुपये की क्रय-शक्ति बहुत थी, रुपये के अवमूल्यन से अब पहले जैसी स्थिति नही रह गई। इसलिए 'हजारी बजारी' जैसी लोकोक्तियाँ भी अब कहावत-विषयक संग्रहों की ही शोभा बढ़ा रही हैं।

(३) "राजाजी रे गुल री भींता"—अर्थात् राजा के यहाँ तो गुड़ की दीवारें होंगी। वह जब चाहता होगा, उनमें से गुड़ तोड-तोड कर खा लेता होगा। यह उस अबोध व्यक्ति की कही हुई उक्ति है जिसकी दृष्टि में गुड ही समस्त वैभव का प्रतीक और दुनिया की सर्वश्रेष्ठ वस्तु है, किन्तु इस प्रकार की कहावतें आज शिक्षित-वर्ग द्वारा उपहास की दृष्टि से देखी जा रही है।

अन्य विश्वासों से सम्बन्ध रखने वाली बहुत सी कहावतें भी ग्रामीण लोगों में बहुधा सुनाई पडती है जिनसे चिपटे रहना उनके स्वभाव में शामिल हो जाता है। कहावतो मे ऐसी अद्भुत शक्ति पाई जाती है कि वे प्रयोक्ताओं की ओर से अपने लिए आस्था और विश्वास के भाव उत्पन्न करा लेती है किन्तु जिस आस्था के मूल में अन्ध-विश्वास काम कर रहा हो, वह अनर्थ की ही जड सिद्ध हो सकता है। समय-परिवर्त्तन के साथ-साथ जहाँ परम्परागत रूढियों और रीति-रिवाजो में भी परिवर्त्तन होना चाहिए, वहाँ कहावतें कभी-कभी बाधक सिद्ध होती हैं। हमारे देश में स्वर्णिम अतीत के स्वप्न देखने की प्रथा-सी चल पडी है, वर्त्तमान परिस्थितियों के अनुरूप अपने जीवन को साँचे मे ढाल कर उज्ज्वल भविष्य की कल्पना करना हमें नही भाता। अतीत से प्रेरणा प्राप्त करना बुरा नही किन्तु इसका ध्यान रहना चाहिए कि अतीत हमारी उन्नति के मार्ग में रोडे न अटकाने पावे। कहावतो की आधार-शिला पर हमारी परम्परागत रूढियो के स्तूप चिरकाल तक प्रतिष्ठित रहते है। इस दृष्टि से कुछ कहावतो मे वह गतिशीलता नही मिलती जो पल-पल परिवर्त्तित और विकसित होते हुए जीवन का अनिवार्य अग है; कभी-कभी तो वे पुराण-पथी मनोवृत्ति का प्रतिनिधित्व करने लगती है जिसमे आधुनिक जीवन का स्पन्दन नही मिलता, इसलिए जो निश्चेष्टता, निर्जीवता अथवा जड़ता की प्रतीक मात्र रहकर लोक-जीवन के समुचित विकास में बाधा पहुँचाने लगती है। विचार-स्वातन्त्र्य की भावना को भी इस प्रकार की कहावते पनपने नही देती क्योकि अधिकतर कहावते आदेशात्मक हैं। वे व्यक्ति के कर्त्तव्य पर तो जोर देती है किन्तु व्यक्ति को समाज से भी कुछ विशेषाधिकार प्राप्त होने चाहिएँ, इस सम्बन्ध मे कोई उल्लेख वहाँ नही मिलता। वे एक प्रकार से नुसखा रख देती हैं, ऐसा नुसखा जो बाबा आदम के जमाने मे बना था। जीवन के प्रति नये दृष्टिकोण को वे ग्रहण नही करने देती, प्रतिभा को जीवन के नये-नये मार्गो की ओर वे उन्मुख नही करती। वातावरण की एकरूपता जड़ता का ही दूसरा नाम है। निष्क्रिय भाव से वातावरण को अपना लेना सजीवता का लक्षण नही है। कुछ व्यंग्यात्मक कहावते ऐसी होती है जिनमें व्यक्तिगत और सामाजिक बुराइयो की ओर कटाक्ष किया जाता है। बुराइयों की ओर ध्यान आकृष्ट करके ऐसी कहावते अवश्य हमारा सुधार करने मे सहायक होती है।

जो हो, कहावतों के विरुद्ध आधुनिक शिक्षित वर्ग की एक प्रतिक्रिया-सी आज दृष्टिगोचर हो रही है। ग्रामीण जीवन में परिवर्त्तन बहुत कम होता है, सभ्यता का आलोक भी वहाँ धीरे-धीरे पहुँचता है किन्तु नागरिक जीवन में नूतन विचारो का परस्पर आदान-प्रदान होता रहता है। नागरिक जीवन में बुद्धि की काट-छाँट और कतर-ब्योत बहुत चलती है, इसलिए विश्लेषण की प्रधानता होने के कारण कहावतें

वहाँ प्रायः नही सुनाई पडती। दार्शनिक ग्रन्थो में भी जहाँ विचार-विश्लेषण की प्रमुखता रहती है, बाल की खाल निकाली जाती है, कहावतो का प्रयोग नहीं के बराबर होता है।

किन्तु आज कल लोकोक्तियों के निर्माण न होने का सबसे बड़ा कारण तो शायद यह है कि आधुनिक युग का मनुष्य जीवन के सत्यो के प्रति बड़ा संशयालु हो गया है। इस सशयालुता में उसे अपनी ज्ञान-गरिमा के भी दर्शन होते है। सामाजिक गोष्ठियो मे भी विदग्धतापूर्ण वाक्य मौके बे मौके कहे जाते है। श्रोतागण उन वाक्यो को सुनकर आनन्द उठाते है, थोड़ी देर के लिए उनका मनोरजन हो जाता है। वाक्यों पर काट-छाँट भी चलती है, भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणो से उन पर विचार भी कर लिया जाता है। सत्य आज अनेक रूपों मे अपने आपको प्रकट कर रहा है। विभिन्न विषयों पर विभिन्न दृष्टिकोणो से लिखी हुई इतनी पुस्तके आज दिखलाई पड रही है कि जिनको देखकर मनुष्य की बुद्धि हैरान है। इसलिए कोई तथ्य जब उपस्थित किया जाता है तो उसके अनेक अपवाद सहज ही निकल आते हैं, क्योकि एक ही तथ्य को विभिन्न दृष्टिकोणो से परखने के साधन आज उपलब्ध है और फिर विज्ञापन की कृपा से ज्ञान किसी एक स्थान पर सचित नही है। पुस्तको और शोध-पत्रिकाओ के मुक्त आदान-प्रदान द्वारा ज्ञान किसी एक देश अथवा जाति-विशेष का एकाधिकार नही रह गया है। पुस्तको में जीवन के अमोल अनुभव सुरक्षित है, इसलिए आधुनिक युग के मानव को कहावतो की उतनी आवश्यकता ही प्रतीत नही होती।

कोई युग ऐसा था जब लिखित पुस्तको और प्रेस के अभाव मे सूत्र-शैली का विशेष महत्त्व था और लोग ज्ञान के लिए तरसते थे किन्तु अब पुस्तको की बाढ-सी आ रही है। इतनी पुस्तके आज निकल रही है कि सामान्य पाठक के लिए यह भी मुश्किल हो रहा है कि वह किस पुस्तक को पढे और किसको न पढे ?

नई कहावतो के न बनने का एक मुख्य कारण यह भी हो सकता है कि आज उनके निर्माण के लिए कोई क्षेत्र ही नही रह गया है। अकेले यूरोप में तीस-चालीस हजार से कम कहावते न होगी। कहते है कि केवल स्पेन मे लगभग १५,००० कहावते होगी।[1] हिन्दुस्तान और एशिया को भी यदि सम्मिलित कर लिया जाय तो कहावतों की सख्या लाखो पर जा पहुँचेगी। इनमे जीवन के प्राय प्रत्येक क्षेत्र से सम्बद्ध कहावतें मिल जायँगी। गुण-दोष की कहावते, जातिगत विशेषताओ को प्रकट करने वाली कहावते, पेशे-सम्बन्धी कहावतें, नीति-बोधक कहावते, व्यवहारोपयोगी कहावते, अग-उपागो की त्रुटियाँ प्रकट करने वाली कहावते, निर्धन और रङ्क-विषयक कहावते, पुरुषार्थ और प्रारब्ध-सम्बन्धी कहावते, वशानुगत सस्कारो की प्रबलता प्रकट करने वाली कहावते, स्वभाव-सम्बन्धी कहावते, ऋतु, नक्षत्र तथा त्यौहार-विषयक कहावते, स्त्री-चरित्र तथा स्त्री-विषयक कहावते, पुरुषो तथा स्त्रियो के नामो-सम्बन्धी कहावत, परमेश्वर की कृपा तथा उसकी शक्ति का परिचय देने वाली कहावतें, बनी बनाई मिल जाती हैं

---

१. किसी किसी ने अकेले स्पेन की कहावतो की संख्या करीब २५-३० हजार मानी है। देखिये—Lessons in Proverbs by R. C. Trench, p. 51–52.

जिससे नवीन कहावतों के निर्माण का कोई अवकाश ही नही रह जाता।[1]

विश्व का लोकोक्ति-साहित्य भी कम नही है। सन् १९३० में Wilfrid Bonser ने "Bibliography of Works Relating to Proverbs" नामक एक पुस्तक प्रकाशित की थी जिसमे कहावतो-सम्बन्धी ४००४ पुस्तको का उल्लेख है। सन् १९३० के बाद भी अनेक पुस्तकें छपी होगी, Bonser से अनेक पुस्तको के नाम छूट भी गये होंगे। फिर भी कुल मिलाकर विश्व का कहावती साहित्य ६,००० पुस्तको से तो किसी हालत में कम न होगा।

हमारा कर्तव्य—कहावते चाहे आज न बन पा रही हो और चाहे शिक्षितो के एक वर्ग की कहावतो के विरुद्ध प्रतिक्रिया भी हो रही हो किन्तु फिर भी मानव-विज्ञान और लोकवार्त्ता-शास्त्र का जब से वैज्ञानिक अध्ययन होने लगा है तब से कहावतो के अध्ययन का भी महत्त्व बढ़ा है। राजस्थानी भाषा में भी, जैसा ग्रन्थ के प्रारम्भ में कहा गया है, कहावतो के अनेक सग्रह प्रकाशित हुए है किन्तु उन सग्रहो मे सब कहावते आ गई है, ऐसा किसी भी हालत मे नही कहा जा सकता। कहावतो के सग्रह को पूरा कर लेना वास्तव मे किसी एक व्यक्ति का काम नही, इसके लिए अनेक दिशाओं में सामूहिक प्रयत्न किये जाने चाहिएँ। "प्रबोध बत्रीशी" का उपसहार करते हुए गुजराती भाषा के प्रसिद्ध कवि माडण ने यथार्थ ही कहा था—

"अवनी रही उखाणा भरी, ते किम सकाइ पूरी करी ?
इम करतां जे जे सांभर्या, ते ते ग्रन्थ मांहि विस्तरा।"[2]

यह पृथ्वी ही कहावतो से भरी है; जहाँ से खोदिये, कहावते निकल पडेंगी। किन्तु यदि कहावते सगृहीत न हुई तो आज के युग में उनके विलुप्त हो जाने का भय है। राजस्थान के बड़े-बूढो के मुख मे विशेष कहावते सुनने को मिलती है, कहावतो का अर्थ और प्रयोग भी वे भली भाँति समझते हैं। हो सकता है, सग्रह के अभाव में उनके साथ ही वे कहावते भी समाप्त हो जायँ। इसलिए राजस्थानी भाषा की जितनी कहावते मिल सके, उन सबका सग्रह किया जाना चाहिए। सगृहीत कहावते वैज्ञानिक पद्धति पर वर्गीकृत की जाकर प्रकाशित होनी चाहिए। वर्तमान में उपलब्ध सामग्री के आधार पर राजस्थानी कहावतो का जो अध्ययन मैंने किया है, आशा है, इस क्षेत्र मे आगे काम करने वालो के लिए यह किसी अश मे उपयोगी सिद्ध हो सकेगा।

---

१. देखिये—चवराकियानु तत्त्वदर्शन (फिरोजशाह रुस्तमजी महेता); पृष्ठ २०४–२०५।
२. कवि मांडणकृत प्रबोध बत्रीशी, फार्बस गुजराती सभा द्वारा प्रकाशित; पृष्ठ ७६।

परिशिष्ट १

"अधूरा पूरा" तथा कहावती पद्य

"अधूरा पूरा" तथा असंख्य कहावती पद्य राजस्थान में प्रचलित हैं जिनमें से प्रमुख यहाँ दिये जा रहे हैं। "अधूरा पूरा" के स्वरूप के विषय में प्रबन्ध में यथास्थान विचार प्रकट किये जा चुके हैं।

अ

१. अकल सरीरां ऊपजै, विदी न आवै सीख।
अणमांग्या मोती मिलै, मांगी मिलै न भीख॥
२. अणबोल्यो थो लाख को, बोलि अर पाकी बाट।
तीनूं म्होर गमाय कै, अन्त जाट को जाट॥

आ

३. आ ए धानी घर करां, पड़ै दुनी सै सीर।
तेरा मरगा बादस्या, मेरा मर्‌या वजीर॥
४. आड़ तरन्ती देख कर, तू क्यूं तरियो करग।
होड पराई जे करै, तल मुंडी ऊपर पग॥
५. आदर बिन पिय उठ गयो, चली मनावण धाय।
घर आयो नाग न पूजियै, बांबी पूजण जाय॥
६. आधो रहग्यो ऊखली, आधो रहग्यो छाज।
सांगर साटै धण गई, मधरो मधरो गाज॥
७. आया सूं बोली नहीं, पिउ चाल्यो करि रोस।
आप कमाया कामड़ा, दई न दीजे दोस॥
८. आरत मीठी आपकी, घर में मांदो पूत।
सांवण छाछ न घालतै, जेठ में काचो दूध॥
९. आसोजां रा तावड़ा, जोगी होग्या जाट।
बामण होग्या रोवड़ा, बणिया होग्या भाट॥

ऊ

१०. ऊंची टोपी गुहिर गंभीर, एक भेड़ नै नव जण सीर।
तिण दाँधण नै नहीं को ठाम, सूधी चिड़ी कपूरी नाम॥
११. ऊंटां के अक्कल नहीं, अकल बिना का ऊत।
पगां उभाणा वै फिरै, क्यूं न करावै जूत॥
१२. ऊगे जिम दूणा अमल, लीजे खूब अठेल।
मर जाणी रा खेल में, घर जाणी रा खेल॥
१३. ऊजड़ खेड़ा फिर बसै, निरधनियां धन होय।
गयो न जोबन बावड़ै, मुआ न जीवै कोय॥

१४. ऊपर थाली नीचे थाली, माँय परोसी डोड सुहाली।
पुरसण वाली तेरा जणी, हांती थोड़ी हलहल घणी॥

ए

१५. एक गाडर सात जणां सीर, नित को नाइ रधावै खीर।
तिण खीर रो करो विचार, देखे तनें तीर की धार॥
१६. एक गाय नैं गोकल बासो, पड़ै धणी नैं नित को सॉसो।
वही दूध नैं बिलोय खाधो, ऊंगतड़ी बीछावण लाधो॥
१७. एक टटू ने चहु जण सीर, जा बांध्यो सागर के तीर।
समदर तीर नहीं छ जायगा, डोड घोड़ो डीडवाणैं पायगा॥
१८. एक तो बहू अर कूदणी, जोवन नन्दन छायो।
भागण कूदण नाचण लागी, ज्यूं बानर नैं बीछू खायो॥
१९. एक भेड़ सात रा सीर, नितरा जेठ रंधावै खीर।
रात्यूं रही खेचाताणी, खातां खाण न पीतां पांणी॥
२०. एक मोर पावे ही सारी, ता पर अब मे बात गुदारी।
अब तो कछू न आवै दाय, बासी बचै न कुत्ता खाय॥

ऐ

२१. ऐरण की चोरी करै, करै सुई को दान।
बार निकल कै देखसी, कद आवै बीमान॥
२२. ऐराकी रो पागडो, सापुरसॉ री बॉह।
बालो ठाकुर सेवियै, बलती लीजै छांह॥

क

२३. कँवरजी म्हैलां सै उतर्‌या, भोडल को भलको।
बतलायाँ बोलै नही, र बोलै तो डबको॥
२४. कईं नैं बेंगण बायला, कईं नैं बेंगण पच्च।
कई नैं चढ्ढै आफरो, कईं नैं चढ्ढै मच्च॥
२५. कड़वी बेल की कड़वी तूमड़ी, अड़सठ तीरथ न्हाई।
गंगा न्हाई गोमती न्हाई, मिटी नहीं कड़वाई॥
२६. कबहुँ न हँस कर कर गहे, रिस कर गहे न केस।
जैसा कंथा घर भला, वैसा ही परदेस॥
२७. करड़ी बाँधै पागड़ी, घुरड़ लिवावै नक्ख।
करड़ी पैरै मोचड़ी, अणसरज्या ही दुक्ख॥
२८. करम हीण को ना मिलै, भली बस्त रो भोग।
दाख पकै जद काग कै, होत कंठ में रोग॥
२९. कहणो तो राचे नहीं, रहणी राचे राम।
सपने री सौ मोहर सूँ, कोड़ी सरे न काम॥
३०. कांकर दोरी करहलाँ, थल दोरी तुरियाँह।
गाडी दोरी गिखराँ, सांझी नार नराँह॥

३१. कां गोरख कां भरथरी, कां गोपीचंद गोड़।
सिद्ध गया ही पूजिये, सिद्ध रह्यां री ठोड़॥
३२. काग पढ़ायो पींजरै, पढगो च्यारूं बेद।
समझायो समझ्यो नहीं, रह्यो ढेड को ढेड॥
३३. कागा लाख बिकाइया, कोठी लाख पंचाय।
बंधी भारी लाख की, खुल्ली बीखर ज्याय॥
३४. काच कथीर न सोहै मोती, ढेढ चमार न सोहै धोती।
दुसमण बात कहै अणहूती, जद तद खता खुवावै गोती॥
३५. काज सर्‌या दुख बीसर्‌या, बैरी होग्या बंद।
साजी तन साजा हुया, काढण लागा कंद॥
३६. का तो तिल कोरा भला, का लीजे तेल कढाय।
अध बिचली कूलर बुरी, तेल तिलां सूं जाय॥
३७. कारज किणही न आवसी, यास विहूणो गुल्ल।
रुप रूड़ो गुण बाहरो, रोहीड़ै रो फुल्ल॥
३८. कित कासी कित कासमिर, खुरासान गुजरात।
दाणो पाणी परसराम, बांह पकड़ ले जात॥
३९. किरपण कै दालद नहीं, ना सूरां कै सीस।
दातारां कै धन नहीं, ना कायर कै रीस।
४०. कूण सुणै किण कहूं, सुण तो समझै नांय।
कहबो सुणबो समझबो, मन ही को मन मांय॥

ख

४१. खड़ सूखा गोभू मुआ, बाला गया बिदेस।
औसर चूका मेहड़ा, बूठा काह करेस।
४२. खोटा करम आद सूं कीन्या, घर खाती मांग्या दीन्या॥
के कहूँ राजा बेर बेर, घड़ै थो गडुवो होगी भेर॥

ग

४३. गंगाजी कै घाट पर, बामण बचन परमाण।
गंगाजी की रेणका, तूं चन्नण कर कै मान॥
गंगाजी कै घाट पर, जाट बचन परमाण।
गंगा जी की मींडकी, तू गऊ करकै जाण॥
४४. गई बात नै जाण दे, रही बात नै सीख।
तूं क्यूं कूटै बावली, मुवै सांप की लीक॥
४५. गटमण गटमण माला फेरै, अै ही काम सिधां का।
दीखत का बाबाजी दीखै, नीचै खोज गधां का॥
४६. गड़गड़ हंसै कुम्हार की, माली का चर रह्या बूंट।
तैं के हंसै कुम्हार की, किण कड़ बैठै ऊंट॥

४७. गये जोबन डंबर करै, सो माणस अग्यान।
भकती भूँडा दीसजै, पाके भांडे काम॥
४८. गरज दिवानी गूजरी, अब आई घर कूद।
सांवण छाछ न घालती, अर बंसाखां दूद॥
४९. गरज दिवानी गूजरी, नूत जिमावै खीर।
गरज मिटी गूजरि नटी, छाछ नहीं रै वीर॥
५०. गरू चेलो लालची, दोनूं खेलै डाव।
दोनूं ही बै डूबसी, बैठ पथर की नाव॥
५१. गाडर आणी ऊन नै, बैठी चरै कपास।
बहू ज आणी काम नै, बैठी करै फरमास॥
५२. गाय न जाणे गीत, और अलापै राग में।
परिहाँ दोढ बकाइन, रूंख, मियांजी बाग में॥
५३. गुड़ कोनी गुलगुला करती, ल्याती तेल उधारो।
परींडे में पाणी कोनी, बलीतो कोनी न्यारो॥
५४. गूंगा तेरी सैन में, समझै कुल में दोय।
कै गूंगा की मावड़ी, कै गूंगा की जोय॥
५५. गैली पैली समझी नहीं, मेवी का रग कहाँ गया।
अब प्रेम नहीं उस प्यारी से, वह पानी मुलतान गया॥
५६. गोद लडायो गीगलो, चढ्यो कचैड़्याँ जाट।
पीर लडाई पदमणी, तीनूं हि बाराबाट॥

घ

५७. घण गाजण बरसे नहीं, घुसण कुता नह खाय।
घण बोल्या घर जावसी, अणबोल्या मर जाय॥
५८. घण मेहा मदिर चुवै, भूपति ही भाजन्त।
वेदां ही री रांड हुवै, तेरू डूब मरन्त॥

च

५९. चाल कथ घर आपणे, छोड पुराणी आँट।
जे धन दीखे जावतो, (तो) आधो दीजै बाँट॥
६०. चिड़ी चीख मारती, कागलिया जी सुणै।
साँची कही है साथरां, जो बावै सो लुणै।
६१. चेला ल्यावै माँग कर, बैठचा खावै म्हन्त।
राम भजन को नाँव है, पेट भरण को पथ॥

छ

६२. छाछ घालतां छाती फाटै, दूध घालतां दोरो।
रोटी देतां रोज आवै, बातां करणो सोरो॥
६३. छोटो छोटो मत करो, छोटो मूं मोटी बात।
छोटो चंदा बूज को, दुनिया जोड़ै हात॥

ज

६४. जद की परणी तद की परखी, कदे न बोलै मन की हरखी ।
जद बतलाऊँ कड़की बोलै, बालूं सोनूं कांन जे तोड़ें ।।
६५. जांचै जोखै देखै परवांण, सूनी सेखी खाख में छांण ।
बोखा ऊदर सुलया धान, जहड़ा गुर तहड़ा जजमान ।।
६६. जीमणा न जूठणां, ना कंघी ना खाट ।
साप साप रै पावणा, जीभां रा लवलाट ।।
६७. जीव उहाँ पँजर इहाँ, हुई ज डामाडूल ।
कहो केतोइक जीवसी, बेल बिछूटो फूल ।।
६८. जूआ खेलै नै धन चाहै, पत्थर मांह तुरंगम चाहै ।
पाणी ऊपर ऊडै गूडी, आज न बूडी काल्हे बूडी ।।
६९. जे निरदूखण परिहरी, तो हिव केही लाज ।
गाडै रै उलट्यां पछै, किसो बिनायक काज ।।
७०. जोवन गया बुढापा आया, प्रीत पुरांणी तूटी ।
भला भया गुड़ मक्खी खाया, भिणभिणाट थं छूटी ।।
७१. ज्यूं छै त्यूं ही राखियै, बिण सेवा तन काय ।
बँधी बुहारी लख लहै, खुल्ली बीखर जाय ।।

ठ

७२. ठाकर सूं घर छूटगो, भांडां लीनो भोग ।
तेली सूं खल ऊतरी, हुई बलीते जोग ।।
७३. ठाली बैठी डूमणी, घर में घाल्यो घोड़ो ।
दूध बाजरी खावती, घास खोदबो दोरो

ढ

७४. ढांढण रूंख न बैसियै, न छाया न धुप्प ।
बोलियै तो निखाहियै, नहितर भली ज चुप्प ।।

त

७५. तूं खत्राणी मैं पाँडियो, तूं वेस्या में भांड ।
तेरे जिमाये मेरे जीमणं में पत्थर पड़ियो रै रांड ।।
७६. तैं है माता बावली, भैंस गई है रावली ।
मैं हूं खाती सैसो, बो ही कुहाड़ो बो ही बैसो ।।
७७. तै ही कंत उतार्यो चित्त, हूं ही और करूंगी मित्त ।
तू मुज सेती कीधो ऐसो, नाचण पैठी घूंगट कैसो ।
७८. तन तोलो मन ताखड़ी, नैणां विणजणहार ।
औसर देख न विणजियो, सो वाणियं गिंवार ।।
७९. तेरो गई टपकलो, मेरी गई हमेल ।
बिना मन का पावणा, तनै घी घालूं क तेल ।।

थ

८०. थ भाभीजी जीमल्यो, थारा काढ़ै न्होरा।
ऊँट तो कूद्यो ही कोनी, पैली कूदै बोरा॥

द

८१. दाव पाय दोनूं बढ़े, कै हरि कै हरिनाथ।
उण बढ़ लम्बे पद किये, इण पद लम्बे हाथ॥
८२. दीखत ही नीको लगै, भंवर न जाने भूल।
रँग रूड़ो गुण बायरो, रोहीड़ै रो फूल॥
८३. दी सुरही हाजर हुई, विनय सुणावै बात।
गादी हूंत भजावियो, जमराजा इण जात॥
८४. दीहा जे कारज करत, सौ बैरी न करन्त।
दीह पलट्ट्यां रावणा, पाथर नीर तरन्त॥
८५. दुश्मन की किरपा बुरी, भली सैन की त्रास।
आडंग कर गरमी करै, जद बरसण की आस॥
८६. देख पराई चोपडी, पड़ मर बेईमान।
दोय घड़ी की सरमासरमी, आठ पहर आराम॥
८७. देख्या ख्याल खुदाय का, किसा रचाया रग।
खानजादा खेती करै, तेली चढै तुरंग॥
८८. देवा दुबधा दूर कर, हर चरणां चित लाय।
मस्तक में घोड़ी लिखी (तो) खोल कुण ले ज्याय॥
८९. देणो हूं तो तुरत हि दीजै, काल्हि सवारे देण न कीजै।
घड़ी माँहि घड़ियाला बाजै, गाँम गयोड़ो सूतो जागै॥

ध

९०. धनवंता कांटो लग्यो, स्हाय करी सब कोय।
निरधन पड्यो पहाड़ सू बात न पूछी कोय॥
९१. धान न मिलतो धापको, लास पलासाँ तेल।
सीरो ही गरमी करै, देख दई का खेल॥

न

९२. नदी वहै सावण की बूण, पैलै कांठै गुल री गूंण।
हिया माँह विचारी दीठो, नै पिण ऊँडी, गुल पिण मीठो॥
९३. नणद भौजाई इमी लड़ी, सासू जाय कुआ में पड़ी।
सुसरं जाय रै खाई फांसी, घर री हाँण लोक री हाँसी॥
९४. नाथे रा तिल, नाथो ही तोलारो, घर री निजर घर रो थुथकारो।
मामे रो ब्याव, माँ पुरसारी, जीमो बेटा रात अधारी॥
९५. निगुणो मांणस सगुणो कर लीजै, आप सो भार उसके सिर दीजै।
यूं ही करतां आपै छेह, बाँके लाकड़ बाँको बेह॥

९६. नोपत बाबर साह की, लैगो सांगो राण।
नवा घड़ाया बाजसी, नरवर गढ़ नीसाण॥

प

९७. पटै लिखाई मोठ बाजरी, मांगै चावल दाल
राधोचेतन यू कहै, चिट्ठी तो सभाल
९८. पर नारी पैनी छुरी, तीन ओड़ सै खाय।
धन छीजै जोवन हड़ै पत पचां में जाय॥
९९. पर नारी सू प्रीतड़ी, वैर्यां बिच में वास।
नदी किनारे रूखड़ो, जद तद होय विणास॥
१००. पारेवा पायर चुगै, करहा चुगै करी
कू भोजिन कासू कहै, चिन्त्या दहै सरीर।
१०१. पाव खांड ने जणां पचास, किण किण री हूं पूरूं आस।
ठाकर मांडै बे बे ठाम, बूथी चिड़ी कपूरी नाम॥
१०२. पिव पासै सूता थकां, हेज नहीं लवलेस।
जैसो कथो घर रह्यो, तैसो गयो विदेस॥
१०३ पीपल पूजण हूं गई, कुल अपणे री लाज।
पीपल पूज्यां हर मिलै, एक पथ दो काज॥
१०४. पुजारी की पागड़ी, ऊँटवाल की जोय।
बिणजारा की मोचड़ी, पड़ी पुराणी होय॥

ब

१०५. बखत बखत का मोल है, वाण्यो अकल उपाई।
राई का भाव रातै गया, अब टक्कै की सिर ढाई॥
१०६. बखत पड़्यां रै वीर, तू म्हानै मोटा कर्या।
तिय टूटै रै बीर, बार कदे टूटै नही॥
१०७. बहु जीम्या भोजन दहै, चिंता दहै शरीर।
अधसीखी विद्या दहै, दहैं कुबुद्धी वीर॥
१०८. बहुत दिनां घर प्रीतम आयो, आछो चीर पटोली लायो।
लाभी रॉड न पूछी सेर, काली मूडो लीला पैर॥
१०९. बाँका रहज्यो बालमा, बाँका आदर होय।
बाँकी बन में लाकड़ी, काट न सक्कै कोय॥
११०. बाँदर हो अर बड़ चढ्यो, बिच्छू लाग्यो गात।
गैलो होय होय मद पियो, क्यू न करै उतपात॥
१११. बाँमण रै घर बेटी जाई, ते लेई घर में परणाई।
कांण खोडी कुलखण घणा, धरम री गाय रा किसा दांत देखणा॥
११२. बाई रा बंधन कट्या, भली करी रुगनाथ।
सहजै चुड़लो फूटग्यो, हलका हुयग्या हाथ॥

११३. बागर गाय विडै में-बासो, नित उठ रवै जीव नै सांसो।
दूध दही मैं कवे न खाधो, अलगे ही बिछायो लाद्यो॥
११४. बाजण दे बाजंतरी, कुरदन्त्री मत छेड़।
तनै बिराणी के पड़ी, तूँ तेरी ही नमेड़॥
११५. बाड़ करी ही खेत नै, बाड़ खेत नै खाय।
राजा डडै रैयत नै, कूक किसै घर जाय॥
११६. बाप चराया बाछड़ा, माय उगाई बींत।
कै जाणैगी बापड़ी, बड़ै घरां की रीत॥
११७. बाबो गयो नो दिन, नौऊँ आया एक दिन।
लेखो कियो मन परचायो, बाबो कित गयो न आयो॥
११८. बिगर बुलाई आगी आवै, काम करै अणहूवा।
माँडो गिणै न जानियाँ, हूँ लाडे री भूवा॥
११९. बींझा बाड़ पलास री, अणछेड़ी खरराय।
नुगरा माणस री प्रीतड़ी, पत सुगणाँ री जाय॥
१२०. बूडा गिणया न बालका, तड़को गिणयो न साँझ।
जणजण को मन राखतां, वेश्या रहगी बाँझ॥
१२१. बैठी सूती डूमणी घर में घाल्यो घोड़ो।
दूद कचोलाँ पीवती, अब दूब खोदवा दोड़ो॥
१२२. बैरी न्यूत बुलाइया, कर भायाँ सै रोस।
आप कमाया कामड़ा, दई न दीजै दोस॥
१२३. बोलण री हिम्मत नही, डर लागै सुण भूत।
राँडाँ में रुलता फिरै, बै मावड़िया पूत॥

भ

१२४. भंडारी रस्ते लग्यो, आई दवारे चालि।
औसर चूकी डूमणी, गावै आलपताल॥
१२५. भणियाँ मांगै भीख, अणभणियाँ घोड़ाँ चढ़े।
सैणाँ मानो सीख, भाईड़ाँ भणज्यो मती॥
१२६. मारिया सो झिलकै नहीं, झिलकै सो आधा।
इण पुरखाँ की पारखा, बोल्या अर लाधा॥
१२७. भाई को धन भाई खायो, बिना बुलाए जीमण आयो।
आखड़ियो पण पड़ियो नहीं, घी ढुल्यो तो मूँगा महीं॥
१२८. भोलो अर भूँडो भलो, प्यारो घर रो पीव।
देख पराई चोपड़ी, क्यूँ तरसावै जीव॥

म

१२९. मन जाणै हाथी चढ़ूँ, मोती पैरूँ कान।
हाथ कतरणी राम रै, राखलो उनमान॥
१३०. मन बात मन ही जाणै, काया जाणै आपदा।
गीता अर्थ कृष्ण जाणै, माता जाणै सो पिता॥

१३१. मरद को जोबन साठ बरस जे घर में होय समाई ।
नार को जोबन तीस बरस हर बैल को जोबन ढाई ।।
१३२. माँगियै लूगड़ै तोरी करै, घर घर बड़ाई करती फिरै ।
घर में नहीं खाँण नै धाँन, चाबै ल्याय उधारो पान ।।
१३३. मूँड मुँडायो नाक कटाई, घर घर को फेर्‌यो द्वार ।
दोनूँ खोई रे बूबना, आवेसाँ र जुहार ।।
१३४. मैं नहिं रूठी तूँ किन रूठो, सारी रात सूतो अपूठो ।
उठि उठि कंथा करूँ निहोरा, ऊँट न कूद्‌या कूद्‌या बोरा ।।

र

१३५. राघो तूँ समझ्यो नहीं, घर आया था स्याम ।
दुबधा में दोनूँ गया, माया मिली न राम ।।
१३६. राजा जोगी अगन जल, इनकी उलटी रीत ।
अलगा रहज्यो परसराम, थोड़ी पालै प्रीत ।।

ल

१३७. लाख सयाणप कोडि बुध, कर देखो सहु कोय ।
अणहोणी होणी नहीं, होणी होय सु होय ।।
१३८. लाखाँ लोहाँ चम्मड़ाँ, पहली किसा बखाण ।
बहू बछेरा डोकराँ, नीवटियाँ परवाण ।।
१३९. लूँगाँ चढ़गी बाँस, उतरै चौथै मास ।
गादड़ मारी पालखो, मै धड़ूक्याँ हालसी ।।
१४०. ले पाड़ोसण झूपँड़ी, नित उठ करती राड़ ।
आधो बगड़ बुहारती, अब सारो ही बुहार ।।

व

१४१. बहू फिरी ऊ वेला सात, सासू जागी आधी रात ।
विरह चढी नै काढ़ै कैद, कुठोड खाधी सुसरो वैद ।।
१४२. बानर कहै मयारड़ी, साँभल तूँ मुझ बाँणी ।
हूँ अन्याय न को करूँ, दूध को दूध पाणी को पाणी ।।

स

१४३. सगूणाँ केरी प्रीतड़ी, सापुरसाँ री बाँह ।
बालो ठाकुर सेवियै, ढलती सीजै छाँह ।।
१४४. सत मत खोओ सूरमा, सत खोयाँ पत जाय ।
सत की बाँधी लिछमड़ी, फेर मिलैगी आय ।।
१४५. सन्यासी घर माँडियो, नवरंगी नारी परणियो ।
बुढापै बिसल्यो डोकरो, बूडी गाय गल टोकरो ।।
१४६. समै बडो बलवान है, नर को के बलवान ।
कावाँ लूटी गोपका, बै अरजन बै बाण ।।

१४७. सम्पत थोड़ी रिण घणो, बैरीवाड़ै वास।
नदी किनारै रूंखड़ो, जद तद होय विणास॥
१४८. सम्मन समय विचार कर, अपणै कुल की रीत।
स्यारीखै सूं कीजियै, ब्याह बैर अर प्रीत॥
१४९. सरद ऋतू री चानणी, हीण पुरुष री नार।
बिन बरत्यां बोदी हुवै, मोतै री तरवार॥
१५०. साँई केरा डर नहीं, ना कुल केरी लाज।
तिण सूं केहा बोलणा, मुष्ट भली बछराज॥
१५१. साँच कहै थी मावड़ी, झूठ कहै था लोग।
खारी लागी मावड़ी, मीठा लाग्या लोग॥
१५२. साखी धर कर लूंकड़ी, दीना दाम उधार।
बिरियाँ देख न बिणजियौ, सो वाणियौ गिवार॥
१५३. साठी कौ मिलियौ सखी, विरहण बालै वेस।
जैसो कंतो घर रह्यौ, तैसो गयो विदेस॥
१५४. सापै मेल्ही काँचली, सज्जन छोड्यो नेह।
सोढ़ै मेल्हीं चाटसूं, जो भावै सो लेह॥
१५५. साहण हँसी साह घर आयो, विप्र हँस्यो गयो धन पायो।
तूं के हंस्यो रै बरड़ा भिखी, एक कला मैं नई सीखी॥
१५६. सीख सरीरां नीपजै, दियां न आवै सीख।
अणमाँग्या मोती मिलै, माँगी मिलै न भीख॥
१५७. सुगन सरोधा, सिध का वाचा।
कोइक झूठा, कोइक साचा॥
१५८. सुख सौवै कुम्हार की, चोर न मटिया लेय।
गधियो बांध्यो खाट कै, चाक सिरहाणै देय॥
१५९. सुण कूंभा रावण कहै, आँण भराणां अक।
पाव पड्यां ही ना रहै, लाखां बातां लंक॥
१६०. सुण पाड़ोसण पापणी, भल रीझाये संण।
चार दिनां री चानणी, फेर अँधेरी रैण॥
१६१. सैलो पूछै पेल नै, कूंकर छूटै गैल।
घड़ी स्यात की धामामस्ती, सारा दिन की सैल॥
१६२. सो घोड़ा सो करहला, पूत सपूती जोय।
मेहा तो बरसत भला, होणी होय सो होय॥
१६३. सोक मुई नै पिउ घर आया, मन रा चीतीया फल पाया।
दुरजन केरा हियड़ा फूटा, बिल्ली भागै छीका टूटा॥

ह

१६४. हंस आपकै घर गया, काग हुया परधान।
जाओ विप्र घर आपणै, सिध किसा जजमान॥

१६५. हँसा जेहा ऊजला, पथ्थर जेहा चित्त।
काँधे घाली मेखली, जोगी किसका मित्त॥
१६६. हँसा समद न छोडियै, जै जल् खारो होय।
डाबर डाबर डोलताँ, भलो न कहसी कोय॥
१६७ हल्दी जरदी ना तजै, खटरस तजै न आम।
शीलवन्त औगण तजै, गुण नै तजै गुलाम॥
१६८. हाथ छिटक कूए गिरी, काढ न सक्कै कोय।
ज्यूँ ज्यूँ भीजै कामली, त्यूँ त्यूँ भारी होय॥
१६९. हाडा खीची कूकिया, धाए खड्याँ घमसांण।
नवा घड़ाया वाजसी, नरवर रा नीसांण॥
१७०. हिरण खुरी दो आंगली, धरती लाखपसाव।
बेह का घाल्या ना टलै, ज्याँ फाँसी त्याँ पाव॥
१७१. हिलन मिलन चिंतन मिटी, वय बीते करतूत।
जोगीड़ा रमता रया, आसण रही बभूत॥
१७२. हीयो फूटो हाली रो, ज्यो दूध भावै छाली रो।
हीयो फूटो घालवा वाली रो, ज्यो पींदो दीखै थाली रो॥
१७३. हूँ आई जद तन्नै लाई, सागण भंण री सोक कवाई।
खूँणै बैठी सुरमो सारै, मारी नहीं पण पलको मारै॥
१७४. हे सखि कासूँ करै घर बेठी, म्हारै साथि तू आवहि केठी।
न म्हे जाँवाँ न बुरो कुहावाँ, गुड़ खाँवाँ न म्हें कान विंधावां॥

परिशिष्ट २

प्रदेशों की तुलनात्मक कहावतें

(क) राजस्थानी और काश्मीरी कहावतें

नोट—काश्मीरी कहावतों के उद्धरण "A Dictionary of Kashmiri Proverbs and Sayings by Rev. J. Hinton Knowles" से लिये गये हैं।

राजस्थानी	Kashmiri
१. राजा कै बेटै केरड़ी मारदी, म्हे क्यूं क्हाँ !	1. The pirs killed an ox, what have I lost that I should tell anyone.
२. जेवड़ी बलगी पण बल को गयो ना।	2. The rope is burnt coal-black, but the twist is there plain enough.
३. सीदी आंगलियां घी कोन्या नीकलै।	3. Ghee is not to be taken with a straight finger.
४. साठी बुद नाठी।	4. A man at sixty years is a fool.
५. अठै ही भेड़ाँ को रूखाड़ो, अठै ही भेड़्या की घुरी।	5 Where the shepherd's flock, there the leopard's lair.
६. गूंगा तेरी सैन जैं समझै तेरी माय।	6. Only a dumb man's parents understand a dumb man's speech.
७. घाघरी को साख नजीक हो ज्याय।	7 A Woman's relations are honoured but a man's relatives are despised.
८. आओ मीयाँ छान उठाओ, हम बुड्ढा कोइ ज्वान बुलाओ। आओ मीयाँ खाणा खावो, बिसमिल्ला झट हात धुआओ।	8. "Get up, youngster and work." "I am weak and cannot." "Get up youngster, and eat something". "Where is my big pot ?"
९. मरे पूत की आंख कचौला सी।	9. A lost horse is valued at sixty sovereigns.
१०. काजीजी की बकरी मरी तो सारो गाँव भेलो हुयो, काजीजी मर्या	10. If a friend's mother dies, a thousand people remain

राजस्थानी	Kashmiri
तो कोई बात ईकोनीपूछी !	beacause the friend is alive, but if the friend is dead, then there is nobody left.
११. नाम धापली, फिरै टुकड़ा माँगती ।	11. Not a rag over the body and her name Mali (wealthy).
१२. मैं बी राणी तूँ बी राणी, कूण भरै पंडे को पाणी !	12. The mother-in-law is great, the daughter-in-law is also great; the pot is burnt, who will take it off the fire ?
१३. आप मर्‌यां जुग परलै ।	13. A Jackal got into the river, and it was as though the whole world had got in.
१४. हाथियाँ की गैल घणाँ ही कुत्ता घुसै ।	14. The dogs bark but the caravan goes on.

(ख) राजस्थानी और गुजराती कहावतें

नोट—गुजराती कहावतो के उद्धरण जमशेद जी नशरवानजी पीतीत द्वारा सम्पादित "केहवत माला" भाग २ से लिये गये है ।

राजस्थानी	गुजराती
१. ब्याया नहीं तो जनेत तो गयाहाँ।	१. परण्या नहि, पण जाने तो गया ।
२. कीड़ी संचै तीतर खाय, पापी को धन परलै जाय ।	२. पापी नुं धन पल्ले जाय, कीडी संचरे ने तीतर खाय ।
३. घणी सराही खीचड़ी दाँतां कै चिपै ।	३. बखाणी खीचड़ी दांते वलगे ।
४. मानै तो देव नहीं तो भींत को लेव ।	४. पूजे तो देव नहि तो पथ्थर ।
५. पीसा झाड्यां कै कोनी लागै ।	५. पैसा कांई झाड पर पाकता नथी ।
६. सैं आपकी रोट्यां कै नीचै आँच लगावै ।	६. पोतानी रोटली हैटल सो ईगार लागे ।
७. काल मरी सासू, आज आया आँसू ।	७. भोर मुई सासु ने होण आव्यां आंसु ।
८. बामण कह छूटै, बलद बह छूटै ।	८. ब्राह्मण कहि छूटे ने बलद बही छूटे ।
९. बिणज करे सो बाणियूँ ।	९. बाणियो होय ते बणज करे ।
१०. बाई का फूल बाई कै ही लागगा ।	१०. बाई नाँ फूल बाई ने, ने शोभा माहरा भाई ने ।
११. लुगाई कै पेट में टाबर खटा ज्याय पण बात कोनी खटावै ।	११. बायडीनां पेट माँ छोकरूं रहे, पण बात नहि रहे ।
१२. बासी बचै न कुत्ता खाय ।	१२. बासी रहे न कुत्ता खाय ।

राजस्थानी	गुजराती
१३. कमजोर गुस्सा ज्यादा ।	१३ बोत नबला से बोत गुस्सा ।
१४. बंधी मूठी लाख की, खुल्ली बीखर ज्याय ।	१४. बाँधी मुट्ठी लाख नी, ने उँघाडी तों राखनी ।
१५. करले सो काम भजले सो राम ।	१५. भजे जेनो राम ।
१६. टाबर आप आपको भाग साथ ल्यावै ।	१६. बच्चुँ पोतानुँ नसीब साथै लेतुँज आवे छे ।
१७. मकोड़ो कह मा मैं गुड़ की भेली उठा ल्याऊँ । कह कड़तू कानी देख ।	१७. मकोडो माग्रेने कहे जे गोलनी गुण लौउ तो के वीकरा ताहरी कमर नो लोंख एवोज छे ।
१८. पूछता नर पंडित ।	१८. पुछतो नर पडित ।
१९. राजा कै लड़कै कैरडी मारवी, म्हे क्यूँ वहाँ !	१९. बनिया ने बकरी मारी, मग्रें कायकु कहुँ !
२०. बामण को टाबर तो भीख मांग लेसी ।	२०. ब्राह्मण नो वीकरो भीख मागी ने खाय ।
२१. बाबाजी नमो नारायण ! कह आज तेरै ही न्यूतो ।	२१. बाबाजी नमो नारायण ! तो कै तेरे ज घर धामा ।
२२. बाबाजी ! रामराम ! कह आज तेरै ही न्यूतो ।	२२. बाबाजी सीताराम ! तो कै 'तारे घेर धाम ।'
२३. तीन बुलाया तेरा आया, भई राम की वाणी । राधोचेतन यूँ कहै, व्यो दाल में पाणी ।	२३. पटेल कहै पटलाणी ने, साँभल् माहरी वाणी । त्रण बोलाव्या, तेर आव्या, दे वाल् माँ पाणी ।

(ग) राजस्थानी और बंगला कहावतें

नोट—बंगला कहावतों के उदाहरण A Collection of Proverbs in Bengali and Sanskrit edited by an experienced teacher तथा श्री सुशीलकुमार दे के "बाङ्ला प्रवाद" से लिये गए है ।

राजस्थानी	बँगला
१. नाचण लागी तो घू घट किसो ?	१. नाचिते लागिले घोमटार कि काज ?
२. सुई, सुहागो सापुरष सांठै ही सांठै ।	२. छुँट, सोहागा सुजन, भांगा गडेन तिन जन ।
३. सो सुनार की, एक लुहार की ।	३. सेकवार ठूकठाक, कामारेर एक घा ।
४. बगल में छोरो, गांव में ढिंढोरो ।	४. कोले छेले, सहरे टेंडरा ।
५. भलै को जमानो ही कोनी ।	५. भाल मनुषेर काल नाइ ।
६. आपकै हार्योड़ै की अर लुगाई कै मार्योड़ै की कठेई दाद फरयाद कोनी ।	६. आपनार हारा अर स्त्रीर मारा ।
७. बिल्ली कै भाग को छींको टूटगो ।	७. बिडालेर भाग्ये शिका छिंडियाछे ।

राजस्थानी	बंगाली
८. छाज तो बोलै तो बोलै चालणी के बोलै जैंकै ठोतर सो बेज ।	८. चालनी बले छुँटके तोर पोंदे बड़ छेंदा ।
९. खोई नथ नणद कै नाँव ।	९. उडो खई गोविंदाय नमः ।
१०. काम करै कोनी, खाबण नै नार ।	१०. काजे कम, खेते यम ।
११. नाँव धापली, फिरै टुकड़ा माँगती ।	११. काना पूतेर नाम पद्मलोचन ।
१२. सोडी सिणगार करै इतणै में बाजार उठ जाय ।	१२. साज करिते दोल फुराइल ।
१३. इन्दर की मा भी तिसाई ही रही ।	१३. अन्नपूर्णा यार घरे, से कांदे अन्नेर तरे ।
१४. पाव चून चोबारै रसोई ।	१४. चाल नाइ चूला नाई, हाटेर माझे राजत्व ।
१५. घणा मीठा में कीड़ा पड़ै ।	१५. मिष्टि आमेइ पोका धरे ।

(घ) राजस्थानी और मराठी कहावतें

नोट—मराठी कहावतों के उदाहरण "Racial Proverbs by S. G. Champion" से लिये गये है ।

राजस्थानी	Marathi
१. फिरै सो चरै, बँध्यो भूखां मरै ।	1. The animal that moves about will find pasture.
२. ज्यूँ ज्यूँ भीजै कामली, त्यूँ त्यूँ भारी होय ।	2 A blanket becomes heavier as it becomes wetter.
३. क्यूँ आँधो न्यूतै, क्यूँ दो बुलावै ।	3. If you invite a blind man, you will have two guests.
४. धर्म री गाय रा दाँत कँई देखणा ?	4. A gift cow – Why, has it no teeth ?
५. राई घटै न तिल बधै या करमां री रेख ।	5. Who is able to wipe off what is written in the forehead ?
६. ब्या कहै मनै माँड देख । चेजो कै मनै चलाय देख ।	6. Marriage says "Try me and see," a house says, "Build me and see."
७. सात मामां को भाणजो भूखो मरै ।	7. The guest of two houses dies of hunger.

(ङ) राजस्थानी और पंजाबी कहावतें

नोट—पंजाबी कहावतों के उदाहरण C. F. Usborne की 'Punjabi Lyrics & Proverbs' से लिये गये है।

राजस्थानी	Punjabi
१. भगवान दे जणा छप्पर फाड़ र ई दे दे।	1. When God gives, he gives through the roof.
२. बालक देखै हीयो, बडो देखै कीयो।	2. Man looks to deeds; the child to love.
३. मियां बीबी राजी तो के करैगो काजी ?	3. When man and woman agree, what can the Kazi do ?
४. चतर नै चौगणी, मूरख नै सौ गणी।	4. One's own wit and one's neighbour's wealth, a wise man multiplies them by four, a fool by hundred.
५. चोरी को गुड़ मीठो।	5. Stolen sugar is sweetest.
६. म्हारी ई बिल्ली र म्हानै ई म्याऊँ।	6. Our own cat and it mews at us
७. ऊँट तो अरड़ावता ही ज लदीजै।	7. A camel will always grunt, load or no load.
८. सीर की होली फूकण की होय है।	8. Form a partnership and have your hair pulled.
९. हाकिम कै अगाड़ी र घोड़ै कै पिछाड़ी।	9 Never stand before a judge or behind a horse
१०. धान पुराणा, घृत नया, अर कुलवंती नार। चौथी पीठ तुरंग री, सुरग निसानी च्यार॥	10. Old grain, new butter, a well-bred wife and the back of a horse, these are the four marks of heaven.
११. आप मर्यां जुग परलै।	11. When one dies, it's the end of the world,
१२. आँधा कै आगै रोवै, आपका दीदा खोवै।	12. It's wasting your eyes to weep before a blind man.
१३. कागलो हंस हाली सीखै हो, आपकी भी भूलगो।	13. The crow wanted to learn how to walk like partridges; they came back having forgotten how to walk like crows.

१४. राख पत रखाय पत ।	14. One's honour is in one's own hands.
१५. उतावलो सो बावलो, धीरो सो गम्भीर ।	15. The hasty are mad, the slow wise.

(च) राजस्थानी और भोजपुरी कहावतें

नोट—भोजपुरी कहावतों के उदाहरण हिन्दुस्तानी, जून १९४६ के अंक में प्रकाशित 'मध्य भोजपुरी कहावतें' शीर्षक लेख से लिये गये है ।

राजस्थानी	भोजपुरी
१. एक टको मेरी गाँठी, मगद खाऊँ क माठी !	१. अधेला गाँठी चूरी पहिरों की माठी ।
२. आव बैल मनै मार ।	२. आव बैल मोहि मार ।
३. एक तवा की रोटी, के छोटी के मोटी ।	३. एक तवा क रोटी, का छोटी का मोटी ।
४. फूड़ चालै, नो घर हालै ।	४. फूहर चलै नव घर डोलै ।
५. ठाडो मारै भी अर रोण भी कोनी दे ।	५. बरियरा मारै रोयै न देय ।
६. बाप न मारी मीडकी बेटो तीरंदाज ।	६. बाप न मारल भेजुरी बेटा तीरंदाज ।
७. ब्याया नहीं तो जनेत तो गयाहाँ ।	७. बिआह न भयल बाय त मड़वो में ना गयल बाटी ।
८. पाँवरी साँड र बनाती कूँची ।	८. रहर क टट्टी, गुजराती ताला ।

(छ) राजस्थानी और तेलुगु कहावतें

नोट—तेलुगु कहावतों के उदाहरण 'Selection of Telugu Proverbs by Captain M. W. Carr, Madras 1869.' से लिये गये ।

राजस्थानी	Telugu
१. लुगाई की अक्कल गुद्दी में होय ।	1. A woman's sense is in the back of the head.
२. उतावलो सो बावलो ।	2. A hasty man is not wise.
३. घाघरी को साख नजीक हो ज्याय ।	3. Your wife's people are your own relations; your mother's people are distant relations; your father's people are enemies because they are co-heirs.
४. आहारे ब्योहारे लज्जा न कारे ।	4. In eating and in business you should not be modest.
५. चोर नै कह चोरी कर, साहूकार नै	5. Like waking the master, and

राजस्थानी	Telugu
कह जाग ।	giving the thief a stick. He opens the door for the robber and then awakens the master.
६. चेजो कह मनै चलार देख, ब्या कह मनै माँडर देख ।	6. Try building a house, try making a marriage.
७. एक हाथ सै दे अर दूसरै सै ले ।	7. Doing with this hand and receiving the reward with that.
८. साँच कहयाँ झाल् उठै ।	8. A man starts with anger when the truth is told him.[1]
९. हाथी कै गैल अयां ही कुत्ता घुसै ।	9. Like dogs barking at an elephant.
१०. एक आँख को के खोलै अर के मीचै ?	10. One eye is no eye, one son is no son.
११. पेट सै किसब करावै ।	11. Ten million arts only for getting food.
१२. बंदर नारेल् को के करै ?	12. Like a monkey with a coconut who can't use it but won't give it up.
१३. मीठै कै कीड़ी लागै ।	13. Ants come of themselves where there is sugar-cane.
१४. रोयाँ बिना मा भी बोबो कोनी दे ।	14. Unless the child cries, the mother will not give it suck.
१५. मा गैल डीकरी ।	15. As is the mother, so is her daughter.
१६. मूँड मुँडातां ही ओल्या पड्या ।	16. When the poor man was about to anoint his head, it began to hail.
१७. जीभड़ली मेरी आल्पताल्, ठोला सह मेरो लाडलो कपाल् ।	17. The tongue talks at the head's cost.
१८. राख पत, रखाय पत ।	18. Give honour, get honour.
१९. दाई सै पेट छानो कोनी ।	19. Like covering the body before the mid-wife.

1. It is truth that makes a man angry (Latin Proverb) Truth produces hatred (Latin Proverb).

राजस्थानी	Telugu
२०. सारी रामायण सुणली और पूछै सीता कैंकी भू ?	20. Like asking what relation Sita was to Rama after listening to the whole Ramayana.
२१. सीधी आंगली घी कोनी नीकलै ।	21. Without bending the finger even butter cannot be got.
२२. सेर नै सवा सेर मिल ज्याय ।	22. For one seer, a seer and a quarter.
२३ चिड़ा चिड़ी की के लड़ाई ? चाल चिड़ा, मैं आई ।	23. A quarrel between man and wife only lasts as long as Pesara seed stays on a looking glass.
२४. गोद में छोरो गांव में ढिंढोरो ।	24. He looks for his ass and sits on its back.
२५. जूठ्या हाथ सै गँडकड़ो भी कोन्या मारै ।	25. He will not even throw his leavings to the crows.
२६. एक चणूँ को दाल ।	26. One blow and two pieces.
२७. टुकड़ा दे दे बछड़ा पाल्या । सींग हुया जद मारण चाल्या ।	27. He petted it as a Kitten, but when it grew into a big cat, it tried to bite him.
२८. निकमो नाई पाटला मूँडै ।	28. The barber without work shaved the cat's head.
२९ घी ढूल्यो तो मूँगा माँही ।	29. (a) Like the ghee falling into milk pudding. (b) The bread broke and fell into the ghee.
३०. कीड़ी पर कटक ।	30. Are you to attack a sparrow with a ब्रह्मास्त्र ?
३१. मरे पूत की आँख कचोला सी ।	31. The dead infant is always a fine child.
३२. बारै बरस सै बांझ ब्याई पूत ल्याई पांगलो ।	32. When after being long childless, Lokaya was born to them, Lokaya's eye was sunken.
३३. आग लग्यां कुआ खोदै ।	33. To make swords when the

राजस्थानी	Telugu
	war comes.
३४. खाल पराई लीकड़ो, ज्याणू भुस में जाय।	34. To cut into another man's ear is like cutting into a felt hat.
३५. आंगली पकड़तो पकड़तो पूँच्यो पकड़ लियो।	35. Like taking possession of the whole house when asked to come in for a while.
३६. बासी वर्च न कुता खाय।	36. No food for a fly nor offering for a snake

(ज) राजस्थानी और तमिल कहावतें

नोट—तमिल कहावतो के उदाहरण S G. Champion की 'Racial Proverbs' से लिये गये हैं।

राजस्थानी	Tamil
१. लुगाई कै गुददी में अक्कल हुवै।	1. A woman's thoughts are after-thoughts.
२. घर री मॉडण इस्तरी।	2. A wife is the ornament of the house.
३. बांदरै वाली चाँदी है।	3. A soar on a monkey never heals.
४. साची कहीं 'र भाटै को दई।	4. He who is truthful may be the enemy of many.
५. साप कै चीखलै को के बडो र के छोटो ?	5. There is no distinction between big and little when you are talking about snakes.
६. भूख कै लगावण कोनी, नींद कै बिछावण कोनी।	6. Hunger knows no taste nor sleep comfort.
७. चालणो रस्ता को हो भाँवै फेर ही।	7. Although the way goes round, go by it.

टिप्पणी—इन उदाहरणो मे कही-कही कहावतो के साथ मुहावरे भी आ गये हैं।

परिशिष्ट ३

राजस्थानी भाषा के कुछ "लौकिक न्याय"

(क) जीभ-रस न्याय

एक व्यक्ति चलते-चलते किसी के घर पहुँचा। गृह-स्वामी उपस्थित नही था। उसने गृह-स्वामिनी से कहा—मेरे पास दाल-आटा सब कुछ है, केवल चूल्हे पर रसोई बना लेने दे। गृह-स्वामिनी ने उसे ऐसा करने की इजाजत दे दी। उसने चूल्हे पर दाल चढ़ा दी किन्तु जब दाल भली भाँति उबल नही पाई तो उसने गृह-स्वामिनी से कहा—"अरी निपूती! कुछ अच्छी-सी लकड़ी तो दे जिससे दाल उबल जाय।" "निपूती" संबोधन गृह-स्वामिनी को बहुत अखरा। उसने कहा—"जैसे तुम आये हो, वैसे ही यहाँ से चले जाओ। यदि कही गृह-स्वामी आ गये तो तुम्हारी खैर नही।" इतने में गृह-स्वामी भी आ गये और उस व्यक्ति को दाल हाथ मे लेकर उसी समय घर से बाहर निकल जाना पडा। लोगों ने पूछा—"यह पानी क्या टपक रहा है?" उसने उत्तर दिया—"यह मेरी जीभ का रस है। यदि मैं अपनी जीभ वश मे रखता और शिष्टजनोचित बर्ताव करता तो आज मेरी यह हालत क्यों होती?"

(ख) पाली पंचायती न्याय

पाली में किसी समय पंचों का बड़ा ज़ोर था। सब तरह के झगड़े-टटे पंच ही निपटाया करते थे और उनके फैसले को भी सभी शिरोधार्य करते थे। एक बार दो जनों के लेन-देन का झमेला उनके पास आया। एक ने दूसरे को १०० रुपये उधार दे रखे थे। लेने वाला अत्यन्त गरीब था और पूरा रुपया चुकाने में असमर्थ था। पच भी इस बात को भली भाँति जानते थे। इसलिए उन्होने फैसला दिया कि कर्ज़दार ऋण-दाता को १०० रुपये के स्थान मे केवल पचास रुपये दे दे। ऋणदाता से उन्होने कहा—देख भई, पूरे सौ रुपये तो वापिस मिलने मुश्किल हैं। २०-२५ रुपये तो तुम भी छोड़ ही देते, २५ रुपये हम लोगों के कहने से छोड दो। इस प्रकार कम से कम आधी रकम तो तुम्हारे पल्ले पड जायगी, अन्यथा तुम पूरी रकम से हाथ धो बैठोगे। कर्ज़दार से उन्होने कहा—देख भई, १०० रुपये तुमने उधार लिये थे, हमने आधे कर दिये है। अब ५० रुपये तो तुम्हे हर हालत मे चुका ही देने चाहिएँ। दोनो ने पंचों की बात मान ली और झगडा निपट गया। इस प्रकार पाली के पच दोनों आसामियों को समझा-बुझा कर "अधफाडिया" न्याय कर दिया करते थे।

(ग) बारहठ घोड़ी-न्याय

एक बारहठजी किसी बड़े सरदार के यहाँ ठहरे हुए थे। संयोगवश उन्हीं सरदार के पास एक दूसरे समीपवर्त्ती ठिकाने के ठाकुर साहब का भी आगमन हुआ। अपना बड़प्पन दिखाने के लिए समागत ठाकुर साहब ने बारहठ से बड़ी नम्रता के साथ कहा कि कभी इस सेवक की झोंपड़ी को भी पवित्र कीजिये। थोड़ी देर अपने

काम की बातें करके ठाकुर साहब वापस चले गये। उन्हे यह स्वप्न मे भी ख्याल न था कि बारहठजी सचमुच ही आ धमकेंगे। दस-बीस दिनों के बाद बारहठजी सरदार के यहाँ से सम्मानित होकर विदा हुए। वे अपने साथ एक घोड़ी रखते थे। ज्यों ही घोड़ी पर सवार होकर बारहठजी अग्रसर हुए, उन्हें उन ठाकुर साहब के आग्रहपूर्ण निमंत्रण की याद आ गई। ठाकुर साहब का गाँव अधिक दूर नही था। मध्याह्न होने के पहले-पहले बारहठजी ठाकुर साहब के दरवाजे पर जा पहुँचे। बारहठजी को घोडी के साथ देखते ही ठाकुर साहब के होश उड़ गये। बारहठजी घोडी से उतर पड़े और लगाम थामकर ठाकुर साहब से "जय गोपीनाथजी की" की। ठाकुर साहब स्तब्ध हो गये। बारहठजी ने कहा "ठाकराँ ! इस घोड़ी को कहाँ बाँधूँ ?" ठाकुर साहब ने चुप-चाप अपनी जीभ निकाल दी और बोले—इसके बाँध दीजिये। यह उस समय चुप रहती तो आज यह नौबत क्यों आती ?

(घ) भंडार कुत्ता न्याय

एक कुत्ता किसी साधु के भण्डार में घुस गया। बाबाजी के यहाँ धरा ही क्या था ? शिष्य ने कहा—बाबाजी, भंडार में कुत्ता घुस गया। बाबाजी ने उत्तर दिया—कुत्ते को भंडार में ही बन्द कर दो। कुत्ता आया था कुछ खाने के लोभ से, बन्द अलग हो गया !

(ङ) मूँछ-चावल-न्याय

एक ठाकुर था जिसके घर की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी किन्तु ठकुराई की ठसक के कारण वह अपनी हालत का किसी को पता नही चलने देता था। घर में बाजरे की खिचड़ी बनती और घी तो कभी वार-त्यौहार ही सुलभ होता। किन्तु ठाकुर भोजन करके जब कभी बाहर निकलता तो चन्द्र-धवल वस्त्र पहने रहता और मूँछों पर चावल चिपके रहते। लोग समझते कि ठाकुर बड़ा रईस है, तभी तो प्रति दिन चावल खाता है, दूसरों को तो चावल के दर्शन भी दुर्लभ हैं।

इस प्रकार ठाकुर मूँछों के चावलों द्वारा अपनी लाज ढकता रहता था।

टिप्पणी—इस प्रकार के बहुत से न्याय लेखक ने संग्रहीत किये है, जिनमें से नमूने के तौर पर पाँच ऊपर दे दिये गये है।

सहायक पुस्तकों की सूची

English

A Dictionary of Hindustani Proverbs *by* S. W. Fultc Edited *by* R. C. Temple; Trubner & Co., London; 1886.

Bihar Proverbs *by* John Christian; Published *by* Keg Paul, Trench Trubner & Co. Ltd., 57 & 58 Ludgate Hill, Londo 1891.

Burmese Proverbs & Maxims *by* James Gray; Publish *by* Trubner & Co , Ludgate Hill, London, 1886.

Dictionary of Kashmiri Proverbs and Sayings *by* Re J. Hinton Knowles; Published *by* Thacker Spink & Co , London.

Encyclopaedia of Religion & Ethics Vol. X *by* Hasting Published *by* T. & T. Clark, 38, George Street, Edinburgh, 1918.

Marathi Proverbs *by* Rev. A. Munwaring, Printed at tl Clarendon Press Oxford, 1899.

On the Lessons in Proverbs *by* R C Trench, Publish *by* John W. Parkar & Sons, London, 1854.

Oxford Dictionary of Proverbs *by* W. G Smith, Print at the Clarendon Press, Oxford; 1935.

Preface to Eastern Proverbs and Emblems (illustratir old truths) *by* Rev. J. Long; Published *by* Trubner & Co , Londo 1881.

Proverbs & Common Sayings from the Chinese H. Smith; Published *by* American Presbyterian Mission Pres Sanghai; 1902.

Puranic Words of Wisdom *by* A. P Karmarkar; Publishe *by* Bhartiya Vidya Bhawan, Bombay; 1947.

Racial Proverbs *by* S. G Champion; Published Routledge & Kegan Paul Ltd , Broadway House . 68-74 Carter Lan E C. 4., London; 1938.

The Ocean of Story *by* N. M. Penzer; Published *by* Cha J. Sawyer Ltd. Grafton House W. 1. Mcm XXVIII, London, 1880-18

The People of India *by* Sir Herbert Hope Risley; Pu lished *by* W. Thacker & Co. London; 1915.

The Philosophy of Proverbs *by* Disraele.

संस्कृत

कादम्बिनी—(मधुसूदन ओझा) प्रकाशक— प्रद्युम्न शर्मा ओझा; सं० १९९९।

भुवनेश लौकिकन्यायसाहस्री—(भुवनेश) प्रकाशक—खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई।

लौकिक न्यायाञ्जली—(जी० ए० जैकब) प्रकाशक—पांडुरंग जावजी, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई; १९२५।

सस्कृत लोकोक्ति-सुधा—(जगदम्बाशरण) प्रकाशक—श्री अजन्ता प्रेस लि० नया टोला, पटना-४; १९५०।

गुजराती

कहेवतमाला—(जमशेदजी नसरवानजी पेतीत) प्रकाशक—जीजीभाई पेस्तनजी मिस्तरी; १९०३।

गुजराती कहेवत-सग्रह—(आशाराम दलीचन्द शाह) प्रकाशक—मूलचन्द आशाराम शाह, अहमदाबाद; सन् १९२३।

चबराकियानु तत्त्वदर्शन—(फिरोजशाह रुस्तमजी महेता) प्रकाशक—मीरझां खुशरो एण्ड क०, प्रकाश प्रिंटिग प्रेस, जामनगर; सन् १९४९।

रूढ़िप्रयोग-कोश—(भोगीलाल भीखाभाई गाधी) प्रकाशक—गुजरात वर्नाक्यूलर सोसाइटी; सन् १८९८।

बंगला

बाङ्ला-प्रवाद—(श्री सुशीलकुमार दे) प्रकाशक—रंजन पब्लिशिग हाउस, २५/२, मोहनबागान रो, कलिकाता; आश्विन १३६२।

मराठी

महाराष्ट्र वाक्-सम्प्रदाय कोश—(श्री यशवन्तराव रामकृष्ण दाते और चिंतामण-गणेश कर्वे) विभाग पहिला, प्रकाशक—महाराष्ट्र कोश मंडल, लिमिटेड, पुणे; सन् १९४२।

हिन्दी-राजस्थानी

घाघ और भड्डरी—(रामनरेश त्रिपाठी) प्रकाशक—हिन्दुस्तानी एकेडेमी, यू० पी०, इलाहाबाद; १९३१।

चौहान कुल कल्पद्रुम—(लल्लूभाई भीमभाई) प्रकाशक—देसाई लल्लूभाई भीमभाई, संदलपुर, जिला नवसारी; वि० स० १९८३।

जातक—(भदन्त आनन्द कौसल्यायन) प्रकाशक—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग; १९४१।

ढोला मारू रा दूहा—(संपादक—ठा० रामसिंह, सूर्यनारायण और नरोत्तमदास स्वामी) प्रकाशक—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी; सं० १९९१।

बाँकीदास-ग्रंथावली—(बाँकीदास) प्रकाशक—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी; १९३८।

बुद्धचर्य्या—(राहुल सांकृत्यायन) प्रकाशक—सेवा उपवन, काशी; सं० १९८८।

बोलचाल—(अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध')।

भोजपुरी ग्राम-गीत—(कृष्णदेव उपाध्याय) प्रकाशक—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग; स० २००५।

मारवाड़ रा ओखाणा—(लक्ष्मण आर्य) प्रकाशक—लक्ष्मण आर्य, सरदार सागर, जोधपुर; सन् १८९३।

मारवाड़ सेंसस रिपोर्ट सन् १८९१, जोधपुर राज्य द्वारा प्रकाशित। विद्यासाल जोधपुर सन् १८९५।

मालवी कहावतें—(रतनलाल मेहता) प्रकाशक—राजस्थान विश्वविद्यापीठ, उदयपुर।

मुहावरे—(रामदहिन मिश्र) प्रकाशक—बाल-शिक्षा-समिति, पटना।

मेवाड़ की कहावतें—(प्रथम भाग)—(लक्ष्मीलाल जोशी) प्रकाशक—राजस्थान विश्वविद्यापीठ, उदयपुर।

राजस्थान रा दूहा—(नरोत्तमदास स्वामी द्वारा सम्पादित) प्रकाशक—नवयुग-साहित्य-मन्दिर, पोस्ट बॉक्स न० ७८ दिल्ली; १९३५।

राजस्थानी कहावतां—(नरोत्तमदास स्वामी और मुरलीधर व्यास) प्रकाशक—राजस्थानी साहित्य परिषद् ४, जगमोहन मल्लिक लेन, कलकत्ता; १९४९।

राजस्थानी कृषि कहावतें—(जगदीशसिंह गहलोत) प्रकाशक—हिन्दी साहित्य मन्दिर, घंटाघर, जोधपुर।

राजस्थानी भाषा और साहित्य—(मोतीलाल मेनारिया) प्रकाशक—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग; सं० २००६।

राजस्थानी रनिवास—(राहुल सांकृत्यायन) प्रकाशक—राहुल प्रकाशन, मसूरी; १९५३।

राजिया के सोरठे—(जगदीशसिंह गहलोत) प्रकाशक—हिन्दी साहित्य मन्दिर, घंटाघर, जोधपुर; १९३४।

व्रजलोक साहित्य का अध्ययन—(डॉ० सत्येन्द्र) प्रकाशक—साहित्य रत्न भण्डार, आगरा; १९४९।

हमारा ग्राम साहित्य—(रामनरेश त्रिपाठी) प्रकाशक—हिन्दी मन्दिर, प्रयाग; १९४०।

हिन्दी मुहावरे—(ब्रह्मस्वरूप शर्मा) प्रकाशक—हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, २०३, हरीसन रोड़, कलकत्ता; १९३८।

पत्रिकाएँ

कल्पना, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, मरु-भारती, राजस्थान भारती, राजस्थानी, सम्मेलन पत्रिका, Journal of the Royal Asiatic Society of Bengal, Indian Antiquary आदि।

———